CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5.1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

વિઠઠલ શાં. રતિનાથ મા. જીકો

સાદર સમર્પિત. ગોવર્ધનરાય
લક્ષ્મી

૩૦।૯।૬૫

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गिरिधर-साहित्यिक-शोध-संस्थान की प्रथम भेंट

"आत्मकथा और संस्मरण"

लेखक
स्वर्गीय महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

संपादक
शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी आचार्य, एम० ए०
प्राध्यापक, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय
वाराणसी

सह-संपादक
स्वामी केशवपुरी, वेदान्ताचार्य

प्रस्तावना
विद्यावाचस्पति डा० श्री आदित्यनाथ झा
उपराज्यपाल, देहली प्रदेश

शरद प्रकाशन
अस्सी, वाराणसी-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुतकर्ता :
श्री गिरिधर-साहित्यिक-शोध-संस्थान,
पानदरीबा, जयपुर

प्रकाशक :
शरद प्रकाशन
अस्सी, वाराणसी

सर्वाधिकार सम्पादकाधीन
प्रथमावृत्ति
शारदीय नवरात्र
१९६७

मूल्य २०)

मुद्रक :
अरुण प्रेस,
तिलभांडेश्वर, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

स्व० महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी की आत्मकथा और संस्मरणों को पाठकों के समक्ष प्रस्तावित करते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता है। यह हमारे इतिहास में सबसे पहला प्रयास है कि एक संस्कृत विद्वान् की आत्मकथा और संस्मरणों का प्रकाशन इस राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है।

स्वर्गीय महामहोपाध्यायजी का जीवन इसी प्रकार की नवीन-नवीन प्रवृत्तियों के श्रीगणेश का संकलन रहा है। सर्वथा प्राचीन पाठशाला के स्नातक होते हुए भी उन्होंने अपने जीवन को विभिन्न प्रकार की सेवाओं में लगाया। उनका सारा जीवन संस्कृत और सनातनधर्म की सेवा में बीता और दोनों क्षेत्रों में अपनी अद्भुत प्रतिभा, असाधारण साहस तथा त्याग और साधना की प्रवृत्ति के कारण उन्होंने अनेक सफल प्रयोग किये। वे प्राचीन परम्परा के देश के इने-गिने विद्वानों में से थे लेकिन उनके चिन्तन, मनन और कार्य करने की पद्धति सर्वथा आधुनिक-से-आधुनिक और पूर्ण वैज्ञानिक थी। संस्कृत भाषा को अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण उन्होंने सैकड़ों उद्भट विद्वान् अपने शिष्यों के रूप में प्रदान किये। आज से ५५ वर्ष पूर्व सबसे पहले उन्हीं के मन में संस्कृत विद्वानों के एक संगठन की आवश्यकता का अनुभव हुआ जिसके परिणाम स्वरूप उन्हीं के प्रयासों से अखिल-भारतीय-संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना हुई। उन्हीं की प्रेरणा से "संस्कृत-रत्नाकर" नामक संस्कृत के प्रमुख मासिक पत्र का जन्म ६० वर्ष पूर्व हुआ जिसका सम्पादन और प्रकाशन वर्षों तक सर्वथा साधनों के अभाव में भी वे करते रहे। यह भगवान् की उन पर अद्भुत कृपा थी कि उनमें प्रौढ़ पाण्डित्य, अलौकिक वक्तृत्व-शक्ति, अद्भुत संगठन-शक्ति, अधिकारपूर्ण लेखकत्व तथा सुन्दर कवि के गुणों का समावेश एक साथ हो गया था। उनने ऋषिकुल हरिद्वार, सनातन-धर्म-कालेज, लाहौर, महाराजा-संस्कृत-कालेज, जयपुर, राजकीय-संस्कृत कालेज, अलवर, हिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी और संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी जैसी संस्थाओं को अपने कार्यकाल में उन्नति के चरम शिखर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक पहुँचाने में योग दिया। ये सब संस्थाएँ उनके अभाव को आज तक भी पूर्ण नहीं कर सकीं हैं।

मेरा यह सौभाग्य था कि मेरा जन्म ऐसे घर में हुआ, जहाँ संस्कृत के विद्वानों के विषय में अनवरत चर्चा चलती रहती थी और मेरे स्वर्गीय पूज्य पिताजी के द्वारा की गई प्रशंसा संस्कृत के विद्वानों के लिये एक बड़ा प्रमाण-पत्र माना जाता था। जिन स्वनामधन्य विद्वानों के वैदुष्य और भाषण-शक्ति की प्रशंसा पूज्य पिताजी के श्रीमुख से सुनने का सौभाग्य मुझे मिला उनमें महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी प्रमुख स्थान रखते थे। इसप्रकार उनके यशःशरीर से बाल्यकाल से ही मेरा परिचय हो गया था। यह परिचय उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक प्रतिदिन बढ़ता ही चला गया और मेरी बाल्यावस्था में ही उनके प्रति जिस आस्था और श्रद्धा का उदय हुआ था उसमें प्रतिदिन वृद्धि ही होती रही।

मुझे वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप में उनके साथ काम करने का अवसर भी मिला। मैंने विश्वविद्यालय के स्तर को ऊँचा करने की दृष्टि से वहाँ पर एक विशिष्ट योजना का प्रवर्तन किया, जिसके अंतर्गत देश के प्रख्यात विद्वानों की विश्वविद्यालय के सम्मानित प्राध्यापकों के रूप में नियुक्ति की गई। मैंने स्वर्गीय श्री महामहोपाध्यायजी से भी इस विश्वविद्यालय की विशिष्ट प्राध्यापकता स्वीकार करने का अनुरोध किया। उनकी स्वीकृति मेरे लिये वर्णनातीत हर्ष का विषय थी। वहाँ के कार्यकाल में उनकी प्रेरणायें मेरे लिये बहुत सहायक रहीं और उनके मार्गदर्शन में विश्वविद्यालय के काम को आगे बढ़ाने में मुझे बहुत सहायता मिली। मेरे जीवन के लिये वे प्रसंग एक प्रकार की अमूल्य निधि हैं।

मुझे इस बात का गौरव है कि मैं आजीवन उनका कृपापात्र बना रहा। संस्कृत वाङ्मय के इस प्रकार के साधकों की सेवा करने का व्रत मुझे पितृ-परम्परा से प्राप्त हुआ है। ऐसे साधकों के समक्ष मेरा मस्तक श्रद्धा से नत हो—यह स्वाभाविक है। मेरी यह मान्यता है कि देश की वर्तमान स्थिति में भारतीय संस्कृति के इस प्रकार के स्तम्भों के जीवन और उनकी अनुभूतियों का अधिक-से-अधिक प्रचार प्रसार होना चाहिये। इसी दृष्टि से मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत "आत्मकथा और संस्मरण" इस राष्ट्र की संतति के लिये बहुत हितकर होंगे।

लुड़लो कॅसिल, देहली — आदित्यनाथ झा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति को सरस्वती की रजत प्रतिमा का समर्पण करते हुए—

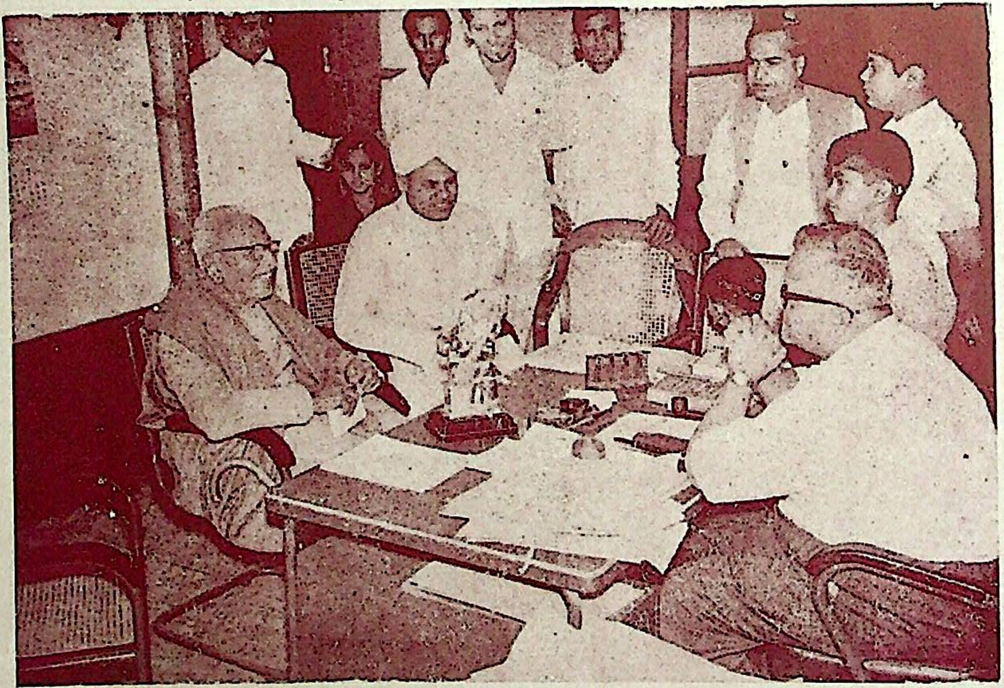

बैठे हुए—म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री बदरीनाथ शुक्ल, श्री आदित्यनाथ झा (उपकुलपति)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi
CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो शब्द

जीवन के अन्तिम दिनों में स्वर्गीय पूज्य पिताजी ने यह "आत्मकथा" बोलकर लिखवाई। इसके लिए उन्हें बहुत श्रम भी उठाना पड़ा था। वे अन्तिम दिनों में काशी में रह रहे थे। उन्होंने मुझे डायरियां, पत्र, तथा पत्रिकाओं आदि के संकलन के लिए दो तीन बार जयपुर भेजा। मैं कई दिनों के परिश्रम के बाद जयपुर से सामग्री संकलित करके लाया, उस सबको उन्होंने अथ से इति तक सुना। फिर लिखाना प्रारंभ किया। लिखने के साथ ही, एक साथ आगरा की "चतुर्वेदी", और बरेली की "भारतीय एकता" नामक दो मासिक पत्रिकाओं में क्रमशः 'आत्मकथा' का मुद्रण प्रारंभ हुआ। बरेली की पत्रिका उसके-संचालक स्वनामधन्य श्री राधेश्याम जी कथावाचक 'कीर्तन-कलानिधि' के शोकपूर्ण निधन के उपरान्त बन्द होगई, परन्तु आगरा के 'चतुर्वेदी' पत्र में प्रायः १ वर्ष से कुछ अधिक काल तक इस 'आत्मकथा' का प्रकाशन हुआ। बीचमें अन्य कार्यों के व्यवधान तथा अस्वस्थता वश पिताजी आत्मकथा के विस्तार में न जा सके। अनेकत्र अपनी स्मृति से बहुतसे लेख उद्धरणार्थ संकेतित उन्होंने करा दिये। उन लेखों का अन्वेषण भी प्रकाशन के पूर्व आवश्यक होगया। भगवत्कृपा से वे प्रायः सभी उद्धरण हमें प्राप्त होगये, हमने उन्हें यथा स्थान निविष्ट कर दिया है। परन्तु पत्र, डायरियां तथा लेखों के प्रचुर मात्रा में अवशिष्ट रह जाने के कारण हमें शीघ्र ही एक दूसरी पुस्तक भी स्व०पिता जी के जीवन से सम्बद्ध प्रकाशित करनी होगी।

मुझे यह परम सौभाग्य प्राप्त हो सका था कि मेरे आग्रह को वे स्वीकार कर लेते थे। इस पुस्तक के विषय में भी वही बात थी। 'आत्मकथा' लिखने का उनसे आग्रह बहुत दिनों से अनेक विद्वानों ने किया था, परन्तु उनका उस ओर ध्यान नहीं था। अन्य कार्यों में ही वे निरन्तर व्यस्त रहा करते थे। परन्तु जब पक्षाघात का आक्रमण होने पर लेटे लेटे समय विताना उनके लिए कठिन होगया तो प्रति दिन ३ घंटे तक बोल कर लिखाने के कार्य में उन्हें समय यापन का मार्ग दिखा। वे अन्त तक जिज्ञासु बने रहे थे। अन्तिम समय तक समाचार पत्र सुनते थे, पुस्तकें सुनते थे, पत्र लिखवाते थे लेख और पुस्तकें भी लिखवाते थे। पक्षाघात के अनन्तर उन्होंने चार महत्वपूर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुस्तकें साहित्य जगत् को समर्पित कीं, यह आत्मकथा पांचवीं है। उस रोगाक्रान्त अवस्था में भी अपने प्रिय शिष्य श्री रामाधीन शास्त्री जी के साथ सप्ताह में एक बार वे परम पूज्य श्री गोपीनाथ कविराज महाराज के यहां उपासना विषयक ज्ञान प्राप्त करने जाते थे। मैंने इतनी ख्याति और प्रौढ़ वय में कुछ ही विद्वानों में यह जिज्ञासा की प्रवृत्ति अब तक देखी है। "आत्मकथा" वर्तमान साहित्य की एक सशक्त विधा हो चुकी है। परन्तु अभी तक किसी विशुद्ध संस्कृत विद्वान् ने संभवत: आत्मकथा नहीं दी। अधिकांश आत्मकथाएं अपेक्षाकृत नवीन जीवन प्रवाह को मान्यता देने वाले महापुरुषों की ही उपलब्ध होतीं हैं। परन्तु यह आत्मकथा प्राचीनतावादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि से संभवत: इसका पृथक ही स्थान रहेगा। वे यह कहा करते थे कि "मेरा जीवन वर्तमान युग में कौन पढ़ना चाहेगा। मैंने तो अपने जीवन में प्राचीन मान्यताओं को ही पकड़ा है जिससे आज कल के लोग घृणा करते हैं।" इस पर एक वार संभवत: श्री किशोरीदास वाजपेयीजी ने कहा था कि जनता के प्राचीनतावादी दृष्टिकोण को बल देने के लिए ऐसे प्रयत्न की अवश्य आवश्यकता है। हमारी मान्यताओं पर आघात करने वाला साहित्य तो विविध रूपों में अनेक परिवेशों से मण्डित होकर सामने लाया जारहा है, परन्तु उसके उत्तर में प्राचीनतावादी दृष्टिकोण के विद्वानों का मौनावलम्बन प्राचीन की निस्सारता का समर्थन करता सा प्रतीत होता है। इस बात को पिताजीने स्वीकार किया था। दूसरी विशेषता प्रस्तुत रचना की यह है कि यह विगत ६०-६५ वर्षों के संस्कृत भाषा और सनातनधर्म के विभिन्न आन्दोलनों का एक संक्षिप्त लेखा जोखा प्रस्तुत करती है। घटनाओं के विवरण में तारीखों का निर्वाह इसमें नहीं हो पाया है। वह उस अवस्था में उनसे संभव नहीं था। यथा संभव तारीखें बाद में यथास्थान निविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

मेरे आदरणीय मित्र, इस ग्रन्थ के सह सम्पादक श्री स्वामी केशवपुरी जी ने डायरियों के अनुशीलन के द्वारा पर्याप्त सामग्री संकलित कर ली है। उसका कुछ दिग्दर्शन यहां कुछ पृष्ठों में कराया गया है। पृथक् पुस्तक में वह विस्तार से आवेगी। चित्रों के संकलन में भी बड़ा परिश्रम हुआ। फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण चित्र संगृहीत होने से रह गए हैं।

पिताजी के काशीवास के अनन्तर उनके अप्रकाशित ग्रन्थों को सम्पादित तथा प्रकाशित कराने के प्रबन्ध के हेतु एक संस्था "श्री गिरिधर साहित्यिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माता पिता की इकलौती सन्तान था। मेरे अनन्तर भी दो भ्राता उत्पन्न हुए, किन्तु दुर्दैववश वे भी बाल्यावस्था में ही काल-कवलित हो गए। भगिनी मेरे कोई उत्पन्न ही नहीं हुई।

यह तो स्वाभाविक ही था कि दुर्लभतया प्राप्त होने के कारण मेरा वाल्य-काल बड़े लाड़-चाव में बीता और उपनयन भी पितामह ने बड़े उत्साह से अष्टम वर्ष के प्रारम्भ में ही कर दिया, एवं उस समय की वाल-विवाह की कुप्रथा के अनुसार प्रथम विवाह भी नवम वर्ष में ही कर दिया। मेरा यह विवाह जयपुर राज्य के कवीश्वर जयपुर निवासी श्री रघुनन्दन जी के पुत्र श्री छविनाथ जी की कन्या श्री विद्या देवी के साथ सम्पन्न हुआ था।

आरम्भ में जीविका निर्वाहार्थ भूमि का जो भाग मिला उसमें श्री व्रजलाल जी का भाग अधिक था, और श्री रामलाल जी का अल्प। इसलिए मेरे पितामह श्री जीवनलाल जी को प्रारम्भ में कुछ अर्थ कष्ट रहा। किन्तु आगे चलकर श्री व्रजलाल जी के पौत्र श्री सुन्दरलाल जी निःसन्तान ही स्वर्गवासी हो गए। यद्यपि उन्होंने उस काल में जबकि रेल आदि का प्रचार अल्प ही था—उन्होंने श्री रामेश्वर की यात्रा की थी, और वहाँ से लौटकर जयपुर के समीप ही ब्रह्मपुरी नामक स्थान में एक शिव-मन्दिर प्रतिष्ठापित किया। किन्तु आयु उनको अल्प ही प्राप्त हुई और उसके अनन्तर उनके अधिकार का ग्राम भी श्री जीवनलाल जी को ही प्राप्त हो गया। इसके अतिरिक्त श्री जीवनलाल जी ने उस समय की प्रथा के अनुसार अपनी जागीर के आस पास के कई ग्राम राज्य से ठेके पर ले लिए थे। और ये कई लोगों को ऋण रूप में धन देकर उनके ग्रामों का भी ठेका ले लिया करते थे। इसलिए उनकी प्रतिष्ठा धन के विषय में बहुत जम गई थी। यद्यपि उन्होंने श्री गोकुलचन्द्र जी को ही दत्तक रूप से पुत्र बनाया था, किन्तु उनके छोटे भ्राता श्री दुर्गाप्रसाद जी भी प्रायः उन ग्रामों का कार्य सँभालने के लिए आजन्म उन ग्रामों में ही रहे। श्री चन्द्रनारायण जी के तीन पुत्रियाँ थीं। उनमें से भी दो का कुटुम्ब उन ग्रामों में ही रहा। वहाँ श्री जीवनलाल जी ने एक दो-मंजिला पक्का मकान बनवा दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। इसलिए स्त्रियों का भी निवास अधिकांश वहाँ रहा करता था। मेरा भी बाल्य-काल अधिकतर ग्राम में ही बीता। वहीं पर श्री पिता जी ने लिखने-पढ़ने का और गणित के पहाड़ों का भी अभ्यास करवा दिया था। उपनयन के अनन्तर विशेष-शिक्षा प्राप्त करने के लिए मुझे जयपुर में रखा गया। उपनयन में मुझे "गायत्री" की दीक्षा भी पितामह श्री जीवनलाल जी ने ही दी थी। पितृव्य श्री दुर्गाप्रसाद जी के तीन पुत्र और एक कन्या थी। उनमें ज्येष्ठ-पुत्र श्री वंशीधर जी जयपुर में ही रहकर वहाँ की संस्कृत पाठशाला में अध्ययन करने लगे थे। उपनयन के कुछ समय के बाद ८ वर्ष की अवस्था में मैं भी उनके साथ संस्कृत पाठशाला में ही प्रविष्ट हो गया।

यह संस्कृत-पाठशाला वि० संवत् १९२२ में जयपुर के महाराज श्री रामसिंह जी ने स्थापित की थी। दूर-दूर से विद्वानों को एकत्रित कर इसमें भिन्न-भिन्न शास्त्र पढ़ाने को नियत किया था। आरम्भ में इस पाठशाला के अध्यक्ष श्री एकनाथ जी मैथिल नियत किये गये थे किन्तु कुछ वर्षों के अनन्तर ही श्री महाराज रामसिंह जी काशी से सुप्रसिद्ध श्री विभवराम जी भाष्य-वृद्धचारी के पुत्र श्री रामभजन जी और शिष्य श्री शिवराम जी सारस्वत को अपने साथ जयपुर लिवा ले गये और श्री रामभजन जी को ही संस्कृत-पाठशाला का अध्यक्ष नियत कर दिया। इस पाठशाला में व्याकरण, साहित्य, न्याय, ज्योतिष और आयुर्वेद का अध्यापन उन दिनों चलता था। इन शास्त्रों में प्रवेश पाने के लिए एक "प्रवेशिका" परीक्षा नियत थी। उस प्रवेशिका में भी प्रविष्ट होने से पहिले हिन्दी और कुछ गणित की शिक्षा देने के लिए प्रारम्भिक दो कक्षाएँ बना रखी थीं। अस्तु, मैंने प्रथमतः हिन्दी-भाषा की प्रथम कक्षा में ही प्रवेश पाया। प्रवेश के समय अध्यापक एक व्याकरण-शास्त्र के पंडित श्री कन्हैयालाल जी थे। पाठ्य-ग्रन्थ थे—

(१) एक पादरी साहब का लिखा हुआ हिन्दी-भाषा का "भाषा-भास्कर" नाम का व्याकरण।

(२) श्री लल्लूलालजी कृत भागवत दशम-स्कन्ध का स्वतन्त्र अनुवाद रूप "प्रेमसागर"। "प्रेम-सागर" से हिन्दी-भाषा पढ़ने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यास करवाया जाता था और व्याकरण को कण्ठस्थ करवाते थे। मैंने प्रथम दिन ही दोनों ग्रन्थों का जितना पाठ पढ़ा उसको कण्ठस्थ करके दूसरे दिन पण्डित जी को सुना दिया। इससे पण्डित जी कुछ चमत्कृत हुए और प्रेम से पढ़ाने लगे। कुछ ही मासों के अनन्तर इन पण्डित जी का अल्पायु में ही देहावसान होगया और दूसरे न्याय-शास्त्र के वेत्ता श्री कन्हैयालाल जी नाम के ही विद्वान् अध्यापक नियुक्त हुए। ग्रन्थों में भी परिवर्तन हो गया। भाषा-भास्कर के स्थान पर "भाषा-चन्द्रोदय" नाम का एक व्याकरण नियत हुआ और "प्रेम-सागर" के स्थान पर एक संगृहीत-ग्रन्थ "साहित्य-संग्रह" जिसमें कि कुछ गद्य-पद्यों का संग्रह था नियत हुआ। इसके अतिरिक्त गणित शास्त्र के अध्यापक थे श्री रामचन्द्र जी। ये इस पाठशाला के सबसे प्रथम शास्त्री थे। ज्यौतिष-शास्त्र में इन्होंने शास्त्री-परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इनका अध्यापन-काल इतना लम्बा रहा कि प्रायः ३४ वर्ष के अनन्तर जब मैं स्वयं संस्कृत कॉलेज का अध्यक्ष हो कर आया, तब भी ये अध्यापक थे। मेरे अधिकार में भी कुछ वर्ष इन्होंने कार्य किया। मैंने भी इनसे गणित-शिक्षा प्राप्त की और मेरे पुत्र ने भी। अस्तु, इन भाषा की श्रेणियों में दो वर्ष मैंने अध्ययन किया। इस बीच में गणित का बहुतसा अंश त्रैराशिक, पंचराशिक तक भी सीख लिया था। इसी बीच में मेरा विवाह भी संपन्न हो गया था किन्तु अध्ययन-क्रम बराबर चलता रहा। श्री रामचन्द्र जी गणित पढ़ाने के लिए हमको अपने घर पर भी बुलाते थे। इनकी शिक्षा बहुत उपयुक्त थी, गणित के प्रश्न निकालने की बहुत अच्छी प्रक्रिया ये बतलाते थे। किन्तु साथ ही छात्रों को डण्डे से पीटने की प्रवृत्ति भी इनकी उग्र थी। मैं भी उससे बचता न था। गणित का पाठ्य-ग्रन्थ उन दिनों "गणित-प्रकाश" नाम का था। आगे दो वर्ष के अनन्तर मैं ऊपर के प्रवेशिका भाग में आया और व्याकरण का "लघु-कौमुदी" ग्रन्थ पढ़ने लगा। "लघु-कौमुदी" के पूर्वार्ध का अध्ययन मैंने पण्डित श्री मदनलाल जी के पास किया और आगे का भाग चतुर्वेदी श्री जानकीलाल जी से दो वर्षों में पढ़ा।

मैं जब किसी कक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त करता तो मेरे पितामह श्री जीवनलाल जी बहुत ही प्रसन्न होते थे। वे कहा करते थे कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"तेरे यज्ञोपवीत विवाह आदि से हमें इतना सन्तोष नहीं हुआ जितना कि तेरी परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त करने पर होता है।" ये एक बहुत ही प्रभावशाली व्यक्ति थे। जयपुर में जहाँ हमारा घर है वह मोहल्ला कायस्थों का है किन्तु सब ही कायस्थ इनका प्रभाव मानते थे, और जब किसी कारणवश ये जोश में जोर जोर से बोलते तो इनके सम्मुख मोहल्ले में कोई नहीं बोलता था। इसी प्रकार चतुर्वेदी-जाति में भी इनके सम्मुख बोलने का साहस प्रायः कोई नहीं करता था। अपना अपमान भी ये कभी सहन नहीं करते थे। लेन-देन करने के कारण राजकीय पुरुषों से भी जब कार्य पड़ता और वहाँ कोई अपमान का शब्द इन्हें कह देता तो उससे भी पूरा बदला लिये विना ये कभी न रहते थे। ये हिन्दी भाषा के अच्छे कवि भी थे। आयु के अन्तिम भाग में जब इन्होंने मथुरा यात्रा की तो मुझे भी साथ ले गये थे। मेरा यात्रा करने का यही प्रथमारम्भ था। वहाँ से लौटकर इन्होंने "मथुरा-वर्णन" नाम का पद्यों का लघु-काव्य भी लिखा था, जोकि मैंने अभी कुछ वर्ष पूर्व "माथुर-चतुर्वेदी-विद्यालय मथुरा" की "विद्यालय-पत्रिका" में प्रकाशित करवाया है। ये मुझे साहित्य-शास्त्र का विद्वान् देखने को बड़े उत्सुक थे। किन्तु दुःख है कि मेरे "लघु-कौमुदी"पूर्वार्ध समाप्त करते ही इनका देहावसान हो गया। इससे मेरे जीवन में एक प्रकार का परिवर्तन सा हो गया। अब मुझे पढ़ने की प्रेरणा देने वाला कोई न रहा। श्री पिताजी स्नेहवश पढ़ने की प्रेरणा में उपेक्षा ही करते थे। आगे जो कुछ मैंने अध्ययन किया वह केवल अपने हृदय के उत्साह से ही।

मेरे पितामह श्री जीवनलाल जी (जिनका कि वर्णन ऊपर किया जा चुका है) का विवाह जयपुर राज्यान्तर्गत टोड़ा रायसिंह में स्थित श्री जगन्नाथ जी जो कि "जगन कवि" के नाम से वहाँ विख्यात थे तथा हिन्दी भाषा के अच्छे कवि थे—उनकी पुत्री श्री मँगली देवी के साथ हुआ था। वे हृदय की बड़ी दयालु थीं—किन्तु औरों पर घर के या बाहर के जनों पर प्रभाव जमाने का इन्हें बहुत बड़ा अभ्यास था। घर का कोई भी मनुष्य उनकी आज्ञा से कभी बाहर नहीं हो सकता था और जाति या मोहल्ले पर भी पितामह की तरह इनका भी बहुत बड़ा प्रभाव था। इनके विरुद्ध भी जाति-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरादरी का कोई मनुष्य कभी आँख नहीं उठा सकता था। मुझे भी बाल्यकाल से ही इनके प्रभाव में इतना जकड़ा रहना पड़ता था कि अत्यावश्यक होने पर भी सायंकाल के अनन्तर मैं कभी घर से बाहर नहीं जा सकता था। बहुत काल तक ऐसी ही व्यवस्था रही। इस कारण जयपुर में जो कई योग्य-विद्वान् व्याख्याता आए, उनके व्याख्यान और दर्शनों से भी मुझे वंचित ही रहना पड़ा। इनके आतंक से घर के सभी लोग सदा काँपते रहते और सभी उनके वशवर्ती रहते थे। अस्तु, जिन पितृव्य-पुत्र वंशीधर जी का मैंने पूर्व उल्लेख किया है वे तो पितामह के निधन के अनन्तर जयपुर नहीं आए—हिन्डोन के ही आस-पास हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन करते रहे। आगे चलकर उस समय की प्रथा के अनुसार स्वल्प वेतन पर हिन्दी की पाठशाला में ही अध्यापक भी हो गए। कई भिन्न-भिन्न पाठशालाओं में उन्होंने प्रायः १५ वर्ष अध्यापन किया। बाल्यकाल में इनका और मेरा बहुत सम्पर्क रहा और परस्पर स्नेह भी घनिष्ट रहा। इसके अनन्तर मैं स्वयं ही संस्कृत-पाठशाला में अध्ययनार्थ जाता रहा। संस्कृत पाठशाला उन दिनों सर्वदा प्रातःकाल ही चलती थी। उस समय के जो प्रौढ़ विद्वान् वहाँ अध्यापक थे—उनकी प्रतिज्ञा थी कि "वेद, वेदाङ्ग का अध्ययन-अध्यापन प्रातःकाल ही उपयुक्त होता है। यदि पाठशाला का समय मध्यान्ह में कर दिया जावेगा तो हम उसी दिन अध्यापन का परित्याग कर देंगे।" इसलिए इस पाठशाला के समय-परिवर्तन का कोई साहस नहीं करता था। यद्यपि यह पाठशाला भी आंग्ल-विद्यालय के अध्यक्ष श्री हरिदास शास्त्री के ही अधिकार में थी। किन्तु वे इसकी मर्यादा में कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे। वही प्रातः-काल का समय और वही अष्टमी, प्रतिपदा की छुट्टियाँ यहाँ प्रायः अब तक चलती रहीं है। अब परिवर्तन हुआ है।

श्री रामभजन जी जो संस्कृत-पाठशाला के अध्यक्ष बनाए गए थे—उनके देहावसान के अनन्तर दाक्षिणात्य विद्वान् श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री द्रविड़ को अध्यक्ष-पद प्राप्त हुआ। श्री हरिदास शास्त्री के देहावसान के अनन्तर डी० एच० ह्वाचा नामक एक पारसी विद्वान् अंग्रेजी कालेज के अध्यक्ष होकर आए। इनने अपना बड़ा प्रभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जमाया और तात्कालिक राज्य के प्रधान-मन्त्री श्री कान्तिचन्द्र मुखोपाध्याय पर भी क्रूर-दृष्टि रखने लगे। इसलिए प्रधानामात्य जी ने श्री कालीपद तर्काचार्य को संस्कृत-पाठशाला का पृथक् अध्यक्ष निर्वाचित कर दिया। इन ही महाशय ने प्रवेशिका में हम लोगों को भूगोल इतिहास आदि की शिक्षा दी। अस्तु, वि० सं० १९५२ में अपनी आयु के १४ वें वर्ष में मैंने संस्कृत-पाठशाला की सर्व-प्रथम "प्रवेशिका" परीक्षा उत्तीर्ण की। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं सभी परीक्षाओं में सदा ही प्रथम-श्रेणी में और अपने वर्ग में सर्व-प्रथम उत्तीर्ण होता रहा। प्रवेशिका-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के समय से ही सब विद्वान् अध्यापकों की सु-दृष्टि मेरी उत्तरोत्तर उन्नति का कारण बनती थी।

प्रवेशिका के अनन्तर पृथक्-पृथक्-शास्त्रों का विभाग हो जाता था और छात्र से पूछकर उसकी इच्छानुसार उसे किसी एक शास्त्र में भेज दिया जाता या। मेरे श्री पिता जी ने एक बार मुझ से साहित्य-शास्त्र पढ़ने का अनुरोध किया क्योंकि हमें राज्य से कवि होने के कारण ही ग्राम प्राप्त था। किन्तु मेरी इच्छा व्याकरण पढ़ने की देखकर उन्होंने आगे मेरी इच्छा पर ही छोड़ दिया और कोई बल नहीं दिया। श्री कालीपद वन्ध्योपाध्याय जो अब शिक्षा-विभागाध्यक्ष वन चुके थे—उनने मुझ से न्याय-शास्त्र पढ़ने का अनुरोध किया। किन्तु मेरी इच्छा व्याकरण पढ़ने की ही दृढ़ देखकर उन्हें विवश होना पड़ा। अस्तु, इस प्रकार प्रवेशिका के अनन्तर मैं व्याकरण-विभाग में प्रविष्ट हुआ।

यहाँ प्रवेशिका-विभाग में जिन जिनसे अध्ययन किया उन गुरुओं का भी कुछ परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है। व्याकरण में लघु-कौमुदी के अध्यापक थे श्री जानकीलाल जी चतुर्वेदी। ये बड़े ही महात्मा पुरुष थे। दैवात् युवावस्था में ही इनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया था। तब से ही इन्होंने घर के साथ अपना सम्बन्ध बहुत ही अल्प रखा। कुटुम्ब बहुत बड़ा था। स्वयं इनके भी तीन पुत्र थे। बस केवल ज्येष्ठ वधू जो भोजन बनादे, वह खा आना—इतना ही घर में सम्बन्ध था। और सब दिन एकान्त में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैठे केवल पुस्तक पारायण करते रहना—यही इनकी दिन-चर्या थी। जैसाकि भगवान् मनु ने "मनु-स्मृति" में संन्यासाश्रम निरूपण के बाद घर न छोड़ने वाले का एक प्रकार का क्षेत्र-संन्यास लिखा है कि घर से कोई भी सम्बन्ध न रखते हुए "पुत्रैश्वर्ये चिरं वसेत्" अर्थात् पुत्र की प्रभुता में यावज्जन्म बना रहे—वह विधान इन्होंने अपनी आयु में पूर्ण करके दिखलाया। विविध-शास्त्रों के पारायण इन्होंने बहुत किए थे। महाभाष्य का और विशेषकर वेदों का अध्ययन ये एकान्त में बैठे करते रहते थे। वृद्धावस्था में कानों की शक्ति भी बहुत अल्प हो गई थी—यह भी जनता से अल्प-सम्पर्क रहने का एक कारण था। प्रवेशिका के अनन्तर भी हम लोग कई वार इनसे "सिद्धान्तकौमुदी" के विशेष स्थलों का द्विरावृत्ति-रूप अध्ययन किया करते थे। और ये बड़े प्रेम से बतलाया करते थे। वस्तुतः ये एक श्रद्धास्पद पुरुष थे। दूसरे काव्य के अध्यापक थे हमारे श्री गोपीनाथ जी दाधीच। इनके पास "मूलरामायण" या एक संग्रह-ग्रन्थ जिसमें "हितोपदेश" का कुछ भाग और "वाल्मीकीय-रामायण" के अयोध्या-काण्ड का कुछ अंश और महाभारत का सावित्र्युपाख्यान था। इनका ही अध्ययन इनके पास हुआ। किन्तु पद्यों का अन्वय सिखलाने की प्रक्रिया इनकी इतनी सुन्दर थी कि उतने ही से संस्कृत-काव्यों में अच्छा प्रवेश हो गया। ये अपने पीरियड में श्लोकों का अन्वय, अर्थ, भाषार्थ इत्यादि लिखवाते और कापियों का स्वयं संशोधन कर देते थे। बचे हुए समय में नाना इतिहास कहना और छात्रों को कई प्रकार के खेल भी सिखाना इनके द्वारा हुआ करता था। ये भी एक विचित्र ही प्रकार के विद्वान् थे। प्रवेशिका के आगे भी हम समय-समय पर इनसे कई महाकाव्यों का आंशिक अध्ययन करते रहते थे। तीसरे गणित-शास्त्र के अध्यापक वे ही श्री रामचन्द्र जी थे—जिनका परिचय ऊपर बहुत कुछ दिया जा चुका है।

अपनी मित्र-मंडली के संगठन का आरम्भ भी प्रवेशिका में ही हो गया था। यहाँ मेरी मित्र मंडली के सहयोगी एक श्री पंडित कन्हैयालाल जी थे जो आगे न्याय-शास्त्र के प्रौढ़ पंडित बने। ईश्वर कृपा से ये अभी विद्यमान हैं। इनके साथ मेरा भी सुहृदय-भाव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पर्क आज तक वना हुआ है। इन्होंने जयपुर-राज्य में बहुत कुछ प्रष्ठिा प्राप्त की और वहाँ के राज्याधिकारियों से भी इनका वहुत कुछ सम्पर्क रहा। दूसरे मित्र थे श्री अनिरुद्ध ठक्कुर मैथिल जो कि वहीं के प्रधान-न्यायाध्यापक श्री भाईनाथ जी ठक्कुर के पुत्र थे। ये भी न्याय में ही प्रविष्ट हुए—किन्तु प्रौढ़-विद्वान् न बन सके। काव्य-रचना आदि का इन्हें अच्छा अभ्यास था—किन्तु अल्पायु में ही इनका स्वर्गवास हो गया। तीसरे, मित्र थे श्री भगवतीलाल जी दाधीच, जो कि जयपुर में साहित्य-शास्त्र के अच्छे विद्वान् होकर आगे जोधपुर में अध्यापक-रूप से काम करने चले गए। इनका और मेरा सम्पर्क केवल प्रवेशिका में ही रहा। इसी प्रकार और भी कई मित्र वहाँ रहे किन्तु अल्प-सम्पर्क रहने के कारण उनका वर्णन अनावश्यक है।

व्याकरण-विभाग में प्रविष्ट होते ही मैंने श्री नरहरि जी मैथिल चौधरी के पास "सिद्धान्त-कौमुदी" के अध्ययन का प्रारम्भ किया। किन्तु बहुत थोड़ा अंश पढ़ाकर इन्होंने अपने ज्येष्ठ-पुत्र श्री हरिदत्त जी व्याकरण-शास्त्री को अपने स्थान पर नियुक्त करवाकर अपने आप अवकाश ग्रहण कर लिया। इसके आगे के व्याकरण-ग्रन्थों का अध्ययन उनके ही पास चलता रहा। श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी, जो कि संस्कृत-विद्यालय के अध्यक्ष नियत हो चुके थे और प्रवेशिका में हमारे व्याकरण के परीक्षक होने के कारण मेरी योग्यता का परिचय पा चुके थे—ये भी मेरे व्याकरण में प्रविष्ट होने के कारण वड़े प्रसन्न हुए क्योंकि ये स्वयं व्याकरण के ही अध्यापक थे। ये काशी से पढ़कर जयपुर आये थे और काशी में अति प्रसिद्ध व्याकरण के विद्वान् श्री वालशास्त्री जी के प्रधान शिष्यों में से थे। काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री शिवकुमार मिश्र जी, श्री दामोदर शास्त्री जी आदि के सहाध्यायी थे, और इसी कारण व्याकरण के नवीन शैली के परिष्कार आदि के पूर्ण-विद्वान् थे। इनकी आरम्भ से ही सुदृष्टि मुझ पर हुई और आगे सम्पूर्ण व्याकरण-अध्ययन मैंने इनकी चरण-सेवा में रहकर ही किया। और अपनी आयु भर ये मुझ पर पूर्ण कृपालु रहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय के न्याय के प्रधानाध्यापक श्री जीवनाथ जी ओझा ने आरम्भ में ही मुझे स्वयं बुलाकर कहा कि "तू व्याकरण पढ़ने लगा है किन्तु साथ ही साहित्य का अध्ययन हम से किया कर। व्याकरण के अध्ययन में से एक चतुर्थांश बचाकर समय हमारे पास पढ़ा कर।" ये महानुभाव मेरे पितामह के दीक्षा-गुरु थे। इस कारण इनकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैं आरम्भ से ही इनसे साहित्य का अध्ययन करने लगा।

ये श्री जीवनाथजी संस्कृत-कालेज में "गुरुजी" नाम से ही प्रसिद्ध थे। ये यद्यपि पाठशाला में न्याय के प्रधानाध्यापक थे, किन्तु साहित्य, साँख्य, वेदान्त आदि के छात्र मी इनके पास पढ़ने के लिए आया करते थे। इनको भी पढ़ाने का इतना व्यसन था कि स्वयं प्रेरणा करके लोगों को पढ़ने में प्रवृत्त किया करते थे। यहाँ तक कि बाजार में सायंकाल को घूमने जाते, वहाँ भी यदि कोई विद्यार्थी आ जाय तो एक तख्ते पर बैठकर उसे पढ़ाने लगते थे। साथ ही शिष्य की बुद्धि पर जोर न डालने का इन्हें पूरा अभ्यास था। मुझे साहित्य का "कुवलयानन्द" ग्रन्थ इन्होंने चार बार पढ़ाया। एक बार केवल अलङ्कारों के लक्षण पढ़ा दिये, दूसरी बार जो विस्तृत उदाहरण उस ग्रन्थ में काव्यों से लेकर दिये हैं, उनका अर्थ पढ़ाया, तीसरी बार अलङ्कारों पर जो शास्त्रार्थ हैं—वे पढ़ाये, और चौथी बार उसकी टीका के भी कुछ अंश पढ़ाये। इसी प्रकार आगे "रस मंजरी", "रस तंरगिणी" आदि पढ़ाकर "काव्यप्रकाश" पर्यन्त अलङ्कार-शास्त्र मुझे इन्होंने ही पढ़ाया। न्याय और साहित्य के ग्रन्थ भी मैंने इनसे ही पढ़े।

मन्त्र दीक्षा

आगे चलकर दो तीन वर्ष बाद इन्हींने मुझे भगवती आद्याके कुलमें दक्षिणाम्नायसे शाक्त दीक्षा दी और भगवती के मानस पूजन का अपना निजका क्रम बताया। उसके अभ्यास से आगे उपासना काल में मुझे निरन्तर प्रकाश मिलता गया और मैं अध्यात्म क्षेत्र में भी कुछ-कुछ प्रकाश पाने लगा। ये सदा मुझपर पुत्रवत् स्नेह करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे। कविवर श्री कृष्णरामजी भट्ट ने अपने "जयपुर विलास" नामक ग्रन्थ में जहाँ तत्कालीन जयपुर के अन्य विद्वानों का वर्णन किया है वहीं इनके सम्बन्ध में भी एक श्लोक लिखा है जिसका मैं प्राय: स्मरण करता रहता हूँ। वह इसप्रकार है :—

वादिप्रौढ़तमिस्रखण्डनविधौ मार्तण्डबिम्बोदयः,
काणादादिसमस्तशास्त्रविपिनप्रोद्दामकण्ठीरवः।
संसारव्यवहाररत्नजलधिर्वाक्सारिकापञ्जरः,
क्षीराम्भोनिधि-फेनपाण्डुरयशाः श्रीजीवनाथो गुरुः॥

"वादिरूपी प्रौढ़ अन्धकार को दूर करने में सूर्य मण्डल के समान, काणाद आदि मुनियों के समस्त शास्त्र रूपवन में विचरण करने में स्वच्छन्द केसरी स्वरूप, संसार के व्यवहाररूपी रत्नों के जलनिधि, वाणीरूपी सारिका के पिंजरे, समुद्र के फेन के सदृश शुभ्रयश वाले श्री जीवनाथ गुरुदेव हैं।"

उक्त श्लोक को पढ़कर यद्यपि पाठकों को कवि की अतिशयोक्ति-का ही अनुमान होता है किन्तु गुरुदेव को निकट सम्पर्क से अधिक कालतक देखने के अनन्तर मैं यह स्पष्ट अनुभव करता हूँ कि उनके विषय में उक्त पद्यमें प्राय: कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है, वस्तुत: वे ऐसे ही थे।

जिस वर्ष मैं प्रवेशिका में उत्तीर्ण होकर व्याकरण में प्रविष्ट हुआ, उसी वर्ष विवाह का पंचम वर्ष होने के कारण मेरी स्त्री का द्विरा-गमन (गौना) भी हो गया। मेरी आयु का उस समय १४वाँ वर्ष था, और १६वें वर्ष में प्रथम सन्तान एक कन्या भी उत्पन्न हो गयी। इसी अवसर पर अपनी मित्र-मंडली भी वहुत बढ़ गयी। व्याकरण के जो गुरू थे, उनके छोटे भ्राता श्री चन्द्रदत्त जी मैथिल के साथ घनिष्ट मित्रता हुई जो कि यावज्जीवन बढ़ती ही रही। दु:ख है कि अभी प्राय: ४ वर्ष पूर्व उनका देहावसान हुआ है। मृत्यु समय तक इनकी और मेरी मित्रता अक्षुण्ण रही। उनके यहां बहुत जाना आना होने के कारण और भी कई मैथिलों से विशेष सम्पर्क हो गया। विशेषकर एक श्रीकृष्ण नाम के मैथिल, जो उनके यहाँ ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहते थे, उनसे विशेष मित्रता हो गयी। मेरे एक वर्ष बाद ही श्री सूर्यनारायण जी गौड़ भी प्रवेशिका से उत्तीर्ण होकर व्याकरण की श्रेणी में ही आये थे। इनको अध्ययन में सहायता देकर मैंने अपनी कक्षा में ही ले लिया था। उनके साथ भी यावज्जन्म पूर्ण घनिष्ट मैत्री रही। जब मैं अन्य स्थानों में गया तो वहाँ भी किसी न किसी रूप में इनका सहयोग प्राप्त होता ही रहा। दुःख है कि प्रायः १० वर्ष पूर्व उनका भी देहावसान हो गया। मैं जिस वर्ष प्रवेशिका में उत्तीर्ण हुआ था, उसी वर्ष श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी जो दादूपंथ सम्प्रदाय के थे आयुर्वेद की आचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। इस पाठशाला के प्रथम आचार्य वे ही थे। आगे वे इसी पाठशाला में आयुर्वेद के अध्यापक भी हो गए। वे भी हमारी मित्र-मंडली में प्रधान-रूप से यावज्जीवन सम्मिलित रहे। इससे औषध और ऋण-सम्बन्धी द्रव्य की सहायता भी मुझे यावजजीवन मिलती रही। मेरे साथ ही प्रवेशिका में मेरे सजातीय पूर्वोक्त श्री जानकीलाल जी के पुत्र रूपनारायण भी उत्तीर्ण हुए थे, और वे भी व्याकरण-श्रेणी में ही पढ़ने आए थे। उनके साथ भी कुछ काल तक अधिक सम्पर्क रहा। किन्तु वे अध्ययन में आगे न बढ़ सके, इसलिए मेरा और उनका सम्पर्क भी टूट-सा ही गया। और भी कई एक साधारण-रूप से मित्र-मंडली में थे, किन्तु कुछ-कुछ काल सम्पर्क रह कर ही उन लोगों से विच्छेद हो गया, इसलिए उनका वर्णन अनावश्यक है। श्री मथुरानाथ जी तैलंग भट्ट का वर्णन भी विशेष आवश्यक है। ये महाशय व्याकरण और साहित्य दोनों विषयों के पूर्ण पंडित हैं, और हमारे गुरू श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी से इनने भी बहुत कुछ अध्ययन किया है। इन्होंने कई सुन्दर संस्कृत-काव्यों की रचना भी की है। इनके साथ भी मेरी घनिष्ट मैत्री है। प्रसन्नता की बात है कि ये अभी विद्यमान हैं। और इनका और मेरा भी प्रायः बहुत-से कार्यों में सहयोग रहा है, जिसका वर्णन आगे उन कार्यों के प्रसंग में आता रहेगा। इनके ही एक घनिष्ट मित्र श्री सोमदेव जी गुलेरी थे, वे भी हमारी मित्र-मंडली में थे, किन्तु दुःख है कि वे अल्पायु हुए।

प्रश्नवर जाति के मदनलाल जी शर्मा भी मित्र-मंडली में एक ख्याति-पुरुष थे। अध्ययन-काल में उपाध्याय-परीक्षा से ही इनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरा साथ रहा। और एक आयुर्वेदाचार्य दुर्गाप्रसाद जी गौड़ भी यद्यपि अध्ययन में साथ नहीं थे, किन्तु मित्र-मंडली में यावज्जन्म ही सम्मिलित रहे। इनके अतिरिक्त हमारे मकान में जो किराए पर रहते थे, उनसे भी पारिवारिक-जैसा ही सम्बन्ध हो गया था, उनमें श्री रामचन्द्र जी पारीक पुरोहित जाति के तो बड़ी आयु के थे। उनके साथ मेरा पितामह-जैसा ही सम्बन्ध रहा। किन्तु उनके पुत्र लक्ष्मीनारायण जी जो भूरामल जी नाम से प्रसिद्ध थे, उनके साथ मित्रता का ही व्यवहार रहा। ज्योतिर्विद् पंडित केदारनाथ जी से भी प्रायः यावज्जन्म ही सम्बन्ध रहा, और ज्योतिष-सम्बन्धी कार्य मैं प्रायः इनसे ही कराता रहा। यह जयपुर की मित्र-मंडली का वर्णन हुआ। इनके साथ सर्वदा ही आमोद-प्रमोद, भोजन-गोष्ठी आदि सब प्रकार का सम्बन्ध चलता रहा।

एक घटना

व्याकरण-श्रेणी में चार वर्ष पढ़कर मैंने "उपाध्याय" परीक्षा उत्तीर्ण की। उस परीक्षा में प्रविष्ट होने के वर्ष एक विशेष वर्णन योग्य घटना हो गई। वह इस प्रकार है कि उस वर्ष ग्रन्थों पर अधिक श्रम करने के लिए मैं श्री चन्द्रदत्त जी के स्थान पर ही जाकर शयन करता था। वहीं उस काल के हमारे गुरू उनके ज्येष्ठ-भ्राता भी विद्यमान रहते थे। उनसे भी समय-समय पर सहायता मिल जाती थी। और भी कई मित्र-मंडली के सदस्य वहाँ सम्मिलित हो जाते थे। बहुत काल पढ़कर फिर हम लोग सब वहीं शयन कर लेते। एक दिन एक साहित्य का छात्र जो कि श्री चन्द्रदत्त जी का घनिष्ठ मित्र था और हम सब लोगों से भी विशेष सम्पर्क रखता था, उसका चित्त बिगड़ा और उसने ताला तोड़कर श्री चन्द्रदत्त जी के घर में से सब आभूषण चुरा लिए। प्रातःकाल जब हम सब लोग उठे तो इस चोरी का वृत्तान्त फैला हुआ देखा। तत्काल ही हमारे गुरू श्री हरिदत्त जी उस समय के प्रधान अमात्य श्री कान्तिचन्द्र जी के मकान पर गए और उनसे अपना कष्ट निवेदन किया कि "हम तो आज लुट गए।" श्री कान्तिचन्द्र जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके अद्‌भुत विषयों को सुनकर मेरी उन पर श्रद्धा बढ़ती रही। अन्ततः मेरे मित्र पं० मदनलालजी प्रश्नवर के अनुरोध पर उन्होंने हमें पढ़ाना स्वीकार कर लिया। इस कारण पहिले पंडित मदनलाल जी के साथ मैं भी उनके स्थान पर अध्ययन के लिए जाने लगा। अन्ततः उनमें इतनी भक्ति मेरी बढ़ गई कि भिन्न-भिन्न दर्शन-शास्त्रों और उनके आविष्कृत वेद-विज्ञान की भी शिक्षा उनसे प्राप्त करता रहा। यहाँ तक कि उनके स्वर्गवास के दो-तीन दिन पूर्व तक भी मैं कुछ न कुछ उनसे शिक्षा लेता ही रहा। जब कभी अन्य प्रान्तों में, मैं अध्यापनार्थ जाता और लौटकर अवकाश आदि के दिनों में जब जयपुर आता तो उनके यहाँ जाकर कुछ न कुछ शिक्षा लेता ही रहता था। अस्तु, श्री जीवनाथ जी (अपने दीक्षा और विद्या दोनों के गुरु) श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी और श्री मधुसूदन जी ओझा ये तीन ही मेरे प्रधान गुरु रहे। इनका आज भी मैं प्रातःकाल स्मरण कर लेता हूँ। और आज भी इन तीनों में मेरी अतुल श्रद्धा है।

तीर्थ यात्रा

छोटी अवस्था में अध्ययन करते समय ही अपनी मित्र-मँडली के साथ मैंने एक छोटी-सी सभा की भी स्थापना कर ली थी। जयपुर नगर के सुप्रसिद्ध रामनिवास बाग में हम कुछ मित्र एकत्रित होकर "संस्कृतोपयोगिनी-सभा" के नाम से एक सभा करते और उसमें लिख-लिख कर कुछ संस्कृत के छोटे-छोटे निबन्ध पढ़ा करते थे। यह क्रम भी बहुत काल तक चलता रहा। तीन वर्ष के अनन्तर जब वि० सं १९५८ में मेरा "शास्त्री" परीक्षा देने का समय आया तो उसी वर्ष परीक्षा से कुछ मास पूर्व ही श्री पिताजी ने गया-श्राद्ध और श्री जगन्नाथपुरी जाने का विचार कर लिया। अपने साथ ही सब गृह-जनों को ले जाने का भी उनका निश्चय था। इसलिए मुझे भी प्रवास में जाना पड़ा। जयपुर के श्री लक्ष्मी-मन्दिर के महन्त व अपने मोहल्ले के प्रधान कायस्थ-कुल के कई लोग भी हमारे सह-चारी हुए। इस प्रकार एक बड़ी मंडली बन गई। दैवात उस वर्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया और श्री जगन्नाथ की यात्रा में बहुत बड़ी भीड़ थी, इस कारण उस यात्रा में कष्ट भी वहुत उठाना पड़ा। जगह-जगह ट्रेन न मिलना, अति भीड़ के कारण मिलने पर भी अत्यन्त कष्ट से समावेश होना इत्यादि असुविधाएँ पद-पद पर होती रहीं। उन कष्टों से शरीर भी कुछ दुर्बल-सा हो गया। किन्तु प्रधान-प्रधान स्थानों के दर्शन का बड़ा सौभाग्य उस यात्रा में प्राप्त हुआ। हमारे गुरु श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी ने कई पत्र काशी के प्रधान विद्वानों के नाम लिख कर मुझे ही दे दिए थे और आदेश दे दिया था कि "इन सब विद्वानों के दर्शन काशी में अवश्य करना।" इस कारण यात्रा से लौटते समय मैं काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री दामोदर शास्त्री, श्री गंगाधर शास्त्री आदि के दर्शन प्राप्त कर सका और कुछ मिनट बैठकर उनकी अध्यापन-शैली का भी अनुभव प्राप्त कर सका। काशी के सुप्रसिद्ध गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज के सुरम्य स्थान का भी प्रथम बार दर्शन का सौभाग्य उसी समय प्राप्त हुआ, जिसका कि वर्णन श्री शास्त्रीजी के मुख से अनेक बार सुना करता था। किन्तु समय की अल्पता के कारण श्री शिवकुमारजी के दर्शन का सौभाग्य इस बार न मिल सका। वे दरभंगा पाठशाला में उस समय अध्यापन करते थे और वहाँ जाते समय काशी की गलियों में भटक कर मार्ग भूल जाना ही इसका कारण हुआ। यह न्यूनता फिर अनेक बारों में पूर्ण हुई, जिसका कि विवरण आगे भिन्न-भिन्न स्थानों पर दिया जावेगा। प्रयाग, काशी, गया, श्री जगन्नाथपुरी, अयोध्या, लखनऊ, कानपुर आदि स्थानों में भ्रमण कर प्रायः दो मास में हमलोग जयपुर वापस लौटे। लौटते ही, परीक्षा सन्निकट होने के कारण, ग्रन्थाभ्यास में जुट जाना पड़ा। पहिले उपाध्याय परीक्षा के समय जैसे श्री चन्द्रदत्तजी के स्थान पर सब सहपाठी एकत्रित होते थे वैसे ही इस बार मेरे ही स्थान पर सब मित्र-मंडली एकत्रित होने लगी और पूर्ण परिश्रम से वहाँ अभ्यास-क्रम चलता रहा। इस बार पाठशालाध्यक्ष श्री शास्त्रीजी ने प्रथम बार श्री शिवकुमार मिश्र जी को हमारी परीक्षा का परीक्षक निर्वाचित किया था। ये महानुभाव इससे पहले जयपुर की परीक्षाओं के परीक्षक न होते थे। श्री दामोदर शास्त्री आदि ही पहले परीक्षक हुआ करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। इन महानुभाव ने प्रश्न भी बड़े ही जटिल दिये। उनके उत्तर की तो क्या कथा, उन प्रश्नों का भाव समझ लेना भी पुराने शास्त्रियों के लिए कठिन कार्य था। किन्तु हमारे लिखे गए उत्तरों से वे परम सन्तुष्ट हुए और शास्त्री परीक्षा के उत्तीर्णता के प्रमाण-पत्र पर उन्होंने अपने हाथ से ये अक्षर लिखे कि—

"अयं महाबुद्धिमान् शास्त्रे कृतश्रमश्चोत्तीर्णः"

भाषण देने का अभ्यास

"शास्त्री परीक्षा" देने के अनन्तर ही मुझे वक्तृता का आरम्भ करने का भी अवसर मिला। जयपुर के एक विद्वान् श्री बालचन्द्र शास्त्री जी ने जयपुर में ही "राम सभा" नाम से एक संस्था बना रखी थी। वहाँ के सुप्रसिद्ध वकील श्री मथुराप्रसादजी जो कि अँग्रेजी और संस्कृत दोनों के विद्वान् थे उनका भी उसमें पूर्ण सहयोग था। उनके अनुरोध से उसी सभा में मैंने "भगवान् का नाम और रूप" इस विषय पर व्याख्यान दिया। बड़ी सभा में भाषण करने का यह मेरा पहिला ही अवसर था उस पहिले व्याख्यान के अन्त में ही उक्त मथुराप्रसाद जी ने यह समालोचना की थी कि "ये विद्यार्थी महाशय यदि श्रम करें तो उन वक्ताओं की श्रेणी में आ सकते हैं, जिनका व्याख्यान सुनने के लिए लोग बहुत दूर-दूर से जाया करते हैं।" इसके अनन्तर भी गुरुवर श्री मधुसूदन जी के आविष्कृत नये-नये विषयों पर कई व्याख्यान मैं वहाँ देता रहा और सुप्रसिद्ध व्याख्याता स्वामी श्री हंसस्वरूप जी, श्री दुर्गादत्तपन्त जी आदि जो जयपुर में समय-समय पर आते रहे उनके व्याख्यान भी सादर सुनता रहा। इसी कारण धर्म सम्बन्धी एवं "आर्य समाज-सनातन धर्म" सम्बन्धी खण्डन मण्डनादि के व्याख्यान देने का शौक भी इसी समय से लग गया था।

शास्त्री परीक्षा में पढ़ते समय की ही एक, दो घटनाएँ और लिखने के योग्य हैं। एक तो यह है कि उक्त "राम-सभा" में ही एक बार हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी ने एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषण दिया था, उसमें परिष्कारों की शैली से व्याकरण साहित्य आदि पढ़नेवालों पर व्यर्थ समय खोने का कटाक्ष था। हमलोगों ने जब उसका कुछ उत्तर उनको दिया तो उन्होंने एक लम्बा पत्र लिखकर पाठशाला में ही हमारे पास भेजा जिसमें कि इस शैली से व्याकरण आदि पढ़नेवालों पर पूर्ण कटाक्ष थे। गुरुवर श्री शास्त्री जी की आज्ञा से मैंने ही उनके उस पत्र का विस्तृत उत्तर लिखा जिसमें कि उस परिपाटी से पढ़ने का पूर्ण समर्थन किया था। इस-प्रकार लेख लिखने का भी श्री गणेश उसी अवस्था में हो गया था। दूसरी विशेषता यह थी कि हमलोगों के अनुरोध से श्री शास्त्री जी ने सप्ताह में एक दिन पढ़ाई के अतिरिक्त समय में पाठशाला में ही एक "शास्त्रार्थ-सभा" का आयोजन कर दिया था जिसमें कि कई प्रौढ़ विद्वान् भी सम्मिलित होते थे और हम सब छात्र लोग अपने-अपने अधीत विषयों में शास्त्रार्थ शैली से विचार विनिमय किया करते थे। इससे भी योग्यता बढ़ाने का अच्छा अवसर हमें प्राप्त होता था।

"शास्त्री" परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर अन्तिम "आचार्य" परीक्षा के लिए भी श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी के पास ही निरन्तर अध्ययन चलता रहा और सायंकाल श्री पंडित मधुसूदन जी के पास भी प्रतिदिन जाता रहा। इसी अवसर में जयपुर-नरेश की इतिहास-प्रसिद्ध इङ्गलैंड-यात्रा भी हुई थी, उसका कारण सम्राट एडवर्ड का राज-सिंहासन पर प्रतिष्ठित होना था। उसी निमित्त से उन्होंने भारतवर्ष से भी कुछ राजाओं को बुलाया था। हमारे अन्यतम गुरु श्री मधुसूदन जी भी जयपुर महाराज के साथ वहाँ पधारे थे। उनकी विद्या का वहाँ के विद्वानों में बहुत आदर हुआ जो उनके "जीवन-चरित्र" में विस्तार से वर्णित है। राजसिंहासन की प्राप्ति के समय ही ब्रिटिश सम्राट को रोग का आक्रमण हो गया, और इस कारण निमंत्रित अतिथियों को वहाँ बहुत काल रहना पड़ा। रोग-काल में और रोग से मुक्त होने के समय तथा सिंहासन ग्रहण करते समय भारत के वाइसराय की आज्ञा से देश के सब स्थानों में हिन्दुओं के मन्दिरों में और मुसलमानों की मस्जिदों में ईश्वर-प्रार्थनाएँ बड़े विस्तार से हुई थीं। अपनी-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी भाषा में कविताएँ बनाकर ही ये प्रार्थनाएँ सम्पन्न की गयीं थीं। इस अवसर में उच्च-श्रेणी के छात्र लोगों को भी कविता-निर्माण का अवसर दिया गया। वही मेरा संस्कृत-कविता के निर्माण करने के अभ्यास का आरम्भ था। उस अवसर में सबके बीच में कविता-पाठ करने के कारण जयपुर के राज-कर्मचारी और सामन्त-सरदारों में भी परिचय बढ़ गया। जब जयपुर-नरेश इंगलैण्ड से वापिस पधारे तो उस समय के स्वागत-समारोह में भी अपने गुरु के साथ हम लोग सम्मिलित रहते थे। इससे भी उक्त प्रकार का परिचय दृढ़ होता गया।

हमारे गुरु श्री शास्त्री जी संस्कृत-कालेज के उस समय अध्यक्ष थे। निरन्तर उनके पास ही बैठने के कारण शिक्षा-सम्बन्धी प्रशासन कार्य का भी अनुभव हम लोगों को अध्ययन-काल में ही होता रहा। श्री शास्त्री जी ने यह भी कृपा की थी कि शिक्षा विभागाध्यक्ष से कह कर हम कुछ छात्रों के अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक "स्पेशल-क्लास" बनवा दिया था। इसमें अरबी, फारसी आदि के उच्च-श्रेणी के कुछ मुसलमान छात्र भी सम्मिलित किए गये थे। इससे अंग्रेजी का कुछ ज्ञान सम्पादित करने का भी अवसर मिला। अस्तु, इस प्रकार योग्यता-वृद्धि के अनेक सुअवसर प्राप्त करते-करते दो वर्ष के बाद वि० सं० १९६० के अन्त में मैंने अपने मित्रों के साथ व्याकरण की आचार्य-परीक्षा भी प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। इसमें भी उपरोक्त श्री शिवकुमार शास्त्री जी हमारे परीक्षक हुए थे। वे "महाभाष्य" के मेरे उत्तरों से इतने प्रसन्न हुए कि सौ में से पूरे सौ योग्यताङ्क उन्होंने मुझे प्रदान किये। इससे भी पण्डित-मण्डली में बहुत ख्याति बढ़ गई।

इस प्रकार जयपुर-राज्य की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण करके मित्र-मंडली सहित मेरा विचार हुआ कि यहाँ की परीक्षा एक-देशीय होने के कारण सर्वत्र मान्य नहीं है, अतएव कहीं विश्व-विद्यालय की भी उच्च-परीक्षा हम लोगों को देनी चाहिए। सब ने विचार कर पंजाब विश्व-विद्यालय की "शास्त्री" परीक्षा देने का ही निश्चय किया। क्योंकि वहाँ उस समय प्राइवेट छात्रों को भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परीक्षा में सम्मिलित होने का अधिकार दिया था और सुयोग्य विद्वानों की सिफारिश से सर्वोच्च-परीक्षा में ले लेने का भी वहाँ नियम था। अन्य किसी जगह उस समय ऐसा नियम नहीं था। इस कारण जयपुर संस्कृत-कालेज में तो वेदान्त-श्रेणी में हमने अपना नाम लिखवा लिया और प्राइवेट रूप से पंजाब विश्व-विद्यालय की "शास्त्री" परीक्षा की तय्यारी करने लगे। वहाँ अन्य सब पेपर्स तो सब के समानरूप ही होते थे, केवल दो पेपर व्याकरण, न्याय आदि भिन्न-भिन्न विषयों के विकल्पितरूप से नियत थे। हम लोगों ने विचार किया कि व्याकरण की सर्वोच्च परीक्षा तो वहाँ पास कर ही चुके हैं, अब यहाँ विकल्पित-विषयों में न्याय-विषय लेकर परीक्षा देनी चाहिए। इस नये का विषय अध्ययन विद्या-वाचस्पति श्री मधुसूदन जी के घर पर ही उपस्थित होकर करने लगे। "शास्त्री" परीक्षा के साथ ऐच्छिक-रूप से वहाँ एक इंगलिश की "एडीशनल-टैस्ट" परीक्षा भी नियत थी। इसके अध्ययन के लिए पुनः इंगलिश-कालेज में "स्पेशल-क्लास" की व्यवस्था श्री शास्त्री जी महाराज ने करवा दी। इस बार अंग्रेजी के अध्यापक एक बंगाली सुयोग्य विद्वान् हमें मिले थे, उन्होंने बड़े प्रेम से अंग्रेजी के व्याकरण का बहुत थोड़े समय में हमें ज्ञान प्राप्त करा दिया। इनका नाम कालीपद महाशय था किन्तु "पद्दो बाबू" जी के नाम से प्रसिद्ध थे।

संस्कृत पत्रिका प्रकाशन

हाँ, एक बात रह गई। आचार्य परीक्षा से उत्तीर्ण होते ही हमारी मित्र मण्डली का विचार हुआ कि एक संस्कृत का मासिक पत्र प्रकाशित किया जाय। उस समय केवल एक "संस्कृत चन्द्रिका" नाम की ही मासिक पत्रिका संस्कृत की दक्षिण प्रान्त से निकलती थी जिसके सम्पादक श्री राशिवड़ेकर अप्पाशास्त्री महोदय थे। अप्पाशास्त्री जी ने आगे चलकर बाई क्षेत्र से एक "सूनृत वादिनी" नाम की संस्कृत में साप्ताहिक पत्रिका भी निकालना आरम्भ किया था जो कि बहुत दिनों तक चली। ये संस्कृत के बड़े प्रौढ़, देश विख्यात लेखक थे। पूर्व भारत में भी कलकत्ता से एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'विद्योदय' नाम का मासिक पत्र प्रकाशित होता था। पहिले तो उसमें प्राचीन ग्रन्थों का ही प्रकाशन आरम्भ हुआ, किन्तु आगे चलकर नवीन निबन्ध और लेख भी उसमें छपने लगे। इन्हीं के आदर्श पर हमने भी जयपुर से संस्कृत मासिक पत्र निकालने का आयोजन किया। हमने अपना विचार जब गुरुवर श्री मधुसूदन जी के समक्ष रक्खा तो उन्होंने हमें बड़े हर्ष से प्रोत्साहित किया। अब पत्र निकालने के लिए प्रारम्भिक द्रव्य कहाँ से प्राप्त हो, इस समस्या को हल करने के लिए श्री बालचन्द्र शास्त्री जी से, जो कि सुविख्यात मोतीलाल शास्त्री के पिता थे और जिन्होंने जयपुर में उन दिनों ही एक नये प्रेस की स्थापना की थी, मिलने पर उन्होंने एक वर्ष तक अपने प्रेस की ओर से इस पत्र का प्रकाशन स्वीकार किया। इस प्रकार "संस्कृत रत्नाकर" नाम के मासिक पत्र का विक्रम संवत १९६१ में जयपुर में जन्म हुआ। इसके सम्पादन में प्रमुख भाग मैं और मेरे मित्र पंडित सूर्यनारायण जी आचार्य और तैलंग भट्ट श्री मथुरानाथ जी शास्त्री, जो कि उस समय आचार्य श्रेणी के विद्यार्थी ही थे, ये ही तीनों लेते थे। हमारे घनिष्ट मित्र श्री चन्द्रदत्त जी मैथिल ने भी आरंभ में कुछ कविता आदि देने की सहायता की, किन्तु लेख-निबन्ध आदि लिखने में इनकी प्रवृत्ति कभी नहीं हुई। यद्यपि लेख लिखने और कविता रचना में वे बड़े प्रौढ़ थे किन्तु आलस्यवश उधर प्रवृत्ति नहीं रखते थे। इस प्रकार यह पत्र-सम्पादन का कार्य भी पंजाब-विश्वविद्यालय परीक्षा की तैयारी के साथ ही चलता रहा। इस तैयारी के समय मेरे घनिष्ट मित्र श्री चन्द्रदत्त जी मैथिल का स्वास्थ्य बहुत ही विकृत हो गया था। वे परीक्षा में प्रविष्ट होने का विचार ही छोड़ बैठे थे, किन्तु मैं उन्हें बराबर प्रोत्साहित करता रहा, और स्वयं उनके घर पर उपस्थित होकर, अस्वस्थ दशा में लेटे हुए भी, उन्हें ग्रन्थों का अभ्यास कराता रहा। यह भी कह देना आवश्यक है कि उसी समय "बंग-भंग" के कारण बंगाल में स्वदेशीय वस्तु-प्रचार और विदेशीय-वस्तु-बहिष्कार का प्रबल आन्दोलन आरम्भ हो गया था। और उसी समय मैंने भी यथासम्भव स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का ही नियम ले लिया था। उस अवसर में इस नियम के पालन में कई बार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कठिनता भी पड़ती थी, विशेषकर वस्त्र न मिलने से और भोजन में भी विदेशीय चीनी का अधिक प्रचार होने से दूसरों के यहाँ जाति-भोज में सम्मिलित होने पर विशेष कठिनता का अनुभव होता था। किन्तु कठिनता सहकर भी यथाशक्ति मैंने अपना नियम नहीं तोड़ा। यों वि० संवत् १९६३ के आरम्भ में पंजाब विश्व-विद्यालय की 'शास्त्री' परीक्षा भी सर्वप्रथम रहकर मैंने उत्तीर्ण की, और वहीं अपना अध्ययन-क्रम समाप्त किया। इंगलिश अध्यर्यन भी मेरा वहाँ की परीक्षा तक ही सीमित रहा, आगे न बढ़ सका।

इसी वर्ष जयपुर में प्लेग का प्रथम प्रकोप हुआ था। उन दिनों जैसा कि नियम था, नगर छोड़-छोड़ कर बहुत लोग बाहर चले गये थे। इसी प्रक्रिया के अनुसार हम परिवार के सभी सदस्य भी अपने जागीर के ग्राम में जाकर प्रायः दो मास वहाँ रहे थे। इसी अवसर में ग्रामों की वसूली आदि का अनुभव करने का मुझे समय मिला। इससे उस कार्य में भी अभिज्ञता प्राप्त हुई। फिर जब जयपुर लौट कर आये तो "संस्कृत रत्नाकर" का प्रश्न सामने आया। यह कथन भी आवश्यक है कि संस्कृत रत्नाकर के जयपुर से प्रकाशित होते ही संस्कृत में मासिक पत्रों की एक बाढ़ सी आ गयी। "मित्र गोष्ठी पत्रिका" नाम की संस्कृत मासिक पत्रिका और "सूक्ति सुधा" नामकी मासिक पत्रिका ये दोनों काशी से प्रकाशित होने लगीं। उनमें मित्र गोष्ठी पत्रिका के संपादक संस्कृत जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पण्डित श्री रामावतार शर्मा और महामहोपाध्याय पण्डित श्री विधुशेखर भट्टाचार्य थे। यह पत्रिका सर्वथा सुसंगठित और सुसंपादित रूप में प्रकाशित होती थी और "सूक्ति सुधा" काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पं० श्री गंगाधर शास्त्री के परिवार के विद्वानों ने प्रकाशित की थी। यह प्रायः कविता प्रधान ही थी। कविता के अन्य दो पत्र 'समस्यापूर्ति' नाम से दक्षिण भारत से प्रकाशित होने लगे थे तथा मथुरा से भी "सद्धर्म" नाम की एक संस्कृत मासिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी थी। इस प्रकार संस्कृत पत्रों की बहुलता होने पर ग्राहकों की संख्या न्यून होनी स्वाभाविक ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी। इसलिए आर्थिक हानि समझकर एक वर्ष जिन्होंने संस्कृत रत्नाकर निकाला था उन बालचन्द्र शास्त्री ने आगे पत्र चलाने का प्रतिषेध कर दिया। तब पत्रिका इतनी जल्दी समाप्त करना अनुचित समझकर हमारी मित्र-मण्डली ने ही उसका प्रकाशन भार अपने ऊपर लिया और परस्पर चन्दे से एक दो वर्षों का रुपया इकट्ठा कर पत्र निकालने लगे। इसका कार्यालय मेरे ही स्थान पर रक्खा गया था और प्रकाशन का कार्य सब मित्र मंडली एकत्रित होकर करती थी। इसी अवसर में हमारे परम मित्र श्री सूर्यनारायण शास्त्री इधर-उधर की कुछ प्राइवेट सर्विस प्राप्तकर बाहर चले गये। मेरे भी तब तक तीन कन्याओं का जन्म हो चुका था। इसलिए आर्थिक चिंताओं ने इधर-उधर कहीं स्थान प्राप्त करने की दृष्टि फैलाने को मुझे भी बाध्य किया। यद्यपि मेरे पितामह कुछ संगृहीत द्रव्य छोड़ गये थे किन्तु उनके स्थान में अपनी नियुक्ति जागार में कराने के लिए श्री पिताजी को बहुत प्रयास करना पड़ा क्योंकि ये मेरे पितामह के भानजे थे जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है। इसी कारण श्री पिताजी ने देवताओं के अनुष्ठान आदि में और अधिकारियों को संतुष्ट करने आदि में भी बहुत व्यय किया एवं जो कई गांव ठेके पर राज्य से अन्य जागीरदारों से ले रखे थे, उनमें भी हानि ही अधिकांश हुई। इस कारण घर में द्रव्य संकोच होने लगा।

सम्मेलन में प्रतिनिधित्व

इसी वर्ष मुझे बाहर यात्रा के भी कई अवसर मिले। पंजाब विश्व-विद्यालय से डिप्लोमा प्राप्त करने के लिये कन्वोकेशन का आह्वान था। दिसम्बर सन् १९०५ में पहिले लाहौर यात्रा हुई। मेरी पितामही तब तक मुझे अकेला बाहर भेजना उचित नहीं मानती थीं। इसलिए उनकी प्रेरणा से मेरे श्री पिताजी भी साथ ही लाहौर गये। वहाँ हम लोग जयपुर के विद्वान् महामहोपाध्याय पं० श्री शिवदत्त शास्त्री, जो कि ओरियन्टल कालेज के प्रधानाध्यापक थे—उनके ही स्थान पर ठहरे। वहाँ से डिप्लोमा प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर हरिद्वार स्नान करते हुए जयपुर लौटे ही थे कि उसी दिन काशी जाने का विचार हो गया। काशी में उस समय एक स्वदेशी वस्तुओं की बड़ी प्रदर्शनी थी। जिसका कि महत्व उसी समय बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन प्रवृत्त होने के कारण बहुत बढ़ गया था और काशी में ही उस समय "श्री भारत धर्म महामण्डल" का अधिवेशन भी हो रहा था। श्री भारत धर्म महामण्डल से रजिस्ट्रेशन अस्वीकार करने के कारण श्री दीनदयालु जी शर्मा का सम्बन्ध टूट चुका था, और वह श्री ज्ञानानन्द जी की निगमागम मण्डली के अधिकार में आ चुका था। श्री ज्ञानानन्द जी की अधिष्ठातृता का यह पहिला अधिवेशन था। इसलिए इसका भी महत्व अधिक ही था। हमारे गुरू विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन ओझाजी जयपुर राज्य की ओर से महामण्डल में भेजे जा चुके थे और वे मुझे भी काशी आने का संकेत दे गये थे। इसलिए श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी वैद्य को प्रोत्साहित कर उनके साथ मैं भी काशी गया। उसी अवसर में परम गुरू म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री जी के दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मैंने देखा कि देश प्रसिद्ध महाविद्वान् होते हुए भी श्री शास्त्री जी अति सरल प्रकृति के और परम धर्मनिष्ठ थे। प्रसङ्गागत मेरे प्रति कुछ कठोर शब्द उनके मुख से निकल गये थे इसलिए उन्होंने मेरे गुरू श्री विद्या-वाचस्पति जी द्वारा क्षमा प्रार्थना करवाई। इतनी अभूतपूर्व सरलता देखकर मेरा हृदय गदगद् हो गया। अन्यान्य भी काशी के स्थान विशेष देखने का इसी बार मुझे अवसर मिला, क्योंकि गुरुवर श्री विद्यावाचस्पति जी के पास ही मान-मन्दिर में हम लोग ठहरे थे, और वे स्वयं अपने साथ हम लोगों को काशी के स्थानों में भ्रमण कराया करते थे। सबसे प्रथम संस्कृत नाटक का अभिनय देखने का भी मुझे यहाँ अवसर प्राप्त हुआ। इसमें सुप्रसिद्ध विद्वान् म० म० श्री विधुशेखर भट्टाचार्य ही प्रधान अभिनेता थे। "वेणी-संहार" नाटक का आंशिक अभिनय था। अस्तु, वहाँ से लौटने पर फिर माघ में उस वर्ष कुम्भ-पर्व प्रयाग में था, वहाँ भी "श्री भारत धर्म महामण्डल" का और स्वनामधन्य श्री मदनमोहन मालवीय जी द्वारा आयोजित "श्री सनातन धर्म महा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभा" का भी अधिवेशन उसी समय नियत हुआ था। जयपुर राज्य की ओर से गुरुवर विद्यावाचस्पति जी महामण्डल के अधिवेशन में भेजे गये थे। उनने ही अपने साथ दो विद्वान् और ले जाने के लिए मेरा और मेरे मित्र श्री चन्द्रदत्त जी मैथिल का नाम प्रस्तुत कर हमारी भी स्वीकृति राज्य से प्राप्त करली थी। इसलिए उनके साथ प्रयाग में जाना भी आवश्यक हुआ। मेरे पितृव्य श्री दुर्गा प्रसाद जी चतुर्वेदी मेरे अभिभावक रूप में वहाँ गये थे। वहाँ उस समय महान् जन समूह और सभाओं की चहल-पहल देखने का बहुत बड़ा सुयोग प्राप्त हुआ। त्रिवेणी के तट पर एक ओर "श्री भारत धर्म महामण्डल" का विशाल पण्डाल लगा हुआ था, जिसके सभापति रूप से दरभङ्गा महाराज श्री रामेश्वर सिंह जी वहाँ उपस्थित थे और भारत धर्म महामण्डल के प्रायः सभी महोपदेशक और वक्ता उसमें सम्मिलित थे। दूसरी ओर स्वनामधन्य श्री मालवीय जी का विशाल पंडाल बना हुआ था जिसमें कि दाक्षिणात्य विद्वान बड़ी संख्यामें एकत्रित थे। इन दोनों में परस्पर सहयोगकी बातचीत भी प्रायः नित्य ही चलती रही। श्री मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित करने की योजना प्रथमतः उसी अवसर पर प्रकाशित की थी। परस्पर इसी प्रकार समझौता हुआ कि हिन्दू-विश्व-विद्यालय स्थापित करनेका कार्य श्री मालवीय जी करें और धर्म प्रचारका कार्य भारत धर्म महामण्डलके हाथमें ही रहे। उसी अवसर पर श्री भारत धर्म महामण्डल ने उपाधि प्रदान का बहुत बड़ा आयोजन प्रस्तुत किया था। गुरुवर श्री मधुसूदन जी ओझा को विद्यावाचस्पति-पदवी भी उसी अवसरमें प्राप्त हुई थी। उनका "वैदिक ऋषि और देवता"—विषय पर एक विस्तृत वैज्ञानिक व्याख्यान भी भारत धर्म महामण्डल में हुआ था और मुझे भी इतनी बड़ी सभा में व्याख्यान करने का उसी अवसर पर सुयोग प्राप्त हुआ था। इस अवसरसे मुझे बड़ा लाभ हुआ और धर्म के व राजनीति के अनेक उच्च नेताओं का दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य भी मिला। देश के उच्चकोटि के अनेक विद्वानों का भी दर्शन करने का सौभाग्य वहाँ मिला। "संस्कृत चन्द्रिका" और "सुनृत वादिनी" के यशस्वी सम्पादक राशिवड़ेकर श्री अप्पा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्री जी से भी इस काशी और प्रयाग यात्रामें ही भेंट हुई और आगे पत्र व्यवहार भी फिर उनसे चलता रहा। इस प्रकार ये तीनों यात्राएँ पूर्ण कर मैं फिर जयपुर वापिस आ गया।

खण्डन मण्डन

अध्ययन-कालमें ही आलोचनात्मक लेख लिखने का अवसर भी मुझे प्राप्त हो गया था। दक्षिण के एक बहुत बड़े विद्वान् श्री कस्तूरिरङ्गाचार्य ने "संस्कृत-चन्द्रिका" नाम की संस्कृत-पत्रिका में एक व्याकरण सम्बन्धी लेख "ओजिष्ठादि शब्द विचार" शीर्षक से प्रकाशित किया था। गुरुवर श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी की आज्ञा से मैंने अपने मासिक पत्र "संस्कृत रत्नाकर" में उसकी आलोचना लिखी। उसका शीर्षक था—"ओजिष्ठादि शब्द विचारालोचनम्"। इसपर आगे भी उक्त आचार्य महोदय की ओर से लेख चलते रहे और श्री कृष्णमाचार्य नाम के दूसरे दाक्षिणात्य विद्वान् ही इसका उत्तर भी "संस्कृत-चन्द्रिका" में ही प्रकाशित करते रहे। मेरा एक ही लेख इस सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ।

उसी अवसर में "सरस्वती" के यशस्वी सम्पादक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने "भाषा की अनस्थिरता" शीर्षक से 'सरस्वती" में एक लेख लिखकर हिन्दी संसार में एक बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दिया था। "भारत-मित्र' आदि कई पत्रों ने उस लेख की आलोचना में प्रमुख भाग लिया था। बहुत दिनों तक वह आन्दोलन सामयिक पत्रों में चलता रहा। मैंने भी उस आन्दोलन में कुछ भाग लिया था और एक-दो आलोचनात्मक लेख "भारत-मित्र" में लिखे थे। इसी प्रकार वृन्दावन के श्री मधुसूदन गोस्वामी ने "स्मार्त धर्म" नामक एक छोटा-सा निबन्ध लिखकर स्मृतियों पर आक्षेप करने का हिन्दी में एक नया आन्दोलन उठाया था। मथुरा के श्री वामनाचार्य ने उसकी आलोचना प्रकाशित की थी। उस पर फिर उक्त गोस्वामी महोदय ने "स्मार्त मर्म" नाम से एक निबन्ध प्रकाशित किया। स्मृतियों पर इस प्रकार के अनुचित आक्रमणों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहन न करते हुए मैंने उस "स्मार्त मर्म" की विस्तृत आलोचना "भारत धर्म महामंडल" से प्रकाशित "निगमागम चन्द्रिका" नाम की मासिक पत्रिका में "स्मृति-विरोधपरिहार" शीर्षक से एक लेख माला प्रकाशित करवाई जो कि फिर रिप्रिन्ट होकर निबन्ध के रूप में भी प्रकाशित हुई। इसप्रकार के आलोचनात्मक और खंडन मंडनात्मक लेख लिखने से समाचार-पत्रों में भी प्रसिद्धि होने लगी।

इसी अवसर में अपने हृदय की दुर्बलता के कारण भी एक दु:खद घटना उपस्थित हुई जिसका छिपाना भी यहाँ उचित न होगा। पूर्व लिखा जा चुका है कि मेरी पितामही टोड़ारामसिंह (जयपुर प्रान्त) से आयी थीं। वहाँ उनके पितृव्य पुत्र दो भ्राता थे जो मांगीलाल जी और फतेहलालजी के नामसे प्रसिद्ध थे। इनमें से मांगीलाल जी अधिकांश मथुरा में ही बड़े चौबे जी के आश्रय में रहते थे और जयपुर में हमारे स्थान पर भी उनका आवागमन बहुत रहता था। इन दोनों का ही विवाह तो हुआ नहीं था इसलिए इन दोनों ने ही विजातीय स्त्रियों को अपने पास रख लिया था। उन स्त्रियों से इनके सन्तति भी हुई। अस्तु, उन दोनों की कन्याओं का विवाह मथुरा की ऐसी ही स्त्रियों से उत्पन्न दो पुरुषों से आयोजित किया गया था। उस अवसर में पितामही के अनुरोध से हम सब घर के लोगों को ही टोड़ा विवाह में जाना पड़ा। उसी अवसर में टोड़ा में ही शुद्ध माथुर कुल में भी एक विवाह था। उस कुलवालों ने हमलोगों का तिरस्कार किया और यह आन्दोलन जयपुर तक भी पहुँचा। इससे जयपुर के जाति-बान्धवों में भी हमारे विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हुआ। फलत: जयपुर की चतुर्वेदी जाति में भी दो पार्टियाँ हो गयीं कुछ लोग हमारे साथ रहे और विपक्ष में रहे। यह आन्दोलन कुछ काल तक चलता रहा।

इसके साथ ही एक विशेष दुर्घटना और हो गयी। मेरे पितृव्य-पुत्र जिनका कि नाम वंशीधर जी था और जो पहिले मेरे पितामह के साथ बहुत काल तक जयपुर में ही अध्ययन करते रहे थे, और इसके अनन्तर अपने निवास स्थान हिन्डोन में कुछ छोटी परीक्षाएँ पास कर सामान्य श्रेणी के अध्यापक हो गये थे उनका अचानक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैजे से देहावसान हो गया। उनके साथ मेरा बाल्यावस्था से ही घनिष्ट प्रेम था। इस कारण इस घटना का मेरे चित्तपर भी बहुत प्रभाव पड़ा। एक सम्बन्धी सुहृत के वियोग से कितना दुःख होता है इसका प्रथम अनुभव मुझे इसी घटना से हुआ। मेरे पितृव्य तो इस घटना से बहुत ही शोकाक्रान्त थे। यह स्वाभाविक ही था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहारनपुर में अध्यापन

यह सांसारिक घटना-चक्र चल ही रहा था कि इसी अवसर में सहारनपुर के अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महाविद्यालय से एक प्रधानाध्यापक की आवश्यकता प्रकाशित हुई। मैं इधर-उधर कोई स्थान प्राप्त होने के अन्वेषण में ही था। इसलिए गुरुवर श्री लक्ष्मीनाथ जी शास्त्री ने अपनी सिफारिश के साथ मेरा निवेदन पत्र वहाँ भिजवा दिया। जयपुर के कई जैनों ने इसमें विघ्न भी उपस्थित किये, किन्तु अन्ततः आश्विन मास वि० सं० १९६३ में ५०) रु० मासिक पर नियुक्त होकर मैं प्रथम बार सहारनपुर चला गया। इस समय मेरी आयु २५ वर्ष की थी। घर से बाहर रहने के लिए जाने का मेरा प्रथम ही अवसर था। इसलिए अपने श्याल जो कि श्वसुर जी के दत्तक-पुत्र थे और रूपनारायण जिनका नाम था—अपने साथ लेता गया।

यहाँ आकर मुझे इस बात का अनुभव हुआ कि प्राइवेट संस्थाएँ किस प्रकार चला करती हैं। वहाँ देखा कि एक जैन सम्प्रदाय के वकील जिनका कि नाम चन्दूलाल जी था—वे इस संस्था के सेक्रेटरी थे। वे स्वयं तो महाविद्यालय में कभी-कभी आते थे, अपने घर पर ही कागज-पत्र मंगवा लिया करते थे और वहीं से संस्था के परिचालन के लिए आर्डर भेज दिया करते थे। अन्य कई एक जैनी सु-शिक्षितों की एक समिति बनी हुई थी। वही समिति इसका परिचालन करती थी। इन सबके ऊपर एक अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा थी, और उसकी ही आज्ञा से यह महाविद्यालय सहारनपुर में आया था। वही महासभा बहु-सम्मति से इस विद्यालय को दूसरे स्थानों में भी भेज सकती थी। आरम्भ में मैंने इस विद्यालय के छात्रावास में ही निवास किया। सहारनपुर एक मध्य-स्थान था और हरिद्वार वहाँ से बहुत समीप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था, इसलिए मैं समय समय पर हरिद्वार जाया करता था। जयपुर नरेश श्री माधवसिंह जी की हरिद्वार में वहुत शक्ति थी। वे समय-समय पर वहाँ जाकर कई मास तक निवास किया करते थे। उनके परिकर में मेरे गुरु श्री मधूसूदन जी विद्यावाचस्पति भी जाया करते थे और वे भी कई मास वहाँ निवास किया करते थे। इस विद्यालय में जैन-दर्शन और जैनों के ही व्याकरण काव्य आदि की पढ़ाई होती थी। ये ग्रन्थ मेरे पूर्व देखे हुए नहीं थे, इस कारण जैनों के दार्शनिक विषयों में जहाँ कहीं सन्देह होता, उसका पूर्ण रूप से निवारण मैं उक्त गुरु जी के पास हरिद्वार जाकर कर लिया करता था। मुझ से पूर्व इस विद्यालय के उक्त पद पर कई सु-प्रसिद्ध विद्वान् रह चुके थे, किन्तु जैन-दर्शन में उन्हें भी शङ्का ही रहती थी और वे कई विषयों को चिन्हित करा दिया करते थे कि ये पूरी तरह नहीं समझे जा सके। किन्तु गुरु कृपा से मुझे ऐसा कोई भी अवसर नहीं आया। इसी कारण उच्च श्रेणी के छात्र वहुत सन्तुष्ट रहते थे और उनकी रिपोर्ट से अधिकारी वर्ग भी समय-समय पर जैन-गजट आदि में प्रशंसा के लेख निकाला करते थे। कुछ काल के अनन्तर प्रधानाध्यापक होनेके कारण छात्रावासका अधिकार भी मुझे ही दे दिया गया। इस विद्यालय में मेरे अतिरिक्त एक तो जैन अध्यापक थे और एक अंग्रेजी पढ़ाने वाले मास्टर थे। वे सौभाग्यवश मेरे सजातीय ही मथुरा निवासी सज्जन थे। इससे उनके साथ मेरा वहुत मेल-जोल हो गया। महासभाकी ओर से एक क्लर्क भी वहाँ नियुक्त था। वह भी वैष्णव सज्जन ही था इसलिए परस्पर बड़े मेल-जोल से वहाँ समय कटने लगा।

जिन सज्जन को मैं अपने साथ सहारनपुर ले गया था वे तो थोड़े दिन रहकर वापिस जयपुर चले आये। मुझे तब तक भोजनादि बनाने का कभी काम न पड़ा था। सहारनपुर में ही इसका आरम्भ हुआ। कभी-कभी भोजन बनाना और अधिकांश समय पूरी, प्राउँठे आदि से ही व्यतीत करता। इस प्रकार दो मास से कुछ अधिक समय व्यतीत कर मैं अवकाश लेकर घर पर जयपुर आया और वहाँ से अपनी पत्नी को साथ ले गया। यद्यपि मेरी माता भी जाने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए उत्सुक थी, किन्तु वृद्ध-पितामही को अकेली छोड़कर उन्हें वहाँ ले जाना उचित नहीं मालूम हुआ। आगे उनका शीघ्र ही देहावसान हो जाने पर मेरे मन में भी इस बात का पश्चात्ताप ही रहा कि मैं उन्हें वहाँ क्यों न ले गया।

पहिले जैनियों के सम्पर्क में रहने के कारण सहारनपुर के कुछ ब्राह्मण-विद्वान् मुझसे मिलते-जुलते न थे, किन्तु सौभाग्यवश एक अपरिचित छात्र वहाँ व्याकरण के ग्रन्थ मुझसे पढ़ने के लिए चला आया। उसने मेरा नाम सुन रखा था। उसने ही वहाँ के विद्वानों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि वे मुझसे मिलें। तब वहाँ के ब्राह्मण-विद्वानों से बहुत कुछ परिचय बढ़ा। वहाँ एक बलीराम नामक व्याकरण आदि शास्त्रों के अच्छे विद्वान् थे। उनसे भी अच्छा परिचय हुआ। वे कला में भी प्रवीण थे, वहाँ की रामलीला में प्रमुख भाग लिया करते थे। दूसरे एक हरिप्रसाद जी वैद्य थे। इनके साथ तो ऐसा दृढ़ सम्बन्ध हुआ कि वह बहुत काल तक चलता रहा और परस्पर के विवाहादि कार्यों में भी सहयोग होता रहा। उनका एक पुत्र, जो व्याकरण मध्यमा से उत्तीर्ण हो चुका था उसे तो उन्होंने आयुर्वेद पढ़ने के लिए मेरे कथन से जयपुर ही भेज दिया। वह मेरे घर के लोगों से भी बड़ा हिल-मिल गया किन्तु दुःख है कि वह अल्पायु में ही इस लोक को छोड़ गया। उसका नाम दामोदर था, और जयपुर में भी वहाँ के आयुर्वेद के प्रधानाध्यापक श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी की बहुत कृपा उसने प्राप्त कर ली थी।

उन दिनों देश में प्लेग रोग का बहुत प्रसार रहता था। मेरे ४-५ महीने रहने के बाद ही सहारनपुर में भी प्लेग का प्रकोप हुआ। कुछ दिन तो हमलोग एक बगीचे में जाकर रहे। विद्यालय में स्त्रियों के उपयोगी स्थान न होने के कारण एक जैन गृहस्थ के घर में ही उसके घर का कुछ अंश किराये पर लेकर मैं वहाँ पर रहने लगा था। वहाँ से ही कुछ दिनों के लिए एक बगीचे में जाकर रहने लगा। किन्तु जब प्लेग का जोर बढ़ने लगा और जैन विद्यालय में भी एक छात्र की मृत्यु हो गयी तब विद्यालय बन्द कर दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया और मैं भी अवकाश के दिनों में जयपुर चला आया। मैंने आते ही अपने गुरु श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी को रोग-दशा में देखा। कई डाक्टरों के अच्छे उपचार होने पर भी उनका वैकुण्ठ-वास हो गया। उनके श्राद्ध आदि के अनन्तर हम लोगों (उनके शिष्यों) का विचार हुआ कि इनकी एक बड़ी शोक-सभा यहाँ की जानी चाहिए। महाराज संस्कृत कालेज जयपुर के अध्यक्ष-पद पर रहते हुए ही उनका देहावसान हुआ था और उस समय के जयपुर के राज-कर्मचारियों में भी उनके कई शिष्य थे। उन सबके सहयोग से एक बड़ी सभा का आयोजन संस्कृत कालेज के मन्दिर में ही किया गया। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर आदि के अतिरिक्त राज्य के उच्च-कर्मचारी भी बड़ी संख्या में उसमें एकत्रित हुए थे। वहाँ अचानक एक डाक्टर महोदय ने उनकी स्मृति में एक संस्कृत-छात्रावास बनाने का प्रस्ताव भी उपस्थित कर दिया और वह अधिक-सम्मति से पास भी हो गया। किन्तु आगे कई प्रतिष्ठित रईसों के विरोध के कारण उस समय वह कार्यान्वित न हो सका। इन्हीं सब कार्यों में मुझे जयपुर में बहुत दिन लग गये। तब सहारनपुर में प्लेग भी समाप्त हो चुका था इसलिए मुझे पुनः ग्रीष्मकाल में सहारनपुर आ जाना पड़ा। उस समय जयपुर में रहने के काल का, विद्यालय बन्द रहने पर भी वेतन मुझे नहीं दिया गया, इस कारण विद्यालय के सैक्रेटरी से मेरी कुछ अनबन-सी उसी समय से हो गयी और छात्रावास का कार्य मैंने छोड़ दिया।

उसी वर्ष चातुर्मास्य में मैं और मेरी पत्नी भी ज्वरादि से अस्वस्थ हो गये थे। इस कारण फिर आश्विन मास में मुझे जयपुर आ जाना पड़ा। उस समय भी अचानक ऐसी घटना हो पड़ी कि मेरी श्वश्रू और श्वसुर दोनों ही केवल एक सप्ताह के अन्तर से स्वर्गगामी हो गए। उनके श्राद्ध आदि के निमित्त उस समय भी मुझे जयपुर में बहुत दिनों तक रहना पड़ा। फिर जब सहारनपुर लौटकर आया तब एक ब्राह्मण के मकान में रहने लगा जो कि वहीं के एक उच्च रईस थे और पंडित बलीराम जी का भी उनके घर से विशिष्ट रूप से सम्बन्ध था। उस वर्ष भी जयपुर में फिर प्लेग का प्रकोप बढ़ा इस कारण मेरे श्री पिता जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और पितामही दोनों ही कुछ काल के लिए सहारनपुर आए। उनके साथ ही हरिद्वार यात्रा भी हुई जिसमें कि हरिप्रसाद जी वैद्य भी साथ थे। इसी वर्ष दिगम्बर जैन महासभा ने अपने अधिवेशन में उस विद्यालय को काशी में स्थित "स्याद्वाद-विद्यालय" के साथ मिला देने का प्रस्ताव पास कर दिया और काशी में अल्प-वेतन में ही बहुत विद्वान् मिल जावेंगे—इस आशा से हम लोगों को वहाँ न ले जाकर सहारनपुर से ही बिदा दे दी गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरिद्वार के ऋषिकुल में

जब हम लोगों को सहारनपुर से विदा मिली तो हरिद्वार में ऋषिकुल का वार्षिकोत्सव समीप ही था। हरिद्वार में ऋषिकुल नाम से सनातनधर्म का एक ब्रह्मचर्याश्रम पहिले ही स्थापित हो चुका था। आरम्भ में यह ब्रह्मचर्याश्रम ज्वालापुर में ही स्थापित किया गया था। मैं जब डेढ़-दो वर्ष पहिले हरिद्वार गया था तब इस आश्रम के संस्थापक श्री दुर्गादत्त पन्त जी, जो कि कुमाऊँ के रहने वाले "भारत-धर्म महामण्डल" नामक संस्था के महामहोपदेशक थे और जयपुर में ही अपनी अध्ययन दशा में मैं इनसे परिचय प्राप्त कर चुका था, उनके अनुरोध से ज्वालापुर जाकर इस आश्रम को देख आया था। उसके एक वर्ष बाद ग्रीष्मकाल में जब यह आश्रम स्वतन्त्र स्थान में, जहाँ कि अभी है—लाया गया और इसकी रजिस्ट्री का आयोजन हुआ, तब भी मैं वहाँ उपस्थित था। इसलिए इसका वार्षिकोत्सव देख कर ही जयपुर जाने का विचार हुआ। ज्येष्ठ मास में गंगा-दशहरा के अवसर पर मैं हरिद्वार गया। वहाँ उस समय सनातन-धर्म के प्रसिद्ध महामहोपदेशक श्री ज्वाला प्रसाद जी भी उत्सव में पधारे हुए थे और इस आश्रम का सभापति-पद उन्होंने स्वीकार किया था—वे देहरादून के प्रतिष्ठित रईस श्री आनन्द नारायण जी भी वहाँ उपस्थित थे। बातों ही बातों में वहाँ श्री दुर्गादत्त पन्त जी और ज्वालाप्रसाद मिश्र जी में कुछ चखचख हो गयी। सभापति श्री आनन्द नारायण जी ने अपने सिर पर सारा दोष लेकर इस चखचख को तो शान्त किया और ज्वाला प्रसाद मिश्र से दूसरे दिन प्रातःकाल आकर ब्रह्मचारियों की परीक्षा लेने का अनुरोध किया। उन्होंने मेरा नाम लिया कि यदि ये भी आना स्वीकार करें तो मैं भी परीक्षार्थ आ सकता हूँ। सभापति महोदय के अनुरोध पर मैंने भी आना स्वीकार किया। मैं उस समय अपने मित्र जयपुर निवासी दुर्गाप्रसाद जी भिषगाचार्य के स्थान पर हरिद्वार नगर में ही ठहरा हुआ था। श्री ज्वालाप्रसाद जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के साथ मैं भी परीक्षार्थ आ गया। एक महोदय "सनातन-धर्म पताका" मुरादाबाद के सम्पादक भी ज्वाला प्रसाद मिश्र जी के साथ थे। इस प्रकार हम तीनों ने ही ऋषिकुल के ब्रह्मचारियों की "लघुकौमुदी" और "रघुवंश" में परीक्षा ली। परीक्षा की रिपोर्ट दोनों महाशयों ने सभापति को अच्छी नहीं दी। मुझसे पूछने पर मैंने कहा कि अध्यापकों ने पढ़ा ज्यादा दिया है, किन्तु तैयारी पर पूरा प्रयत्न नहीं किया। तब उक्त सभापति जी ने मुझसे अनुरोध किया कि यदि आपके पास कुछ समय है तो इस कार्य को उन्नत बनाने के लिए आप कुछ समय दीजिये, और दूसरे ही दिन ऋषिकुल की कार्यकारिणी समिति में यह पास भी करा दिया कि मुझे ५०) मासिक दक्षिणा पर वहाँ नियत कर लिया जाय। इस प्रकार एक स्थान छोड़कर और साथ ही दूसरा स्थान प्राप्तकर उस समय तो कुछ काल के लिए मैं जयपुर ही आ गया क्योंकि आरम्भ में पत्नी आदि को वहीं छोड़ना था। किन्तु कुछ काल वहाँ निवास कर सन् १९०८ के अन्त में मैं अकेला ही हरिद्वार चला आया और उसके अनन्तर पूरे नौ वर्ष तक मैंने वहीं कार्य किया। यों कहिये कि कार्य के उत्साह की जो अवस्था मनुष्य की हुआ करती है वह मेरी ऋषिकुल में ही व्यतीत हुई और मेरा व ऋषिकुल का परस्पर उपकार भी रहा कि मेरे कारण ही ऋषिकुल भी देश में प्रसिद्ध हुआ और ऋषिकुल के कारण मुझे भी देश में पूर्ण प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

मध्य मध्य में जयपुर में रहने के समय की दो घटनाएँ विशेष उल्लेख योग्य हैं। एक तो यह कि जयपुर से प्रायः ५० मील से कुछ अधिक दूर एक सवाई माधोपुर नामका स्थान है, वहाँ हमीर का बनाया हुआ एक प्रसिद्ध किला है और उसी किले में एक सुप्रसिद्ध गणेश की मूर्ति है, जो उस प्रान्त में परम पूज्य मानी जाती है। हमारी मित्र-मंडली का वहाँ जाने का संकल्प हुआ और प्रायः २० व्यक्तियों ने जिनमें श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी, श्री चन्द्रदत्त जी आदि अनेक विद्वान् सम्मिलित थे—वहाँ की यात्रा की। उस यात्रा में बहुत विनोद रहा। दो दिन वहाँ रहकर वहाँ के सब स्थानों का निरीक्षण कर तीसरे दिन लौट आये। सहारनपुर वाले वैद्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरिप्रसाद जी का पुत्र दामोदर भी इस यात्रा में साथ था। यह एक हमलोगों की स्मरणीय यात्रा हुई थी।

दूसरी घटना यह थी कि जगतप्रसाद नाम का एक पंडित उन दिनों भारत के भिन्न-भिन्न प्रसिद्ध नगरों में दौरा करता था और वह धूर्तता में इतना निपुण था कि बहुत अल्प पढ़ा लिखा होने पर भी कई संस्कृत के सु-प्रसिद्ध उच्चतम ग्रन्थों के अंश उसने कण्ठस्थ कर रखे थे। उनका आशय चाहे कुछ भी समझ में न आवे किन्तु समय-समय पर प्रभाव डालने के लिए उनको सुना दिया करता था, और अपने आप भी ऐसी विचित्र संस्कृत बना कर बोला करता था कि जिसके वाक्यों का परस्पर कुछ भी अन्वय नहीं था। अवसर पड़ने पर आर्यसमाज के खंडन के लिए नये वेद-वाक्य भी बनाकर बोल दिया करता था। धूर्तता में इतना अग्रसर और कोई व्यक्ति मेरे देखने में नहीं आया। प्रत्येक नगर से हजारों रुपये भेंट के रूप में वह प्राप्त किया करता था। मेरे जयपुर रहते समय ही वह जयपुर में भी आया। पहिले हमलोग उत्सुकता के साथ उसका व्याख्यान सुनने को जाने लगे किन्तु जब विदित हुआ कि इसमें तो विद्वत्ता कुछ भी नहीं, ढोल में पोल ही है, केवल धूर्तता से ही यह प्रभाव डालता और बहुत परिमाण में द्रव्य इकट्ठा करता है, तब हमारी मित्र-मंडली ने विचार किया कि जयपुर जैसे नगर से, जो कि विद्वानों का एक प्रसिद्ध स्थान है, ऐसे व्यक्तिका सत्कार होना सर्वथा अनुचित है। इस प्रकार की मंत्रणा कर मैं तो आवश्यकता-वश हरिद्वार चला गया, किन्तु मेरी मित्र-मंडली ने उसकी सभा में जाकर उसका पूर्ण तिरस्कार किया और इसका परिणाम यह हुआ कि जयपुर से कुछ भी प्राप्त न कर वह सीधा रेल में बैठ कर चला गया।

जब फिर हरिद्वारस्थ ऋषिकुल में प्रवेश किया तो उस समय वहाँ चार अध्यापक और थे। एक कुँमाऊ पर्वतीय जिले के दुर्गादत्त जी जोकि वहाँ के वेदाचार्य थे—वे ही ब्रह्मचारियोंका उपनयन करते थे और उन्हें वेद पढ़ाया करते थे। कुछ व्याकरण-काव्य आदि की भी शिक्षा दिया करते थे। इनके दो पुत्र भी इनके साथ ही ऋषिकुल में रहते थे। दूसरे एक मैथिल थे, जो अपने को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराज दरभंगा का भेजा हुआ बतलाते थे, किन्तु वास्तव में ऐसा था नहीं। तीसरे एक देवदत्त जी नाम के पंडित थे, जो छोटी कक्षाओं को संस्कृत का प्रारम्भ करवाते थे। वे संभवतः अब भी ऋषिकुल में ही विराजमान हैं। चौथे एक शङ्करलाल जी नाम के गौड़ ब्राह्मण थे जो ब्रह्मचारियों को हिन्दी-भाषा की शिक्षा दिया करते थे। उस समय तक वहाँ न कोई पाठ्य-क्रम था और न कोई समय-विभाग की व्यवस्था थी। जिस विद्वान् की जो इच्छा होती वही छात्रों को पढ़ाने लग जाता था। यहाँ तक कि एक विद्वान् उनको "लघुकौमुदी" पढ़ाता था तो दूसरा उन्हें ही "सिद्धान्त-कौमुदी" पढ़ाने लगता था। आश्रम के प्रबन्धकर्ता एक इन्द्रराज जी नाम के पण्डा थे। ये ज्वालापुर के निवासी थे और जयपुर राज्य के तीर्थ पुरोहित थे। इसीलिए पण्डों में सरदार कहलाते थे। विद्या से इनका कोई सम्बन्ध नहीं था। पाकशाला आदि का प्रबन्ध और आश्रम देखनेवालों का सत्कार आदि किया करते थे। ये प्रायः अधिकतर ऋषिकुल में ही रहते थे। कभी-कभी घर जाया करते थे। कमेटी के मन्त्री भी ताराचन्द जी नाम के एक कनखल निवासी पण्डा ही थे। मैं वहाँ अकेला ही गया था, इसलिए ऋषिकुल में ही निवास करता था। ऋषिकुल का स्थान हरिद्वार और ज्वालापुर के मध्य में था। कभी-कभी हरिद्वार अपने मित्र दुर्गाप्रसाद जी वद्य से मिलने चला जाया करता था। अस्तु, मैंने वहाँ पहिले सब छात्रों की योग्यता की जाँच कर उनका श्रेणी विभाजन किया, फिर समय-विभाग बनाया और नियत पाठ्य-क्रम के अनुसार यहाँ की पढ़ाई आरम्भ की। इस सब व्यवस्था को उक्त मैथिल पण्डित सहन न कर सके और आश्रम के सभापति, मन्त्री आदि भी इनसे असन्तुष्ट थे—इसलिए वे आश्रम छोड़कर चले गये। मैंने कुछ दिनों में वहाँ का पाठ्य-क्रम बनाया। जहाँ तक भाषा-ज्ञान का सम्बन्ध है, वहाँ तक सात श्रेणियाँ नियत कर प्रथम और मध्यम शिक्षा उन श्रेणियों में प्रचलित की। यह स्कूल-विभाग के रूप में माना गया। आगे उच्च-शिक्षा में इन छात्रों की वृत्ति का ध्यान कर पाँच विभाग नियत किये :—

(१) अध्यापक-विभाग, (२) उपदेशक-विभाग, (३) कर्मकाण्ड-विभाग, (४) ज्योतिष-विभाग और (५) आयुर्वेद-विभाग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह उच्च-शिक्षा तो अभी कागजों में लिखने के लिए ही थी। छात्र अभी उनमें कोई नहीं था। स्कूल-विभाग की सात श्रेणियों में से पाँच तक में विद्यार्थी थे। अस्तु, यह सब काम परिश्रम के साथ करने और मौसम के परिवर्तन के कारण व पाक आदि की ठीक व्यवस्था न रहने के कारण आश्विन मास में फिर मुझे ज्वर आ गया। ज्वर में पथ्य आदि की कोई व्यवस्था वहाँ न देख मैं अवकाश लेकर जयपुर चला आया। यद्यपि मेरे मित्र दुर्गाप्रसाद जी वैद्य ने बहुत आग्रह किया कि ज्वर-दशा में हमारे यहाँ का बना हुआ पथ्य लेने में कोई दोष नहीं मानना चाहिए, किन्तु मेरा दृढ़-संस्कार माथुर-चतुर्वेदियों से दूसरे ब्राह्मणों का पकाया हुआ कच्चा अन्न-ग्रहण नहीं करने का ही था। इसलिए मैं उनकी बात स्वीकार न कर सका और छुट्टी लेकर घर ही चला गया। जिस दिन मैं जयपुर पहुँचा उसी दिन मेरे सिद्धान्त-कौमुदी के गुरु श्री हरिदत्त जी मैथिल का युवावस्था में ही स्वर्गवास हो गया। मैं अस्वस्थतावश उनका अन्तिम दर्शन भी न कर सका और उनके दाह-संस्कार में भी सम्मिलित न हो सका। बहुत दिन मैं ज्वर से पीड़ित रहा। यहाँ तक कि मेरे दीक्षा-गुरु श्री जीवनाथ जी ओझा और विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन जी भी मुझे देखने घर पर आये। कुछ दिन के अनन्तर स्वास्थ्य लाभ हो गया। वहाँ प्रायः दो मास निवास कर फिर पत्नी को साथ लेकर कार्तिक में हरिद्वार पहुँचा।

ऋषिकुल में स्त्रियों के रहने के स्थान तब तक बने न थे, इसलिए हरिद्वार या ज्वालापुर में ही कोई किराये का स्थान ढूँढ़ने का प्रयास करना पड़ा। ऋषिकुल दोनों के मध्य में ही था यह कहा जा चुका है। अनेक स्थान देखे, किन्तु अन्त में जहाँ पूर्वोक्त मित्र दुर्गाप्रसाद जी वैद्य रहते थे उनके समीप ही स्थान लेना निश्चित हुआ। वे जहाँ रहते थे वह एक जयपुर के ही जागीरदार रावल जी का बहुत बड़ा घेरा था और जयपुर राज्य का ही प्रबन्धकर्ता भी उनकी ओर से उसी स्थान में रहा करता था। उसी घेरे में एक स्थान मैंने भी लिया। वहाँ से ऋषिकुल प्रायः डेढ़ मील था। भोजन के अनन्तर मैं ऋषिकुल चला जाता और सायंकाल लौट आता था। यद्यपि ऋषिकुल के सब ब्रह्मचारी वहीं रहा करते थे इसलिए उनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय-विभाग भी मैंने दोनों ही सयय का बनाया था, भोजन के पूर्व भी उनका अध्यापन होता था और भोजन के अनन्तर दो घण्टा विश्राम कर फिर उनकी पाठशाला लग जाती थी—किन्तु इतनी दूर से दो बार आना जाना मेरे लिए संभव नहीं था, इसलिए मैं अपना प्रातःकाल का कार्य भी मध्यान्ह के अवकाश में ही पूरा कर दिया करता था। इसी प्रकार कुछ काल तक बराबर यही कार्य-क्रम चलता रहा।

हरिद्वार में ऋषिकुल का आरम्भ पहिले कोई फण्ड इकट्ठा कर नहीं किया गया था, अपितु तीर्थ-पुरोहितों के घरों पर कुछ भिक्षा-पात्र घट रूप से रख दिये गए थे। वे लोग समय-समय पर इन घटों में जो भिक्षा डालते या अपने जजमानों से जो कुछ डलवाते उससे ही ब्रह्मचारियों का भोजन-निर्वाह किया जाता था और बाहर के जो यात्री दर्शक रूप से आते उनके दान से कर्मचारियों के वेतन का निर्वाह किया जाता था। हरिद्वार में शीतकाल में यात्रियों का आना प्रायः बहुत कम हो जाता था। इस कारण शीतकाल की स्थिति वहाँ बहुत कठिनता से बिताई जाती थी। जिस वर्ष मैं वहाँ गया उस वर्ष चैत्र में ब्रह्मचारियों को भिन्न-भिन्न स्थान दिखाने का बहाना कर चन्दा इकट्ठा करने के लिए एक यात्रा निश्चित की गई। आगरा, मथुरा और देहली—ये स्थान इस यात्रा के लिए चुने गये। ऋषिकुल की स्थापना में जिनका प्रधान हाथ था वे श्री दुर्गादत्त पन्त जी इस यात्रा के प्रमुख नेता माने गए और मैं भी साथ लिया गया। स्थान-स्थान पर मुझे भी व्याख्यान करने पड़ते, इस कारण धर्म सम्बन्धी व्याख्यानों का अभ्यास बढ़ाने का अच्छा अवसर मिला। इस यात्रा में कई सुयोग्य पुरुषों से गाढ़ परिचय भी हो गया। आगरा में गोस्वामी श्री ब्रजनाथ जी से इतना गाढ़ परिचय हुआ कि वह यावज्जन्म मित्रता के रूप में चलता रहा। दुःख है कि इसी वर्ष उनका देहावसान हो गया है, श्री घनश्याम जी आदि विद्वानों से भी अच्छा परिचय हो गया। मथुरा में श्री लक्ष्मणाचार्य आदि से तथा देहली में महामहोपाध्याय श्री हरनारायण शास्त्री जी से भी प्रगाढ़ परिचय हुआ। श्री हरनारायण शास्त्री जी का भी वह परिचय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मित्रता के रूप में यावज्जन्म ही स्थायी रहा। उनका भी देहावसान प्राय: १५ वर्ष पूर्व हुआ है।

गोस्वामी श्री व्रजनाथ जी और हरनारायण शास्त्री जी के साथ तो परस्पर विवाह आदि कार्यों में सम्मिलित होने का भी सम्बन्ध रहा। मध्य में सनातन धर्मी जनता के आग्रह से हाथरस भी जाना हुआ। इस यात्रा में प्राय: तीन सहस्र रुपये ऋषिकुल के लिए तत्काल प्राप्त हुए और प्राय: ५०) मासिक की सहायता ऋषिकुल को मिली। द्रव्य-प्राप्ति का सुयोग देहली में अच्छा रहा। वहाँ के खत्रियों ने आश्रम में एक पक्की यज्ञ-शाला वना देने का भी वचन दिया जो कि आगे समय पर वना भी दी गई। आज भी ऋषिकुल आश्रम के मध्य में वह विराजमान है और उस स्थान की शोभा बढ़ा रही है। उसी वर्ष चैत्र में महावारुणी योग पड़ता था और हरिद्वार की अर्धकुम्भी भी उसी वर्ष वैशाख में थी। स्मरण रहे कि भारतवर्ष में चारों दिशाओं के चार स्थानों में प्रति वारह वर्ष के पश्चात् कुम्भ-पर्व मनाया जाता है। उस समय उन स्थानों में लाखों की संख्या में जनता की भीड़ हुआ करती है और मध्य में ६ वर्ष बाद हरिद्वार और प्रयाग में एक अर्ध कुम्भी का भी आयोजन होता है। इस कारण शीघ्र ही प्राय: २० दिन में यात्रा समाप्त कर हम लोग हरिद्वार लौट आए। वैशाख में अर्धकुम्भी पर ऋषिकुल के वार्षिकोत्सव का भी आयोजन किया गया। उसमें भारत-प्रसिद्ध सनातनधर्म के व्याख्याता श्री दीनदयालु शर्मा जी भी पधारे थे। उनसे भी निकट रूप से परिचय प्राप्त करने का यहीं अवसर प्राप्त हुआ। समय-समय पर ऋषिकुल में आने वाले मुरादाबाद के श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र जी विद्यावारिधि, श्री गणेशदत्त जी विद्यानिधि प्रभृति से परिचय वढ़ता ही गया।

इस उत्सव के अवसर पर उसी वर्ष श्रीमान् महाराणा उदयपुर भी हरिद्वार-यात्रार्थ पधारे थे और उनके आगमन के अवसर पर ही भारतधर्ममहामण्डल के उस समय के नेता श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी भी हरिद्वार पधारे थे। ऋषिकुल की ओर से हम लोग चार विद्वान् इस कार्य के लिए नियत हुए कि प्रतिदिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराणा के कैम्प में व श्री ज्ञानानन्द जी के आश्रम में जाया करें और महाराणा के परिकर से मिलकर ऋषिकुल के लिए अच्छी सहायता प्राप्त् करें। महाराणा का वहाँ बहुत दिन निवास रहा और अन्ततः उन्होंने वहाँ एक अपनी सुवर्ण की तुला की, अर्थात् अपने शरीर के वजन के बराबर सोना तोल कर उसका दान किया। उसमें से दश सहस्र रुपये का सोना ऋषिकुल को दिया और हरिद्वार के सब पंडितों की एक सभा करके प्रत्येक पंडित को भी एक-एक तोला सुवर्ण दिया। ऋषिकुल में स्वयं आना तो उन्होंने स्वीकार नहीं किया, किन्तु ऋषिकुल के हो सामने होकर ट्रेनें निकला करती थीं, वहाँ अपनी स्पेशल ट्रेन रुकवाकर ट्रेन के पास आए हुए कुछ ब्रह्मचारियों से भेंट की और उन्हें खूब अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित भी किया। इसके बाद भी चार, पाँच वर्षों में दो बार महाराणा फिर हरिद्वार पधारे थे। दूसरी बार में पाँच सहस्र रुपये ऋषिकुल को दिये थे और तीसरी बार स्वयं ऋषिकुल में पधारे थे। यह आगे की बात है। उनके हरिद्वार से चले जाने के अनन्तर स्वामी ज्ञानानन्द जी हम लोगों को साथ लेकर हृषीकेश गए। वहाँ उन्होंने एक दिन सभा का आयोजन भी किया। उसमें मेरा व्याख्यान सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने "भारत-धर्म-महामण्डल" का एक अन्तर्विभाग बनाया था, उसमें भी मुझे सम्मिलित कर लिया। उसी अवसर में मेरे प्राथमिक-शिक्षा के गुरु श्री जानकीलाल जी चतुर्वेदी भी अपना घर-बार छोड़कर हरिद्वार निवासार्थ वहाँ पधारे थे। वे यद्यपि यही उद्देश्य लेकर आए थे कि अब हमें जाति-बिरादरी से क्या करना है, हम किसी भी ब्राह्मण का बनाया भोजन किया करेंगे किन्तु मैंने उनसे आग्रह किया कि जब मैं आपका स्वजातीय और शिष्य यहाँ उपस्थित हूँ तो ऐसा विचार क्यों किया जाय? इस आग्रह को उन्होंने मान लियाँ और मेरे ही साथ भोजन करने लगे। प्रायः तीन चार मास ही वे हरिद्वार रहे। फिर वहाँ का जलवायु उनके अनुकूल न होने से वे मथुरा चले आए और मथुरा में ही उनका शरीरान्त हुआ। ये एक आदर्श महात्मा पुरुष थे यह मैं पूर्व अपने गुरुओं के प्रसंग में लिख चुका हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके अनन्तर ज्येष्ठ मास में गंगादशमी के अवसर पर ऋषिकुल की प्रधान सभा का अधिवेशन किया गया और उसमें ऋषिकुल के पाठ्य-क्रम और परीक्षा का प्रबन्ध करने के लिए वहां एक शिक्षा-समिति बनाई गई। उसके प्रधान मंत्री देहली के श्री हरनारायण शास्त्री जी ही नियत किए गए। इनका ऋषिकुल की रजिस्ट्री होने के समय से ही ऋषिकुल से सम्बन्ध था। लाहौर के श्री रामनारायण शास्त्री कविराज व डाक्टर श्री प्रभुदत्त जी पी० एच० डी० आदि विद्वान् उसमें सम्मिलित किये गए। मुझे भी इस समिति का संयुक्त-मंत्री बनाया गया। दो तीन मास के अनन्तर इस समिति का अधिवेशन भी वहीं हुआ। इस बीच में फिर भी मैं अकेला ही अपने घर जयपुर अवकाश पर गया और शीघ्र वहाँ से लौट आया। इस प्रकार कार्तिक तक यही क्रम मेरा चलता रहा।

विक्रम संवत् १९६६ के कार्तिक मास में ऐसा घटना-चक्र उपस्थिति हुआ कि उसने मेरा जीवन-क्रम ही बदल डाला। कार्तिक मास के आरम्भ से ही हम दोनों स्त्री-पुरुष हरिद्वार में कार्तिक का गङ्गा-स्नान करने लगे थे। दीपावली तक तो यह गङ्गा-स्नान का क्रम चला, किन्तु दीपावली पर मेरे ज्वर-ग्रस्त हो जाने के कारण पहले इसी में बाधा पड़ी। अस्तु, प्रतिनिधि नियत कर किसी प्रकार दो-चार दिन निकाले। कार्तिक शुक्ल अष्टमी को ज्यों ही मैं गङ्गा-स्नान से निवृत्त हुआ कि अकस्मात् जयपुर से पिता जी का तार मिला कि आज ही मेरी वृद्ध-पितामही का स्वर्गवास हो गया है। पितामही की अवस्था यद्यपि प्राय: ७० वर्ष के लगभग थी, किन्तु उनका मुझ पर स्नेह अधिक था इसलिए इसी बात का दु:ख हुआ कि मैं अन्तिम दर्शन भी न कर सका। उसी दिन ऋषिकुल के सैक्रेटरी से आज्ञा लेकर हम दोनों ने जयपुर के लिए प्रस्थान कर दिया और पितामही की मृत्यु तिथि के तृतीय दिन ही हम जयपुर पहुँच गए। मार्ग में अकस्मात मेरे चित्त में ऐसी भावनाएँ उठ रही थी कि कोई दूसरा भी अनिष्ट आपतित न हो जावे। वही सामने आया और हमारे जयपुर पहुँचने के दिन ही मेरी माता को ज्वर हुआ। उसने बढ़कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्निपात का रूप ले लिया। जयपुर के ही नहीं अपितु भारतवर्ष भर के ख्यातनामा वैद्य श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी ने बड़े मनोयोग और परिश्रम से चिकित्सा की किन्तु सफल न हो सके और अन्ततः पितामही के तेरहवें दिन ही माता का भी स्वर्गवास हो गया।

ऋषिकुल के लिए धन संग्रह :—

दो घटनाएँ साथ ही होने के कारण चित्त पर बड़ा ही आघात हुआ। उनके श्राद्ध-कार्य से निवृत्त हुआ ही था कि ऋषिकुल हरिद्वार से शीघ्र आने की प्रेरणा आई। पूर्व वर्ष में ही कलकत्ते के एक दो प्रमुख मारवाड़ी सेठ ऋषिकुल देख गए थे और उन्होंने वहाँ के मारवाड़ी-समाज में ऐसी योजना प्रस्तुत की थी कि ऋषिकुल का एक शिष्ट-संघ कलकत्ते में बुलाया जावे, जिसमें कि ऋषिकुल के ब्रह्मचारी भी सम्मिलित हों और यहाँ उसका स्थायी-फण्ड बनाने के लिए द्रव्य-संग्रह किया जावे। इस योजना के अनुसार ही ऋषिकुल को उनका आह्वान था। इसीलिए मुझे वहाँ जल्दी बुलाया जा रहा था। माता और पितामही के वियोग की मनोव्यथा से पीड़ित होते हुए और अन्तःकरण की उस शून्य स्थिति में भी कर्तव्यवश मुझे शीघ्र ही वहाँ जाना पड़ा। ऋषिकुल कमेटी के सभापति पंडित आनन्दनारायण रईस-देहरादून, पहिले ही प्रस्थान कर चुके थे। मेरे पहुँचने पर वहाँ के मैनेजर सैक्रेटरी और एक दो पंडा-सरदार एवं ऋषिकुल का प्रारम्भ करने वाले पं० दुर्गादत्त पन्त जी और मैं ब्रह्मचारियों की मंडली साथ लेकर कलकत्ते के लिए प्रस्थित हुए। यद्यपि गाड़ी रिजर्व कराने का प्रबन्ध कर लिया गया था तथापि कुछ अव्यवस्था हो जाने के कारण मार्ग में कुछ बिलम्ब हुआ और मुगलसराय स्टेशन पर कुछ काल विश्राम कर वहीं भोजन आदि से निवृत्त होकर तीसरे दिन प्रातःकाल ही हमारी मण्डली कलकत्ता पहुँच गई। पारिवारिक दुर्घटनाओं से सारे मार्ग मेरा चित्त अशान्त रहा अतः समय मिलते ही कलकत्ते में मैंने मां काली के दर्शन किये और धैर्य प्राप्त किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहाँ मारवाड़ी समाज की ओर से बड़ा जोरदार स्वागत-समारोह हुआ। यहाँ तक कि मार्ग में अत्यन्त भीड़ हो जाने के कारण कलकत्ते की ट्राम गाड़ियों को भी रुक जाना पड़ा। वहाँ के विशुद्धानन्द विद्यालय में हम लोगों को ठहराया गया और बड़े जोर से सभाओं का आयोजन होने लगा। श्री दुर्गादत्त पन्त जी प्रमुख वक्ता थे और मैं भी उनके सहकारी रूप में वक्तृता दिया करता था। इस प्रकार १०-१२ दिन सभाएँ होकर द्रव्य-संग्रह का आरम्भ हुआ। उस समय सेठ हरिराम जी गोयनका और शिवप्रसाद जी झुंझुनूवाला मारवाड़ी समाज के प्रमुख नेता थे। चिमनलाल जी गनेड़ी वाला ने ऋषिकुल के शिष्ट मंडल को बुलाने में प्रमुख भाग लिया था। इन लोगों ने ५-५ हजार की द्रव्य-राशि देकर आरम्भ किया। मध्य में ही पन्नालाल जी मुरारका ने अधिक उत्साहित होकर अपना चन्दा तो उन प्रमुख धनिकों से बढ़ाना न चाहा किन्तु सोलह हजार रुपये ऋषिकुल में मकान बनवाने के लिए और पाँच हजार चन्दे में, यों कुल मिलाकर इक्कीस हजार रुपये दे दिए। इससे बड़ा उत्साह बढ़ा और एक लक्ष से भी अधिक द्रव्य-राशि वहाँ एकत्रित हो गई। उन लोगों ने वहीं मारवाड़ी-समाज में से कुछ लोगों की एक समिति बना ली और उसे रजिस्टर्ड कराकर उसी के हाथ में सब द्रव्य रख दिया। इसका सूद ऋषिकुल के कार्य-परिचालनार्थ दिया जाया करे यह व्यवस्था कर दी। भोलानाथ जी नाम एक के पंजाबी सज्जन भी वहाँ रहते थे। उन्होंने भी सब लोगों प्रोत्साहित करने में बड़ा भाग लिया। वहाँ से ब्रह्मचारियों को श्री जगन्नाथपुरी की यात्रा भी करवाई गई। मेरी यह पुरी की द्वितीय-यात्रा थी। कलकत्ते के निवासी माथुर सज्जनों ने भी एक दिन राजा कटरा में सभा कर मेरा अभिनन्दन किया। सुप्रसिद्ध श्री बैजनाथ जी और श्री जगन्नाथ प्रसाद जी चौबे से भी उसी समय मेरा साक्षात् परिचय हुआ। चलते समय भी मारवाड़ी सज्जनों की स्टेशन पर बहुत भारी भीड़ हुई। आगे काशी में एक दिन विश्राम कर श्री शिवकुमार शास्त्री जी के दर्शन कर हम लोग हरिद्वार लौट आए।

वहाँ आने पर कुछ समय के बाद देहली से श्री हरनारायण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अखिल भारतीय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन

म० म० रामावतार शर्मा, महामना मदनमोहनमालवीय, म० म० सतीश-चन्द्र विद्याभूषण प्रभृति विद्वानों के साथ श्री चतुर्वेदी जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्री जी का एक पत्र मिला कि देहली वालों ने जो यज्ञ-शाला बनवा देने की प्रतिज्ञा की है उसके कार्यान्वित कराने के लिए किसी विद्वान् को यहाँ भेज दिया जावे तो उत्तम हो। वहाँ जाने का भी मुझ से ही अनुरोध किया गया। यद्यपि ब्रह्मचारियों के अध्ययन कार्य में पहिले ही बहुत विघ्न हो चुका था। इस त्रुटि की पूर्ति करने के लिए पहिले मैंने निषेध ही किया, किन्तु जयपुर में प्लेग रोग का भयङ्कर आक्रमण होने के समाचार मिल रहे थे और मेरे घर के लोग पत्र द्वारा बार-बार मेरी प्रेरणा पर भी पितामही और माता का मृत्यु वर्ष होने के कारण स्थान छोड़कर कहीं नहीं जा रहे थे। यद्यपि जयपुर के पास ही उसी के अन्तर्गत ब्रह्मपुरी नाम के स्थान में मेरे पूर्वजों का बनाया हुआ एक शिव-मन्दिर है, वहाँ जाकर रात्रि को शयन करने की दो-चार दिन व्यवस्था की गई थी। किन्तु मेरी एक विधवा बुआ जो जन्मभर जयपुर ही रहीं; उनके अस्वस्थ हो जाने से फिर वह व्यवस्था भी टूट गई। इसलिए मैंने यह सोचा कि एक दिन के लिए जयपुर जाकर समझा-बुझा कर उन सबका स्थान परिवर्तन करा आऊँगा। इस विचार से मैंने देहली आना स्वीकार कर लिया। और देहली आकर वहाँ के प्रमुख सज्जनों से भेंट कर जब उन्होंने एक-दो दिन का परस्पर मीटिंग करने के लिए विलम्ब बतलाया तो केवल एक दिन के लिए मैं श्री हरनारायण शास्त्री जी से कहकर जयपुर चला आया। उस दिन भी मार्ग में चित्त अकस्मात् बड़ा उद्विग्न था। जयपुर आकर बड़ी भयङ्कर स्थिति देखी। मित्र-मंडली के सब लोग स्थान छोड़-छोड़ कर इधर-उधर चले गये थे। मैं दूर-दूर स्थानों पर जाकर कुछ लोगों से मिला और दो ही दिन वहाँ निवास कर पाया था कि अचानक मेरी पत्नी पर भी प्लेग का आक्रमण हो गया। आरम्भ में ज्वर न होने के कारण प्लेग का ज्ञान न हुआ किन्तु तीसरे ही दिन प्रबल ज्वर हो जाने से निश्चय हो गया कि वही रोग है। श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी प्लेग के रोगियों को देखने नहीं जाया करते थे। किन्तु अन्य कोई भी वैद्य उस समय ठिकाने पर नहीं थे। सम्पूर्ण नगर की स्थिति बड़ी ही भयङ्कर दृष्टिगत होती थी। इसलिए लाचार होकर हाल कहकर ही स्वामी जी की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही औषध चलती रही। उससे कुछ लाभ भी प्रतीत होता रहा। इस लिए भी चिकित्सा-परिवर्तन की आवश्यकता न. समझी। किन्तु कुछ लाभ होकर भी पथ्य देने के समय पुन: रोग बढ़ गया और अन्ततः दस दिन रोग-शय्या पर पड़ी रहकर वह भी चल वसी।

अकस्मात् तीन दुर्घटनाएँ हो जाने पर चित्त पर प्रवल आघात हुआ। किन्तु धैर्य ने मेरा साथ न छोड़ा और किसी प्रकार उत्तर-कार्य करता ही रहा। श्राद्ध कराने वाला भी उस समय नगर में मिलना दुर्लभ था। किन्तु पास रहने वाले ही एक वैदिक महोदय से प्रार्थना कर उन्हें राजी किया और श्राद्धादि कार्य से निवृत्त होकर पुन: हरिद्वार चला आया।

हरिद्वार चला तो आया किन्तु दुर्घटनाओं के आघात से चित्त अति-चंचल था। अब तो निश्चय हो गया कि कोई साथ रहने वाला नहीं है—इस कारण स्वयं-पाक की ही व्यवस्था करनी पड़ी। ऋषि-कुल में ही रहने लगा। वहाँ एक समय खिचड़ी, भात या रोटी कुछ पका लेता और दूसरे समय कोई विद्यार्थी पूड़ी आदि वना देता था। इसी प्रकार दिन-चर्या चलने लगी। मेरे घनिष्ठ-मित्र सहाध्यायी श्री पंडित सूर्यनारायण जी आचार्य भी उन दिनों जयपुर कालेज का प्लेग-रोग-प्रयुक्त अवकाश रहने के कारण हरिद्वार ही चले आए थे। वे वहुत दिनों तक मेरे साथ ही रहे। उनके साथ ऋषिकेश आदि की यात्रा करने में व और भी इधर-उधर घूमने में मन लगाता रहा। ऋषिकुल के भी सभापति से लेकर छोटे कर्मचारी तक सब ही सहानुभूति रखते थे और मेरा चित्त खिन्न न हो इसका पूरा ध्यान रखते थे। परन्तु इतना सव होने पर भी जीवन में सर्वदा के लिए एक अपूरणीय क्षति हो गई थी। जिस सम्वन्ध स्नेह सूत्र में अनेक जन्मों तक वँधे रहने की कामना की जाती है, वह ठीक मध्य में आकर टूट गया था। काव्यों के वे सभी स्थल जहां इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख है अपने आप याद आते और मानसिक पीड़ा में वृद्धि करते रहते। मैंने अध्यापन भी प्रारंभ कर दिया। पहिला ही पाठ किरातार्जुनीय महाकाव्य के—ततीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्ग में तपस्या के लिए जाते हुए अर्जुन के प्रति द्रौपदी की उक्ति के पद्य थे—

"मग्नां द्विषच्छद्मनि पङ्कभूते
सम्भावनां भूतिमिवोद्धरिष्यन्
आधिद्विषामातपसां प्रसिद्धे-
रस्मद्विना मा भृशमुन्मनी भूः

इस श्लोक को बोलते-बोलते मेरे नत्रों में अश्रुप्रवाह उमड़ आया, स्वर्गत पत्नी का पूरा स्मृति चित्र सामने आ गया। मुझे उस समय पाठ बन्द करना पड़ा। जैसे-तैसे समय बीतने लगा।

वड़ी पुत्री विवाह योग्य हो चली थी। उसका सम्बन्ध भी पहिले माता आदि की जीवितावस्था में ही मैनपुरी में श्री चतुर्भुज जी के भतीजे के साथ किया जा चुका था—इसीलिए उसी वर्ष ज्येष्ठ-मास में उसका विवाह भी करना पड़ा। इस कार्य के लिए फिर जयपुर आया और विवाह-कार्य अच्छे प्रकार से सम्पादित कर फिर हरिद्वार लौट गया।

इस विवाह के अनन्तर एक चौथी दुर्घटना और हुई। मेरे पितृव्य (चाचा) के तीन पुत्र थे, उनमें से ज्येष्ठ पुत्र तो जो जयपुर में अध्ययनार्थ वहुत काल तक मेरे साथ ही रहे थे—पूर्व ही स्वर्गत हो चुके थे। अव इसी श्रावण में उनके दूसरे पुत्र का भी अकस्मात् स्वर्ग-वास हो गया। लगातार के इन आघातों से मेरे पिता जी के नेत्र भी जाते रहे। इससे घर का पत्र व्यवहार भी रुक-सा गया। कभी किसी अन्य से ही वे पत्र आदि लिखवाते रहे। इस दुर्घटना का भी मेरे चित्त पर वहुत वुरा प्रभाव पड़ा। किसी प्रकार ऋषिकुल में समय व्यतीत करता रहा। घर की परिस्थिति के कारण बार-वार जयपुर भी आना पड़ता था।

इधर मेरी इच्छा न रहते हुए भी पिता जी मेरा दूसरा विवाह कराने को बहुत उत्सुक थे—क्योंकि पहिले विवाह की पुत्र-सन्तति कोई भी न थी। इसी बीच में पिताजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की आँख बनवाने के लिए भी मुझे दो एक बार जयपुर आना पड़ा। घर पर ही जयपुर के सुप्रसिद्ध डाक्टर से उनकी व मेरी बूवा की आँख बनवायी गयी। इसी वर्ष ब्रिटिश सम्राट श्री सप्तम ऐडवर्ड का देहान्त हो गया था। तत्प्रयुक्त कई सभाओं में भी मुझे भाग लेना पड़ा। अन्ततः पहिली स्त्री का मृत्यु के १५ मास बाद पिता जी के परम अनुरोध से जयपुर के समीप रामगढ़ नाम के एक छोटे कस्बे में स्वर्गीय श्री सोहनलाल जी की पुत्री से अपनी ३० वर्ष की अवस्था में मुझे दूसरा विवाह करना पड़ा। यह विवाह सामान्य रूप से ही सम्पादित हुआ। आगे २, ३ वर्ष के बाद यह पत्नी भी एक दो बार हरिद्वार आयी किन्तु घर पर पिता जी की सेवार्थ अधिकांश समय इसको जयपुर ही रहना पड़ता था। मैं भी समय-समय पर बहुत बार अपने निवास स्थान जयपुर में आता रहता। यों पूरे ९ वर्ष मेरा ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम में निवास रहा। इस बीच की कई घटनाएँ लिखने योग्य हैं।

लाहौर में कुछ उत्साही नवयुवकों ने एक ऋषिकुल सहायक सभा स्थापित कर रखी थी। उन लोगों के अनुरोध पर ऋषिकुल के सभापति की आज्ञा से मुझे लाहौर भेजा गया। पंजाब में सभाओं में जाने का यह प्रथम ही अवसर था। वहां व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव रहा और वहीं के सम्बन्ध से फिर होशियारपुर की सभा में भी मैं बुलाया गया। इन दोनों स्थानों में ही अनेक वर्षों तक जाना आना बना रहा, और-और सभाओं में भी आवागमन बढ़ता ही गया। जब सभाओं में भी जाना होता तो सभाओं के मन्त्री, सभापति आदि अनुरोध पूर्वक कुछ भेंट भी दे ही देते थे। आगे चलकर यह बात ऋषिकुल के अधिकारियों को अखरी और उन्होंने यह नियम बना दिया कि ऋषिकुल से अवकाश लेकर जब मैं किसी सभा में जाऊँ तो उस सभा की दक्षिणा ऋषिकुल में ही जमा कर दिया करूँ, ऐसा नियम वहाँ रहने तक चलता रहा।

इसी अवसर में पंडित दीनदयालु जी के ज्येष्ठ-पुत्र श्री हरिहर-स्वरूपजी का विवाह ब्यावर में हुआ था। उसमें भी मुझे जाना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ा। वहाँ वल्लभसम्प्रदाय के आचार्य श्री देवकीनन्दन जी पधारे थे तथा पटियाला के सुप्रसिद्ध सनातन-धर्म के विद्वान् श्रीकृष्ण-शास्त्री आदि भी एकत्रित हुए थे। वहाँ भी व्याख्यान आदि देकर मैं कुछ दिन फिर जयपुर ठहर गया। उसी अवसर में पंचम जार्ज के अभिषेकप्रयुक्त जयपुर के श्री गोविन्द मन्दिर में में एक बड़ी सभा का आयोजन था। उसमें प्रधान व्याख्याता मैं ही माना गया था। वहाँ कविता-पाठ और उसके श्लोकों की व्याख्या पढ़ने में वहाँ के राज कर्मचारियों पर बहुत प्रभाव पड़ा। वहाँ से लौटकर जब ऋषिकुल आया तो सहसा मन्दाग्नि का आक्रमण मुझ पर हो गया। जब मन्दाग्नि से छुटकारा पाकर फिर हरिद्वार आया तो मेरी संभाल के लिए मेरी बुआ साथ आई थीं। वे पाक आदि की सुविधा मुझे देती रहीं।

इन्हीं दिनों में मेरे पितृव्य की पुत्री चट्टो बाई का विवाह था। वहाँ हरिद्वार से ही हम लोग हिन्डोन गए। वहाँ भी एक दो विद्वानों से बातचीत हुई और वे सन्तुष्ट हुए। मेरी बुआ कुछ दिन वहीं रह गईं किन्तु मुझे तो ऋषिकुल आ जाना पड़ा। समय-समय पर मेरी दूसरी बुआ के पुत्र आनन्दीलाल पाक आदि की सहायता के लिए मेरे पास आते थे और मेरी पत्नी भी कभी-कभी आ जाया करती थी। लेकिन फिर भी अधिकांश पाक अपने हाथ से ही बनाना पड़ता था। प्रातः दाल, भात, खिचड़ी तथा कभी-कभी रोटी बना लेता और दूसरे समय कोई विद्यार्थी पूरी बना देता था।

जयपुर-नरेश श्री माधव सिंह जी कई मास हरिद्वार रहते। उनके साथ मेरे गुरु विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन ओझा भी हरिद्वार जाते और वहीं निवास करते रहते। इस अवसर को व्यर्थ जाने देना उचित न समझ एक बार मेरे मन में यह प्रेरणा हुई कि यहाँ इनके पास कुछ शास्त्राभ्यास किया जावे। ये वेद-विषय के अपूर्व विद्वान थे और प्रायः ४० वर्ष वेद का अन्वेषण कर उन्होंने वेद के वैज्ञानिक-प्रणाली के अर्थों का नया आविष्कार किया था। उसी विषय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को उनके पास बैठकर जानने की चित्त में सदा उत्कण्ठा रहती थी। ऋषिकुल से हरिद्वार प्राय: दो मील पड़ता था। इसलिए वार-वार वहाँ जाना तो बन नहीं सकता था, तव यह विचार चित्त में उठा कि सायंकाल हरिद्वार ही चला जाया करूँ, रात्रि में वहाँ ही निवास करूं, रात्रि में ही कुछ अध्ययन कर लिया करूं और रात्रि का भोजन भी वहीं वाजार से लेकर कर लिया करूं तथा प्रात:काल गङ्गा-स्नान कर ऋषिकुल वापिस आ जाया करूं। इस प्रकार की चर्या प्राय: एक मास चलती रही। हरिद्वार की दुकानों पर पूड़ी आदि वड़ी ही दुर्व्यवस्था से बनती थीं इस लिए उस एक मास की चर्या में मुझे मन्दाग्नि का रोग हो गया।

कुछ दिन वाद नये सम्राट पंचम जार्ज महोदय का सिंहासनारोहण देहली में सम्पन्न हुआ था। वहाँ भी ऋषिकुल के कुछ ब्रह्मचारी तात्कालिक-सहकारी-मंत्री श्री कृष्ण जोशी, एम० ए० के साथ देहली भेजे गये थे। मैं भी उनके साथ था। वहाँ श्री महाराज-दरभंगा की चेष्टा से कई धर्मोपदेशकों को भी दरवार के टिकिट मिल गये थे। मैंने भी दरवार का टिकिट प्राप्त किया और वहाँ बैठकर दरवार का सम्पूर्ण-दृश्य देखा। वहाँ भी मेरे साथ एक विचित्र बात रही। हम सभी लोग यथा समय पण्डाल में पहुँच गए थे परन्तु अपनी जगह ढूँढ़ने में वहुत समय लगा। मुश्किल से जगह मिली। थोड़ी ही देर में मैं जिस सीट पर बैठा था उसी सीट का टिकिट लिए एक और सज्जन वहाँ आ पहुँचे। मुझे देख कर कहने लगे कि आप मेरी सीट पर तो नहीं वैठे हैं? मैंने अपना टिकिट दिखा कर कहा कि मैं तो अपनी ही सीट पर वैठा हूँ। उनके पास भी उसी सीट का टिकिट था। वे सज्जन कार्यवाही के लिए चले गए और उस ब्लाक का जो अंग्रेज प्रवन्धक था उसे लेकर आये, उन्होंने हम दोनों के टिकिट देखकर उन्हें तो उसी सीट पर विठा दिया और मुझे अपने साथ आने को कहा। वे मुझे लेकर पंजाव के गवर्नर के पास गए। वैठने का सारा प्रवन्ध पंजाव के गवर्नर के जिम्मे था। उन्हें उन्होंने समझाया कि ये दो टिकिट एक-ही सीट के मिल रहे हैं। इस पर पंजाव के गवर्नर ने स्वीकार किया कि गलती से एक सीट के दो टिकिट प्रवर्तित कर दिये गए हैं। उन्होंने अपना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चार्ट निकाल कर देखा और बताया कि एन० ब्लाक में एक सीट खाली है, वही इन्हें दे दो। उन्होंने अपनी कलम से मेरे टिकिट का ब्लाक और नम्बर काट कर बदल दिया। वे सज्जन मुझे एन० ब्लाक पर छोड़ आये। वहाँ के द्वार स्थित सज्जन ने, जो योरोपीयन ही थे, मुझे कहा कि पंजाब गवर्नर ने काट कर अपना हस्ताक्षर नहीं किया है। मैं फिर गवर्नर की तलाश करने पहुँचा और मिलने पर उनसे हस्ताक्षर कर देने को कहा। मुझे पगड़ी और धोती पहिने पूरे भारतीय वेश में देखकर वे मुझसे मुस्कुराकर कठिनता से हिन्दी में बोले "आप संस्कृत के पण्डित हैं," मेरे स्वीकार करने पर उनने "नमस्कार" भी कहा और हस्ताक्षर कर दिया। उस ब्लाक में घुसते ही मैंने देखा कि सारा ब्लाक योरोपीयन लोगों से भरा हुआ था और प्रधान सिंहासन के बिलकुल सामने पड़ता था। पहिले वाला स्थान प्रधान सिंहासन से बहुत दूर था। यहाँ से मैंने इतिहास प्रसिद्ध दिल्ली दरबार का सारा दृश्य नजदीक से देखा। मेरे आस-पास बैठे लोग दूरबीन से देख रहे थे। मुझे भी दूरबीन से देखने का कौतूहल हुआ और अपने पासवाले सज्जन से मैंने दूरबीन देने को कहा, उन्होंने तत्काल एक दूरबीन मुझे दी। भारतीय राजाओं की दुर्गति देखने को वहाँ मिली, अपने सारे शस्त्र आदि निकाल कर ये लोग सम्राट के सामने रखते थे और लम्बे-लम्बे सलाम करते थे, उस पर सम्राट एक बालभर अपनी गर्दन झुका देते थे। महारानी ने अपने कानों में हीरे का आभूषण पहिन रक्खा था, वह दूर तक चमकता था। बादशाह तो अभिमान की मूर्ति ही मालुम होते थे। उसी अवसर पर मेरे मित्र देहली के श्री हरनारायण शास्त्री को महामहोपाध्याय पदवी प्राप्त हुई थी और उसी समय स्वयं सम्राट् ने देहली में राजधानी स्थापित करने की घोषणा की थी। इस अवसर पर देहली में पधारे हुए म०म० श्री शिवकुमार शास्त्री जी से भी मैंने साक्षात्कार किया। उन्होंने मेरा दुर्बल शरीर देखकर बहुत चिन्ता प्रकट की और फिर आवेश में आकर यह उपदेश भी दिया कि "क्या ब्राह्मण होकर भी मन्दाग्नि की चपेट खाते हो? क्यों नहीं गायत्री जपते?" मैं यह उपदेश शिरोधार्य कर चला आया और ऋषिकुल में कई उपचार करने पर भी जब रोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शान्त नहीं हुआ तो लाचार मुझे वहाँ से दो मास का प्रतिनिधि देकर अवकाश प्राप्त करना पड़ा। उस अवकाश में जयपुर आकर श्री लक्ष्मीराम स्वामी जी की चिकित्सा में रहा और नीरोगता प्राप्त कर फिर हरिद्वार आ गया। यद्यपि जब मैं पहिले लाहौर गया था उस समय ही कविराज श्री रामनारायण जी से भेंट होने पर उन्होंने मुझे अम्लपित्त की मन्दाग्नि वतलायी थी किन्तु श्री लक्ष्मीराम जी ने ऐसा नहीं माना। वे संग्रहणी के पूर्वरूप की मन्दाग्नि ही मानते रहे और उसी की चिकित्सा करते रहे। लाभ भी उससे हो ही गया किन्तु अम्लपित्त जड़ पकड़ता रहा। बहुत दिनों के अनन्तर यही सिद्ध हुआ कि अम्लपित्त दृढ़ हो गया है। वह अब तक भी मुझे सताता ही रहता है। उस दो मास के अवकाश के बीच में अपना प्रतिनिधि मैंने अपने सजातीय जयपुर-निवासी श्री लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी को दिया था।

कलकत्ता में कोष-संग्रह के अनन्तर ऋषिकुल में भी कई प्रकार के परिवर्तन आरम्भ होने लगे। कोष-संग्रह में जिन्होंने बहुत सहायता की थी वे पंजाब-निवासी श्री भोलानाथ जी ऋषिकुल की प्रबन्ध-कारिणी सभा में भी बहुत भाग लेने लगे। उन्होंने ऋषिकुल की प्रधान-सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि यहाँ एक ग्रेजुएट प्रिन्सिपल की नियुक्ति होनी चाहिए और असिस्टैन्ट सेक्रेटरी तथा अँग्रेजी का योग्य अध्यापक भी नियुक्त होना चाहिए। यह प्रस्ताव स्वीकृत होने पर असिस्टैन्ट सेक्रेटरी के स्थान पर श्री कृष्ण जोशी एम० ए० नियुक्त हुए। और अँग्रेजी अध्यापक के स्थान पर केदारनाथ जी नाम के एक अध्यापक आए। ये सुप्रसिद्ध व्याख्याता श्री दीनदयालु जी के जामाता थे। आरम्भ में तो ये मेरे साथ बहुत मैत्री रखते थे किन्तु ये बड़े अनैतिक पुरुष थे इसलिए आगे चलकर इनके ही विरोध से मुझे ऋषिकुल छोड़ना पड़ा।

आगे चलकर क्रमशः ये वहाँ के असिस्टैन्ट सैक्रेटरी बन गये थे। उन दिनों प्रयाग में एक बहुत बड़ी प्रदर्शिनी का आयोजन था। केदारनाथ जी और ऋषिकुल के अन्य एक दो कर्मचारियों के साथ मैं उस प्रदर्शिनी में गया। सबसे पहिले हवाई जहाज की उड़ान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

संस्कृत सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन की कार्य-समिति—

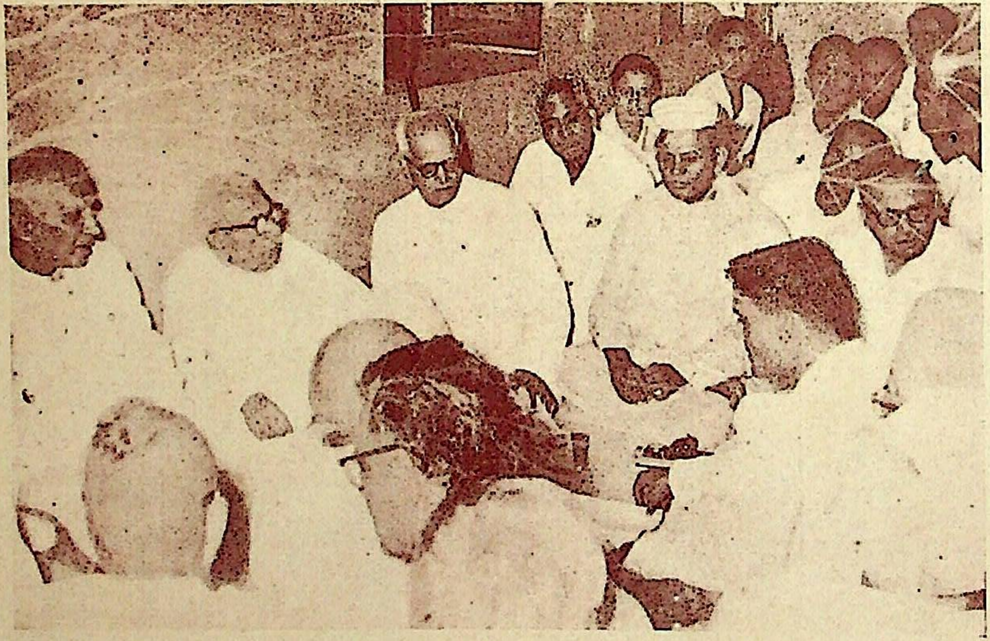

श्री दातार, म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, म० म० डा० उमेश मिश्र, डा० मंडन मिश्र आदि

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन में भाषण दे रहे हैं–

साहू शान्ति प्रसाद जी जैन, श्री दातार, राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद प्रभृति के साथ

कलकत्ता शिक्षा-परिषद् की अध्यक्षता करते हुए

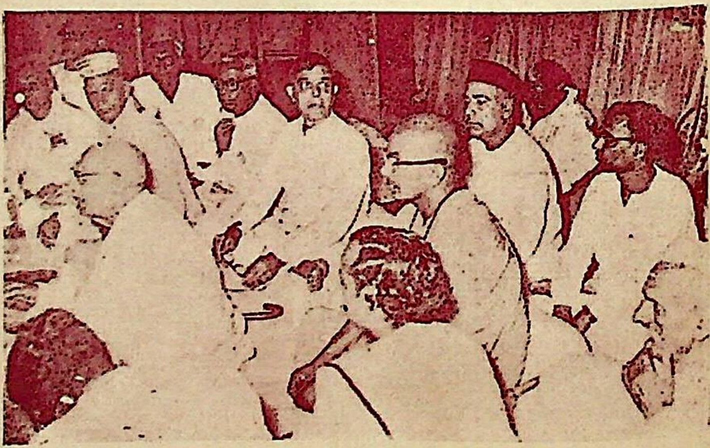

म० म० परमेश्वरानन्द शास्त्री, म० म० श्री उमेश मिश्र, श्री गौरीनाथ शास्त्री, म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (भाषण देते हुए)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखने का वहीं अवसर मिला तथा और भी बहुत-सी अपूर्व बातें उस प्रदर्शिनी में देखने को प्राप्त हुईं थीं।

धीरे-धीरे ऋषिकुल में अध्यापक तथा अधिकारियों की संख्या बढ़ती ही गयी। राजस्थान के पं० श्री दत्तजी अध्यापक होकर वहाँ आये थे और भोलानाथ जी के प्रस्तावानुसार प्रसन्नकुमार आचार्य नामक सज्जन प्रिन्सिपल भी नियुक्त हुए थे तथा एक पर्वतीय ग्रैजूएट श्रीकृष्ण जोशी वहां नियुक्त हुए थे। इनमें प्रसन्नकुमार आचार्य बहुत थोड़े दिन वहाँ रहे। आगे उनकी वहाँ अनुकूलता न रहने से वे वहाँ से चले गये। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में बहुत अच्छे पद पर ये बहुत समय तक कार्य करते रहे। प्रसन्नकुमार आचार्य के समय में एकबार हरिद्वार में विशूचिका का प्रकोप हुआ था—इस कारण ब्रह्मचारियों को ऋषीकेश ले जाया गया था। वहाँ पर्वत पर बहुत ऊँचे चढ़कर एक शिवजी का स्थान है नीलकण्ठ। वहाँ ब्रह्मचारियों ने जाना चाहा—वह यात्रा भी बहुत उत्साह की रही। श्री कृष्ण जोशी भी वहाँ ४, ५ वर्षों तक रहे और उसके अनन्तर ये काशी में हिन्दू-विश्वविद्यालय में गये।

इन सब के पूर्व श्री दत्तात्रेय जी भी ऋषिकुल में आए थे। वे भी कुछ काल वहाँ रहे। वे आगे राजनीतिक-पार्टी में काकाकालेलकर नाम से प्रसिद्ध हुए। आगे राजनीतिक तथा साहित्यिक कार्य उन्होंने बहुत कुछ किया। इनके अतिरिक्त भोलानाथ जी भी १६ मास का समय देकर ऋषिकुल में ही रहे थे। इन महाशय से कर्मचारियों की प्रायः अनबन ही रहती थी। इनका एक पुत्र भी ऋषिकुल में ब्रह्मचारियों में प्रविष्ट होकर पढ़ता था। मुझसे बार-बार कहते कि इस छात्र पर अच्छी तरह दृष्टि रखा करो। मैं उनको यही उत्तर देता था कि मेरे लिए तो सब ही छात्र समान हैं, सब के ही ऊपर मैं यथा-शक्ति दृष्टि रखता हूँ। इस उत्तर से मुझ पर भी वे अप्रसन्न ही रहते थे। लाहौर के गणेशदत्त शास्त्री के पुत्र पण्डित प्रभुदत्त जी पी० एच० डी० करने इङ्गलैंड गये थे। वहाँ जाकर पी० एच० डी० करके लौटने पर पहिले तो कुछ दिनों वे ओरियन्टल कालेज लाहौर में अस्थायी प्रिन्सिपल का काम करते रहे और फिर कलकत्ता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेसीडेन्सी-कालेज में नियत हो गए। वे शिक्षा-समिति के द्वारा ऋषिकुल के आनरेरी-इन्सपेक्टर नियत हुए थे। जब वे इन्सपैक्शन करने आए तो भोलानाथ जी ने उनसे मेरी भी शिकायत की क्योंकि उस वर्ष उनके लड़के के नंबर कम होने से मैंने उसे क्लास-प्रमोशन नहीं दिया था। भोलानाथ जी ने चाहा कि उसे उनके द्वारा प्रमोशन दिला दिया जावे। किन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि हमारा काम प्रधानाध्यापक की शक्ति बढ़ाना है, हम उनके काम में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इस पर फिर भोलानाथ जी उनसे भी असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने कलकत्ते से आने जाने का जो बिल चार्ज किया था उस पर बहुत आक्षेप करने लगे। श्री कृष्ण जोशी बड़े सुशील और सभ्य थे। इनका समय अच्छी तरह कटा।

एक बार सोमवती अमावस्या पर मेरे पिता जी सब परिवार को साथ लेकर हरिद्वार स्नान के लिए आये थे। भोलानाथ जी के वहाँ रहते हुए ही पंजाब के प्रदेश में एक लम्बाग्राम नाम के छोटे शहर में वहाँ के ठाकुर ने तुलसी का विवाह किया था। उसमें भगवान की प्रतिमा ऋषिकुल से ले जायी गई थी। उस यात्रा में हम ४-५ व्यक्ति ऋषिकुल से वहाँ गये। उनमें ऋषिकुल के वेदाध्यापक श्री दुर्गादत्त पन्त जी व भोलानाथ जी के एक सम्बन्धी केशवानन्द नामक सज्जन भी सम्मिलित थे। उसी अवसर में वहाँ से लौटते हुए हमलोगों ने श्री ज्वालापीठ की यात्रा भी की। वहाँ एक चमत्कार का भी हमें अनुभव हुआ कि हमारे साथ जो चपरासी था वह वहाँ पहुँचते ही बीमार हो गया। यहाँ तक कि मरणासन्न-सी दशा उसकी हो गई। किसी प्रकार औषधोपचार आदि की व्यवस्था कर जब हम वहाँ से चले तो वहाँ से निकलते ही वह ठीक हो गया। उसने यह सुनाया कि अपने पुत्र की यात्रा यहाँ की मैंने बोली थी। उस पुत्र को साथ नहीं लाया इस कारण श्री भगवती ने मुझे दर्शन नहीं दिये।

एक बार झालरापाटन में भी वहाँ के रईस श्री बलभद्र सिंह ने जो कि राजा के सम्बन्धी थे, मुझे बुलाया था। वहाँ जाते समय मार्ग में श्री राधेश्याम जी कथावाचक से भी भेंट हुई। इनका भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्बन्ध आगे इतना बढ़ा कि परस्पर विवाह आदि में भी जाना आना होता रहा। मेरे यहाँ कई विवाहों में वे सम्मिलित हुए और मैं भी उनके भ्राता और पुत्र आदि के विवाहों में जाता रहा। खेद है कि अभी कुछ काल पूर्व ही उनका देहावसान हो गया है। झालरापाटन में श्री कालूराम जी शास्त्री भी निमन्त्रित होकर आये थे और श्री गिरिधर शर्मा जी नवरत्न वहाँ के निवासी थे ही। सनातन-धर्म के प्रसिद्ध उपदेशक श्री श्रवणलाल जी भी वहाँ के ही निवासी थे। वहाँ एक दिन आर्य-समाज से प्रश्नोत्तर भी हुआ था। उसमें मेरे खड़े होने पर आर्य-समाजी सज्जन इतने सन्तुष्ट हुए कि उन्होंने यह कहा कि अब हमारे सब उत्तर हो चुके। अब हमें कोई शङ्का नहीं है। ऐसा प्राय: कम होता है।

इसी अवसर में विक्रम सम्वत् १९७० के लगभग ऋषिकुल से एक हिन्दी का मासिक पत्र "ब्रह्मचारी" प्रकाशित होने लगा था। उसका प्रधान सम्पादक मैं और सहकारी सम्पादक पण्डित केदारनाथ जी नियत हुए। आगे इसके विषय में विस्तार लिखूंगा।

संस्कृत साहित्य सम्मेलनकी स्थापना

वि० सं० १९७० में म.म. पण्डित शिवकुमार शास्त्री जी लाहौर होकर हरिद्वार पधारे थे। उनकी अध्यक्षता में ऋषिकुल में एक सभा की गयी। उस सभामें संस्कृतसाहित्यसम्मेलनकी स्थापना करना भी स्थिर हुआ। इसी के सम्बन्ध में केदारनाथ जी और पण्डित दीनदयालु जी के सुपुत्र हरिहर स्वरूप शास्त्री में परस्पर कुछ वाद विवाद भी छिड़ गया। हरिहरस्वरूपशास्त्री का पक्ष था कि ऐसा सम्मेलन काशी में प्रतिष्ठित होना चाहिए था और केदारनाथ जी उसका जवाब देते थे कि काशीवाले यदि प्रतिष्ठित न करें तो और कहीं के विद्वान् भी न करें ऐसी कोई बात नहीं है। इस विषयको लेकर उनमें कुछ दिनों तक विवाद चलता रहा। अन्त में श्री दीनदयालुजी ने ही दोनों को समझाकर विवादका अन्त कराया। इसके पहिले प्रधान मन्त्री पण्डित बुलाकीरामजी शास्त्री विद्यासागर और सहकारी मन्त्री मैं चुने गये थे। किन्तु आगे चल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर बुलाकीराम शास्त्री जी ने यह कार्य छोड़ दिया और मैं ही दस वर्ष तक इस सम्मेलन के प्रधानमन्त्री पदका निर्वाह करता रहा। इस सम्मेलन का स्थायी सभापति पद स्वयं श्री शिवकुमार शास्त्री जी ने स्वीकार किया था और अन्य भी एक दो अपने शिष्यों के नामोंका सन्निवेश उन्होंने इसमें कराया था। इस सम्मेलन का एक पृथक् इतिहास है जिसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है

मैं जब कार्यवश जयपुर गया तो उन दिनों श्री बुलाकीराम शास्त्री जी अजमेर के मेयो कालेज में ही धर्मशिक्षक अध्यापकके पद पर कार्य करते थे। उनके पास भी मैं गया और मेरे मित्र श्री सूर्यनारायण जी व्याकरणाचार्य और मैंने मिलकर इसकी नियमावली का कुछ आदर्श लिखा। आगे इसका प्रथम अधिवेशन हरिद्वार में विक्रम संवत् १९७१ में हुआ। प्रथम अधिवेशन में ही बहुत से गण्य मान्य, देशके प्रमुख विद्वान् पधारे थे जिसके अध्यक्ष कलकत्ता कालेज के प्रिंसिपल श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण निर्वाचित हुए थे। स्वनामधन्य श्री मदनमोहन मालवीयजी, श्री दुर्गादत्त पन्त, व्याख्यानवाचस्पति श्री दीनदयालु जी शर्मा, श्री अमृतनारायण शास्त्री, श्री बुलाकीराम शास्त्री, श्री शालग्राम शास्त्री, श्री व्रजनाथ जी गोस्वामी, श्री सूर्यनारायण आचार्य, श्री गणेशदत्त शास्त्री, तथा श्री हरिहरस्वरूप शास्त्री आदि बहुत से देश प्रसिद्ध विद्वान् इस प्रथम अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। इसमें श्री शालग्रामशास्त्रीने अपनी "सुरभारतीसन्देशः" शीर्षक वाली विशिष्ट कविता सुनायी थी। मैंने भी "दर्शनानामाविर्भावकालः तत्क्रमश्च" शीर्षक एक निबन्ध उसमें पढ़ा था। श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने उसे बहुत पसन्द किया था। उस निबन्ध में दार्शनिक सिद्धान्तों के पहिले आविष्कर्ता क्षत्रिय ही थे इस वैदशिक मत का सप्रमाण खण्डन किया गया था। विद्याभूषण जी ने कहा कि ऐसा गवेषणापूर्ण निबन्ध हमने प्रथम बार ही सुना है। श्री मालवीय जी ने उसपर यह टिप्पणी की कि "भाई ब्राह्मणों पर तो अनेक आक्षेपपूर्ण मतवाद इस समय चल रहे हैं, उनका उत्तर देने का यह समय नहीं है"। मेरे शिष्य ऋषिकुल के ब्रह्मचारी श्री परमेश्वरानन्द ने भी इसमें निबन्ध पढ़ा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आगे श्री दीनदयालु जी ने "सनातनधर्ममहासम्मेलन" की स्थापना हरिद्वार में ही की। इसके साथ ही संस्कृतसाहित्य-सम्मेलन के २, ३ अधिवेशन होते रहे। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि इस सम्मेलन का एक पृथक् विस्तृत इतिहास है उसका विशेष विवरण अलग ही दिया जाना उचित है।

उस समय संस्कृत का एक नवीन पाठ्यक्रम भी प्रकाशित हुआ था। वह बहुत से गण्य मान्य विद्वानों की सम्मति प्राप्त कर बनाया गया था। उसका आन्दोलन भी उस समय ही बहुत कुछ किया गया और काशी के संस्कृत कालेज (वर्तमान वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय) और हिन्दूयूनिवर्सिटी में भी इसके अनुसार पाठ्यक्रम चलाने की प्रार्थना की गयी थी। उस समय प्रायः सबने ही इसकी उपेक्षा की थी किन्तु अब प्रायः उसके अनुसार ही पढ़ाई सर्वत्र हो रही है। ईश्वर कृपा से यह संस्कृतसाहित्य-सम्मेलन बहुत बढ़ा और आज इसका प्रधान कार्यालय देहली में सुप्रतिष्ठित है, अनेक प्रधान राष्ट्र नायकों का इसमें पूर्ण सहयोग है।

अस्तु, अब ऋषिकुल का ही प्रसङ्ग फिर लिया जाता है। एक पर्वतीय विद्वान् श्री कृष्ण जोशी वहाँ असिसटैन्ट सैक्रेटरी नियत हुए थे, यह लिखा जा चुका है। इनके ही समय में हमारे सजातीय श्री दामोदर जी चौबे, जो हरिद्वार में म्यूनिसिपल सैक्रेटरी थे, उनका भी हस्तक्षेप ऋषिकुल में अधिक बढ़ गया था। उन्होंने ही प्रयाग से आये हुए और अपने को श्री मालवीय जी का भेजा हुआ बताने वाले विश्वनाथ नाम के एक व्यक्ति को ऋषिकुल में देखरेख के लिए नियत कर दिया था। उसका नाम श्री कृष्ण जोशी जी ने विश्वप्रिय रख दिया और उसने गौड़ पार्टी और पर्वतीय पार्टी का परस्पर विरोध खड़ा कर दिया। दोनों ही के दलों के छात्र ऋषिकुल में अधिक पढ़ते थे। दामोदर जी के ही सम्बन्ध से वहाँ के हैल्थ आफिसर श्री पीताम्बर पन्त महोदय का भी प्रवेश ऋषिकुल में अधिक बढ़ गया था। इन विश्वप्रिय महोदय ने पुराने हिन्दी अध्यापक पर ब्रह्मचारियों से दुराचार करने का भी कलङ्क लगाया। दामोदर जी ने इसकी खुली जाँच की और पुराने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी अध्यापक को पृथक् कर दिया। उसके स्थान में अन्य कई अध्यापकों का प्रवेश वारी-वारी से होता रहा। उनमें एक गदाधर सिंह नाम के भी हिन्दी के ट्रेन्ड (प्रशिक्षित) अध्यापक आये थे जो पहिले आर्य समाज के गुरुकुल में रह चुके थे। उनके अधिकार में मैंने विद्यालय का आफिस कार्य दे दिया था किन्तु मेरे हा सम्बन्ध से रुष्ट होकर केदारनाथ जी ने उन्हें पृथक् करवा दिया। उसी अवसर में मुझे अवकाश लेकर जयपुर आने की पुनः आवश्यकता हुई और मैंने अपना प्रतिनिधि पण्डित लक्ष्मीनारायण जी चतुर्वेदी को नियत कर कुछ दिनका अवकाश फिर लिया। वहाँ से स्वस्थ होकर फिर अपने स्थान पर आ गया। इन्हीं दिनों में मेरा ऋषिकुल के सम्वन्ध से कई नगरों में आवागमन बहुत वढ़ गया। एक बार पण्डित भोलानाथ जी ने अपने साथ मुझे तथा दो-चार ब्रह्मचारियों को लेकर आस पास के सहारनपुर, मेरठ आदि शहरों की यात्रा की। दूसरी बार सभापति पण्डित आनन्द नारायण जी के अधिपतित्व में सिन्ध प्रदेश की भी यात्रा हुई। इसमें सक्खर, शिकारपुर, सिन्ध, हैदराबाद, कराँची आदि स्थानों का परिभ्रमण हुआ। इन दोनों ही यात्राओं में भोलानाथ जी के सम्वन्धी जिला होशियारपुर निवासी केशवानन्द जी भी साथ थे। आनन्दनारायण जी ही हरिद्वार से स्वामी स्वरूपानन्द जी को भी साथ ले गये थे। एक दो वड़े ब्रह्मचारी भी साथ थे। वहां से लौटते समय लाहौर तथा अमृतसर भी कई दिन भोलानाथ जी और हम ठहरे।

कराँची में रहते हुए ही हम लोगों ने वाइसराय पर देहली प्रवेश के समय वम गिराने का समाचार सुना था। अस्तु, इस यात्रा में बहुत समय लग गया था। और मेरी वुआ उस समय हरिद्वार में ही थीं। इनका आवागमन मेरी पाकादि की सुविधा के लिए बहुत होता था। और भी गृहजन प्रायः आया जाया करते थे। परमेश्वरानन्द, लीलाधर आदि दो-तीन छात्र सप्तम श्रेणी से उत्तीर्ण हो चुके थे। सप्तम श्रेणी तक वहाँ स्कूल विभाग समझा जाता था। आगे कालेज विभाग में जो मैंने अध्यापक, उपदेशक, कर्मकाण्ड, ज्योतिष और आयुर्वेद नाम के विभाग वनाये थे उनमें इनको उपदेशक विभाग में ही प्रविष्ट किया गया था। आगे चलकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हीरक जयन्ती में सम्मान

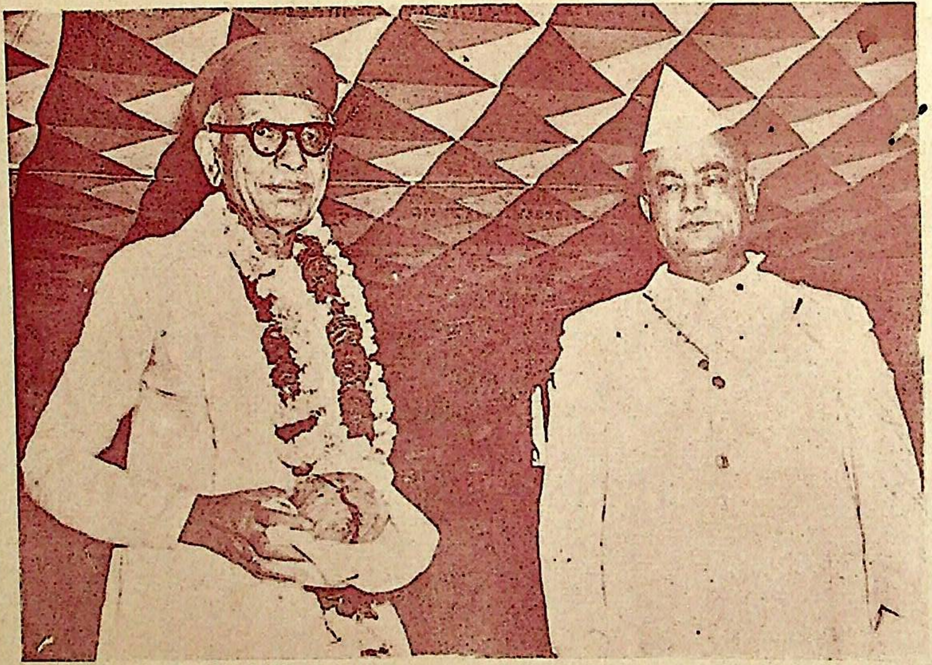

दरभंगा नरेश के साथ श्री गिरिधर शर्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

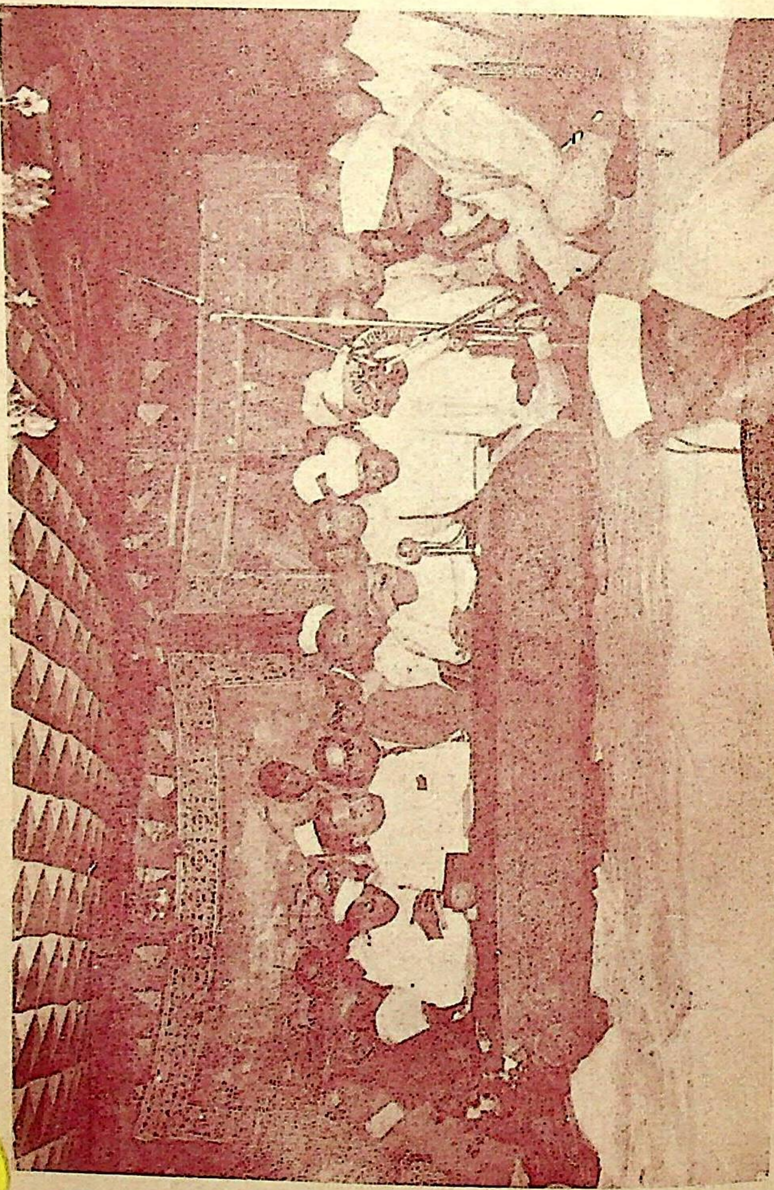

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमेश्वरानन्द ने उस विभाग से अरुचि प्रकट की। इसलिए वह अध्यापक विभाग में परिवर्तित कर दिया गया और लीलाधर उपदेशक विभाग में ही पढ़ता रहा।

एक वार कुरूक्षेत्र में पण्डित गरुडध्वज शास्त्री जी ने सूर्यग्रहण के अवसर पर बड़े समारोह से उत्सव किया। मैं, पहिले जब उन्होंने ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना कुरूक्षेत्र में की थी उस समय भी वहाँ हो आया था। इस समय फिर अपनी पत्नी के साथ वहाँ गया और जयपुर से भी हमारे पिता, पितृव्य, बुआ जी और एक अलीगढ़ रामपुरा की हमारी सम्बन्धिनी वृद्धा भी वहाँ आई थीं। वहाँ का उत्सव समाप्त कर फिर ये सभी हरिद्वार ही चले आए। वहाँ प्राय: सबलोग बीमार हो गए। मेरी बुआ और उस दूसरी वृद्धा का वहीं देहावसान हुआ और मेरे पितृव्य भी बड़ी कठिनता से बचे। उस अवसर में एक काशी के वैदिक ईश्वरीदत्त जी ऋषिकुल में बुलाये गये थे। उनसे बड़ी सहायता मिली। ऋषिकुल में एक वार काशी के एक प्रसिद्ध वैदिक श्री मदनमोहन शास्त्री आये थे। वे नम्रता का व्यवहार बहुत करते थे। प्राय: सबके चरण स्पर्श करते थे। उन्होंने वेद पाठ की सब में त्रुटियाँ बहुत निकालीं और अच्छा वैदिक वहाँ रखने की बहुत सिफारिश की। इसी कारण ईश्वरी दत्त जी वहाँ बुलाए गए थे। उन्होंने वेद पाठ का काम बहुत अच्छी तरह सँभाला। पूर्व जर्मन युद्ध में इनके ही द्वारा एक छोटासा यज्ञ भी इंलैण्ड की विजयार्थ किया गया था। ऋषिकुल में एक शिव-मन्दिर गुलावराय जी पोद्दार, कलकत्ते के मारवाड़ी सज्जन ने बनवाया था, उसकी प्रतिष्ठा भी इनके द्वारा ही सम्पन्न हुई थी। उसी प्रतिष्ठा के अवसर में इनका देहान्त भी हुआ। अस्तु, मैं अपने पितृव्य को पहुँचाने के लिए हिन्डौन तक साथ गया और बुआ जी का क्रिया-कर्म भी जयपुर में ही कराया गया।

इस प्रसङ्ग में अपने कर्त्तव्य-पालन की एक घटना लिखने से रह गई है कि एक बार जब मैं जयपुर आया था तो श्री बदरीनाथ शास्त्री जो कि अँग्रेजी कालेज जयपुर में संस्कृत के अध्यापक थे, वे वहाँ से उन्नत-पद पर नियुक्त होकर लखनऊ चले गए थे। उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान पर मुझे नियुक्त करने को तात्कालिक डाइरेक्टर श्री मक्खन-लाल जी ने स्वयं मुझ से कहा और उसका उत्तर श्री वीरेश्वर शास्त्री जी को देने के लिए भी कहा। उस स्थान पर मेरे मित्र पण्डित सूर्यनारायण जी का अधिकार था। इसलिए मैंने श्री वीरेश्वर शास्त्री जी से मिलकर यही उत्तर दिया कि सूर्यनारायण जी की और मेरी परस्पर घनिष्ठ मित्रता है इसलिए उनको प्राप्त होनेवाले स्थान में मैं वाधक नहीं होना चाहता। यद्यपि पिता जी के वृद्ध हो जाने के कारण मुझे जयपुर आने की आवश्यकता है तथापि अपने मित्र के अधिकार में वाधा पहुँचा कर इस स्थान को मैं स्वीकार नहीं करूँगा। पण्डित वीरेश्वर शास्त्री जी ने इस पर मेरी वहुत प्रशंसा की, किन्तु मेरा यह कर्त्तव्य-पालन मात्र था।

ऋषिकुल के सम्वन्ध में यात्राएँ करने की वात जो पहिले चल रही थी उसी सम्वन्ध में एक विशेष यात्रा का वर्णन आवश्यक है। झेलम जिले में मीरपुर नाम का एक स्थान है, वह पहाड़ी प्रदेश है। इसलिए वहाँ यातायात घोड़े ही पर होता है। दिन भर घोड़े पर चलकर वहाँ पहुँचा जाता है। मेरा घोड़े पर चढ़ने का अभ्यास न होने के कारण मुझे इस यात्रा में वहुत कष्ट हुआ। एक अच्छे भजन-गायक जो ऋषिकुल में भगवान् के नाम से प्रसिद्ध थे और स्वामी रामतीर्थ जी में वहुत भक्ति रखते थे वे मेरे साथ थे। मार्ग में श्रम अवश्य हुआ किन्तु मीरपुर के निवासी इतने सज्जन थे कि उनकी सेवा ने सव परिश्रम भुला दिया और वहाँ वड़े आनन्द से दो दिन व्याख्यान देकर फिर लौटते हुए अम्वाला और अम्वाला छावनी में भी ऋषिकुल का प्रचार किया। अम्वाला छावनी में कुछ मारवाड़ी सज्जन थे। उनसे सहायता भी अच्छी मिली।

अलवर के उस काल के महाराज जयसिंह जी को सनातन-धर्म का इतना आवेश था कि अलवर में एक सनातन-धर्म-सभा उन्होंने स्थापित करवा रखी थी। मेरे मित्र पण्डित रामभद्र ओझा ही उसके कार्यकर्ता थे। वहाँ के पण्डित चन्द्रदत्त जी आदि व राजकीय वहुत से कर्मचारी भी उसमें सम्मिलित रहते थे। उसमें मुझे वुलाया गया। उसी समय ऋषिकुल के पण्डित केदारनाथ जी व कृपाराम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक-दो बड़े ब्रह्मचारियों को लेकर झेलम जाने को प्रस्तुत थे। मैं अलवर जाना आवश्यक समझ कर पहिले वहाँ गया और इन सज्जनों को झेलम भेज दिया कि मैं अलवर होकर आता हूँ। इसी समय सहारनपुर के मेरे मित्र हरिप्रसाद जी वैद्य के यहाँ भी एक विवाह था। उसमें भी मेरा जाना आवश्यक था। अस्तु, इसमें ज्वालाप्रसाद जी मिश्र भी बुलाये गये थे। उनका और मेरा देहली से ही साथ हो गया। बहुत-सी बात-चीत करते हुए अलवर हम-लोग पहुँचे। वहाँ भारतधर्म-महामण्डल के स्वामी दयानन्द जी भी आए थे। महाराज अलवर ने पहिले दयानन्द जी का ही व्याख्यान करवाया। स्वामी हंसस्वरूप जी, जो अलवर महाराज के गुरु बन-कर वहाँ रहते थे—वे दयानन्द जी पर बहुत प्रसन्न हुए और उनको अपने आश्रम में ही ले गए। फिर दूसरे दिन भी महाराज ने पण्डित ज्वालाप्रसाद जी के भाषण का आदेश दिया। इससे मुझको वहाँ विलम्ब लग गया और हरिप्रसाद जी के यहां जाने का समय जाता रहा। अस्तु, तीसरे दिन व्यख्यान देकर मैं तो फिर झेलम अपने साथियों के पास चला आया और पीछे से हंसस्वरूप जी ने दया-नन्द जी के व्याख्यान पर कुछ कटाक्ष किए, इस कारण उनमें बहुत कलह हो गया।

आगे भी महाराज अलवर की सभा में मैं कई बार आहूत हुआ और कई व्याख्यान महाराज अलवर को सुनाये। अस्तु, झेलम में एक ऐसा वकवादी मिला कि जिसका नाम ब्रह्मचारियों ने "कथा-सरित्सागर" रख दिया था। वहाँ की यात्रा भी समाप्त कर फिर ऋषिकुल में हमलोग वापिस आ गए।

अध्यापकों के साथ ही कई वैद्य महाशयों का भी परिवर्तन ऋषिकुल में होता रहा। एक धनानन्द जी नाम के पर्वतीय वैद्य भी वहाँ आए थे। इनके हाथ से एक-दो केस भी वहाँ खराब हो गये। कलकत्ते के डेपुटेशन के समय साथ भेजा हुआ एक छात्र भी इनकी असावधानी के कारण ही मृत्युग्रस्त हुआ। मेरठ का एक नेत्र-चिकित्सा के लिए आया हुआ व्यक्ति भी इनकी असावधानी से बहुत पीड़ित हुआ। इनके इस विषय के प्रश्नोत्तर भी मेरठ में हमसे हुए। परन्तु हमने किसी प्रकार उसका टाल-मटोल जवाब दे दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनके सहकारी रूप में एक नारायण दत्त जी भी नियत किए गए थे और कई एक अध्यापक भी वहाँ नए आए थे। उनमें श्री दत्त जी एक सुयोग्य व्याकरणाध्यापक और एक हरनाम दत्त जी भी जो बहुत दिन काशी रह चुके थे और वहाँ भाष्याचार्य नाम से प्रसिद्ध थे वे भी हरिद्वार निवास करने को निर्वाह मात्र लेकर वहाँ आ कर रहे थे। इनके पौत्र श्री विद्याधर शास्त्री के विवाह में मैं भी सम्मिलित हुआ था। जयपुर के एक पण्डित पुरुषोत्तम जी प्रश्नवर भी वहाँ कुछ काल के लिए आए थे। फिर वे जयपुर लौट गए। इसी प्रसङ्ग में यह बात भी वर्णन योग्य है कि भारत-धर्म-महामण्डल का एक महाधिवेशन काशी में हुआ था। इसमें श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी के प्रधान शिष्य श्री दयानन्द स्वामी प्रधान थे। वहाँ ऋषिकुल के सहकारी मंत्री पंडित केदारनाथ जी और ऊना के ऋषिकुल में आए हुए एक विद्वान् कृपाराम जी भी साथ थे। वहाँ एक दिन ऐसी घटना घटित हुई कि हमलोग काशी के भिन्न-भिन्न घाटों पर स्नान करने के लिए भ्रमण करते थे। वहाँ अस्सी घाट पर जिस दिन गए उसी समय पैर फिसल जाने के कारण केदारनाथ जी डूबने लगे। उनकी बचाओ, बचाओ की ध्वनि सुनकर मैं भी तत्काल जल में कूद गया। अब हम दोनों को डूबता देखकर घाटियों ने बाँसों का सहारा देकर हमें निकाला। इसी घटना से दुःखित होकर केदारनाथ जी तो कृपाराम के साथ चले गए किन्तु मैं अधिवेशन में रूका रहा। देहली के पण्डित हरनारायण शास्त्री जी और ज्वाला प्रसाद मिश्र जी आदि भी वहाँ आए हुए थे। ऋषिकुल से जो छात्र नाना अपराधों के कारण पृथक् कर दिए गए थे, उन्होंने अपना गुट बनाकर ऋषिकुल के विरुद्ध महामण्डल में अपवाद फैलाना चाहा। किन्तु उन्हें किसी प्रकार श्रीनारायण जी आदि की सहायता से रोकना संभव हुआ। इस अधिवेशन में मुझे भी "विद्यानिधि" और "महोपदेशक" पदवियां दी गईं थीं। किन्तु वहाँ का अत्याचार देखकर मैंने "ब्रह्मचारी" पत्र में एक बहुत बड़ा लेख इसके विरोध में लिखा था।

केदारनाथ जी महाशय का दूसरा विवाह भी ज्वालापुर के पास ही हुआ था। इसमें मैंने भी उनका प्रोत्साहित करने में बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ सहयोग किया था। किन्तु उन महाशय से थोड़े ही दिन बाद कुछ अनबन-सी चल पड़ी। श्री कृष्ण जोशी भी इनके षड़यन्त्र से पृथक् हुए थे। इनके पृथक् होने पर पण्डित केदारनाथ जी ही नियमानुसार असिस्टैन्ट-सेक्रेटरी चुन लिए गए थे। ये महाशय बड़े ही अनैतिक पुरुष थे। पत्र-व्यवहार से सभापति आनन्दनारायण जी पर इन्होंने बहुत प्रभाव जमा लिया था। और जब कभी ऋषिकुल की मीटिंग होती तो ये ज्वालापुर कनखल के जो सरदार पंडा मेम्बर थे उनके घर पर चक्कर लगाते और उनपर अपना प्रभाव जमाने की व अपने विरुद्ध प्रभाव उखाड़ देने की पूर्ण चेष्टा करते रहते थे। पंडा-सरदारों में अधिकांश अपठित ही थे। ये इनके प्रभाव में आ जाते थे। हरिद्वार के कुम्भ पर्व से कुछ पूर्व ही मेरी भी इनसे लिखा-पढ़ी आरम्भ हो गयी थी। कई प्राईवेट पत्र उन्होंने लिखकर मेरे पास भेजे थे और मैंने भी उनका उत्तर दिया था। इससे वैमनस्य बढ़ता ही गया। इधर श्री दीनदयालु जी व्याख्यानवाचस्पति ने कुम्भ पर्व पर एक बहुत बड़े अधिवेशन का आयोजन किया था जिसके प्रबन्ध में श्री मालवीय जी भी वहाँ आए थे। भारत-धर्म-महामण्डल जब से श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी के हाथ में चला गया तब से ये महाशय नई-नई संस्थाऐं बनाने के उद्योग में लगे रहते थे। यहाँ उन्होंने सनातन-धर्म-महासम्मेलन नाम से एक नई संस्था खड़ी की थी और उसका प्रथम अधिवेशन हरिद्वार कुम्भ के अवसर पर रखा गया था। यह बहुत बड़ा आयोजन था और महाराजा दरभंगा इसके सभापति बनाए गये थे एवं महाराजा काश्मीर आदि भी इसमें सम्मिलित हुए थे। इसके ही साथ संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का द्वितीय-अधिवेशन भी हमने रखा था। किन्तु इस अधिवेशन के निकट-पूर्व ही मेरी पत्नी के सीमन्तोन्नयन के कारण मुझे जयपुर जाना पड़ा। बहुत शीघ्र ही वहाँ का कार्य समाप्त कर मैं आ गया। जयपुर से पिता जी भी कुम्भ पर्व पर हरिद्वार आए थे। इससे पूर्व भी एक बार महाराज-दरभंगा ऋषिकुल के उत्सव पर पधारे थे। उस समय स्टेशन पर उनका बड़ा स्वागत हुआ था और उसमें मैंने उनको एक कविता सुनाई थी, जिसमें अनेक पद्य रचे गए थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुम्भ-पर्व पर हमने जो संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन रखा था उसके सभापति पुरी के शङ्कराचार्य बनाए गये थे। कुम्भ पर्व पर अनेक विद्वान् वहाँ एकत्रित हुए थे। उनमें मिथिला के सुप्रसिद्ध महाविद्वान श्री बच्चा झा भी वहाँ पधारे थे। ये महाशय एक दिन पहिले ऋषिकुल देखने आए थे। उस समय पूर्वोक्त श्री हरनामदत्त जी के व्यवहार से कुछ असन्तुष्ट भी हो गए थे। ब्रह्मचारियों की इन्होंने परीक्षा भी की थी। संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन के लिए मैं अपने मित्र सूर्यनारायण जी, जो वहाँ आए थे, उनके साथ इनको निमन्त्रित करने गया। बहुत देर तक ये हरनामदत्त जी के व्यवहार की बात कहकर निषेध ही करते रहे। यहाँ तक कि सूर्यनारायण जी निराशा से खिन्न होकर लौटने को भी तैयार हो गए किन्तु मैंने अन्त में निवेदन किया संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन यहाँ हो रहा है, यह बात छिपी हुई नहीं है और आपका यहाँ आना भी छिपा नहीं है। तब आपको सम्मिलित न होता देखकर या तो विद्वान् लोग सम्मेलन को ही नगण्य समझेंगे अथवा कई लोग आपको ही ऐसे समारोहों से सहानुभूति न रखने वाला समझेंगे। दोनों ही बातें कितनी असमंजस-पूर्ण होंगी, यह आप ही सोच लीजिए। इस पर फिर उन्होंने स्वीकार किया कि मैं संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन में थोड़ी देर के लिए आ जाऊँगा किन्तु फिर महाराज-दरभंगा के सभापतित्व में जो महासम्मेलन होगा उसमें मुझसे अनुरोध न करना। महाराज-दरभंगा से ये असन्तुष्ट ही रहते थे। हम चले आए और संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन में भी बच्चा झा जी सम्मिलित हुए और भी कई विद्वान् कुम्भ-पर्व के अवसर पर पधारे थे। उनमें एक विद्वान् के साथ मेरी शास्त्र-चर्चा भी हुई थी। मारवाड़ी-धर्मशाला में अधिष्ठाता रूप से रहने वाले पण्डित श्री वाचस्पति जी मध्यस्थ थे। उन्होंने मेरे ही पक्ष में निर्णय दिया। इस प्रकार बहुत बड़े आयोजन से यह महा-सम्मेलन समाप्त हुआ और कुम्भ-पर्व भी हरिद्वार में पूर्ण हुआ।

कुम्भ-पर्व के अनन्तर आवश्यकतावश साहित्याचार्य श्री शालग्राम जी शास्त्री को भी ऋषिकुल में बुलाया गया। ये महाशय पहिले आर्य-समाज के गुरुकुल में भी अध्यापक रह चुके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे, और वहाँ के प्रधानाध्यापक श्री काशीनाथ जी से कुछ पढ़े भी थे, इसलिए उनको गुरुजी ही कहा करते थे। वैसे ये पहिले काशी भी रहे थे और वहाँ श्री शिवकुमार शास्त्री जी के शिष्य भी कुछ दिन रह चुके थे। इनको ऋषिकुल में स्कूल विभाग का प्रधानाध्यापक नियत किया गया और मैं कालेज-विभाग का ही अध्यापक रहा तथा मुझे ही शिक्षा-विभागाध्यक्ष भी माना जाता था। श्री शालग्राम शास्त्री जी के ऋषिकुल आजाने से मेरी मित्र मण्डली में एक उल्लेखनीय वृद्धि हुई। ये संस्कृत के सभी विषयों के विशेष कर आयुर्वेद और साहित्य के मार्मिक विद्वान् थे। इनका स्वभाव बड़ा विनोदी था। संस्कृत और हिन्दी में ये निरन्तर लिखते थे, इनकी आलोचनाएं बड़ी चुभती हुई तथा व्यंग्य विनोदों से भरपूर होती थीं। मेरे साथ इनकी मित्रता यावज्जन्म बनी रही। ऋषिकुल में रहते हुए ही इन्होंने संस्कृत में साहित्य विषय के प्रसिद्ध ग्रन्थ "साहित्य दर्पण" का हिन्दी अनुवाद कर दिया था। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि संस्कृत के ग्रन्थ का खड़ी बोली में यह पहिला ही सफल अनुवाद था। आज तो प्रायः सभी संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद हो रहे हैं परन्तु जब हिन्दी की खड़ी बोली में संस्कृत के ग्रन्थों के अनुवाद का इतिहास देखा जायगा तो शालग्राम शास्त्री जी का यह अनुवाद ही प्रथम माना जायगा। म. म. श्री हरनारायण शास्त्री जी ऋषिकुल की शिक्षा-समिति के मन्त्री थे। एक बार मारवाड़ी सज्जनों ने अपनी जातीयतावश लाला बलदेवसिंह, जो ऋषिकुल के पहिले से उप-सभापति थे, उन्हें ही सभापति बनाने का आन्दोलन उठाया था। उस समय श्री हरनारायण शास्त्री जी और आगरा के श्री ब्रजनाथ गोस्वामी जी ने ही प्रमुख भाग लेकर पण्डित आनन्द नारायण जी को ही सभापति पद पर स्थिर रखा और उनकी अनुपस्थिति में कार्य करने को लाला बलदेवसिंह को सीनियर-उपसभापति रखा। इस कारण हरनारायण शास्त्री आदि का प्रभाव ऋषिकुल की समिति में बढ़ गया था।

इसी अवसर में मेरी दूसरी पत्नी के भी दो कन्या साथ ही उत्पन्न हुई। उनमें एक तो उत्पन्न होते ही जाती रही और दूसरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवित रही। इसी अवसर में अपने सनातन-धर्म-सम्मेलन के प्रचारार्थ श्री दीनदयालु जी जम्मू गये थे। मैं भी उस अवसर में झेलम गया हुआ था। वहाँ से उन्होंने मुझे भी साथ ले लिया और महाराज काश्मीर को दो-तीन व्याख्यान मैंने भी सुनाये। उनसे वे प्रसन्न हुए और उन्होंने काश्मीर आने का भी मुझे निमन्त्रण दिया। इसके अतिरिक्त दो सौ रुपये पारितोपिक तथा दुशाला आदि भी भेंट स्वरूप दिये। ऋषिकुल में यह नियम हो चुका था कि, हमें जो भेंट मिले वह ऋषिकुल में ही जमा कर दी जावे, परन्तु पण्डित दीनदयालु जी के लिखने से वह भेंट मुझे ही दे दी गई।

उसी समय "माथुर चतुर्वेदी महासभा" की स्थापना करने को आगरा में राजा साहब श्री..........के सभापतित्व में एक सभा का आयोजन था। उसमें अपने पितृव्य और पत्नी व छोटी बच्ची के साथ मैं भी सम्मिलित हुआ था। मेरे यहाँ भी शीघ्र ही दो कन्याओं का विवाह करना आवश्यक था। उसका भी निश्चय वहाँ करना था। फतेहपुर के माताप्रसाद जी तिवारी, जो ग्रेजुएट हो चुके थे, वह द्वितीय पुत्री राधा के लिए मेरी दृष्टि में थे। किन्तु उनके कुल के पुरुष ने होलीपुरा के एक सज्जन से कुछ अपशब्द विवाह के सम्बन्ध कभी कह दिए थे, इस कारण सब फतेहपुर निवासियों का ही होलीपुरा निवासियों ने सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया था। उस सम्बन्ध को खोलने की भी आज्ञा लेनी थी। आगरा में श्रीयुत बैजनाथ जी और होलीपुरा के श्री रघुवरदयाल जी आदि से परामर्श करने पर उन्होंने यही सम्मति दी कि इनमें कोई दोष नहीं है, केवल बातचीत की गाँठ पर इतने दिनों तक इनका बहिष्कार रहा, अब इनका सम्बन्ध खोलने को सब ही उत्सुक हैं। इसलिए आप सम्बन्ध करिये, कोई दोष नहीं है। डिप्टीसाहब रायबहादुर श्रीमान् राधेलाल जी की भी यही सम्मति रही। डिप्टीसाहब से मैं होलीपुरा में एक विवाह के प्रसङ्ग में थोड़े दिन पूर्व ही मिल चुका था। उन्होंने वहाँ मेरे व्याख्यान कराने की भी प्रेरणा की, किन्तु सभापति महोदय ने मुझे अपने पास बुलाकर जब यह कहा कि "आप क्या कहेंगे? यदि ऐसा कहेंगे कि हमारी जाति पहिले उन्नत थी, अब गिर रही है तो इसका भी समय को देखते हुए विपरीत ही प्रभाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होगा।" यह सुनकर मैंने उस सभा में व्याख्यान देने से ही इन्कार कर दिया कि ऐसे सभापति की अध्यक्षता में व्याख्यान देना अपने आपको कदर्थित करना है। इसलिए यही कह दिया कि "अब व्याख्यान की आवश्यकता ही क्या है?" उन दिनों राजनैतिक-दमन-चक्र का बहुत जोर था। इस कारण सभापति-महोदय का भी डरकर यह कहना उचित ही था। वहाँ से मेरे पितृव्य तो जयपुर चले गए और मैं अपनी पत्नी के साथ ऋषिकुल चला आया।

दूसरे वर्ष मैंने कमतरी निवासी कामता प्रसाद जी को अपनी तृतीय पुत्री त्रिवेणी के लिए चुना था। ये महाशय उन दिनों मुरादाबाद के राजा साहब के परिवार में ही रहते थे। वहाँ इनका सम्बन्ध था।

साहित्याचार्य शालग्राम जी से मेरी प्रारम्भ से ही घनिष्ठ मित्रता हो गयी थी यह कह चुका हूँ, केदारनाथ जी महोदय से इनकी प्रारम्भ से ही अनबन-सी चलती रहती थी। केदारनाथ जी का और मेरा ऋषिकुल की कमेटी के समक्ष भी विवाद का प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। किन्तु कोई निश्चय उस पर नहीं किया गया। पण्डित सूर्यनारायण जी व्याकरणाचार्य, जयपुर निवासी भी शिक्षा-समिति के सदस्य निर्वाचित कर लिए गए थे। इसलिए उनका भी यातायात हरिद्वार में बहुत बढ़ गया था। शालग्राम जी के साथ भ्रमणादि के उद्देश्य से मेरा अधिकांश हरिद्वार आना जाना होता रहता था।

गुरुमण्डलाश्रम

एक बात यहाँ और लिखना आवश्यक है कि उदासी-सम्प्रदाय में स्वामी बालराम जी एक बहुत बड़े विद्वान् हुए थे। उनकी लिखी हुई "योगवासिष्ठ" पर एक व्याख्या है और "सांख्यतत्त्व-कौमुदी" पर भी एक विस्तृत-व्याख्या उन्होंने लिखी थी किन्तु वह पूर्ण न हो सकी। ये महाशय आर्यसमाज के तीव्र समालोचक थे। यहाँ तक कि इनके साथ की साधु-मण्डली आर्य-समाजियों से अपशब्द पूर्वक व तिरस्कार-पूर्वक व्यवहार किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती थी। इन्होंने स्वयं तो अपना कोई स्थान नहीं बनवाया था प्रत्युत पटियाला महाराज के आग्रह-पूर्वक स्थान बनाने का अनुरोध करने पर भी निषेध ही कर दिया था। किन्तु उनके अनन्तर उनके शिष्यों ने उनकी पुस्तकों को सुरक्षित रखने के लिए एक पुस्तकालय बनवाया। यह ऋषिकुल के समीप ही था और "गुरु-मण्डलाश्रम" नाम से प्रसिद्ध था। उसके बनवाने के लिए हरदेव जी ब्रह्मचारी बहुत काल तक वहाँ रहे थे और तैयार हो जाने पर उनके प्रधान-शिष्य स्वामी आत्मस्वरूप जी वहीं आकर रहे थे। उनके पास भी शालग्राम जी का और मेरा बहुत आना जाना रहता था। बड़े प्रेम से उनके साथ देर तक वार्तालाप हुआ करता। हरिद्वार की पर्वतीय श्रृंखलाओं पर तथा पहाड़ पर स्थित चण्डी-मन्दिर पर यात्राएँ भी कई बार हुआ करती थीं। ज्वालापुर की पण्डों की पाठशाला में एक वन्शीधर जी नाम के प्रधान पण्डित थे। उनका भी इन यात्राओं में साहचर्य रहा करता था, कनखल के विद्वान् यज्ञेश्वर जी के साथ भी हमारा साथ प्रायः हुआ करता था।

कन्याओं का विवाह करने मुझे शीघ्र ही जयपुर जाना पड़ा। पिताजी के वृद्ध हो जाने के कारण इन विवाहों के समय से ही व्यय का भार मुझ पर बढ़ गया था और मेरी ऐसी आर्थिक परिस्थिति रही कि जो विवाह आदि कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न हुए वे सब ऋण लेकर ही पूर्ण हुए। इस विवाह से ही ऋण लेने का आरम्भ हो गया था। इस विवाह में श्री राधेश्याम जी कथावाचक भी सम्मिलित हुए थे, जिनके साथ मेरी मित्रता प्रगाढ़ हो चुकी थी। उन दिनों राधेश्याम जी की रामायण कथा को भारत भर में ख्याति मिल चुकी थी। मेरे आग्रह पर ये विवाह में पधारे और बारात के लोगों तथा उपस्थित महानुभावों के आग्रह से इन्होंने दो दिन कथा कही। पहिले दिन तो बारात और घर में उपस्थित तथा परिचित मित्रों के बीच ही कथा का आयोजन रहा। परन्तु दूसरे दिन जयपुर रियासत के कुछ सरदारों ने मुझे उलाहना भिजवाया कि राधेश्याम जी की कथा में आपने हमें क्यों नहीं बुलवाया। इस पर दूसरे दिन बड़ा आयोजन हुआ और मेरे मकान का बड़ा चौक पूर्णरूप से भर गया। प्रायः ३ घण्टे कथा चलती रही। इस रामायण-कथा से सभी को बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्तोष और आनन्द प्राप्त हुआ। इस विवाह में हरिद्वार ऋषिकुल के अधिकारी व कर्मचारी भी सम्मिलित हुए थे। विवाह कार्य से निवृत्त होकर फिर मैं पत्नी सहित ऋषिकुल पहुँच गया और पूर्ववत् अपना कार्य चलाने लगा। शालग्राम शास्त्री जी के आने के अनन्तर मेरे पास कालेज-विभाग ही रह गया था इसलिए व्याकरण तथा अन्य-शास्त्रों के उच्चग्रन्थ शब्देन्दुशेखर, वेदान्त का शारीरक-भाष्य आदि पढ़ाने का भी मुझे अवसर मिला।

अधिकारियों ने व ऋषिकुल के प्रबन्ध समिति के सदस्यों ने उस समय यह भी विचार उठाया कि ऋषिकुल के ब्रह्मचारियों को किसी विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं में सम्मिलित करना चाहिए। मैं इसका विरोध करता था क्योंकि मैं ऋषिकुल को भी गुरुकुल की तरह स्वतन्त्र रूप में ही रखना चाहता था। इस पर यह बात फैलाई जाने लगी कि छात्र दुर्बल हैं, उनके उत्तीर्ण होने की इन्हें आशा नहीं है—इसलिए ये विरोध करते हैं। यद्यपि ऋषिकुल के अध्यापक पण्डित दुर्गादत्त जी वैदिक का ज्येष्ठ-पुत्र प्रेम-वल्लभ मुझ से ही पढ़ता था, उससे संस्कृत सम्मेलन की नियमावली व प्रथम निबन्धावली का आगरा जाकर गोस्वामी श्री ब्रजनाथ जी के प्रेस में छपाने का भी मैंने काम लिया था। वह पंजाब विश्वविद्यालय की सर्वोच्च शास्त्री परीक्षा में सम्मिलित हुआ था और उस परीक्षा में सर्व प्रथम आया था, तो भी कहने वालों का मुँह कौन पकड़ सकता था, अपवाद सब का ही फैलाया जा सकता है। इस अपवाद को मिटाने के लिए मैंने परीक्षा दिलाना स्वीकार कर लिया और जिस वर्ष श्री शालग्राम जी आये उस ही वर्ष परीक्षाओं की तैयारी की जाने लगी। परीक्षाओं का परिणाम भी उत्तम रहा। पंजाबविश्वविद्यालय में दो छात्र प्रविष्ट हुए, परमेश्वरानन्द और लीलाधर गवर्नमेण्टसंस्कृत-कालेज की परिक्षाएँ जो उन दिनों स्वतन्त्र ही चलती थी, उनमें भी मध्यमा परीक्षा में ७-८ छात्र प्रविष्ट हुए तथा सभी उत्तीर्ण हुए। उनमें से दो छात्र ने योग्यता-क्रम में भी स्थान प्राप्त किया।

★

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुकुल का शास्त्रार्थ

इसी अवसर में आर्य-समाज के कांगड़ी गुरुकुल से एक नोटिस निकला कि हमारे यहाँ वार्षिक उत्सव पर वैदिक वर्ण-व्यवस्था पर शास्त्रार्थ का कार्यक्रम रखा गया है। जो सज्जन इसमें भाग लेना चाहें वे इस वात पर विचार करें कि वर्ण-व्यवस्था जन्म से होती है या गुणकर्म से। शास्त्रार्थ शब्द का तात्पर्य शास्त्र विचार है। भारतीय दृष्टि से वेद, वेदाङ्ग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, दर्शन प्रभृति शास्त्र कहे जाते हैं। इनमें जो दो व्यक्तियों का परस्पर विचार विमर्श हो उसे शास्त्रार्थ कह सकते हैं। यह विचार विमर्श कई प्रकार का होता है जिनको न्याय-दर्शन में वाद, जल्प और वितण्डा कहा गया है। जब शास्त्र के मर्म को हृदयंगम करने के लिए एक-एक पक्ष लेकर वादी तथा प्रतिवादी प्रमाणों तथा युक्तियों के आधार पर विचार करने के लिए अग्रसर होते हैं तब वह वाद कहा जाता है। इस प्रकार की प्रणाली की सर्वत्र प्रशंसा होती है और इस प्रणाली से हृदय में विचलित न होने वाला ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यद्यपि इस प्रकार के विचार में वादी और प्रतिवादी दोनों होते हैं पर दोनों की दृष्टि जिज्ञासा पूर्ण होती है, किसी का किसी विषय पर हठ या आग्रह नहीं होता। जल्प में वादी तथा प्रतिवादी एक-एक पक्ष ग्रहण करते हैं तथा अपने अपने पक्ष पर उन्हें आग्रह रहता है। अपने-अपने विषय की सिद्धि करने के लिए दोनों युक्तियाँ और प्रमाण उपस्थित करते हैं और परपक्ष को निस्सार ठहराने के लिए उसके प्रमाण और युक्तियों को अपने प्रमाण और युक्तियों से काटते हैं। इस प्रकार अन्त में कोई मध्यस्थ, जो दोनों पक्षों को स्वीकृत होता है, युक्ति और प्रमाणों से उस समय प्रवल दिखाई देने वाले पक्ष को विजयी घोषित करता है और दुर्वल पक्ष को पराजित ठहरा देता है। अनेकधा मध्यस्थ श्रोता गण ही मान लिये जाते हैं और उनको निर्णय सुनाने की कोई आवश्यकता नहीं होती, वे अपने अपने हृदय में ही विजय पराजय का निर्णय कर लेते हैं। इस दूसरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार में यह मर्यादा अवश्य रहती है कि दूसरे पक्ष का खण्डन और अपने पक्ष का स्थापन करना आवश्यक होता है। तीसरे प्रकार में ऐसा कोई नियम नहीं रहता, वहाँ वक्ता दूसरे पक्ष का केवल खण्डन कर देता है, परन्तु अपना पक्ष उपस्थित ही नहीं करता, इसे 'वितण्डा' कहते हैं। यह गर्हित प्रकार है क्योंकि इसमें न तो बोलने वाले को कुछ उपलब्ध होता है और न श्रोता के ही कुछ पल्ले पड़ता है।

उन दिनों आर्यसमाज और सनातनधर्म के विचारकों में जो शास्त्रार्थ होते थे वे सिद्धान्त भेद पर आधारित थे। ये भिन्नताएँ कुछ निश्चित विषयों पर थीं। आर्यसमाज वर्णव्यवस्था को गुण-कर्म पर प्रतिष्ठित मानता है, उसके अनुसार एक ही जन्म में गुण-कर्म के बदल जाने से वर्ण भी बदल जाना संभव है, एक ही व्यक्ति अपने जीवन में गुण कर्मों में परिवर्तन करके चारों वर्णों को ग्रहण कर सकता है, परन्तु सनातनधर्म का सिद्धान्त है कि वर्णों में इस जन्म में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। किसी वर्ण का पुरुष जब उसके अनुरूप गुण कर्मों को धारण करता है तब वह प्रशंसनीय होता है और जब उन्हें छोड़ देता है तब निन्दनीय होता है, परन्तु छोड़ देने से वह दूसरे वर्ण में स्थित नहीं माना जाता। इसी प्रकार 'श्राद्ध कर्म' जीवित पिता, पितामह आदि का ही किया जाता है यह आर्यसमाज का मत है। सनातनधर्म, मृत पितरों की तृप्ति के लिए ही श्राद्ध होता है, यह सिद्धान्त मानता है। आर्यसमाज ईश्वर को केवल निर्गुण निराकार ही मानता है, उसके मत में मूर्तिपूजा के लिए कोई आधार नहीं, क्योंकि ईश्वर की मूर्ति हो ही नहीं सकती। सनातनधर्म के सिद्धान्त में ईश्वर निर्गुण निराकार भी है, सगुण साकार भी, उसकी प्रतिमा भी होती है, वह अवतार भी ग्रहण करता है। ये ही कुछ मुख्य विषय हैं जिनपर आर्यसमाज और सनातनधर्म के विचारकों में जनता के बीच खड़े होकर शास्त्रार्थ हुआ करते थे। साथ ही यह भी ध्यान रखने की बात है कि दोनों ही पक्ष चारों वेद संहिताओं को स्वतः प्रमाण मानते हैं और अपना पक्ष वेद मन्त्रों से सिद्ध करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे कई जगह व्याख्यानों का अभ्यास होने पर भी अभी तक शास्त्रार्थ करने का स्वयं कोई प्रसङ्ग नहीं आया था तथापि हरिद्वार के पास ही लक्सर में एक शास्त्रार्थ मैंने देखा था—जिसमें दुर्गादत्त पन्त जी और पण्डित कन्हैयालाल जी सनातनधर्म की ओर से वक्ता थे और स्वामी दर्शनानन्द जी और ज्वालापुर के कई पण्डित आर्य-समाज की ओर से। उसमें दर्शनानन्द जी की हार हुई और उन्होंने मान लिया कि सत्यार्थप्रकाश आदि आर्य-समाज के सब ही ग्रन्थों में बहुत-सी अशुद्धियाँ हैं। इस शास्त्रार्थ के देखने से मेरा हृदय शास्त्रार्थ के विषय में खुल गया था, इसलिए मैंने और पण्डित शालग्रामजी ने विचार किया कि गुरुकुल में शास्त्रार्थ के लिए चलना चाहिए। ऋषिकुल में वेदाध्यापक ईश्वरीदत्तजी वेदपाठी की मृत्यु हो जाने पर पण्डित विश्वनाथ जी वेदपाठी वेदाध्यापक नियत हुए थे। वे हरिद्वार के ही निवासी थे और उन्होंने हरिद्वार में एक विद्वत्समिति बना रक्खी थी जिसके वे स्वयं ही मन्त्री थे। ऋषिकुल के अधिकारी शास्त्रार्थ के झमेले में पड़ना नहीं चाहते थे इसलिए विद्वत्समिति के मन्त्री के नाम से ही हमने गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री मुन्शीराम जी से, जो कि बाद में सन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे, पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और शास्त्रार्थ के नियम जानना चाहा। अन्य नियम तो सब हमने मान लिए किन्तु एक बात पर विवाद बहुत दिनों तक चलता रहा। मुन्शीराम जी कहते थे कि हम तो केवल चारों वेद-संहिताओं को प्रमाण मानते हैं, इसलिए हमारे विरुद्ध तो आप लोग केवल वेद-संहिताओं को ही प्रमाण के रूप में कह सकेंगे—किन्तु आप लोग वेद-संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण आदि सब को प्रमाण मानते हैं—इसलिए आपके विरुद्ध हम ये सब ही प्रमाण उपस्थित कर सकेंगे। इस पर हमारा कहना था कि वेद-संहिताएँ आपको भी मान्य हैं और हमको भी। इसलिए केवल वेद-संहिताओं पर ही विचार होना चाहिए कि संहिताओं से वर्ण-व्यवस्था जन्म से सिद्ध होती है या गुण-कर्म से। उनका कथन था कि पहिले आप लिख दीजिए कि हम ब्राह्मण-पुराण आदि को नहीं मानते तब केवल संहिताओं के आधार पर शास्त्रार्थ चल सकेगा। इस पर हमने लिखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि आप भी तो स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों को प्रमाण मानते हैं, हम आपके विरुद्ध स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से जन्मना वर्ण के प्रमाण देंगे अन्यथा—आप उनका प्रमाण न मानना लिख दीजिए तब हम भी लिखने का विचार करेंगे। इस पर उन्होंने लिखा कि स्वामी जी के ग्रन्थ हमारे लिए स्वतः प्रमाण नहीं हैं, वेद के आधार पर ही उन्हें प्रमाण माना जाता है। तब हमने भी लिखा कि हमारे यहाँ भी स्मृति पुराण आदि स्वतः प्रमाण नहीं हैं, वेद के अनुकूल होने पर ही उनको प्रमाण माना जाता है। जैमिनि ने पूर्वमीमांसा में स्पष्ट लिखा है कि "विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसतिह्यनुमानम्"—अर्थात् यदि स्मृति-पुराण आदि वेद से विरुद्ध हों तो वे प्रमाण नहीं माने जा सकते। किन्तु स्मृति के विरोध में स्पष्ट श्रुतिवाक्य न मिलने पर स्मृति की समर्थक श्रुति का अनुमान कर लिया जाता है कि ऐसी श्रुति रही होगी—अब लुप्त हो गई है। इस प्रकार स्मृति-पुराण आदि का आधार वेद को ही हम भी मानते हैं। यह विचार पत्र-व्यवहार में चलता ही रहा। शास्त्रार्थ का समय आ गया किन्तु इसका कोई निर्णय नहीं हो सका। तब अन्त में गुरुकुल के "महात्मा जी" ने, जैसा कि उस समय उनकी प्रसिद्धि थी, लिख दिया कि सब ही प्रमाण दिए जावें किन्तु वे हों वर्ण-व्यवस्था पर ही, अन्य कोई विषय न आने पावे। यह भी पूर्व ही निश्चित हो चुका था कि पहिले १० मिनट में सनातन धर्म के वक्ता अपना पक्ष उपस्थित करेंगे, उसके उपरान्त १० मिनट में आर्य समाज के वक्ता परपक्ष खण्डन करते हुए अपना पक्ष उपस्थित करेंगे, इसके आगे क्रम-क्रम से पाँच बार सात-सात मिनिट में आक्षेप प्रत्याक्षेप और समाधान का क्रम चलेगा। अन्त का पक्ष गुरुकुल का ही रहेगा—क्योंकि आप यहाँ आ रहे हैं, आपका पूर्व पक्ष जाना जावेगा और हमारा उत्तर-पक्ष, एवं शास्त्रार्थ में मध्यस्थ कोई नहीं होगा सब की बात सुनकर जनता अपने आप नतीजा निकाल लेगी यह मुन्शी राम जी का कथन हमने भी मान लिया था। श्री आर्यमुनि जी दोनों पक्षों के व्याख्यानों को सुनकर नोट्स लेने वाले ब्रह्मचारियों के नोट्स देखकर अन्त में स्वयं हस्ताक्षर कर देंगे और उनके हस्ताक्षरों से दोनों पक्ष प्रकाशित कर दिए जावेंगे यह बात शास्त्रार्थ के पहिले सुनाई गई। हम लोग भी शालग्राम शास्त्री जी, मैं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कई बड़े ब्रह्मचारी तैयारी में लगे रहे। इस प्रकार प्रमाण-संग्रह कर लिया। गुरु-मंडलाश्रम के स्वामी जी के समक्ष एक दिन रिहर्सल किया गया। उसमें उन्होंने मुझे ही वक्ता नियत किया और सब सहायक-रूप से रहें, ऐसी ही व्यवस्था की गई। सनातन-धर्म के एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थी ताराचन्द्र जी को भी बुला लिया गया था कि कोई आवश्यकता पड़ने पर ये भी सहायता दें। शास्त्रार्थ के दिन अपनी पुस्तकें आदि एक बैलगाड़ी पर लादकर हमलोग गुरुकुल की ओर चल पड़े। बीच में गङ्गा की नील धारा मिलती है, वहीं स्नान किया और मुझे कुछ नित्य-नियम में विलम्ब करता देख शालग्राम जी ने यह गीता का पद्य भी पढ़ा कि —

"भयाद् रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथा:"

अर्थात् सन्ध्या करने में विलम्ब करने से महारथी तुम्हें शास्त्रार्थ से घबड़ाया हुआ समझेंगे। परन्तु समय पर हमलोग गुरुकुल में पहुँच गए।

गुरुकुल में पहुँचनेपर हमने देखा कि शास्त्रार्थ के लिए एक विशाल सुन्दर पण्डाल बनाया गया था। उस पण्डाल में जो मुख्य स्टेज था उसके ठीक सामने हम लोगों के लिए एक स्वतन्त्र स्टेज बनाया गया था, उसका प्रवेश द्वार आदि सब अलग था। इस शास्त्रार्थ का समाचार पत्रों और बुलेटिनों के द्वारा पर्याप्त प्रचार कर दिया गया था, इसलिए हरिद्वार, ज्वालापुर, कनखल, हृषीकेश, देहरादून आदि स्थानों से बहुत से महानुभाव शास्त्रार्थ सुनने के लिए आए थे। आर्यसमाजी जनता तो बहुत अधिक संख्या में थी ही। हमने पहुँचते ही अपने स्टेज पर पुस्तकें आदि व्यवस्थित कीं और हम सभी लोग यथा स्थान व्यवस्थित हुए। गुरुकुल के स्टेजपर मुख्याधिष्ठाता महात्मा मुन्शी-रामजी, वहां के अनेक स्नातक व प्रोफेसरों के अतिरिक्त श्री स्वामी आर्यमुनि जी, स्वामी पूर्णानन्द जी, स्वामी सत्यानन्द जी, श्री श्री-पाद दामोदर सातवलेकर जी प्रभृति आर्यसमाज के योग्य विद्वान् उपस्थित थे। उस समय वहां का जमाव देखने योग्य था। हम जब पहुँचे तब श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी निबन्ध पढ़ रहे थे। थोड़ी देर में उनका निबन्ध पूरा होने पर श्रीयुत लाला मुन्शीराम जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने शास्त्रार्थ के आरंभ की सूचना दी। आपने परस्पर के पत्र व्यवहार का सारांश सुनाया, उपस्थित जनता को जय शब्द बोलना, या ताली आदि बजाने का निषेध किया।

उसके उपरान्त मैंने १० मिनिट में अपने पक्ष की स्थापना की। उपर्युक्त क्रम से शास्त्रर्थ सम्पन्न हुआ। आर्यसमाज की ओर से गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्रीयुत लाला मुन्शीराम जी के सुपुत्र विद्यावाचस्पति श्रीयुत इंद्रचंद्र जी वेदालंकार शास्त्रार्थ कर रहे थे। इस शास्त्रार्थ का वहुत प्रभाव रहा। वहीं पर कई आर्यसमाजियों ने कहा कि 'आप का प्रभाव अवश्य बहुत ज्यादा है, असली बात तो जो कुछ है सो है ही"। महात्मा मुन्शीराम जी ने हमको कहलवाया कि आज हमारा ही आतिथ्य स्वीकार कीजिए। इस पर प्रकट में तो उत्तर यही दिया गया कि हमें आज ही संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन में मथुरा जाना है इसलिए शीघ्रतावश आपका निमन्त्रण स्वीकार न करने को विवश हैं, परन्तु जो सज्जन सूचना लेकर आए थे उनसे प्राईवेट रूप से शालग्राम जी ने हँस कर कहा कि "भाई, वर्ण-व्यवस्था गुणकर्म से सिद्ध हो जाती तब तो हम आपके यहाँ भोजन कर लेते—परन्तु सिद्ध तो जन्म से ही हुई है, तो फिर हम आपके यहाँ भोजन कैसे कर सकते हैं ?" शास्त्रार्थ की लिपिबद्ध कापी मांगने पर श्री मुन्शीराम जी ने कहा कि अभी तो शास्त्रार्थ के रफ नोट ही लिये गए हैं, उन्हें शीघ्र ही फेयर करके श्री आर्यमुनि जी के हस्ताक्षर कराकर एक कापी आपको भेज दी जायगी। हमारी ओर से स्वयं श्री शालग्राम शास्त्री जी ने शास्त्रार्थ के पूरे नोट ले लिये थे। बहुत दिनों तक गुरुकुल से शास्त्रार्थ की कोई रिपोर्ट न मिलने पर अपने नोट्स के आधार पर हमने शास्त्रार्थ का विवरण ऋषिकुल के मासिक पत्र "ब्रह्मचारी" में प्रकाशित कर दिया और फिर पहिले के पत्र-व्यवहार सहित पुस्तकाकार में भी उसे छपवा दिया। "कलकत्तासमाचार" आदि पेपरों ने उसे उद्धृत भी किया था। आर्य-समाज के गुरुकुल के अतिरिक्त कई समाचार-पत्रों ने भी अपनी पराजय स्वीकार की, और कई समाचार-पत्रों ने "इन्द्र" और "गिरधर" नामों पर भी यह टिप्पणी लिखी कि जैसे इन्द्र के आक्रमण से गिरिधर (श्रीकृष्ण) ने गोवर्धन को उठाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्रज की रक्षा की थी उसी प्रकार यहाँ भी गिरिधर ने वेद का गोवर्धन उठाकर इन्द्र के आक्रमण से सनातन धर्म को बचा लिया।

इस शास्त्रार्थ में थोड़ी देर के लिए महात्मा गान्धीजी भी उपस्थित हुए थे। बाद में उनसे बम्बई में कुछ लोगों ने पूछा कि "समाचार-पत्र सब अपनी अपनी बातें कहते हैं, आप शास्त्रार्थ में स्वयं उपस्थित थे, आप बतलाइये कि किसका पक्ष प्रबल रहा?" इस पर सुना था कि महात्मा गान्धी जी ने उत्तर दिया कि "भाई, मैं तो सत्य कहूँगा, उस दिन तो पक्ष सनातन-धर्म का ही प्रबल था।" सनातन-धर्मावलम्बियों ने इस पर बहुत प्रसन्नता मनाई।

गुरुकुल से विवरण न मिलने पर जब हमने पत्र द्वारा श्रीयुत मुन्शीराम जी को सूचित किया कि हम 'ब्रह्मचारी' में विवरण छाप रहे हैं तब उन्होंने गुरुकुल के साप्ताहिक पत्र "सद्धर्मप्रचारक" में खूब आलोचना लिखी, जब ब्रह्मचारी में विवरण छप गया तब उसे ही खूब काट छाँट कर, अपने पक्ष के भाषणों को खूब बढ़ा चढ़ाकर, सजा धजा कर, हमारे भाषणों को खूब काट छांटकर "सद्धर्म प्रचारक" में छाप दिया। अनेक कारणों से हमें विश्वास हो गया कि उनके पास कोई रिपोर्ट नहीं थी, हमारे छापे विवरण को ही अपनी कारीगरी के साथ उन्होंने भी प्रकाशित किया है। उनके विवरण की मैंने तत्काल "महात्माजी की सत्यवादिता" शीर्षक से लम्बी आलोचना ब्रह्मचारी में लिखी जिसमें उनके आक्षेपों के जवाब के साथ ही यह भी साफ दिखा दिया कि उनका विवरण 'ब्रह्मचारी' में छपे विवरण की काटी छाँटी हुई नकल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैसा कि कहा जा चुका है इस शास्त्रार्थ की प्रसिद्धि सारे देश में हुई थी। मुझे इस शास्त्रार्थ से बहुत बड़ी ख्याति मिली और इस अवसर ने मुझे सनातनधर्म के अखिल भारतीय स्तर पर ला खड़ा किया। बहुत दिनों तक विभिन्न नगरों में जाने पर लोग यही कहते हुए मुझे पहिचानते थे कि गुरुकुल में शास्त्रार्थ करने वाला यही है।

पण्डित दीनदयालु जी ने जो सनातन-धर्म महासम्मेलन बनाया था, उसका तृतीय-अधिवेशन इसवर्ष मथुरा में हुआ था। उसके ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का भी अधिवेशन सुविख्यात विद्वान् म०म० श्री हरप्रसाद शास्त्री के सभापतित्व में रखा गया था। वहीं मैं और श्री शालग्राम शास्त्री जी गये, और व्रज-मंडल की ही होली इसबार देखी। जयपुर से श्री सूर्यनारायण जी भी वहाँ आये थे और देहली से महामहोपाध्याय श्री हरनारायण शास्त्री जी भी वहाँ गये थे। यहाँ भी गुरुकुल के शास्त्रार्थ की खूब चर्चा रही। यहाँ मैंने अपने व्याख्यान में ऐसा कह दिया था कि जो विद्वान् नहीं है उनको दान देने का शास्त्रों में निषेध है। इसपर मथुरा के हमारे जाति-बान्धव कुछ अप्रसन्न हुए। इस अधिवेशन में म. म श्री हरप्रसाद शास्त्री जी से प्रथम प्रत्यक्ष परिचय हुआ। उन्होंने अपने भाषण में अनेक ऐतिहासिक महत्त्व की वातें कही थीं। इतिहास के वे बड़े विद्वान माने जाते थे। वहाँ सरल संस्कृत में मेरे भाषण को सुनकर उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि ऐसी संस्कृत सुनकर यह विश्वास अनायास हो जाता है कि संस्कृत प्रचीन समय में व्यवहार की भाषा अवश्य रही होगी। इसके अनन्तर भी अनेक बार उनसे भेंट हुई और एक आध वार लम्बा पत्र व्यवहार भी चला। अस्तु, अन्य लोग तो अधिवेशन समाप्त कर चले गये किन्तु मेरे पितृव्य भी वहाँ आये हुए थे, उनके साथ मैं वृन्दावन चला गया। वहाँ अपने सम्बन्धी राधामोहन जी के पास ही ठहरा। वहाँ एक दिन मेला देखते हुए ही मुझ पर अचानक विशूचिका का आक्रमण हो गया। पहिले उग्र प्यास लगी। मेले में जल सुलभ नहीं था, इसलिए वहाँ से किसी प्रकार अपने स्थान पर पहुँचा। स्थान पर आते-आते मार्ग में ही कई वमन हुए। साथ ही विरेचन भी होने लगे। राधामोहन जी बार-बार कहते थे कि मैं किसी डाक्टर को बुला लाऊँ, किन्तु ऐसा उस वक्त मेरा विश्वास हुआ कि डाक्टर इस अवस्था में शराब ही देंगे। इसलिए मैं निषेध ही करता रहा। किसी प्रकार प्रातःकाल होते ही हम लोग मथुरा के लिए चल पड़े। मार्ग में भी एक दो वमन आये किन्तु किसी प्रकार मथुरा पहुँचे। वहाँ मार्ग में ही हमार सजातीय 'गो-सेवक' नाम से विख्यात श्री नटवर जी चतुर्वेदी मिल गये। उनको घर पर बुला लाया और उनके ही उपचार से वह विशूचिका का वेग शान्त हुआ। एक, दो दिन वहाँ रहकर फिर पितृव्य के साथ जयपुर चला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आया। एक-दो दिन वहाँ ठहर कर ऋषिकुल आ गया। मेरी पत्नी वहाँ ही थी उसे भी इस घटना से बहुत खेद हुआ।

इसके अनन्तर गुरुकुल के शास्त्रार्थ से हुई ख्याति के कारण पटियाला से मुझे निमन्त्रण आया। वहाँ गया। झालरापाटन के श्रवणलाल जी भी वहाँ आये थे। हम दोनों ही वहाँ से ताँगे की सवारी से समराला गये। वहाँ आर्यसमाज के प्रमुख उपदेशक पूर्णानन्द जी के साथ मूर्तिपूजा पर चार घण्टे तक शास्त्रार्थ हुआ। यह पूर्णानन्द महाशय इधर-उधर के असम्बद्ध प्रमाण शास्त्रार्थ में बहुत देते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ एक मन्दिर का निर्माण-कार्य जो स्थगित पड़ा था वह तत्काल ही वन गया। वहाँ से निपट कर फिर ऋषिकुल आया। आगामी ज्येष्ठ दशहरा पर हमारा विचार हुआ कि हम भी गुरुकुल वालों को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान करें। हमने विषय रखा था—"वैदिक श्राद्ध या पिण्ड-पितृ-यज्ञ"। इस पर गुरुकुल के अधिष्ठाता जी ने श्री इन्द्र जी की सहायता के लिए श्री पूर्णानन्द को ही बुलाया। वे अभी मुझसे समराला में शास्त्रार्थ कर चुके थे इसीलिए शास्त्रार्थ करने से तो उनने इन्कार कर दिया। हाँ, केवल इन्द्रचन्द्र जी की सहायतार्थ वहाँ आये। ऋषिकुल के अधिकारियों को यह सब शास्त्रार्थ का झगड़ा पसन्द न आया। इसलिए हमने गुरु-मंडलाश्रम में ही शास्त्रार्थ रखा और ऋषिकुल के उप-सभापति लाला बलदेवसिंह जी रईस, देहरादून को शास्त्रार्थ का सभापति बनाया। वहाँ आरम्भ कौन करे और अन्तिम-पक्ष किसका रहे इस बात पर बहुत देर तक वाद-विवाद हुआ। गुरुकुल के शास्त्रार्थ में अन्तिम-पक्ष गुरुकुल का रहा था इसलिए हमारा कहना था कि यहाँ अन्तिम-पक्ष हमारा रहना चाहिए। इस वाद-विवाद में पूर्णानन्द महाशय ही खड़े हुए और यही जिद करते रहे कि मैं किसी की बात नहीं मानूँगा, अन्तिम पक्ष ही रखूँगा। "सभापति निर्णय करे" इसका उन्होंने उत्तर दिया कि सभापनि तो केवल घड़ी देखकर समय-निर्देश करने के लिए होता है। उसे इस निर्णय का भार नहीं दिया जा सकता। मैंने कहा कि अच्छा, आप के साथ ही जो गुरुकुल के प्रोफेसर आये हैं, उनसे ही निर्णय करा लीजिए। उस पर भी उन्होंने नहीं माना। अन्ततः मैंने यहाँ तक कहा कि आपके साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो ब्रह्मचारी गुरुकुल से आये हैं उनसे निर्णय करा दीजिए। इस बात को भी न मानकर पूर्णानन्द महाशय ने अपने हठ की सीमा ही तोड़ दी। सभापति भी छोड़कर जाने को प्रस्तुत हो गये कि घड़ी देखने का काम तो कोई भी कर सकेगा, मेरी आवश्यकता क्या है ? उधर गुरुकुल वालों की ओर से कहा गया कि हमको शास्त्रार्थ के लिए बुलाकर अपमानित किया जा रहा है, इस पर अन्ततोगत्वा हमने गुरुकुल वालों का ही अन्तिम पक्ष मान लिया। तब शास्त्रार्थ के लिए इन्द्र जी ही खड़े हुए। श्राद्ध पर दो घण्टे शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ भी छप चुका है। गुरुकुल वाले इसमें अपनी जीत की बहुत डींग मारते थे किन्तु बात वैसी नहीं थी। इन्द्र जी की ओर से कई त्रुटियाँ हुई थीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋषिकुल के लिए भ्रमण

इस ही बीच में श्री पिता जी की अस्वस्थता के समाचार मिलने से मुझे पत्नी-सहित जयपुर जाना पड़ा। किसी दिन पिता जी स्टेशन पर मेरे द्वारा भेजे हुए आमों का पार्सल छुड़ाने गये थे, वहाँ वर्षा में भीग गये। इससे उनकी बनी हुई आँख पर बहुत आघात हुआ। डाक्टर को दिखलाने पर उसने कहा कि यह आँख निकलवा देनी चाहिए। किन्तु आँख निकलवाने का विचार नहीं हुआ। डाक्टरी औषध से ही गलाकर उसे निकालने का विचार रहा।

इसी बीच में मैंने जयपुर के अध्यापक विहारीलाल जी की लिखी हुई "पञ्च-दशी-सार" पुस्तक पर एक विस्तृत आलोचना "ब्रह्मचारी" में लिख डाली थी। उस पर उस पुस्तक के प्रकाशक-महशय मुकदमा करने की तैय्यारी में थे किन्तु मुझसे मिलकर उन्होंने मुकदमे का विचार छोड़ दिया और मेल-जोल से रहने लगे। उनके पुत्र जो डाक्टर थे उन्होंने पिता जी की चिकित्सा भी की। इसी अवसर पर हरिद्वार ऋषिकुल में गवर्नर के आने की घोषणा हो चुकी थी अतः ऋषिकुल के लोगों ने सानुरोध मुझे वहाँ बुलाया। वह एक असाधारण अवसर था, अतः यद्यपि मेरे पिताजी रुग्णावस्था में थे तो भी उनकी आज्ञा लेकर ऋषिकुल जाना मैंने स्वीकार कर लिया और शीघ्र ही पिताजी के पास की समुचित व्यवस्था कर जयपुर से चलकर हरिद्वार पहुँच गया। गवर्नर के आगमन के अनन्तर वहाँ के लोगों ने ऋषिकुल के लिए द्रव्य इकट्ठा करने को विहार प्रान्त के कई स्थानों में भ्रमण करने का कार्यक्रम निश्चित किया था। इस कार्यक्रम में भी वहाँ के लोगों के अनुरोध से मुझे भी सम्मिलित होना पड़ा। पिताजी के समाचार प्राप्त करने की मैंने यही व्यवस्था सोची कि जयपुर में अपने मित्र श्रीचन्द्र बाबूजी, (राजगुरु श्रीचन्द्रदत्त जी ओझा को हम लोग व्यवहार में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्द्रबाबू जी या कभी-कभी बाबू जी कहा करते थे) को पिताजी की अवस्था के विषय में प्रतिदिन एक पत्र डालने का अनुरोध किया। वे बराबर मुझे सूचनाएँ यथा स्थान भेजते रहे। हमारी इस यात्रा में ऋषिकुल के सहकारी मन्त्री श्री केदारनाथ जी तथा होशियारपुर के श्री कृपाराम जी तथा एक उपदेशक मेरे साथ थे।

ज्वालाप्रसाद मिश्रजी से अन्तिम भेंट

इन दिनों कुछ उपदेशक मित्रों के पत्रों से और स्थानीय समाचार पत्रों से मुरादाबाद के विद्यावारिधि श्री ज्वालाप्रसाद जी मिश्र की अस्वस्थता का समाचार मिला था। श्री मिश्र जी उन दिनों बहुत वृद्ध हो चुके थे। उन्होंने सनातनधर्म और संस्कृत-साहित्य की बहुत सेवा की थी। सभी सनातनी उपदेशकों के वे माननीय थे। उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद किये थे जिनमें प्रायः सभी विषयों के ग्रन्थ सम्मिलित थे। मैंने इस यात्रा में उनसे मिलना अपना कर्तव्य समझा और मुरादाबाद उतर कर उनसे मिलने के उद्देश्य से निश्चित तिथि के एक दिन पूर्व ही मैंने हरिद्वार से प्रस्थान किया। दूसरे दिन श्री मिश्र जी से मिला। वे बहुत दिनों से रोग शय्या पर पड़े थे। मुझे इसी उद्देश्य से आया हुआ जान कर वे स्नेह गद्‌गद् भी बहुत हुए। उन दिनों मुरादाबाद से 'सनातनधर्म पताका' नाम की एक मासिक पत्रिका प्रकाशित हुआ करती थी। उसका प्रारम्भ तो श्री ज्वाला प्रसाद मिश्र जी ने ही किया था परन्तु आगे चल कर एक दूसरे सज्जन उसके सम्पादक बन गये थे। उन्होंने उसी पत्र में श्री मिश्र जी के विरुद्ध बहुत कुछ लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उस रुग्णावस्था में भी मिश्रजी ने 'सनातनधर्म पताका' की मुझसे बड़ी शिकायत की कि वह मेरे विरुद्ध ऐसा-ऐसा लिखता है। मैंने उनसे उधर से चित्त हटा लेने का अनुरोध किया। दूसरे दिन शिष्ट मंडल के सभ्यों के साथ मैंने आगे प्रस्थान किया, और इसी यात्रा में मिश्र जी की मृत्यु का समाचार सुनने को मिला।

कुछ दिन पहिले एक रोचक (या कटु) घटना घटित हुई थी, जिसके कारण विशेष रूप से मुझे इस समय श्री ज्वाला प्रसाद जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से मिलने की प्रेरणा हुई थी। यद्यपि उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद आदि तो बहुत किये थे, परन्तु अधिकांश में ऐसी पुस्तकें उन्होंने बम्बई के खेमराज श्रीकृष्णदास के अनुरोध पर उनसे अच्छा द्रव्य प्राप्त करते हुए तैयार की थीं। इसी क्रम में उन्होंने 'विहारी सतसई' पर भी एक टीका लिख कर वहीं से प्रकाशित कराई थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि द्रव्य प्राप्ति के उद्देश्य से किये गए ऐसे कार्यों में ग्रन्थ के हृदय के भावों तक पहुँच कर उसका मर्म उद्घाटित करने पर ध्यान नहीं दिया जाता। वही बात अन्य ग्रन्थों की तरह 'विहारी सतसई' के साथ भी हुई। विहारी सतसई की मिश्र जी के द्वारा की गई व्याख्या की विस्तृत आलोचना पं० पद्मसिंह शर्मा ने 'सरस्वती' पत्रिका में लिखना प्रारंभ किया जो बहुत दिनों तक क्रमशः छपी और अन्ततः उन्होंने विहारी सतसई पर एक संजीवन भाष्य भी लिखा जिसकी भूमिका के रूप में वह विस्तृत आलोचना भी पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई। मैं उस आलोचना को सरस्वती में बड़ी रुचि से पढ़ता था। पं० पद्मसिंह जी से हरिद्वार के निवास काल में मेरी बड़ी घनिष्टता हो गई थी। वे ज्वालापुर महाविद्यालय में काम करते थे जो ऋषिकुल से कुछ ही दूर पर था। प्रायः श्री शालग्राम शास्त्री, मैं और पं० पद्मसिंह जी मीलों पैदल घूमने जाया करते थे। पद्मसिंह जी की आलोचना बहुत हृदयग्राहिणी हुआ करती थी और मैं 'सरस्वती' से उसे अपने अन्य मित्रों को भी कई वार सुनाया करता था। उसमें श्री ज्वालाप्रसाद जी की टीका की बुरी तरह खबर ली गई थी। किसी व्यक्ति ने उस आलोचना की मुझसे प्रशंसा सुनकर मिश्र जी तक मेरे आलोचना-प्रशंसक होने की खबर पहुँचा दी। इससे उन्होंने यह धारणा बना ली कि वह आलोचना मैंने ही लिखी है और उसे पद्मसिंह जी के नाम से छपा दिया है। एक बार मिलने पर उन्होंने मुझसे यह वात कही भी। मैंने उनसे कहा कि यह उनकी कल्पना मात्र है। मैं वैसी रोचकता पूर्ण भाषा लिख ही नहीं सकता। इस पर उन्होंने मुझसे कहा कि "हम तो यह तब समझें जब तुम उसकी प्रत्यालोचना लिखो, हम अपनी 'पताका' में उसे छापेंगे, इस पर विवश होकर मुझे कहना ही पड़ा कि उस आलो-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चना के उत्तर में लिखने को वास्तव में कुछ है नहीं। परन्तु फिर भी 'सतसईसंजीवनभाष्य' की मैंने 'ब्रह्मचारी' नामक ऋषिकुल के मासिक पत्र मे, जिसका मैं संपादक था, आलोचना लिखी और कुछ त्रुटियाँ उसमें मैंने दिखाईं। पाठकों के साहित्यिक विनोद के लिए वह यहाँ उद्धृत की जाती है —

"बिहारी सतसई संजीवन भाष्य की समालोचना"

"इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी-साहित्य-भण्डार को यह एक नया 'रत्न' मिला है, जिसने अपनी चमकती प्रभा से इस भण्डार को अधिक समुज्ज्वल कर दिया है, और इस भण्डार में प्रविष्ट होनेवाले साहित्यरसिकों की दृष्टि हठात् अपनी ओर खींचने में यह कृतकार्य हुआ है। बिहारीसतसई जैसा ग्रन्थ, पं० पद्मसिंह जी जैसे भाष्यकार, तुलनात्मक आलोचना जैसा अछूता विषय और ज्ञानमण्डल जैसा प्रकाशक, जिससे कि पुस्तक के बाह्य अंग कागज, छपाई आदि का सौष्ठव भी पूर्ण हो गया, बस इस 'शुभ-संमिलन' को देखकर 'श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुण-ग्राहिणी' वाला रत्नावली का पद्य याद हो पड़ता है। यों तो पं० पद्मसिंहशर्मा जी की लेखनी का साहित्य-संसार को सुदीर्घ काल से परिचय था, किन्तु जब से आपने 'सरस्वती' में 'सतसईसंहार' नाम से एक टीका की विस्तृत आलोचना लिखी थी, तब से यह बात स्फुट हो गई थी कि बिहारीसतसई पर आपका अच्छा श्रम है और आप उसके मार्मिक विद्वान हैं। आपकी आलोचना का मसाला जरा तीखा रहता है, एक प्रतिष्ठित पुरुष के सम्बन्ध में उस तीक्ष्णता के कारण चाहे कुछ सज्जनों को असमंजस लगा हो, किन्तु विवेचन की मार्मिकता में किसी बुद्धिमान् को संदेह नहीं। पुराने समय में राजपूताना आदि में जब 'भाषा कविता' का अच्छा प्रचार था तब 'बिहारीसतसई' आदि ग्रन्थों के मार्मिक विवेचक, इनकी चीज समझनेवाले वहाँ प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे। और उनसे पढ़ कर छात्र अपना गौरव समझते थे। किन्तु वर्तमान युग में यह सब कथा विलुप्त हो चुकी है। इस अवसर में ऐसी कविताओं का मार्मिक ज्ञान सायान्ह के प्रकाश के स्वरूप में आ गया है। ऐसी दशा में पं०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्मसिंह जी जैसे मार्मिक विद्वान् के द्वारा 'विहारीसतसई' की एक विस्तृत व्याख्या लिखी जाने की सब ही साहित्यसेवी सोत्कण्ठ आशा करते थे। पंडित जी ने भी उस आशा को अवलम्ब दिया था, किन्तु ऐसे महत्कार्य समय-सापेक्ष होते हैं, और साहित्य-सेवा में विघ्न वाधाएँ इस कठिन समय में पद-पद पर आती हैं, अतः बहुत समय के वाद यह एक खण्डमात्र अभी पाठकों की दृष्टि के सामने आया है। किन्तु जितनी उत्कण्ठा के बाद जो वस्तु मिलती है वह उतनी ही प्रिय भी होती है, इस ही लिये प्रकाशित होते ही यह रत्न साहित्यमर्मज्ञ सहृदयों के हृदयालंकरणहार में मध्यमणि के स्थान पर जगमगाया है।

इस पुस्तक को प्रकाशित हुए वहुत समय हो चुका है। इसके प्राप्त होते ही हमें इस स्वार्थ-बुद्धि ने घेर लिया कि पहले स्वयं इसका रसास्वाद ले लें, तव औरों को खबर दें। मध्य में 'ब्रह्मचारी' के प्रकाशन में अधिक शिथिलता हो गई, इतने काल में दूसरे उदार सहयोगियों ने इसकी चर्चा सब जगह फैलादी है। इसकी आलोचना भी साहित्य-क्षेत्र में चल रही है। अब परिचय के लिये विशेष कहने की आवश्यकता नहीं रही। वक्तव्य केवल यही है कि इस प्रथम ही खण्ड में लेखक की साहित्य-मर्मज्ञता, अप्रतिहत प्रतिभा, असाधारण खोज, एवं संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और फारसी कविताओं की अनर्गल उपस्थिति का पूर्ण प्रमाण मिलता है। लेखक की भाषा की सरलता, और प्रौढ़ता प्रसिद्ध है—उस पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। हाँ, इस पुस्तक पर कुछ भी पंक्तियाँ लिखने वाले को यह कहना ही पड़ेगा कि यह हिन्दी भाषा में सर्वथा नया काम है। किसी काव्य की या उसकी टीका की इस प्रकार की भूमिका इससे पहले नहीं लिखी गई। वर्तमान समय में अंग्रेजी ढंग पर शिक्षित लोगों को जिस परिपाटी से ग्रन्थ का समीक्षण रुचिकर होता है और जो वातें आजकल की मानी जाती हैं, उस परिपाटी और उन बातों का इस खण्ड में समावेश है। आरम्भ में एक १४ पृष्ठ का "वक्तव्य" है, इसमें वर्तमान युग को कविता के विपरीत कहने वालों की व शृंगार प्रधान और ब्रजभाषा की कविता से नफरत करने वालों की मीठी चुटकियों से सरस किन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओजस्वी भाषा में खूब खबर ली गई है। हमें विश्वास है कि निष्पक्ष दृष्टिसे इसे पढ़ लेने के बाद कोई कविता को उपेक्षणीय नहीं कह सकता। फिर धन्यवाद की समयोपयोगी रस्म अदा करने के बाद तुलनात्मक आलोचना का आरम्भ होता है, जिसे कि इस खण्ड का प्राण कहना चाहिये। संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के कवियों की कविता से बिहारी की कविता में जहाँ-जहाँ टक्कर खाई है, वहाँ भावों की सुकुमारता में कौन कहाँ तक है—इसकी खूब जी खोल कर आलोचना की गई है। "सतसई का सौष्ठव" तो आलोचना रूप है ही किन्तु "बिहारी का विरह वर्णन, और व्यापक पांडित्य" भी तुलनात्मक आलोचना से खाली नहीं। यह आलोचना ही इस पुस्तक की नई चीज है और इसके कारण यह खण्ड न केवल सहृदयों के हृदय का हार हो गया है, बल्कि व्युत्पन्न छात्रों की पाठ्य-पुस्तक बनने के भी सर्वथा योग्य हो गया है, जिससे कि सुयोग्य छात्र भी इस मार्ग में प्रवेश करना सीखें। इस मार्ग की पुस्तक का हिन्दी में अभाव मिटा कर पं० पद्मसिंह जी ने अपने परिश्रम द्वारा हिन्दी संसार की नाक रखली है, यह कहने में कुछ भी अत्युक्ति नहीं। बिहारी का व्यापक पांडित्य दिखाना भी आज-कल के ढंग के अनुसार उचित हुआ है। आगे दोष-परिहार में कई आधुनिक लोगों के लगाये दोषों की छाया से बिहारी की कविता की रक्षा की गई है और अन्त में सतसई-संहार उद्धृत कियाग या है। इस पर हमें इतना ही कहना है कि यह इस पुस्तक में न होता तो ही अच्छा था। अस्तु, अब यह कहना तो पिष्टपेषण मात्र है कि इसकी एक-एक प्रति से साहित्य-रसिकों और जिज्ञासुओं की अलमा-रियाँ अवश्य अलंकृत होनी चाहिये।

समालोचक के भाग्य में "पौरोभाग्य" भी बदा ही है, इसलिये इस पुस्तक की कुछ त्रुटियों पर जाती हुई दृष्टि को भी हम रोक नहीं सकते। अच्छा वह भी सुन लीजिये। उक्त तुलनात्मक आलो-चना में बिहारी का मर्यादा से अधिक पक्षपात लेखक महाशय में झलक जाता है। हमारे विचार से तुलनात्मक आलोचना का यह अर्थ नहीं होना चाहिये कि किसी समालोच्य ग्रन्थ वा उसके कवि को सबसे उत्कृष्ट ही सिद्ध किया जाय, बल्कि जहाँ-जहाँ उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कल्पना औरों से कमजोर है, वह भी स्पष्ट करना ही चाहिये, तभी आलोचना पूर्ण कहलावेगी। एक ही पक्ष को पुष्ट करते जाना "वकालत" का भूषण हो सकता है, किन्तु समालोचना वकालत नहीं। हम मानते हैं कि इस आलोचना के लेखक बहुत मार्मिक हैं किन्तु यह मान लेना कठिन बात है कि विधाता की सृष्टि में बिहारी के समान या उससे ऊपर की कक्षा में पहुँचने वाला किसी भाषा का कोई कवि आज तक हुआ ही नहीं। पंडित जी ने तो बिहारी की कक्षा में भी किसी को नहीं पहुँचने दिया, ऊपर की तो बात ही क्या ? हमें क्षमा किया जाय—यों यह आलोचना स्तुति के रूप में चली गई है। अनुमान होता है कि लेखक महोदय बिहारी सतसई का मनन करते-करते तन्मय हो गये हैं, इससे बिहारी के ही वजन के भाव, वही भाषा, वही बन्ध, वही छन्द इन्हें सुहाता है। जहाँ बिहारी की अत्युक्ति है वह औरों से बढ़ी होने के कारण ग्राह्य है और जहाँ और किसी की अत्युक्ति बिहारी से बढ़ गई, वह अस्वाभाविक होने से हेय हो गई। बिहारी के संक्षेप पर किसी ने विस्तार किया, तो वह व्यर्थ भरना भरा, और बिहारी से अधिक संक्षेप कोई कर गया तो वहाँ अभिप्राय गुम हो गया। हम मानते हैं कि बहुत जगह यथार्थ में ऐसा हुआ है। बिहारी अभिप्राय बाँधने में इस कसौटी पर असाधारण ही उतरे हैं। किन्तु कई जगह बलात् भी उनके सुवर्ण की रेखा के सामने और रेखाओं को मलिन किया गया है—यह हमें इच्छा न रहते भी कहना ही पड़ता है। उर्दू आदि भाषाओं का हमें परिचय नहीं इससे उनकी तुलना पर हम कुछ नहीं कह सकते, किन्तु संस्कृत कविताओं पर अत्याचार के एक दो निदर्शन देना है। पंडितजी ने संस्कृत पंडितों पर पहले ही लड़ाका होने का ताना मार दिया है—"मैं डरता हूँ कि देववाणी वाले देवता लोग मुझे "भाखा" का अनुचित पक्षपाती, छोटा मुँह बड़ी बात कहने वाला "विभीषण" आदि पवित्र पदवियों का पात्र बना कर शाप और अभिशाप की वर्षा न करने लगें", इत्यादि। पंडित जी ही क्यों, आजकल के अपने को हिन्दी का एकमात्र धूर्वह माननेवाले सब ही प्रतिष्ठित बड़े-बड़े सज्जन संस्कृतज्ञों पर ऐसे ही फूल बरसाया करते हैं और उन्हें "भाषा" के शत्रु समझा करते हैं, किन्तु इसही कारण अपना कर्तव्य पालन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न करना अपनी आत्मा के विरुद्ध है। जो बुद्धिमान् प्रतिभा-शाली एक जगह से भाव उठा कर उस पर अपना दिमाग लड़ावेगा--उसे नये ढंग से लावेगा—वह पूर्व के भाव से कुछ बढ़ ही जायगा—यह एक स्वाभाविक बात है। यही कारण है कि संस्कृत कवियों से मजमून छीन कर भाषा कवियों ने कहीं कहीं अधिक सौंदर्य ला दिया है, किन्तु जिनके वे ऋणी हैं, उनके समक्ष इनको ऊँचा बैठाना उलटा इनका उपहास करना है। अस्तु, निदर्शन देखिये—

उत्साहतरलत्वस्नानप्रसाधितानां क्षणवासरे सपत्नीनाम्।
आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥

इस अभिप्राय की प्राकृत गाथा से—

तीज परब सौतिन सजे भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे मुंह किये वहै सरगजे चीर॥

इस विहारी के दोहे की तुलना करते हुए आलोचक महाशय ने गाथा के 'कथितमिव' का अनुवाद किया है 'सिर्फ सूचना दी' और उस पर एक लम्बा नोट चढ़ाया है कि 'पर सपत्नियों पर उसके इस सौभाग्य गर्व की सूचना का क्या प्रभाव पड़ा सो किसी को मालूम नहीं हुआ! संभव है उन्होंने स्नान के अनादर का कारण उसकी शारीरिक अस्वस्थता, आलस्य, फूहड़पन या मानकोप को समझ कर इसपर ध्यान भी न दिया हो या………उसे इस मुकाबले की परीक्षा में सफलता की आशा ही न हो", इत्यादि। हमें आश्चर्य होता है कि समालोचक जैसा मर्मज्ञ यों किसी के भाव को गिराने की अनुचित चेष्टा करे, हम आपकी प्रिय सहृदयता की दुहाई देकर आप की ही अदालत में अदब से अपील करते हैं—इसका फैसला हो जाय कि क्या यहाँ 'कथितमिव' का अनुवाद 'सिर्फ सूचना दी' ठीक है? और क्या इसका व्यंग्यर्थ समझ लेने पर आपके उट्टंकित संभव बने रहते हैं, या यह केवल इकतरफा डिगरी दिलाने की वकीलाना कोशिश है? आगे (स्नानानादर) पर आपका ऐतराज है 'ऐसा भी क्या सौभाग्य गर्व जो इस दशा विशेष में अवश्य कर्तव्य (कर्म)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का भी अनादर करा दे, यह स्पष्ट ही अनौचित्य है,' किन्तु अनौचित्य दिखाने के चक्कर में आप शायद यह भूल गये कि यह श्रोत्रिय ब्राह्मण का अग्निहोत्रांगभूत स्नान है या नायिका का 'सोलह सिंगारों' वाला स्नान है। यहाँ दोहा अवश्य ही उत्कृष्ट है, किन्तु उसके उत्कर्ष के लिए यों गाथा की टाँग पकड़ कर गिरा देना 'तटस्थता' या 'समालोचना' नहीं कही जा सकती।

तप्ते महाविरहवन्हिशिखावलीभि—
रापाण्डुरस्तनतटे हृदये प्रियाया :।।
मन्मार्गवीष्क्षणनिवेशितदीनदृष्टे—
र्नूनं छमच्छमिति बाष्पकणा: पतन्ति।।

इस अमरुक के पद्य की—

पलनि प्रगटि वरुनीनि बढ़ि नहि कपोल ठहरांय।
अंसुवा परि छतियां छनक छनछनाय छिपि जाँय।।

इस दोहे से तुलना की गई है, और पद्य को बहुत नीचे गिराया गया है, किन्तु यहाँ पक्षपात ने ऐसा घोर अन्धेरा कर दिया है कि जिसका उल्लेख करते भी हमें संकोच होता है। समालोचक महाशय ने लिखा है—अमरुक के 'बाष्पकणा: पतन्ति' से प्रकट है कि बाष्पकण नीचे गिर रहे हैं, छन छनाकर छिप नहीं जाते। बिहारी के यहाँ संतापाधिक्य बहुत ही प्रबल है, वहां आँसू गिर नहीं सकते छन छनाकर वहीं छिप जाते हैं", इत्यादि। आश्चर्य की बात है कि पूर्वार्द्ध की 'तप्ते' 'हृदये' आधार सप्तमी का कुछ भी ध्यान न कर समालोचक महाशय ने आँसुओं का नीचे गिरना कहाँ से निकाल लिया, अमरूक ने तो यही लिखा था कि "विरह-अग्नि की ज्वालाओं से तपे हुए हृदय पर छम-छम करते आँसुओं के कण गिरते हैं", जिसके नीचे अग्नि ज्वाला की प्रबल लपटें उठ रही हों, उस तवे पर छन-छन करती जो बूंदें गिरेंगी, उनकी क्या गति होगी—इसे भी स्पष्ट करने की आवश्यकता बेचारे अमरुक नहीं समझे थे। बस जो बात अमरुक ने व्यंग्य रक्खी थी, बिहारी ने उसे अभिधा से कह दिया। इसलिये यदि बिहारी उत्कृष्ट हैं तो सहृदयता को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभी सिर के केश खोल देने होंगे। उक्त पद्य में 'महाविरह' पर जो दोष लगाया है, उसका बिहारी की तुलना से कुछ भी संबंध नहीं और "महा" पद का सम्बन्ध वन्हि के साथ कर देने से वह दोष टिकता भी नहीं।

संग्रामांगणसंमुखाहतकियद्विश्वम्भराधीश्वर—
व्यादीर्णीकृतमध्यभागविवरोन्मीलन्नभोनीलिमा ।
अंगारप्रखरैः करैः कवलयन्नेतन्महीमण्डलं
मार्तण्डोऽयमुदेति केन पशुना लोके शशांकीकृतः ।

यह पण्डितराज जगन्नाथ का पद्य है और वाच्यर्थ के अनुरूप बन्ध भाषा की प्रौढ़ता और कल्पना की वह उच्चता, जिसका कि जोड़ ढूंढ़ने से किसी दूसरी भाषा में शायद ही मिले—इन सब बातों से आदर्श है। इसकी व्याख्या आपके ही शब्दों में यों है—चन्द्रोदय को देख कर विरही कहता है कि "अंगारों की तरह तीक्ष्ण किरणों से भूमण्डल को भस्म करता हुआ यह तो प्रचण्ड मार्तण्ड निकल रहा है, कौन पशु है जो इसे चन्द्रमा कहता है ? इसमें जो श्यामता दीख पड़ती है वह शशलांच्छन नहीं है, किन्तु रणभूमि में सम्मुख लड़ कर मरे हुए वीर क्षत्रियों के द्वारा कटे हुए मध्य भाग से आकाशकी नीलिमा चमक रही है।" युद्ध में मरने वाले सूर्यमण्डल वेधकर जाते हैं, यह शास्त्र प्रसिद्ध है। इस श्लोक के भाव से बिहारी के इस दोहे का—

हौं ही बौरी बिरह बस कै बौरो सब गाम।
कहा जानि ये कहते हैं ससिहिं सीत कर नाम ।।

कुछ भी सादृश्य समझ में नहीं आता, न जाने किस आधार पर इनकी तुलना की गई है। शायद यही अभिसन्धि हो कि पंडितराज को भी बिहारी के द्वारा अखाड़े में एकाध पटक दिला ही दी जाय। चन्द्रमा की किरणों से ताप होना ही इनमें सादृश्य है, सो वह तो कवि सम्प्रदाय की एक चीज है, सब ही कवियों ने यह वर्णन लिखा है। आपने संस्कृत साहित्य पर बड़ी भारी कृपा की जो "तव कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दोः" इस शाकुन्तल के पद्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से तुलना कर कविकुलगुरु कालिदास को अखाड़े में चित न कराया। अस्तु, श्लोक को गिराया जाता है केवल इस बुनियाद पर कि उसमें विरहिजनोचित दीनता नहीं, बिहारी का दोहा दीनता प्रदर्शन में आदर्श है। किन्तु क्या हम विनय से पूछ सकते हैं कि विरही की वर्णनीय दशाओं में क्या एक दीनता ही मुख्य है ? श्लोक भी किसी दशा के अनुकूल हो सकता है या नहीं ? फिर श्लोक में यह भी तो स्फुट नहीं कि यह "स्त्री" की उक्ति है, जिससे कि आप दीनता को विशेष उपयुक्त मान सकें। धीरोदात्त नायक के विरह वर्णन में दीनता कहाँ तक निभाई जाती है—यह भी तो आप जैसे मर्मज्ञ को सोचना चाहिये था। अस्तु हिन्दी भाषा के दूसरे कवियों के साथ भी कहीं-कहीं ऐसी चेष्टा है।

चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर ॥

इस बिहारी के दोहे में तो "वृषभानुजा" और 'हलधर' के बीर, का तात्पर्य खूब समझा दिया गया, किन्तु "कोउन बड़वा-नल की ह्वै है सोई ऐ है बीच तुम वासुदेव वे हैं, बेटी वृषभान की" इस केशवदास जी के कवित्त के चरण को अस्पष्ट कह कर छोड़ दिया। दोहे में तो आपको यह सूझ आया कि "सतसई कुछ राधाकृष्ण की वंशावलि की पोथी नहीं है" किन्तु कवित्त का अर्थ आप स्वयं वंशावलि का ही कर गये। क्या भाषा कविता के "मम्मट" केशवदास इतना भी नहीं समझते थे कि मैं वंशावली लिखने नहीं बैठा हूं। पंडित जी ! आप इस कवित्त का मनन करते, तो स्पष्ट देखते कि कवित्त में भी बड़ी भारी "चीज" है, और वह "वैल के भाई वहिन" की तरह ग्राम्य दोष से दूषित नहीं है। ऐसे ही और भी एक दो स्थल हैं। इन उदाहरणों से बिहारी की कविता के उत्कर्ष में वा समालोचक की पूर्ण साहित्य-मार्मिकता में रत्तीमात्र भी संदेह उपस्थित करना कदापि हमारा अभिप्राय नहीं है। कर्तव्यवश अपना विचार भेद हमने दिखाया है। अधिक स्थानों में इस तुलनात्मक आलोचना द्वारा बिहारी की कविता का उत्कर्ष सिद्ध होने में हम हृदय से सहमत हैं। और इस नवीन मार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में विचार भेद एक स्वाभाविक बात है, इससे समालोचक पर सर्वथा पक्षपात का आरोप भी हम नहीं कर सकते, संभव है उनके विचार वैसे ही हों। इस इतनी लम्बी समालोचना लिखने का हमारा उद्देश्य केवल इतना ही है कि आगे जो यह तुलनात्मक आलोचना का मार्ग चले, उसमें दोनों तरफ के गुण दोष और दोनों के उत्कर्ष अपकर्ष की स्पष्टता रहा करे।

बिहारी के व्यापक पण्डित्य में साकार निराकार के झगड़े में बिहारी को घसीटने में भी हमारा मतभेद है और मूल दोहों का पाठ कई जगह व्रजभाषा की शैली से विरुद्ध लिखा गया है, इस पर भी आगे ध्यान होना चाहिये। किन्तु इतना हम निष्कपट फिर कह देते हैं कि पुस्तक के असाधारण गुणों के सामने ये तुच्छ त्रुटियां बिलकुल नगण्य हैं। हिन्दी साहित्य प्रेमी के नाते हम पं० पद्मसिंह शर्मा जी के इस महान् उपकार के हृदय से कृतज्ञ हैं, और उनकी इस महती कृति को सर्वथा निर्दोष देखने की शुभ आशा से जो कुछ सूचना हमें देनी पड़ी है, इसके लिये हम उनके आगे क्षमा प्रार्थी हैं।"

मेरी इस आलोचना को पद्मसिंह जी ने उचित कहा था और श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र जी को भी इसे पढ़कर इतना विश्वास तो हो ही गया था कि "सतसई संहार" मेरा लिखा नहीं है। मिश्र जी वयोवृद्ध तथा हम लोगों के आदरणीय रहे।

शिष्ट मंडल का कार्यक्रम कानपुर से ही प्रारंभ हुआ था। कानपुर में स्थानीय सनातनधर्मसभा का वार्षिकोत्सव उन दिनों हो रहा था। पहिले हमलोग उसी में सम्मिलित हुए। मेरा वहाँ "श्राद्ध" विषय पर व्याख्यान हुआ। यह व्याख्यान लगभग ढ़ाई घंटे चलता रहा। सनातनधर्म के गणेशदत्तजी आदि प्रमुख उपदेशक वहाँ बुलाए गए थे। उसी प्रान्त के एक राजा साहब, जिनका नाम अब स्मरण नहीं है, उस समारोह की अध्यक्षता कर रहे थे। जब मेरे व्याख्यान का विषय 'श्राद्ध' निश्चित किया गया तो अध्यक्ष राजा साहब ने कहा कि श्राद्ध कोई भाषण देने का विषय तो है नहीं। यह तो एक विधि है, जिसका कर्मकाँड़ से सम्बन्ध है और उस विधिका अनुष्ठान ही श्राद्ध कहलाता है। परन्तु वहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लोगोंने मुझसे इसी विषय पर व्याख्यान सुनने का जब आग्रह किया तब वे भी मान गए। मैंने व्याख्यान के प्रारंभ में राजा-साहब की बात का समर्थन किया कि "भारतवर्ष में श्राद्ध जैसे नियम अनुष्ठेय विधि की ही प्रधानता रखते हैं, परन्तु कुछ समय से वे सभी बातें विचार का विषय बन गईं जो अनुष्ठान से सम्बन्ध रखती हैं। कुछ लोगों ने कुतर्कों के आधार पर इन विषयों में जनता में अनास्था फैलादी है, जिससे सामान्य जनता के विचारों में भी उन विषयों पर से विश्वास डगमगाने लगा है। हम सर्वदा से यह घोषणा करते आए हैं कि सनातनधर्म की छोटी-से-छोटी विधि भी तर्क और विज्ञान की कसौटी पर पूर्ण उतरती है। सनातनधर्म की पूर्णता और अपरिवर्तनीयता का यही रहस्य है कि इसकी समस्त विधियाँ पूर्णप्रज्ञ ऋषियों के द्वारा पूरी खोज के बाद और गुण दोषों के सम्पूर्ण परीक्षण के बाद परिचालित की गईं हैं।" इसके उपरान्त मैंने पितृ तत्त्व का वैज्ञानिक स्वरूप विस्तार से समझाया जिसमें रातके प्रायः ११ बज गए। व्याख्यान के बीच में कुछ लोगों ने सभापति का ध्यान घड़ी की ओर दिलाया जिसके उत्तर में राजासाहब ने घड़ी को उठाकर अपनी जेब में रख लिया। जब मैंने व्याख्यान समाप्त किया तो राजासाहब ने मुझसे कहा कि "आपने पूरे ढ़ाई घंटे तक भाषण किया है"। उन्होंने यह भी कहा कि इससे पूर्व श्राद्ध पर इस प्रकार का व्याख्यान सुनने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।

जैसा कि पूर्व निश्चित था हमारी यात्रा का मुख्य लक्ष्य बिहार प्रान्त के नगरों में भ्रमण कर ऋषिकुल के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करना था। कानपुर से प्रस्थान कर हमलोग राँची पहुँचे। राँची की जनसंख्या में बंगालियों की अधिकता थी। वहाँ के व्याख्यानों में मैंने इस शैली से काम लिया कि संस्कृत बहुल हिन्दी का प्रयोग किया। इसका अनुकूल प्रभाव रहा और सभा में उपस्थित बंगाली सज्जन मेरे भाषण की सभी बातों को पूर्ण रूप से समझ कर बड़े प्रसन्न हुए। कई सज्जनों से जब मैंने पूछा कि आपको मेरी भाषा समझने में कठिनाई तो नहीं हुई तो उन्होंने निस्संकोच उत्तर दिया कि आप तो "बँगला" भाषा में बोल रहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राष्ट्रपति को बिदाई देते हुए—

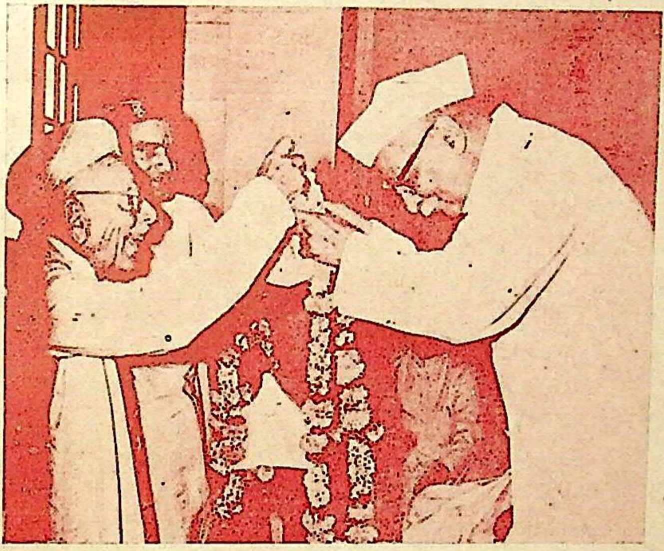

अभिनन्दन और विदाई

श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्,
भारतरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उप-राष्ट्रपति के कर-कमलों से साहित्य-अकादमी का पुरस्कार ग्रहण करते हुए—

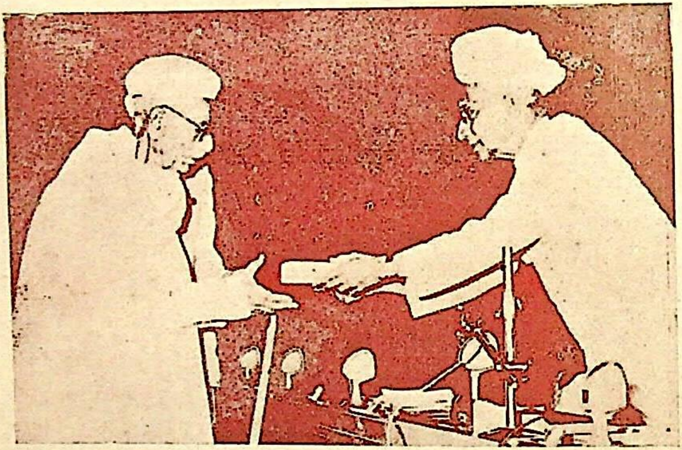

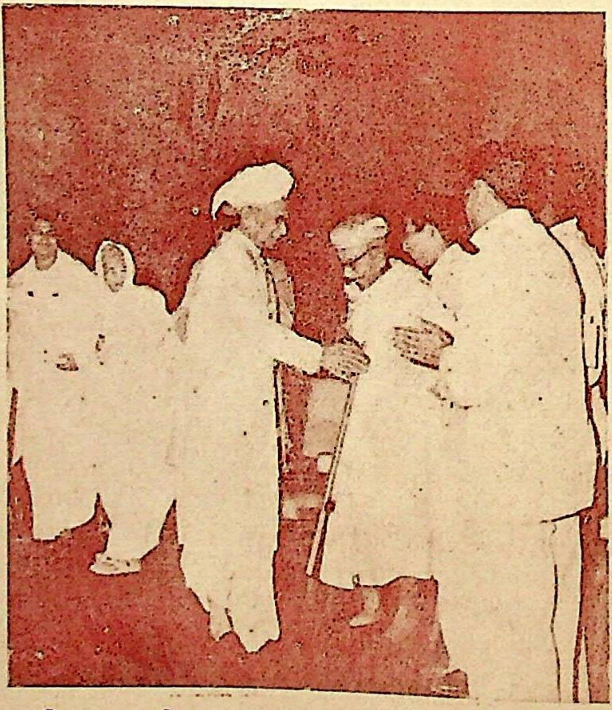

साहित्य अकादमी का पुरस्कार ग्रहण करने के उपरान्त सर्वपल्ली राधाकृष्णन से सम्मान ग्रहण करते हुए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे, जो हमारी मातृ भाषा है, इसमें समझने में कठिनाई होने का प्रश्न ही कहाँ है। मैंने तभी अनुभव किया कि भारत की सभी भाषाएँ संस्कृत से सर्वात्मना ओत-प्रोत हैं।

राँची के कार्यक्रम से निवृत्त होकर शिष्टमंडल भागलपुर गया। वहाँ एक सज्जन के प्रवन्ध से ही हम लोग ठहरे थे। ऋषि-कुल के कुछ ब्रह्मचारी भी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हमसे यहाँ आ मिले थे। भागलपुर में १०-१२ दिन हम लोगों का निवास रहा। शीघ्र ही एक धर्मशाला में धार्मिक प्रवचनों का आयोजन होना प्रारम्भ हो गया। यहाँ वकीलों की संख्या अधिक थी और इन लोगों पर मेरे व्याख्यानों का वहुत अधिक प्रभाव रहा। व्याख्यान का समय होने पर ये लोग कोर्ट बन्द करने के लिए जज से साग्रह निवेदन करते थे कि अब व्याख्यान का समय हो चुका है हम नहीं ठहर सकते। एक जज महाशय से उन लोगों ने आग्रह किया कि आप भी व्याख्यानों में चला करें। जज साहब ने कहा कि मैंने तो एनीवेसेन्ट के व्याख्यान सुने हैं, अब मुझे अन्य व्याख्यानों में क्या रुचि हो सकती है, परन्तु वकीलों के आग्रह पर एक दिन आधा घंटे के लिए उन्होंने व्याख्यान में आना स्वीकार कर लिया। उस दिन के वाद से प्रतिदिन ये जज महाशय व्याख्यान के समय से आधे घंटे पहिले ही वहाँ पहुँच जाया करते थे और सन्ध्योपासनादि में मेरे जरा विलम्ब कर देने पर मुझसे ताकीद करते थे कि व्याख्यान का समय हो गया है, अब पधारिये। इन्हीं व्याख्यानों में कभी हमारे प्रथम राष्ट्रपति स्वर्गीय श्री राजेन्द्र प्रसाद जी भी आये थे, मुझे तो इसका विलकुल ध्यान नहीं, परन्तु उन्होंने ही स्वयं कुछ दिनों पहिले इस घटना का मुझे स्मरण कराया था कि "पंडित जी, मैंने भी भागलपुर में आपके व्याख्यान सुने थे।" इन व्याख्यानों में मेरी भाषण शक्ति दृढ़ हो गई, खासतौर से इस बात से कि यहाँ उच्चशिक्षित विधिवेत्ताओं पर पूर्ण प्रभाव डालने में मैं सफल रहा। इस कार्यक्रम से मेरे भीतर आत्मविश्वास भी उत्पन्न हो गया कि यदि कोई नौकरी न कर मैं केवल धार्मिक व्याख्यान ही देता रहूँ तो भी व्याख्यानों की आमदनी से अपनी आजीविका प्रतिष्ठा पूर्वक चला सकता हूँ। उस समय के अनेक उपदेशक इसी प्रकार बिना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई सर्विस किये व्याख्यानों से ही अपनी आजीविका बड़ी प्रतिष्ठा से चला रहे थे जिनमें युक्तिविशारद कालूरामशास्त्री जी, दुर्गादत्त पन्त जी, व्याख्यानवाचस्पति श्री दीनदयालु जी आदि का उस समय बड़ा नाम था। कुछ दिनों बाद जब ऋषिकुल के अधिकारियों से वहाँ के प्रबन्ध के सम्बन्ध में मेरा मतभेद हुआ तो इसी आत्म-विश्वास के बल पर मैंने ऋषिकुल से त्यागपत्र दे दिया और फिर बार-बार ऋषिकुल के सभी अधिकारियों के सम्मिलित आग्रह पर भी वहाँ काम करने नहीं ही गया।

इस यात्रा में जो अन्य उपदेशक हमारे साथ गये थे वे प्रायः श्रोता ही बने रहे। मेरे नित्य क्रिया से निवृत्त होने में जब कुछ विलम्ब हो जाता तब ये लोग कुछ बोलते, परन्तु भागलपुर में इनका बोलने का साहस प्रायः नहीं होता था। भागलपुर से हमें पुनः मुंगेर के एक मारवाड़ी सज्जन का आमन्त्रण मिला जो प्रतिवर्ष सनातनधर्म के उत्सव का आयोजन किया करते थे, अतः हमें फिर मुंगेर की यात्रा करनी पड़ी। इस बार मुंगेर में हमें इन्हीं के प्रबन्ध से ठहराया गया। यहाँ भी व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव रहा। भागलपुर और मुंगेर तथा बिहार के कुछ अन्य स्थानों से भी ऋषिकुल के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता मिली। लौटते समय हम लोग पटना रुकते हुए लौटे। पटना में विख्यात विद्वान् महामहो-पाध्याय श्री हरिहरकृपालु जी से भी मेरी पहिली भेंट हुई। बाद में जब ये वाराणसी रहने लगे तब भी अनेकों बार मैंने इनसे भेंट की और इनका स्नेह मुझ निरन्तर प्राप्त रहा। पूरे उत्तर भारत में इनकी विद्वत्ता की धाक थी। पहिली भेंट में ही अनुभव हुआ कि उच्चकोटि के वैयाकरण और दार्शनिक होने के साथ ही ये बड़े रसिक विद्वान् थे। ऋषिकुल के कार्यकलाप से ये बहुत प्रसन्न हुए। मेरा नाम भी इन्होंने गुरुकुल के शास्त्रार्थ के प्रसंग में सुन लिया था। इन्हीं के प्रयत्न से पटना में महती सभा का भी आयोजन हुआ। पटना में ही दरभंगा नरेश श्री रमेश्वरसिंह जी से भी मिलने का अवसर मिला। ऋषिकुल की शिक्षा प्रणाली से वे सन्तुष्ट हुए और हम लोगों को ऋषिकुल के प्रचार के लिए मिथिला और दरभंगा यात्रा का निमन्त्रण भी उन्होंने दिया जिसे आगे किसी अवसर के लिए हमने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिरोधार्य किया। दरभंगा नरेश के साथ हुए इस प्रथम साक्षात्कार में मैंने अनुभव किया कि श्री रमेश्वरसिंह जी प्रसन्न चित्त, संयत और विद्याप्रेमी राजा हैं। काशीहिन्दूविश्वविद्यालय की स्थापना में श्रद्धेय मालवीय जी महाराज के साथ श्री रमेश्वरसिंह जी मिथिलानरेश का भी प्रमुख प्रयत्न रहा जिससे वे न केवल अपनी रियासत में ही अपितु सारे देश में आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाने लगे।

इस प्रकार बिहार का यह उल्लेखनीय भ्रमण पूर्णकर हमारा मंडल हरिद्वार लौट आया। ऋषिकुल के अधिकारियों को सफलता की सूचनाएँ मार्ग से दी जाती रहीं, समाचार पत्रों से भी वे अवगत होते रहे।

जब हम ऋषिकुल पहुँचे तो उस समय वहाँ भी उत्सवों का आयोजन हो रहा था। मालुम हुआ कि गोवर्धनपीठाधीश्वर शंकराचार्य श्री मधुसूदनतीर्थ जी महाराज तीर्थयात्रा के प्रसंग से हरिद्वार आये हुए हैं और अपने निवास से ऋषिकुल भूमि का ही गौरव बढ़ा रहे हैं। उनके दर्शनों के लिए हरिद्वार की सभी सनातनधर्मी जनता ऋषिकुल में आने लगी। हरिद्वार में उनका एक महीने ठहरने का विचार था, इसीलिए हम लोगों ने उनके सान्निध्य का लाभ उठाकर एक सम्मेलन का आयोजन कर लिया। ३-४ दिन उत्सवों की धूम रही। द्रव्य भी संस्था के लिए तथा आयोजन की पूर्णता के लिए जनता के द्वारा खूब प्राप्त हुआ। अपने भाषणों से पूर्व शंकराचार्य जी मुझसे भाषण देने का आग्रह करते थे इसलिए मुझे भी उनकी आज्ञा मानकर प्रतिदिन ही बोलना पड़ता था। उन्हें हिन्दी बोलने का अभ्यास कम था अतः वे संस्कृत में बोलते थे, जनता की इच्छा उनके भाषण का हिन्दी में आशय जानने की बहुत तीव्र थी, अतः मुझे ही यह कार्य भी दिया गया कि उनके संस्कृत भाषण का हिन्दी रूपान्तर भी मैं ही सुनाता चलूं। मेरे इस कार्य से जगद्गुरु जी को बहुत प्रसन्नता हुई कि उनको आशय को जनता को हिन्दी में समझाने में मुझे पूर्ण सफलता मिली है। आगे के लिए प्रस्थान करते समय जगद्गुरु जी ने उपस्थित विद्वानों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने पीठ की ओर से उपाधियाँ प्रदान कीं, वे उपाधियाँ थीं "विद्या वाचस्पति" और "व्याख्यानवाचस्पति"। श्री शालग्राम शास्त्री जी को विद्यावाचस्पति उपाधि प्रदान की गई थी। श्री दीनदयालु जी को व्याख्यानवाचस्पति दी गई थी। मुझे उन्होंने ये दोनों ही उपाधियाँ देते हुए सभा में यह कहा था कि "जिन विद्वानों के भीतर हमने विद्या की उत्कृष्टता देखी उन्हें 'विद्यावाचस्पति' उपाधि से विभूषित किया तथा जिनकी व्याख्यान कला बहुत उच्चकोटि की है उन्हें व्याख्यानवाचस्पति की उपाधि प्रदान की गई, परन्तु गिरिधर शर्मा के विषय में हम एक निर्णय पर नहीं पहुँच सके कि विद्या और व्याख्यानशक्ति में किसकी प्रबलता इनमें है, अन्ततः निर्णय न कर सकने के कारण इन्हें ये दोनों ही उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं।"

श्री मधुसूदनतीर्थ शंकराचार्य से इसके बाद केवल एक बार और प्रयाग में मेरी भेंट हुई। उनमें प्रखर पाण्डित्य तो था ही तपःशक्ति भी उनकी उच्चकोटि की थी। आगे चल कर उनके कैलासवास के उपरान्त उस पीठ के शंकराचार्य स्वामी भारती-कृष्ण तीर्थ हुए। उनसे मेरा बहुत संपर्क रहा। उनकी ख्याति तो भारत के बाहर अमेरिका आदि देशों में भी बहुत हो चुकी है। उनका भी २-३ वर्ष हुए, कैलासवास हो गया। भारतीकृष्णतीर्थ शंकराचार्य जी ने अपने पीठ के उत्तराधिकार के वसीयतनामे में कुछ विद्वानों के नाम लिखे थे और यह भी लिखा था उसके आधार पर इन विद्वानों से गोवर्धन के शंकराचार्यपीठ पर आसीन होने के लिए सन्यास लेने का आग्रह किया जाय। प्रथम के स्वीकार न करने पर दूसरे से कहा जाय, फिर तीसरे से, इस प्रकार दस या ग्यारह नाम उन्होंने वसीयत में लिख दिये थे, प्रथम नाम तो महामहोपाध्याय श्री अनन्तकृष्ण शास्त्री जी का था और दूसरा नाम मेरा था। जब अनन्तकृष्ण जी ने सन्यास लेने से निषेध कर दिया तब गोवर्धन पीठ के अधिकारी का मेरे पास पत्र आया कि वसीयत के अनुसार आपसे आग्रह है कि आप सन्यास ग्रहण करके शंकराचार्यपीठ पर आसीन हों। इसका मैंने यही उत्तर दे दिया कि सन्यास तभी लिया जा सकता है जब मन में संसार से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्ण विरक्ति की स्थिति हो, परन्तु यहाँ तो सन्यास का उद्देश्य उलटे शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठित होना है, जो सांसारिक अनुरक्ति ही होगी। अतः शंकराचार्य बनने के लिए सन्यास स्वीकार करने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ। वसीयत में जयपुर संस्कृतकालेज के उस समय के प्रिंसिपल श्री चन्द्रशेखर शास्त्री जी का भी नाम था और अन्ततः उन्होंने ही सन्यास ग्रहण कर विधिवत शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठा प्राप्त की। ये आगे के समय में घटित घटनाएँ भी ऋषिकुल में पधारे हुए श्री मधुसूदनतीर्थ शंकराचार्य जी और उनके पीठके स्मरण प्रसङ्ग से लिखदी गई पाठकों को इस तरह के विषयान्तरों के लिए मुझे क्षमा करना होगा क्योंकि मैं इस समय अस्सी वर्ष से ऊपर की अपनी अवस्था में यह आत्मकथा लिखवा रहा हूँ और सभी घटनाओं को ठीक-ठीक स्मरण करने में असमर्थ हो रहा हूँ। इसलिए प्रवृत्ति कभी कभी ऐसी ही होने लगती है कि एक-एक प्रकरण की बात को अन्त तक सुनाता चलूं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋषिकुल परित्याग

ऋषिकुल के दो-तीन ब्रह्मचारियों ने पंजाब की शास्त्री परीक्षा के फार्म भरे थे। पूर्व कहा जा चुका है कि इसी वर्ष से ऋषिकुल में परीक्षा आरंभ हुई थी। श्री केदारनाथ जी सहकारी मंत्री से मेरी और शालिग्राम शास्त्री जी की अनवन बहुत बढ़ गई थी। यहाँ तक कि भ्रमण में जो कुछ लोगों ने प्राइवेट भेंट करीब सौ रुपये दिये थे वे भी उन महाशय ने ऋषिकुल में ही रख लिये और श्री शालग्राम जी शास्त्री पर भी, जो वे कुछ ब्रह्मचारियों को काशी की परीक्षा दिलाने मुरादाबाद सेंटर में ले गये थे, उन पर व्यय अधिक करने का दोष लगाकर मुझे ही फिर दूसरी जगह भेजने का आयोजन श्री केदारनाथ जी ने करवाया। मैंने बहुत कहा-सुनी कर अन्त में एक इंगलिश मास्टर को परीक्षा दिलाने के लिये जाने को प्रस्तुत किया और मैं स्वयं दिल्ली पंजाब के सेंटर में जाने को प्रस्तुत हुआ। ऋषिकुल-कमेटी के इन मन्त्री महाशय केदारनाथ जी के विरुद्ध जो शिकायतें और असन्तोष हमें था उन्हें बतौर सूचना के लिख कर श्री शालग्राम जी ने कमेटी के सभापति श्री आनन्दनरायण जी को, जो वहां आये हुए थे, दे दिया। यह ४-५ पृष्ठों का लंबा पत्र था। इसे अपने हाथ से मैंने ही आनन्दनारायण जी को दिया। उस समय केदारनाथ जी भी वहाँ उपस्थित थे। उनके सामने ही सभापति ने मेरा दिया वह लिफाफा खोला और उसे पढ़ने लगे, थोड़ा पढ़ कर, "अब ये लंबे पत्र पढ़ने की यहां फुर्सत किसे है, आप ही इसे देखिये," यह कह कर उन्होंने वह पत्र केदारनाथ जी को ही दे दिया। इस घटना का मेरे तथा शास्त्री जी के चित्त पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा कि जिसकी शिकायतें लिखकर हमने दीं, उसे ही वह पत्र सौंप दिया गया। उसी समय हरिद्वार साथ-साथ जाते हुए श्री शालग्राम शास्त्री जी से बात चीत हुई थी कि अब ऋषिकुल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहने योग्य नहीं रहा, इससे हमलोगों को पृथक् हो जाना चाहिये। इस पर श्री शालग्राम शास्त्री जी ने यह कहा कि "भइया, तुम्हारी तो खुशामद कर ऋषिकुल वाले रख ही लेंगे, मैं तो अब पृथक् हो ही जाऊँगा।" इस पर मैंने उनसे प्रतिज्ञा की कि ऐसा नहीं होगा, रहेंगे तो दोनों ही रहेंगे किंवा परित्याग करेंगे तो दोनों ही परित्याग करेंगे।

पूर्वोक्त निश्चयानुसार काशी की परीक्षा दिलाने के लिए तो ऋषिकुल के इंगलिश मास्टर गये और मैं दो-तीन छात्रों को पंजाब की परीक्षा दिलाने को पंजाब के देहली सेंटर में उनके साथ आया। वहीं दिल्ली में अष्टमी को योगमाया जी के दर्शन करने मैं अपने मित्र दिल्ली स्थित वैद्य दुर्गाप्रसाद जी के साथ गया था कि वहाँ से लौटते ही जयपुर से तार द्वारा मेरे पुत्र होने का शुभ समाचार मिला। अब तक मेरे कोई पुत्र नहीं हुआ था। पहिली पत्नी से तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं, पुत्र होने का यह दूसरी पत्नी से पहला ही अवसर था इसलिये हर्ष होना स्वाभाविक था। अस्तु, छात्रों को दिल्ली की परीक्षा दिलवाकर मैं हरिद्वार लौटा। उसी अवसर पर श्री दीनदयालुशर्मा जी ने जो सतानतधर्ममहा-सम्मेलन बनाया था उसका अधिवेशन लाहौर में होने जारहा था और उसके साथ ही संस्कृतसाहित्यसम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन नियत था। गुरुकुलवालों ने इस वर्ष अवतारवाद पर शास्त्रार्थ की घोषणा निकाली था। हमें लाहौर जाना आवश्यक था इसलिये गुरु-कुल को यही उत्तर दे दिया कि पहले शास्त्रार्थों के ही कोई परिणाम निकालिये तब आगे शास्त्रार्थ होंगे, इसी तरह खाली थूक बिलोने से कुछ सार नहीं। अस्तु, हम लाहौर चले गये। वहीं श्री हरिनारायण शास्त्री जी भी आये थे। दरभंगा महाराज के सभापतित्व में अधिवे-शन हो रहा था और तात्कालिक महाराजा काश्मीर श्री प्रतापसिंह जी भी उसमें उपस्थित थे। वहाँ कई नवयुवक विद्वानों ने संस्कृत-साहित्यसम्मेलन अपने यहाँ लाहौर में लेने का परस्पर परामर्श कर रक्खा था। परन्तु मैंने उन्हें सम्मेलन के चलाने के योग्य न समझकर संमेलन को उन्हें सौंपना स्वीकार नहीं किया, यूँ ही टालमटोल में समय निकाल दिया, प्रस्ताव उपस्थित करने का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्हें समय ही नहीं दिया। संस्कृतसाहित्यसम्मेलन के लिए प्रातःकाल का समय निर्धारित किया गया था। उस समय सभापति महाराजा दरभंगा ने पूर्व दिन के नगर कीर्त्तन में आने से निषेध कर दिया था किन्तु मैं और श्री हरनारायण शास्त्री जी दोनों वहां गये और महाराज दरभंगा से अनुनय विनय करके उनको कुछ देर के लिये संस्कृतसाहित्यसम्मेलन में आने के लिये तैयार किया। इससे प्रतिपक्ष दल पर वहुत प्रभाव पड़ा और वे अपना प्रस्ताव नहीं ला सके। प्रात: काल का समय अपने पूर्व प्रक्रांत प्रस्तावों में ही मैंने व्यतीत किया। इतने में संस्कृतसाहित्य-सम्मेलन का समय व्यतीत हो गया और सायंकाल के लिये तैयारी करने को हॉंल खाली कर दिया गया।

सायंकाल तीन वजे से सनातनधर्ममहासम्मेलन का अधिवेशन आरंभ हुआ। वहाँ मैं संस्कारों पर भाषण कर रहा था। काश्मीर-नरेश महाराज प्रतापसिंह जी की यह प्रकृति थी कि वे व्याख्यान के वीच में ही टोकते जाते थे। मुझसे उन्होंने पूछ लिया कि "पंडित जी सोलह संस्कारों के नाम गिनाइये।" मैं याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार नाम गिनाने लगा। उसमें कर्णवेध का नाम नहीं आता है। इस पर महाराज कश्मीर ने कह दिया कि "पंडित जी कर्णवेध छोड़ गये।" इसपर उपस्थित जनता में यह प्रसिद्धि हो गई कि पंडित जी की भूल महाराज काश्मीर ने पकड़ ली, अस्तु। वहाँ वहुत से प्रस्ताव आदि अंग्रेजी में ही हुए थे और सिक्खों के प्रति मेल जोल की बात-चीत करते हुये श्री दीनदयालु जी ने कुछ अत्युक्ति के शव्द कह दिये थे। इस पर मैंने वहाँ से लौटकर "व्रह्म-चारी" पत्र में एक विस्तृत टिप्पणी लिखी, उसे दिल्ली और कलकत्ता के पत्रों ने भी उद्धृत किया और उस टिप्पणी का समर्थन किया। इससे पंडित दीनदयालु जी महाशय और उनके पुत्र श्री हरिहरस्वरूप शास्त्री आदि मुझपर वहुत रुष्ट हुए। श्री हरिहर-स्वरूप शास्त्री जी मुझसे पहिले ही ऋषिकुल के अवस्थिति समय में रुष्ट हो चुके थे। परस्पर लेख प्रतिलेखों की बात भी पहिले कही जा चुकी है। इस लेख से उन्हें और उत्तेजना मिली। मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी वर्ष पंजाब यूनिवर्सिटी में संस्कृतविभाग का एक परीक्षक नियत हुआ था, उसकी कापियाँ देखने में लग गया। इधर पिताजी का आग्रह था कि पुत्रजन्म का उत्सव करना है इसलिये शीघ्र जयपुर आओ। शीघ्र ही यूनिवर्सिटी की कापियों को निपटाकर मैं जयपुर आया और वहाँ के उत्सव में सम्मिलित हुआ। वहाँ जातिभोज तो था ही उसके अतिरिक्त एक दिन सायंकाल कलकत्ता समाचार के सम्पादक श्री झावरमल जी, श्री चद्रधर शर्मा गुलेरी जी, श्री माधवमिश्र जी आदि विद्वान् भी निमंत्रित थे। श्री गुलेरी जी बहुत समय तक मेरे ज्येष्ठपुत्र देवीदत्त को देखकर स्मरण करते रहे कि इसके जन्मोत्सव में हमने भोजन किया था। जयपुर में जन्मोत्सव के इस कार्य से निपट कर ज्येष्ठ शुक्ल दशमी पर हरिद्वार में ऋषिकुल के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए शीघ्रता से ही वहाँ पहुँचा। मार्ग में दिल्ली में श्री दीनदयालु जी से और उनके पुत्र से भी एक सभा में भेंट हुई, उनसे मैंने "ब्रह्मचारी" के लेख के लिये क्षमा भी माँग ली थी किन्तु वे उसी रोष से ऋषिकुल के उत्सव में नहीं आये। श्री हरनारायण शास्त्री जी भी उत्सव में नहीं आये इसलिये श्री केदारनाथजी की बन पड़ी। इन महाशय की ऐसी प्रकृति थी कि जब कोई साधारण या विशेष मीटिंग होती तो पहले ही ज्वालापुर और कनखल के पण्डों के, जो ऋषिकुलकमेटी के सदस्य थे, घर पर चक्कर लगा कर उन्हें अपने अनुकूल बना लेते थे। प्रधान सभा की यह मीटिंग् हरिद्वार में की गई थी। उस समय मैं तो उत्सव के लिये ऋषिकुल चला आया और पीछे से मन्त्री ने मेरा और शालग्राम शास्त्री जी का त्यागपत्र कमेटी में उपस्थित किया। मैं यह बात जानता था कि कमेटी में यह विषय आयेगा इसीलिए, कोई अनुचित बात कहना या सुनना न पड़े, इस उद्देश्य से भी मैं पहिले ही उठ आया। देहरादून के रईस लाला बल्देव सिंह और सभापति पंडित आनन्दनारायण जी तो मेरे अनुकूल रहे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि इनके न रहने से ऋषिकुल की उन्नति को आघात होगा उसे सम्हालना कठिन हो जायगा। किन्तु दूसरे पण्डा वर्ग जिनकी संख्या अधिक थी वे भी मेरे विषय में अनुकूल रहने पर भी शालग्राम जी के प्रति-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कूल रहे। परिणाम यह हुआ कि मुझ को तो बीस रुपये मासिक वेतन वृद्धि दी गयी और शालग्राम शास्त्री जी का त्याग पत्र स्वीकार किया गया। यह सुनकर मैंने पूर्व प्रतिज्ञानुसार यह निवेदन पत्र दे दिया कि मैं अब नहीं रहना चाहता, मेरा भी कृपाकर त्यागपत्र स्वीकृत किया जाय। जयपुर के मेरे मित्र पं० सूर्यनारायण जी भी उस उत्सव में आये थे। उन्होंने मुझे समझाने का वहुत प्रयत्न किया किन्तु मैं अपनी वात पर ही दृढ़ रहा। मेरा त्यागपत्र लेकर आगरा वाले गोस्वामी श्री ब्रजनाथ जी, पंजाव जोकालिया के वालमुकुन्द जी यह दोनों ही हरिद्वार गये और वहुत देर तक सभापति पं० आनन्दनारायण जी को समझाते रहे कि इनके हट जाने से ऋषिकुल की बड़ी हानि होगी। आप फिर विचार करिये। इसपर अंत में आनन्दनारायण जी ने यही कहा कि यह तो अव मूँछ का सवाल वन गया है। मैं शालग्राम जी को रखने पर जोर दूँगा तो दूसरी ओर से, अर्थात् पं० केदारनाथ जी आदि के त्याग पत्र आ जावेंगे। श्रीयुत गोस्वामी ब्रजनाथ जी ने श्री केदारनाथ जी के विरुद्ध कुछ अपशब्द भी कहे, उस समय मैं भी वहीं था, मैंने उन्हें रोका कि इस प्रकार व्यक्तिगत अपशब्द कहना उचित नहीं। सायंकाल फिर ऋषिकुल में ही अधिवेशन हुआ, उसमें मेरा त्यागपत्र भी स्वीकार किया गया किन्तु यह लिखा गया कि जव तक दूसरा प्रबंध नहीं हो जाता तव तक आप इस कार्य के भार को सम्हाले रहें। इस पर मैंने यह लिख दिया कि आज से ही मैं वेतन तो नहीं लूँगा किन्तु प्रवन्ध होने तक कार्य भार सम्हाले रहूँगा। इस प्रकार यह ऋषिकुल का नौ वर्ष का निवास समाप्त हुआ।

मेरे पद छोड़ने की जो इधर-उधर चर्चा फैली उससे कई लोग ऋषिकुल की वदनामी करने लगे। कई पत्र पत्रिकाओं में सम्पादकीय नोट भी उग्र रूप से दिये गये कि "सनातनधर्म की एक मात्र संस्था भी पार्टी बन्दी से नष्ट की जारही है। व्यक्ति गत वैमनस्य से पंडित गिरिधर शर्मा को वहाँ से हटना पड़ रहा है," इत्यादि। तव मैंने एक पत्र इस आशय का पेपरों में छपवाया कि मैंने अपने घर की परिस्थिति से ही ऋषिकुल का निवास छोड़ा है इसमें किसी का दोष या वैमनस्य कारण नहीं है। इससे लोगों को संतोष हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर लगभग दो मास मैं ऋषिकुल में अवैतनिक ही रहा। खाने पीने को वहाँ के भण्डार से सामग्री ले लेता था और कोई वेतन नहीं लेता था। इधर-उधर सभाओं में भी जाता आता रहता था। इसी बीच में मैं स्वयं अस्वस्थ हो गया। तब कोई योग्य उपचार की सामग्री न देखकर सहारनपुर से अपने मित्र हरिप्रसाद जी वैद्य को बुलाया। परन्तु वे एक भागवत सप्ताह सुना रहे थे इससे न आ सके। तब ज्वालापुर के एक वैद्य महाशय से ही चिकित्सा कराने लगा। मेरी अस्वस्थता का समाचार पाते ही शालग्रामशास्त्री जी जो अपने घर बरेली चले गये थे मेरी चिकित्सा के लिये दौड़ आये। उनकी चिकित्सा से कुछ लाभ हुआ। तब भाद्रपद के आरम्भ में श्रावणी के अनन्तर मैंने जयपुर के लिये प्रस्थान कर दिया। इस बीच सहकारी मंत्री पंडित केदारनाथ जी ने भी मुझसे अनुरोध किया कि आप न जाइये, यथावत् कार्य भार सम्हाले रहिये। ज्वालापुर के पं० वंशीधर जी भी अनुरोध करते रहे किन्तु मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। केदारनाथ जी को इतना वचन दे दिया कि समय-समय पर जब आप चाहेंगे तो ऋषिकुल की उन्नति के लिए 'शिष्टमंडल' में आप के साथ अब भी चलने को प्रस्तुत रहूँगा। 'ब्रह्मचारी' पत्र का सम्पादन भी मैंने अपने सिर पर ही ले लिया। स्नातक लीलाधर शास्त्री तो मेरे साथ जाने को तैयार हुआ और परमेश्वरानंद वहीं अध्यापन कार्य करने लगा। इसी अवसर में शिमला का एक निमंत्रण था किन्तु अस्वास्थ्य वश वहाँ जाना उचित न समझ कर मैं लीलाधर के साथ एक दिन अलवर ठहर कर जयपुर चला आया। वहाँ जयपुर में अपनी चिकित्सा कराने लगा। मैं रोगाक्रांत ही था कि अमीरपुर से शास्त्रार्थ के लिये आह्वाहन आया। मैंने कह दिया कि भाई मैं तो इस समय अस्वस्थ हूँ। इससे उन्होंने श्री अखिलानंद जी को बुलाया। अखिलानंद जी अब तक आर्य समाज में ही कार्य करते थे, यही पहला अवसर था कि वे आर्य समाज छोड़ कर सनातनधर्म में सम्मिलित हुए। आगे मेरा उनका बहुत साथ रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मचारी पत्र का सम्पादन

जैसा कि पहिले कह चुका हूँ हरिद्वार में मेरा जो समय व्यतीत हुआ वह मेरे जीवन में पूर्ण उत्साह और स्फूर्ति का समय था। एक नवोदित संस्था को उन्नत बनाना यह परिश्रम का कार्य भी मिला था। परिश्रम भी मैंने संस्था को समुन्नत करने के लिए अत्यधिक किया था, फल भी उसका पूर्ण रूप से प्राप्त हुआ। ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम की पूरे भारत में उस समय ख्याति फैल गई और भारत के विभिन्न भागों से सनातनी लोग अपने पुत्रों को यहाँ अध्ययन के लिए भेजने लगे। आगे चल कर बहुत वर्षों के उपरान्त अपनी वृद्धावस्था में यात्रा करते समय मुझे अनेक ऐसे प्रतिष्ठित सज्जन मिलते रहे जो अपने को ऋषिकुल के समय का मेरा छात्र बतलाते थे। खास तौर से आर्यसमाज ने उस समय जो विचार-विप्लव खड़ा किया था और अपने विचारों के अनुरूप शिक्षा देने के लिए गुरुकुलों की जो स्थापना की गई थी उसके प्रतीकार के लिए ऋषिकुल की आवश्यकता का अनुभव सभी को हो रहा था। वह कार्य भी ऋषिकुल के द्वारा खूब हुआ। मैंने गुरुकुल में जाकर तथा ऋषिकुल में आर्यसमाज से शास्त्रार्थ किये जिसका विवरण दिया जा चुका है। आगे चल कर वहाँ ऐसे छात्र भी तैयार हुए जिन्होंने आर्यसमाज के साथ अनेक शास्त्रार्थ अनेक स्थानों पर किये। इससे भी ऋषिकुल की ख्याति बढ़ती ही गई। इसके साथ ही प्रेस के द्वारा सनातनधर्म के सिद्धान्तों के मर्म का प्रचार करना भी आवश्यक समझा गया और इसके लिए "ब्रह्मचारी" मासिक पत्र का प्रकाशन ऋषिकुल से होने लगा। इसका संपादकत्व भी मैंने ही स्वीकार किया। यद्यपि जयपुर से प्रकाशित होने वाले संस्कृत मासिक पत्र "संस्कृतरत्नाकर" का सम्पादन भी मैं ही कर रहा था, परन्तु हिन्दी पत्र के सम्पादन में सफलता प्राप्त कर लेना एक नया और विशिष्ट अनुभव था। उस समय हिन्दी में निकलने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाले दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक एवं मासिक पत्रों की कोई कमी नहीं थी और उनका स्तर भी पर्याप्त उन्नत था। गुरुकुल से लाला मुन्शीराम जी के संपादकत्व में "सद्धर्म प्रचारक" नामक साप्ताहिक पत्र आर्यसमाज का प्रचार करता था। स्वाभाविक ही था कि अपने से मतभेद रखने वालों की आलोचना "ब्रह्मचारी" में होती। मैंने देखा कि सनातनधर्म के बाहर और भीतर दोनों ओर 'ब्रह्मचारी' की आलोचनाओं की अपेक्षा थी। साथ ही व्यक्तिगत और निम्न कोटि की आलोचनाओं से पत्र को बचाना भी था।

वर्ष के आरंभ में मैं एक विस्तृत सम्पादकीय लिखता था। निदर्शन के लिए तथा उस समय की कुछ परिस्थितियों तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं के परिज्ञान के लिए यहाँ एक सम्पादकीय लेख उद्धृत कर देता हूँ—

"संसार चाहे उन्नति के चक्र पर चढ़े, चाहे अवनति के गर्त में गिरे, सांसारिक कोई व्यक्ति सुखनिमग्न हो, चाहे दुःखोद्विग्न हो, किसी का जीवन पूर्ण सुविधा से कट रहा हो, या वह पद-पद में विघ्न बाधाओं की ठोकरें खा रहा हो, काल किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। यह अपनी अव्याहत गति से बराबर दौड़ता चला ही जाता है। पल पर घड़ी, घड़ी पर दिन, दिन पर मास और वर्ष क्रमशः बीतते ही जायँगे—यह विधाता का अप्रतिहत व्यापक नियम है। उस ही नियम के अनुसार आज 'ब्रह्मचारी' भी अपनी आयु के चार वर्ष व्यतीत कर पंचम वर्ष में पदार्पण कर रहा है। वर्ष के पूर्वार्द्ध में ठीक तरह चलना और अन्तिम महीनों में समय-विलम्ब की कष्ट दशा में पड़ जाना—यह ब्रह्मचारी के लिए एक नियम सा हो गया है—और इसके लिए हम स्वयं अपने माननीय पाठकों के संमुख लज्जित एवं खिन्न हैं। वर्षारम्भ का समय कई बार पलटा गया, नियत समय पर चलाने की बार-बार प्रतिज्ञाएँ हुईं—किन्तु जो होना होता है आखिर वही होता है, मनुष्य की प्रतिज्ञाएँ उसके साहस और उत्साह का परिचय भले ही देवें, कार्य की विधिरचित-प्रणाली को अन्यथा कर देने की वे शक्ति नहीं रख सकतीं। अस्तु, यथा तथा ब्रह्मचारी अभी जीवित है। और पाँचवें वर्ष में भी पैर बढ़ा रहा है—इससे आशा है हमारे पाठक हर्ष प्रकट करेंगे, और अपने स्नेह और दया के भाव से इस बालक का स्वागत करेंगे। हमें भी आज पुनः नवीनता से उसकी सेवा में प्रवृत्त होने का परम हर्ष है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नियमानुसार आज हम जब गतवर्ष की आलोचना में प्रवृत्त होते हैं, तो अतीत वर्ष को पूर्व की अपेक्षा भी बहुत अधिक परिवर्तन का वर्ष पाते हैं। विश्वसंहारक भयंकर युरोपयुद्ध का समाप्त होना, महायुद्ध के शान्त होने पर संसार भर में अशान्ति की ज्वालाओं की लपट, इधर भारतवर्ष में अभूतपूर्व राजनैतिक हलचल, निरपराध निःशस्त्र प्रजा के शतशः मनुष्यों का शस्त्रों से वध, कारागृह में डाला जाना, देश से निकाला जाना व फांसीपर लटकाना, इतने पर भी निर्भयभाव से प्रजा के नेताओं का प्रबल आन्दोलन, सैकड़ों वर्षों से परस्पर घोर विरोध रखनेवाली जातियों का अपूर्व हार्दिक मेल, इत्यादि एक से एक विचित्र अद्‌भुत घटनाओं का तांता जहां इस वर्ष लगा रहा है, वहां दूसरी ओर असाधारण वस्तुओं की महर्घता (मंहगी) से भारत की प्रजा पिस गई है। जिधर देखो उधर इस ही का हाहाकार है, साधारण-स्थिति के लोगों के लिए जीवन-रक्षा ही पूरा भार है। इस सब हलचल से बहुत से नियमित कार्य रुक गये हैं, और रुकते जा रहे हैं। धर्म की उपेक्षा से जिस दुःख और अशान्ति के अप्रतिहत राज्य की संभावना हो सकती है, उसका प्रत्यक्ष दृश्य संसार भरमें आंखों के आगे नाच रहा है। किन्तु फिर भी सब उपद्रव को हटाने के लिए धर्म-भाव में दृढ़ता की ओर जनता नहीं झुकती। डाल और पत्ते सींचे जा रहे हैं, मूल में जो घुन लगा है, उसकी चिकित्सा का कोई ध्यान नहीं है। जगदाधार परम दयालु परमात्मा ही इस कष्ट से उबारेगा—वही लोगों को सुमति देकर उन्हें धर्मभाव में दृढ़ बनावेगा—तब ही सब कष्टों से छुटकारा होगा। उस ही सर्वान्तर्यामी परमपिता से हमें प्रार्थना करनी चाहिए कि, नाथ ! हमारे अपराधों की ओर दृष्टि न देकर अपनी स्वाभाविक कृपा से काम लीजिये, हम मार्ग भूले हुए हैं, आप ही दया कर हमें सुमार्ग पर लाइये, और अपनी वत्सलता से हमारे ये असहनीय दुःख मिटाइये।

उस ही हलचल के चक्र में हमारे सहयोगी हिन्दी सामयिक पत्रों की भी इस अतीत वर्ष में बहुत दुर्दशा हुई। कई एक सर्वप्रिय मुख्य पत्र जहां राजनैतिक कारणों से अकालमृत्यु के मुख में गये—वहां कई एक मंहगी आदि कारणों से अस्त हो गये। दैनिक 'कलकत्ता समाचार' जैसे लोकप्रिय सुयोग्य पत्र का वियोग पाठकों को इस वर्ष सहना पड़ा है, जो न केवल राजनैतिक आन्दोलन में न्यायमार्ग पर अग्रसर था, किन्तु धार्मिक जागृति को भी अपना आवश्यक कर्तव्य मानता था। इस पत्र के बन्द हो जाने से धार्मिक आन्दोलन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के मूल में जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कठिन प्रतीत होती है। इधर करांची का साप्ताहिक 'सिन्धुसमाचार' जो थोड़े ही दिन में लोकप्रियता प्राप्त कर चुका था, और सनातनधर्म की सेवा जिसका मुख्य लक्ष्य था, वह भी स्मृति शेष हो गया। जगाधरी से निकलनेवाला गौड़ महासभा का मुखपत्र "साप्ताहिक ब्राह्मण समाचार" भी उन्नति के मार्ग में अग्रसर होते-होते ही फिसल कर गढ़े में जा गिरा। ये तीनों पत्र राजनैतिक कारणों के शिकार बने हैं, और इनके वियोग का पाठकों को असह्य दुःख है। धार्मिक आन्दोलन को भी इनके बिना बड़ी हानि हुई है। और भी कई एक पत्र पूर्वोक्त कारण से अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर चुके हैं, और बहुतों ने कई एक चोटें सह कर कठिनता से जीवन रक्षा की है। किन्तु उनकी लोकप्रियता बढ़ गई है—और वे उन्नत पत्रों की श्रेणि में मुख्य गिने जाने लगे हैं।

इस बार सहयोगियों की आलोचना लिखने में हमें एक अड़चन है कि बहुत से सहयोगियों का नियमित दर्शन हमें नहीं होता। बात यह है कि पहले ब्रह्मचारी के परिवर्तन से सब सामयिक पत्र ऋषिकुल हरिद्वार जाया करते थे, जब संपादक का नियत निवास वहां न रहा, और लौटकर पत्र आने जाने में गड़बड़ होने लगी, तब सब पत्रों के आफिसों में पत्र लिखकर "पान का दरीबा जयपुर" के पते से परिवर्तन के सामयिक पत्र भेजने की प्रार्थना की गई। एकाध बार पत्र भेजने पर तो कहाँ सुनवाई होती थी, दो तीन बार प्रार्थना करने पर बहुत से सहयोगियों ने पता पलट दिया, और वे पत्र नियमित हमें मिलने लगे। किन्तु कई एक अब भी यह "महान्" परिवर्तन कर देना अपनी शान के खिलाफ़ समझते हैं, और "रामोद्विर्नाभिभाषते" जैसी दृढ़ प्रतिज्ञा का हठ लिये पुराने ही पते पर अपने पत्र भेजे जा रहे हैं। इस विलक्षण गति पर एक ओर जहाँ हँसी आती है, वहाँ दूसरी ओर हिन्दी पत्रों के आफिसों की दशा का अनुमान कर दुःख भी होता है। जिन आफिसों में चिट्ठियों पर इतना ध्यान दिया जाता हो, उनके प्रबन्ध की भला कहाँ तक प्रशंसा हो सके। अस्तु वे "अटल" सहयोगी नियमित रूप से हमें प्राप्त नहीं होते, और उनके संबंध में कुछ लिखने में हम असमर्थ हैं। जो कृपा कर हमें दर्शन देते हैं, उनका संक्षिप्त उल्लेख नियमानुसार कर दिया जाता है।

दैनिक पत्रों में कलकत्ता समाचार के अस्त का दुःखद वृत्तान्त लिख चुके हैं, दूसरा सुप्रसिद्ध पत्र "भारतमित्र" भी पुराने अनुभवी संपादक के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अस्वास्थ्यवश कार्य छोड़ देने और कागज टाइप आदि के असौष्ठव से पूर्व की उन्नत दशा से कुछ गिरा सा ही है। साप्ताहिकों में श्री वेंकटेश्वर समाचार (मुम्बई) अभ्युदय (प्रयाग) और प्रताप (कानपुर) अच्छे चल रहे हैं। अभ्युदय और प्रताप इस समय अच्छे उन्नत पत्र हैं—किन्तु ये तीनों ही हमें दर्शन नहीं देते, अतः इनके विषय में विशेष कुछ लिखना हमारी शक्ति के बाहर है। हिन्दी समाचार (देहली) कदाचित् बन्द हो गया, बिहारी और पाटलिपुत्र (बाँकीपुर) जयाजीप्रताप (ग्वालियर) व प्रेम (वृन्दावन) इनके भी बहुत काल से हमें दर्शन नहीं होते। विदित नहीं कि इनका प्रकाशन नियत है या नहीं। लखनऊ के 'आनन्द' ने पता तो शायद पलट दिया था, पहले आनन्द भी देता था, किन्तु आजकल दर्शन नहीं। 'हिन्दी बंगवासी' (कलकत्ता) और 'हिन्दी केसरी' (काशी) ये दोनों यथापूर्व हिन्दी और हिन्दुस्तान की सेवा कर रहे हैं, इनमें कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता। बाँकीपुर की "शिक्षा" भी शिक्षार्थियों को अच्छी शिक्षा दे रही है। आर्य्यसमाज का मुखपत्र आर्य्यमित्र (आगरा) यथास्थित अपना काम कररहा है। "सद्धर्मप्रचारक" (गुरुकुल काँगड़ी) संपादक के परिवर्तन के कारण मध्य में उन्नति से गिरता दीख पड़ा था, अब कुछ दिन से दर्शन ही नहीं देता, कारण विदित नहीं। महाविद्यालय ज्वालापुर के मुखपत्र "भारतोदय" का भी उदय है कि नहीं, विदित नहीं। मथुरा का "जैनगजट", पूर्ववत् चल रहा है, देहरादून के गढ़वाली का हाल मालूम नहीं।

बिजनौर का साप्ताहिक "निर्बल सेवक" नया ही दर्शन देने लगा है। पत्र तो २ वर्ष का पुराना है, किन्तु ब्रह्मचारी से इसका प्रणय-बन्धन नया ही है। पत्र रोचक भाषा में लिखा जाता है, लेख अधिकांश राजनैतिक हैं। कविताओं का संग्रह कर पत्र की रोचकता और भी बढ़ा दी जाती है। काशी का "क्षत्रियमित्र" पाक्षिक हो यथावत् प्रचार कर रहा है।

अब मासिक पत्रों का हाल सुनिये। सनातनधर्म के पत्रों में इटावा के "ब्राह्मण सर्वस्व" का नाम पहले लेना चाहिये। यह प्रतिष्ठित प्राचीन पत्र है। यद्यपि वेदव्याख्याता स्वर्गीय पं० भीमसेनजी की लेखनी का ध्यान कर सनातनधर्मी अभी सिर ही धुनते हैं, उस अभाव को कोई पूर्ण न कर सका, किन्तु वर्तमान संपादक पं० ब्रह्मदेवजी भी पत्र को उत्तम बनाने में कुछ उठा नहीं रखते। इस पत्रकी प्रतिष्ठा यथापूर्व बनी हुई है। मुरादाबाद की "सनातन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मपताका' अपनी पुरानी चाल पर ही है। दुःख है कि इसके सुयोग्य संपादक दैवी विपत्ति से बार-बार ग्रस्त होते हैं, तथापि धर्म की सेवा वे उत्साह से ही करते हैं। कुछ दिन से नगीनाबाबा के 'वेदानुवचन' का अनुवाद इस पत्रिका में आरम्भ हुआ है—यदि योग्यता से हो सका तो यह काम महत्व का होगा। महामण्डल की 'निगमागमचन्द्रिका' (काशी) ने आकार में अच्छी उन्नति की है, यह सुन्दर चित्रों से भी सुसज्जित होने लगी है, और इस मँहगी के जमाने में कागज आदिका सौष्ठव भी आश्चर्यजनक है। लेख भी कोई-कोई मार्के का निकल जाता है, किन्तु श्री भारतधर्ममहामण्डल ने जो नया धार्मिक लिट्रेचर तैयार कर लिया है—उस ही के प्रमाण इसके लेखोंमें पद-पद पर दिये जाते हैं। पुराने आर्प प्रमाणों की अब आवश्यकता नहीं समझी जाती। बात भी ठीक है, इस नवीनता के युग में 'सनातनधर्म' ही कबतक पुराने 'बाबा आदम' के जमाने के प्रमाणों के आधार पर पड़ा रहे। अस्तु। मेरठ के 'धर्मोदय' (यू० पी० मण्डल के मुखपत्र) की उन्नति पं० कन्हैयालाल जी के स्वर्गवास से रुक गई। सब काम अकेले वृद्ध पं० गोकुलचन्द जी के सिर आ पड़ा। अतः इन दिनों की संख्याएँ इसकी उतने महत्व की नहीं। आशा है, फिर उन्नति करेगा। इन्द्रप्रस्थमण्डल के मुखपत्र 'धर्मदिवाकर' का शायद मध्यान्ह से पहले ही अस्त हो गया, यह दुःख की बात है। गो० श्री तुलसीदास जी के साहित्य पर विचार करने वाली तुलसीसत्संग महासभा अयोध्या का 'तुलसीपत्र' हमें नया दर्शन देने लगा है। लेख इसके योग्य सुपाठ्य होते हैं। सांप्रदायिक पत्रों में प्रयाग का 'वैदिक-सर्वस्व' अपने फन में उन्नति का शिखर ही पकड़ना चाहता है, शीघ्र ही 'गालिसम्राट्' पद का अधिकारी होगा। वृन्दावन का वैष्णवसर्वस्व कभी-कभी इकट्ठे दर्शन दे देता है। श्री वल्लभसंप्रदाय की हिन्दी वैष्णवधर्मपताका (मुम्बई) भी इस वर्ष बहुत कम प्रकाशित हुई है, गुजराती संस्करण इसका ठीक समय से चल रहा है। आर्यसमाज के पत्रों में मेरठ का भास्कर तो बन्द हो ही गया, वेदप्रकाश का भी बहुत दिन से प्रकाश नहीं है। धर्म और साहित्य की सेवा के लिए बेलनगंज आगरा से एक 'धर्माभ्युदय' नाम का पत्र निकला है। इसका दूसरा वर्ष चल रहा है। वैसे तो यह जैनधर्मावलम्बियों का पत्र है, किन्तु सब धर्मवालों के लिए इसके लेख लाभदायक हैं। किसी के विरोध के लेख नहीं होते। साहित्य संबन्धी लेख भी अच्छे हैं। साहित्य संबन्धी पत्रों में मुरादाबाद की प्रतिमा' उन्नति पर है, छोटे-छोटे उपन्यास तो इसके रोचक हैं ही, किन्तु इस वर्ष दो तीन आलोच-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाएँ भी इसमें मार्के की निकली हैं। आशा है यह इस मार्ग पर अधिक अग्रसर होगी। 'यत्र' का भी 'प्रसंग' छेड़ती रहे, चिन्ता नहीं। गया की 'लक्ष्मी' समय का पालन करने लगी है, लेख भी उन्नति पर है। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (काशी) 'हिन्दी चित्रमयजगत्' (पूना) 'विद्यार्थी (प्रयाग) आदि यथावस्थित साहित्य सेवा में तत्पर हैं, किन्तु इतने उन्नत इन पत्रों की भी समय-व्यवस्था में गड़बड़ हो ही जाती है, कई वार वहुत विलम्ब कर निकलते हैं। 'एजूकेशनलगजट' (प्रयाग) और 'स्वदेशवान्धव' (आगरा) भी यथापूर्व ही हैं। 'सम्मेलनपत्रिका' (प्रयाग) के वहुत काल से दर्शन नहीं हुए, विदित नहीं चलती है या नहीं। 'हितकारिणी' (जवलपुर) 'व्यापारी' (जुही) कृषिसुधार' (मैनपुरी) और गृहस्थ (गया) भी हमारी दृष्टि के अगोचर हैं। 'पुरुषार्थ' नैयाणा (गढ़वाल) भी न जाने कहाँ पुरुषार्थ कर रहा है ? खेद है कि आगर (मालवा) की चन्द्रप्रभा के लिए विना पूर्णिमा ही आमवस्या आ गई। हम फिर ईश्वर से द्वितीया होने की प्रार्थना करते हैं। साथ ही यह प्रसन्नता भी है कि धनोरा मण्डी की मनोरमा फिर निकली है, और अच्छे ढंग से निकली है। साहित्यसेवियों को इसकी उन्नति पर ध्यान देना चाहिए। गहमर का 'जासूस' मनोरंजन की सामग्री अच्छी प्रस्तुत कर रहा है, वरावर चलता है। इसका सहचर 'दारोगा-दफ्तर' भी अच्छी उन्नति पर है। यह तो पुराना, किन्तु हमारे लिये नया है। इसके जासूसी उपन्यास बहुत ही मनोरंजक और सुघटित होते हैं। आदि में थोड़े से पृष्ठों में छोटे-छोटे शिक्षाप्रद उपन्यास व व नोट भी लिखे जाते हैं। लहरी प्रेस की 'उपन्यास लहरी' भी भूतनाथ की विस्तृत जीवनी के सिवा छोटे-छोटे उपन्यास भी अच्छे निकाल रही है। और भी प्रायः सव ही पूर्वोक्त साहित्य संवन्धी पत्र प्रतिमास १-२ गल्प उपन्यास के रूप में अवश्य ही निकालते हैं। मानो आजकल गल्प ही साहित्य का मुख्य अंग माना जा रहा है। तथापि दुःखान्त गल्प ही आजकल अधिक पसन्द किये जाते हैं विशेषतः जो किसी के आत्महत्या कर मर जाने पर समाप्त होते हों। उनमें से वहुत से गल्प तो केवल पृष्ठ पूर्ति के ही लिये होते हैं। अस्तु।

हर्ष की वात है कि चिकित्सक (कानपुर) सुधानिधि (प्रयाग) वैद्य (मुरादावाद) और वैद्य-कल्पतरु (अहमदावाद) ये सव ही आयुर्वेद के पत्र उन्नति पर हैं। हिन्दी मासिक पत्रों में सवसे अधिक समय की पावन्दी आजकल इन वैद्यक पत्रों में हो रही है। ये प्रायः सव ही ठीक समय पर निकलते हैं। आयुर्वेद की उन्नति के लिए इस समय जनता का वहुत कुछ कर्तव्य भी है, उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही की सूचना इनके द्वारा मिला करती है। त्रैमासिकी वैद्यसम्मेलनपत्रिका भी कभी-कभी दर्शन देने लगी है। आयुर्वेदमहामण्डलकार्यालय मद्रास इसका प्रकाशन स्थान है। आयुर्वेदमहामण्डल की मुखपत्रिका होने के कारण इसके लेख उन्नत होने ही चाहिए। हाँ, आयुर्वेद सम्बन्धी सुधावर्षक अब सुधावर्षण नहीं करता, शायद सुधा की इस घोर काल में कमी हो गई हो।

जातीय पत्रों में 'गौड़ हितकारी' (मैनपुरी) यथावत् चल रहा है, 'ब्राह्मण-समाचार' के वन्द हो जाने पर यह उन्नति की आशा लगाये हुए है, मासिक से पाक्षिक भी होना चाहता है। सहायता के लिए इसका कानों के पर्दे तक डालनेवाला आन्दोलन अब भी गौड़-जाति को न जगावे तो आश्चर्य ही है। 'सनाढ्योपकारक' (आगरा) और 'चतुर्वेदी' (आगरा) भी उन्नति पर हैं। 'जांगिड़ा समाचार' (देहली) के कुछ दिन से अनियत दर्शन होते हैं। 'सारस्वत खत्री सेवक' (लखनऊ) का भी कुछ पता नहीं मिलता। कई एक अन्य भी जातीय पत्र इस वर्ष आये थे, किन्तु नियत रूप से उनके अंक नहीं। उनका परिचय मात्र हम पाठकों को दे देते हैं। अग्रवाल (कलकत्ता) खण्डेलवाल जैन (गौतमपुरा मालवा) जैसवाल जैन (मानपाड़ा आगरा) इत्यादि।

अन्य भाषाओं के कई एक सहयोगी 'ब्रह्मचारी' पर परिवर्तन रूप में कृपा करते हैं हम उनके कृतज्ञ हैं किन्तु स्थानाभाव से उनकी आलोचना यहाँ नहीं की जा सकी।

संस्कृत पत्रों का इकदम अस्त हो जाना बहुत ही दुःख की बात है। सबसे पुराना 'विद्योदय' (भाटपाड़ा जि० चौबीस परगना, बंगाल) ही अब भी उदित है, और अच्छी साहित्य सेवा कर रहा है कलकत्ते से 'संस्कृत-साहित्य परिषत्पत्रिका' और निकली है, यह उन्नत पत्रिका है। ईश्वर इसे चिरायु करें।

हमें अन्यान्य पत्रों से विदित है कि अब हिन्दी पत्रों के लिए उन्नति का वर्ष आरंभ हुआ है; और कई नये साप्ताहिक और मासिक पत्र कई स्थानों से निकलते हैं, किन्तु हमें अभी उन नये सहयोगियों का विशेष परिचय प्राप्त नहीं, अतः हम उनके संबन्ध में कुछ लिखने में असमर्थ हैं। शनैः शनैः स्वयं उनका परिचय प्राप्त कर लेने पर अपने पाठकों को भी परिचय दे सकेंगे।

यहाँ हम अपने माननीय सहयोगियों को इतना स्मरण करा देना अनुचित नहीं समझते कि जिस प्रकार (ब्रह्मचारी) वर्षान्त वा वर्षारम्भ में अपने सह-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योगियों की चर्चा कर देना अपना कर्त्तव्य समझता है, इस ही प्रकार यदि अन्य सहयोगी भी किसी समय अपने परिचित पत्रों का जिक्र कर दिया करें, तो वर्तमान काल के साहित्य-क्षेत्र का परिचय भी सब पाठकों को मिलता रहे, और परस्पर के अनुभव से लाभ उठाने का व अपनी-अपनी त्रुटि समझने का भी अवसर प्राप्त होता रहे।

ब्रह्मचारी अपनी दशा के संबन्ध में विशेष क्या कहे, जैसा कुछ है, प्रिय पाठकों के सम्मुख है। हमारे पाठक यह तो अनुभव करते ही होंगे कि इतनी कठिनता के समय में भी ब्रह्मचारी ने अबतक न अपना आकार पलटा, और न मूल्य बढ़ाया। लेखों के संबन्ध में भी इस पत्र में गहन शास्त्रीय विचार देखने की इच्छा रखनेवाले अपने पाठकों का पूर्ण परितोष तो हम नहीं कर सके, किन्तु सामयिक घटनाओं पर जो लेख ब्रह्मचारी ने गतवर्ष निकाले, उनकी सनातनधर्मी संसार में कद्र देखकर यह पत्र अपने 'बालचापल' पर भी कुछ साहस रखता है। 'सभ्यता' शीर्षक लेखमाला ब्रह्मचारी में इस वर्ष मार्के की निकली है। और उसे बहुतों ने पसन्द किया है। हमें खेद है कि एक दो सहयोगियों के साथ शुष्क विवाद में पड़कर ब्रह्मचारी को कुछ अपने और अपने पाठकों के अनभिमत लेख भी इस वर्ष लिखने पड़े, किन्तु इस विषय में लाचार हो कर ही इसे ऐसा करना पड़ा है। यह स्वयं सब सहयोगियों की पूर्ण प्रतिष्ठा करता है, किन्तु जब अपनी प्रकृति से लाचार कोई इसे वा इसके प्रिय धर्म को हठात् छेड़े, तो यह न्याय आ ही जाता है कि—'अतिसंघर्ष करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन तें होई।' अस्तु—अपनी तरफ से ब्रह्मचारी कभी किसी से अनुचित छेड़छाड़ करना नहीं चाहता, यह हम अपने पाठक सज्जनों को पूर्ण विश्वास दिलाते हैं।

पूर्व के ५-६ मास नियत चलकर आगे समय की फिर बहुत गड़बड़ हुई। पिछली संख्याएँ कई महीनों के विलम्ब से निकलीं, इसपर हम फिर बार-बार लज्जित होते हैं, किन्तु बात यह है कि साधारण द्रव्य-व्यय को भी बहुत बचाते हुए सब काम आनरेरी चलाने पर विवश ऐसी दशाएँ आ ही पड़ती हैं। धार्मिक पत्रों के यथेष्ट ग्राहक इस काल में होते नहीं, जिस धार्मिक संस्था का यह मुख पत्र है, उस पर भी व्यय का बोझा अधिक नहीं डाला जा सकता। इसलिए संपादन और प्रकाशन दोनों बिना खर्च किये जाते हैं। जहाँ किसी व्यक्ति को कुछ भी असुविधा हुई कि पत्र में विलम्ब! पिछले महीनों में प्रकाशक पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कई बाधाएँ आ पड़ी, बस पत्र बन्द रहा। गृहस्थाश्रम के झंझट में पड़े हुए साधारण व्यक्ति को कोई बाधा न सतावे, यह बड़ी कठिन बात है। यदि वैतनिक कर्मचारी हों, तो वे काम न रुकने दें, किन्तु उतनी इस पत्र को द्रव्य की सुविधा नहीं। अस्तु, ईश्वर पर विश्वास रख कर एक बार फिर उत्साह से हम इस नवीन वर्ष का कार्यारम्भ करते हैं, और कुछ प्रवन्ध इस बार ऐसे कर लिये गये हैं—जिनसे आशा है कि अब वैसी दुरवस्था नहीं होगी। मनुष्य के विचार ईश्वर की कृपा से ही पूर्ण हो सकते हैं।

जो हमारे कृपालु ग्राहक महानुभाव विलम्ब से उकता कर इस पत्र पर रुष्ट होते हैं—उनसे हमें एक बात कहना है। पत्र में एक नहीं, कई एक त्रुटियाँ हैं, यह हम निःसंकोच मानने को तैयार हैं। किन्तु आप महानुभावों का इसके साथ कुछ कर्तव्य है या नहीं—इस पर भी तो कभी कुछ विचार होना चाहिये। समय कैसा है। धार्मिक विचारों पर से लोगों की रुचि किस प्रबलता से हटती जा रही है, धार्मिक उपेक्षा का घोरयुग धार्मिक-प्रवृत्ति का समूलनाश करने को उद्यत है। कुछ काल पूर्व धर्म-विरोध का युग था, प्राचीन सनातनधर्म से नये-नये धर्म विरोध करते थे, किन्तु वह युग इतना भीषण न था। विरोधी शक्तियों से सनातनधर्म कभी हार नहीं सकता, प्रत्युत विरोध होने पर इसके नये-नये जौहर निकलते हैं, जिससे विरोधियों को स्वयं हार मान लेनी पड़ती है, यह बात सदा से होती आई है। किन्तु अब विरोध का युग हट कर उपेक्षा का युग आरहा है। इस समय कुछ कल्पित उन्नति के भावों में लोग ऐसे आसक्त हैं कि धर्म की बात सुनना उन्हें बुरा लगता है। धार्मिक सभाओं और धार्मिक पत्रों के नाममात्र से जनता को घृणा होने लगी है। कुछ भी विचार करने पर इस युग की भीषणता बहुत अधिक प्रतीत होती है। विरोध करनेवालों को शान्ति से, युक्तियों से, प्रमाणों से समझा सकते हैं, उनका दुराग्रह हटा सकते हैं, किन्तु जो बात ही न सुनेगा—उसे कैसे समझावेंगे। वस्तुतः धर्म की उन्नति चाहनेवाली संस्थाओं और व्यक्तियों के लिए बहुत गम्भीर विचार का यह समय है, किन्तु धार्मिक संस्थाओं की गति ही निराली है। वे स्वयं दूसरे व्यापारों में हैं। व्यक्तियों का तो कहना ही क्या? सोता हुआ मनुष्य जैसे कभी कुछ बोल पड़ता है, वैसे हमारे नेताओं और देश के मान्य पत्रों के मुख से कभी कोई धर्म की बात निकल पड़ती है—आगे फिर वही धुन। तब इस समय जो इने गिने पत्र यथा-शक्ति कुछ धर्म का आन्दोलन कर रहे हैं—उनका जीवित रहना आपको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभीष्ट है या नहीं ? यह हमारा अपने पाठकों से प्रश्न है। यदि आप इस घोर युग में धार्मिक आन्दोलन को जीवित रखना चाहते हैं, तो धार्मिक पत्रों की त्रुटियों पर अभी ध्यान न दीजिये। उनके जीवन का, उनकी रक्षा का प्रवन्ध करिये। उस प्रबन्ध में मुख्यतः आपका कर्तव्य यही है कि आप इन पत्रों के कुछ ग्राहक बढ़ाने का यथाशक्ति प्रयत्न करते रहें और आपके विचार से जो इन पत्रों में त्रुटियाँ हैं, उन्हें सूचित करते रहें।"

'ब्रह्मचारी' के परिवर्तन में जो पत्र हमें प्राप्त होते थे उनकी समालोचना हम करते रहते थे। कई बार किसी विशेष पत्र में प्रकाशित किसी बातकी पृथक् पूरी समालोचनाएँ भी लिखी गई थी। उनमें से एक दिखा देना पर्याप्त होगा। इलाहावाद से पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के सम्पादकत्व में "सरस्वती" निकल रही थी। पहिले कहा जाचुका है कि द्विवेदीजी से "अनस्थिरता" शब्द पर जो एक लम्वा आलोचनात्मक विचार श्री वालमुकुन्दगुप्त ने चलाया था उसमें मैंने भी भाग लिया था। "सरस्वती" में प्रायः समालोचना के लिए मसाला रहता था। द्विवेदी जी कई वार अनधिकृत विषय पर लेखनी चला देते थे जिसका उत्तर देना आवश्यक हो जाता था। "सरस्वती" की समालोचना में मैंने कई लेख "ब्रह्मचारी" में लिखे थे; निदर्शन के लिए एक लेख यहाँ उद्धृत कर देता हूँ। कानपुर में आर्य समाज के साथ तीन शास्त्रार्थ हुए थे। एक शास्त्रार्थ मैंने किया था और दो शास्त्रार्थ युक्ति विशारद श्री कालूराम शास्त्री जी ने किये थे। ये तीनों शास्त्रार्थ "शास्त्रार्थत्रय" के नाम से पुस्तक रूप में मुद्रित हुए थे। यह पुस्तक जव द्विवेदी जी के पास पहुँची तो उन्होंने इसकी सरस्वती में समालोचना लिखमारी। उसी का उत्तर मेरे प्रस्तुत लेख में है—

"यह तो सर्वसंमत है कि हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में 'सरस्वती' का सिंहासन सबसे ऊँचा है, किन्तु साहित्य संवन्धी विपयों में ही यह पत्रिका अधिक भाग लेती रही है। राजनीति संवन्धी विषयों की तरह धार्मिक विपयों में भी सरस्वती प्रायः उदासीनता ही सदा प्रदर्शित करती रही है। अब देखते हैं कि वृद्धावस्था में श्रीमान् महावीरप्रसाद द्विवेदी जी का धर्मविश्वास समुद्र के रूप में उमड़ पड़ा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है और वह विचार एवं तर्क के बड़े-बड़े पहाड़ों को अपने उदर में लीन करने को तैयार है। अब तक तो आप कई बार 'रिफार्मर' की हैसियत से धर्म के अन्धअटल विश्वास की खान हैं यह विश्वास-वादियों को बधाई है। इस भीषण विश्वास का प्रमाण है अक्टूबर १९१८ की सरस्वती का 'धर्मान्ध्य' शीर्षक लेख। यह लेख कई पत्र-पत्रिकाओं में उद्धृत हो चुका है। जो सज्जन धार्मिक-निर्बलता के शिकार बने हुए हैं, धर्म-विचार की चर्चा जिनके कानों में गले हुए शीशे का काम करती है, उन्होंने बड़े उल्लास से इस लेख को धर्म-विचार की जड़ उखाड़ डालने के लिए ब्रह्मास्त्र समझ लिया है और कई आर्यसमाजी पेपरों के भी शास्त्रार्थ से बचने के लिए मानों यह एक अभेद्य दुर्ग हाथ आ गया। अतएव अपने नेता आचार्यों तक की इसमें कितनी मिट्टी पलीत की गई है, यह सब बिना सोचे ही वे इसका सिर से आदर करने को तुल बैठे हैं।

गत एप्रिल मास में कानपुर में सनातनधर्म-सभा और आर्यसमाज के बीच ३ शास्त्रार्थ हुए थे, उनका विवरण 'शास्त्रार्थ-त्रय' नाम से सनातनधर्म की ओर से प्रकाशित हुआ था, जिसका परिचय ब्रह्मचारी के पाठकों को पूर्व दिया जा चुका है। बदकिस्मती से कानपुर के बाजार में श्रीमान् द्विवेदी जी के हाथ में भी यह पुस्तक पड़ गई। पहले तो आप इसे पढ़कर मन ही मन दुःख पाकर रह गये, किन्तु यह कम्बख्त 'बुक पोस्ट' से फिर आपकी आँख के सामने दुबारा भी चली आई। अब कहाँ तक आप सहनशक्ति से काम लेते, फिर महावीरता भला किस दिन काम आती। बस, आपने ६ कालमों में अपने उद्गार निकाल ही तो डाले।

इस लेख में आडम्बर, दम्भ, ईर्ष्या, अभिमान और असूया के भावों के अभिव्यंजक वाक्य-समूह की यदि उपेक्षा की जाय, जैसा कि एक वृद्ध लेखक के लेख में करना उचित है, तो तीन आक्षेप बचते हैं। एक पत्र व्यवहार आलोचना आदि में व कहीं-कहीं शास्त्रार्थों में भी शिष्ट मर्यादा के विरुद्ध शब्दों का आपस में व्यवहार हुआ है। दूसरा यह कि शास्त्रार्थ की प्रक्रिया इस समय न केवल अनावश्यक किन्तु हानिकारक है, इसे सर्वथा हटा देना चाहिए, अपने अपने विश्वास से काम लेना चाहिए। तीसरा यह कि शास्त्रार्थ कर्ताओं ने कई एक ऐसी सिद्धान्त की बातें कहीं जिनसे द्विवेदी जी महाराज सहमत नहीं हो सकते, बस, वे सर्वथा अशुद्ध हैं, उनका खण्डन होना ही चाहिए। ये ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन बातें उक्त भावों से अलंकृत होकर द्विवेदीजी की लेखनी द्वारा प्रकट हुई हैं। पहली बात से हम ही क्या, सब ही विवेकी मनुष्य सर्वांश में सहमत होंगे। यह कोई नहीं मानता कि शिष्ट-मर्यादा के बाहर शब्द बोलना अच्छा है। हम निःसन्देह मानते हैं कि केवल धार्मिक ही नहीं, किसी प्रकार के भी शास्त्रार्थों में या आलोचनाओं में या और भी किसी व्यवहार में ऐसे शब्द आना बहुत बुरी बात है, ऐसे शब्दों के प्रयोक्ता अवश्य निन्दनीय हैं। किन्तु बात यह है कि निर्दोष मनुष्य संसार में दुर्लभ हैं। दोषों के वश में पड़कर समय-समय पर बड़े-बड़े शिष्ट भी बुरे काम करने को लाचार हो जाते हैं। इस ही लेख में उपदेशक विद्वानों को उपदेश देते हुए द्विवेदी जी महाराज कहाँ तक आपे से बाहर हुए हैं, इसके कुछ नमूने हम उद्धृत कर देते हैं —

'भगवान् ही ऐसे उपदेशकों से समाज की रक्षा करें', 'उसकी (उपदेशक की) धार्मिकता का विचार धर्मराज ही कर सकेगा', 'हाय, धर्म का अधःपात तो देखिए, जिनकी बुद्धि, विवेक जिह्वा और लेखनी का यह हाल है उन्हीं को भोले-भाले लोग धर्म का रहस्य समझाने के लिए बुलाते हैं, उनपर शाल दुशाले डालते हैं। उन्हें मालपूए खिलाते हैं और विदा करते समय उनकी मुट्ठी भी गरम करते हैं।' आगे भगवान् से अवतार शीघ्र लेने की पुकार करते हुए आप फरमाते हैं 'धर्म का चौथा पैर तोड़ा धर्मप्राण भारत के धर्मध्वजी पण्डितों ने', 'क्या ऐसे लोग भी शास्त्रार्थ करने और धर्म-रहस्य समझाने के अधिकारी हैं', 'ये विद्वच्चक्रचूडामणि ठहरे अहंकार के प्रत्यक्ष अवतार, इनकी हुंकार है—प्रलयपर्यन्त मेरे प्रश्न का उत्तर देनेवाला पैदा न होगा—भर्तृहरि मानों ये पक्तियाँ इन्हीं के लिए लिख कर छोड़ गये हैं—

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं।
तदा सर्वज्ञोस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।।

'आप अपनी साद्यन्त त्रुटिपूर्ण रचना पर दृक्पात नहीं करते', शास्त्रार्थ में भी तर्क का अंश कम है, कुतर्क, तर्काभास, छल और वितण्डा ही का अधिक', 'ऐसों के लिये त्रिलोकी को सचमुच ही शून्य समझना चाहिये', 'उनको समझाने या हराने वाला कहाँ ?' 'इन धर्मध्वजियों के मुकाबिले में तो हम ब्रह्म-समाज और राधास्वामी संप्रदाय के अनुयायियों को ही भले कहेंगे,' 'उस से पुण्य-प्राप्ति नहीं होती, कुछ और ही होता है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन नमूनों में पाठक देखेंगे कि द्विवेदी जी स्वयं शिष्ट-संप्रदाय का कहाँ तक पालन कर रहे हैं। धर्मोपदेशक विद्वानों की कितनी आपने अवहेलना की है। कितनी तुच्छ दृष्टि से उन्हें देखा है। उन्हें 'धर्मध्वजी' कहते हैं 'अज्ञ' बताते हैं, 'पाप भागी बनाते हैं। क्या आपने पता लगा लिया कि इन उपदेशकों में कोई विद्वत्ता नहीं ? क्या धर्म और दर्शन के तत्व आपसे कई गुना अधिक जाननेवाले इनमें नहीं ? फिर उन सबके सामने आपका यह अहंकार ! यह स्वरूप विस्मृति ! शास्त्रार्थ तो भला एक प्रकार का वाक्यसंग्राम है, उसमें आवेशवश किसी के मुँह से कुछ शब्द निकले तो निकले, अपने-अपने धर्म पर आक्षेप, प्रतिक्षेप होते सुन कर कुछ आवेश होना स्वाभाविक है, किन्तु समालोचनार्थ एक पुस्तक सामने आते ही आप की स्वयं क्या दशा हुई। आपको क्यों आवेश आया। अच्छा, जरा आपकी आरम्भ की पंक्तियाँ भी तो देखिये —

'आपही के (पं० कालूराम शास्त्री के) मौजे के कोई पण्डित कामताप्रसाद दीक्षित इसे बेचते हैं। आपकी बनाई हुई सभी पुस्तकें ये दीक्षितजी ही बेचते हैं। कुतुबफरोशी का काम इन्हीं के सुपुर्द है।'

हम यह पूछते हैं, कि भला द्विवेदी जी महाराज ! आपके पहिले दोनों वाक्यों में लोगों के न समझने लायक ऐसा कौनसा गहरा तत्व छिपा हुआ था, जिसे स्पष्ट करने को तीसरे वाक्य द्वारा आपको उनकी टीका करनी पड़ी। जो आप कहना चाहते थे, वह क्या पहले वाक्यों से नहीं कह चुके थे ? तब क्या एक भले आदमी को 'कुतुबफरोश' कहने की प्रबल लालसा ने ही आपसे वह वाक्य नहीं लिखवाया ? क्या ऐसा व्यक्तिगत क्रोध दिखा कर समालोचना लिखने वाले समालोचना करने के अधिकारी हैं ? आपकी समालोचना ग्रन्थ की समालोचना न होकर व्यक्ति की समालोचना हुआ करती है—यह हम कई बार सिद्ध कर चुके हैं—और फिर भी अनेकधा सिद्ध कर सकते हैं। फिर किसी ऐसे महानुभाव पर सबसे उच्चकोटि के पत्र में समालोचना लिखने का भार रहना, और इस तरह आपके शब्दों में उसकी 'मुट्ठी गरम' होना क्या अनौचित्य नहीं है ? क्या ऐसे मनचले समालोचकों ने धर्म और समाज के पैर नहीं तोड़े ? सच है—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

अब दूसरी शास्त्रार्थों की उपयोगिता या अनुपयोगिता की बात है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यान्य भी कई आधुनिक शिक्षा दीक्षा के अनुयायी सज्जन बार-बार यही घोषणा किया करते हैं कि धर्म के नाम पर शास्त्रार्थरूपी कलह करने की कोई आवश्यकता नहीं, अपने-अपने विश्वास के अनुसार सब को चलने दो, इत्यादि। किन्तु वस्तुतः विचार करने पर बात ऐसी नहीं, विचार की आवश्यकता है और पूर्ण है। विश्वास दो प्रकार का होता है—अन्धविश्वास, और उचित विश्वास। विना विचारे चाहे जहाँ विश्वास कर लेने का नाम अन्धविश्वास है, या कोई मनुष्य केवल अपनी बुद्धि के आधार पर कुछ भी निर्णय कर बैठे, और उस ही पर पक्का विश्वास कर ले, वह यही दृढ़ निश्चय करले, कि जो कुछ मैं समझ गया वही ठीक है, ब्रह्मा भी इसके विरुद्ध कहे तो मुझे मान्य नहीं— तब यह विश्वास भी अन्धविश्वास ही कहावेगा। अन्धविश्वास से कभी मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। धर्म का निर्णय कभी मनुष्य की बुद्धि से नहीं हो सकता। विश्वास हो तो शास्त्रोक्त सिद्धान्तों पर होना चाहिए, तब ही श्रेय होगा। द्विवेदी जी कहते हैं—'हम तो विश्वास पर चलने वाले हैं। धर्मशास्त्रों की पंक्तियाँ और प्रतीक देखकर अपने आचरण का नियमन करना हमारे लिए संभव नहीं' हमें एक उच्चकोटि का विद्वान् कहाने वाले के ये वाक्य पढ़कर आश्चर्य होता है, हँसी भी आती है। द्विवेदी जी महाराज! जब आप धर्मशास्त्र से धर्म निर्णय नहीं कर सकते, तो विश्वास किस पर करते हैं? धर्मशास्त्रोक्त सिद्धान्तों पर ही तो विश्वास किया जाता है। क्या आपका अन्तःकरण 'मनमौजी' से जो कुछ मान गया, उसही पर विश्वास कर लेना आप ठीक समझते हैं? यही 'आपापन्थी' अच्छी हो, तब तो आप के मत में शास्त्रार्थ ही क्यों, शास्त्र भी व्यर्थ ही हैं, उनके पढ़ने वाले भी वृथा ही समय और द्रव्य खोते हैं। सब अपने आप ही निश्चय कर लिया करें, या आप से पूछ लिया करें—शास्त्र बेचारों की आवश्यकता क्या है? असल बात यह है कि जब से यह 'आपा पन्थी' चली, अपनी-अपनी इच्छानुसार धर्म का नियम किया जाने लगा, मनमौजी आचरणों की प्रवृत्ति हुई तब ही से धर्म की यह दुर्दशा हुई। यह 'आपा पन्थी' पूरी धर्मिक दुर्बलता है। धर्म के विचार जिन्हें अच्छे नहीं लगते, धर्म की बात करने का जिन्हें अवकाश नहीं, धार्मिक विद्वान् जिनकी दृष्टि में सर्वथा हेय हैं, या स्पष्ट शब्दों में यों कहो कि धर्म जिनकी दृष्टि में निरी निकम्मी चीज है, वे ही आजकल इस अन्धविश्वास का ढकोसला आडम्बर के लिए सामने लाकर धर्म-विचारकों को फटकारते हैं, उन्हें भी धार्मिक लाइन से हटाते हैं, वस्तुतः इनको न विश्वास है न विश्वास का आधा नाम। पूर्वकाल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रोक्त मार्ग पर विश्वास होता था, विद्वान् अपने आप शास्त्रों के मनन से निश्चय करते थे, जो वैसा न कर सकते, वे शास्त्रज्ञों से पूछ कर अपने अन्तःकरण को संतुष्ट करते थे, तब ही धर्म का आदर था, तब ही धार्मिकता थी, तब ही शास्त्रों का प्रयोजन था। जब अज्ञान, द्वेष, या दम्भ के पाश में पड़कर शास्त्रों की व्याख्या असत्मार्ग पर चलाई जाय, जब शास्त्रीय सिद्धान्त भ्रम के चक्र में पड़कर विलीन होने लगें, तब शास्त्रार्थों की भी परम आवश्यकता आ पड़ती है। उस समय मिथ्याचारों को रोकने के लिए बड़े-बड़े विद्वान् ही नहीं, आचार्यों और संसार-विरक्त ज्ञानियों को भी शास्त्रार्थ करने पड़ते हैं। ऋषि, मुनियों में भी ऐसे शास्त्रार्थ होते रहे थे। भगवान् व्यास ने वेदान्तसूत्र में श्रुति की अन्यथा व्याख्या करने वाले सब प्रतिवादियों का जोर-शोर से निराकरण किया है और उस प्रकरण का भाष्य करते हुए श्री शंकराचार्य भगवत्पाद ने यही लिखा है कि अन्यथा-वादियों पर विश्वास करके लोग सन्मार्ग से वंचित हो जायँगे—इसलिए उनका खण्डन आवश्यक है। संसार में सब प्रकार के मनुष्य होते हैं। सब समित्पाणि होकर सद्गुरु, 'शिष्यस्तेहं शाधि मां' कहने वाले ही नहीं होते, उनकी संख्या विरल है। अधिकांश सामाजिक मनुष्य युक्तिवाद और तर्काभासों के आडम्बर में आ जाते हैं, अधिक बोलने वालों पर ही उनकी श्रद्धा जम जाती है। केवल सरलता से विषय मात्र का प्रतिपादन कर देने पर भी सब लोग मुख्य तत्व पर नहीं पहुँच सकते, इसलिए प्रतिपक्षी को सबके सामने कमजोर सिद्ध करने के, उसे 'निगृहीत' करने के नियम भी शास्त्रकारों ने ही बनाये हैं। गाली गलौज और असभ्य-भाषण या व्यक्तिगत आक्रमण बेशक बहुत बुरी बात है, किन्तु सिद्धान्त प्रतिपादन में प्रतिपक्षी कहाँ-कहाँ गिर रहा है, किस प्रकार वह छल से अपनी कमजोरी को छिपा कर मुंहजोरी से जनता में अपनी सचाई दिखाना चाहता है, कहाँ-कहाँ वह शास्त्रार्थ के शास्त्र-निश्चित नियमों से दूर हटता है, यह सब अवश्य दूसरे वादी को प्रकट करना पड़ता है और उस प्रकार के अधिकारियों पर उसका फल भी पूर्ण होता है। जिनको इस मार्ग में रुचि नहीं, जो इसे व्यर्थ समय खोना समझते हैं वे उसमें संमिलित न हों, कोई जबर्दस्ती नहीं। किन्तु जिनकी अन्तःकरणवृत्ति इस प्रकार निर्णय चाहती है, उनकी निन्दा करने का उन्हें क्या अधिकार है? शास्त्रार्थों को व्यर्थ कहने वाले सज्जनों से हम पूछेंगे कि यदि भगवान् शंकराचार्य आपके मत के होते, अपने-अपने विश्वास पर सबको चलने दो, यही सिद्धान्त वे मान बैठते, तो क्या आज वैदिक धर्म का नाम निशान रहता? क्या वैष्णव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचार्य महानुभाव शास्त्रार्थ न करते, तो वे भक्ति-प्रतिपादक-संप्रदाय जीवित रह सकते ? यह क्यों, आर्यसमाज का उत्थान जिस प्रवलता से हुआ था, सनातनधर्म के प्रातःस्मरणीय विद्वान् उस समय खंभ ठोक कर खड़े न होते, तो क्या आज सनातनधर्म की गली-गली कदर्थना न दिखाई देती ? सामाजिक धर्म-रक्षा के लिए शास्त्रार्थ अत्यन्त प्रयोजनीय हैं, और इस ही कारण बड़े-बड़े शिष्ट योग्य विद्वान् इस परिपाटी में प्रवृत्त हो चुके हैं।

आजकल भी राजनैतिक विषयों में वाद, प्रतिवाद बड़े जोर-शोर से होते हैं, हर एक नेता अपना मत न मानने वालों को समझाता है, युक्ति से दवाता है, फटकारता भी है। ऐसे वादों में शिष्टमर्यादा का अतिक्रमण भी वहुधा होता है, किन्तु धार्मिक-शास्त्रार्थों से घृणा करने वाले सज्जन ही उसे जीवन का चिन्ह मानते हैं। उसकी अत्यन्त आवश्यकता वताते हैं। श्रीमान् द्विवेदी जी ने भी साहित्य संवन्धी मतभेद रखने वालों से कई शास्त्रार्थ किये हैं, अव भी करते रहते हैं। 'अनस्थिरता' और 'निरंकुशता' के शास्त्रार्थ तो परम प्रसिद्ध हैं। इनमें शिष्ट मर्यादा का कहाँ तक पालन हुआ है उसका नमूना आज्ञा हो तो पुरानी सरस्वती की फाइलों से हम बता दें। तव वात यही है कि जिस वस्तु को जो प्रयोजनीय समझता है उसके संवन्ध में शास्त्रार्थ करना भी वह उचित मानता है। राजनैतिक लोग राजनीति में और साहित्यसेवी साहित्य में शास्त्रार्थ उचित समझते हैं। संस्कृत विद्या के व्याकरण, न्याय आदि जिन दिनों प्रयोजनीय समझे जाते थे, उन दिनों उनमें शास्त्रार्थ का खूब रिवाज था। आजकल धर्म बेचारे को बहुत से लोग निकम्मा समझते हैं, वे ही धर्म-विचार और धार्मिक शास्त्रार्थों की निन्दा करते हैं और विषयों में विचार या शास्त्रार्थ करते रहने पर भी धार्मिकशास्त्रार्थों की निन्दा करना स्पष्टधार्मिक दुर्बलता है। विश्वास का वहाना मात्र है। धर्म को व्यर्थ वस्तु समझने वाले महोदय धार्मिकशास्त्रार्थों की निन्दा करते हैं, या जो अपने मन्तव्यों की सचाई स्पष्ट जानते हैं, वे शास्त्रार्थों से घृणा के वहाने वचना चाहते हैं। सन्मार्ग के अन्वेषण की यदि आवश्यकता है, तो शास्त्रार्थ अवश्य होने चाहिए, हाँ, विचार-रूप शास्त्रार्थ होने चाहिए, द्वेषमूलक या दम्भमूलक कदापि नहीं।

अव कुछ शास्त्रार्थों की उन सिद्धान्त की बातों को भी देखिए, जिन पर द्विवेदी जी महाराज बिगड़े हैं। आर्यसमाज के 'प्रतिमा' शब्द के अर्थ आदि पर जो उन्होंने लिखा है, उस पर हमें कुछ वक्तव्य नहीं। सनातनधर्म पक्ष पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपके दो आक्षेप हैं, एक तो यह कि 'पुराणों को अनादि ईश्वरप्रोक्त क्यों बताया गया।' इसपर आप बतंगड़ बनाते हैं, 'लीजिए, अब तक वेद ही ईश्वर-कृत थे, अब पुराण भी हो गये। धर्माचार्यों के मौजी मनोमन्दिर के कंगूरों पर ईश्वर की कोई नई आयत उतर आई' इत्यादि। द्विवेदी जी वेद का ईश्वर-प्रोक्तत्व भी कहाँ तक ठीक मानते हैं, यह इस लेख के ढंग से स्पष्ट हो जाता है। अच्छा हुआ, द्विवेदी जी ने इस ही लेख में अपने विश्वास के ढकोसले की पोल खोल दी, नहीं तो वृथा लोग धोखे में आते। यह तो वही हुआ 'उघरहि अन्त न होय निवाहू'। रही नई आयत की बात, सो इसका सबूत तो उस शास्त्रार्थ में ही लिखा हुआ था, किन्तु द्विवेदी जी तो नई बात देखते ही झुंझला उठे, वहाँ प्रमाण देखता कौन? जरूरत भी देखने की क्या थी। आपके ज्ञान से बाहर की बात कोई कहे तो वह तो तर्काभास है। किन्तु द्विवेदी जी! 'एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वा-गिरस इतिहासः पुराणम्' (बृहदारण्यक उपनिषत्) इत्यादि 'नई आयत है या पुरानी', जिसमें वेद की तरह इतिहास और पुराण को ईश्वर का निश्वास लिखा है। हाँ, यह हो सकता है कि आपने न देखी हो, इसलिये यह नई हो। किन्तु महाराज! ऐसी बहुत-सी बातें होंगी जो सुनने पर आपको नई मालूम पड़ें, किन्तु हों वे पुरानी। क्या आपने अपने ज्ञान में संसार को परिच्छिन्न ही कर डाला। यह कोई जरूरी बात नहीं कि सरस्वती संपादक होने से सर्वज्ञ भी हो ही जाय। आप तो आरम्भ में ही इस शास्त्रार्थ के शास्त्रीय विषयों की आलोचना में अपनी असमर्थता प्रकट कर चुके थे, फिर यह वृथा साहस आपने क्यों किया? किन्तु अनधिकारचर्चा की यह आदत तो आपकी पुरानी है। आप सदा से अनधिकार चर्चा कर अपनी सर्वज्ञता की डिण्डिमी पीटते रहे हैं, फिर अब कैसे उस आदत से बाज आवें। यह युक्ति आपको बड़ी प्रबल सूझ पड़ी कि 'ईश्वरोक्त पुराणों में अहल्या, तारा आदि की कथा कैसे?'. अब जिन बातों का शतशः समाधान ग्रन्थों में लिखा है, उनको आप जैसे प्रतिष्ठित विद्वान् दोहरावें तो इसे अनधिकार-चर्चा के सिवाय क्या कहा जाय? महाराज! ये कथाएँ वेद में भी हैं, और मीमांसक आदि ने इनके समाधान भी किये हैं। फिर वेद को छोड़कर पुराण में ही ये दोष क्यों माने जायें यही बात तो शास्त्रार्थ में ही कही गई थी, जिसपर बिगड़ कर आपने दूसरा आक्षेप किया है। आप कहते हैं 'वेदों में भी अश्लीलता क्यों बताई गई।' शास्त्रार्थ का विषय था 'पुराण की वेदानुकूलता,' प्रतिवादी पुराण में अश्लीलता बताकर आक्षेप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता था, तब वेद में भी वैसी उनकी अभिमत अश्लीलता बता देने के अतिरिक्त वेदानुकूलता सिद्ध करने का उपाय क्या था? पुराण के विषय वेद में मिलें, तब ही तो पुराण वेदानुकूल कहे जा सकेंगे। फिर जब हमारी दृष्टि में वेद, पुराण दोनों मान्य हैं और प्रतिपक्षी पुराण पर अश्लीलता का दोष लगाता है, वह केवल वेद को उपादेय समझता है, तब उसे यदि बताया जाय कि यह दोष तुम पुराण पर मत छोड़ो, तो उसमें भला अपराध क्या हुआ?. द्विवेदी जी कहते हैं—यह क्यों न सोचा गया कि इसमें रूपक है या नहीं? अजी साहब, रूपक देखने की वहाँ आवश्यकता क्या थी? शास्त्रार्थ किसी नियत विषय पर हुआ करता है, या संसार भर की बातों का फैसला उसमें हो जाता है। पुराण वेदानुकूल हैं या नहीं, बस, यही तो शास्त्रार्थ था? जब पुराण जैसी बातें वेद में दिखा दी गईं, तो वह विषय समाप्त हो गया। अब रूपक है, तो दोनों जगह है, रूपक से वेद का समाधान करना हो तो वैसे ही पुराण का भी कर लिया जाय।

श्रीमान् द्विवेदी जी का काव्यप्रकाश का पण्डित्य तो 'निरङ्कुशता' के समय ही बहुत अच्छी तरह प्रकट हो गया था, परन्तु इस लेख में अब आप काव्यप्रकाश की दुहाई बड़े जोर से देने लगे हैं, तो हमें सविनय यह पूछना ही पड़ेगा कि, क्यों महाराज! 'पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन्' इत्यादि मन्त्रों में यदि रूपक मान लिया जाय, तो क्या काव्यप्रकाश के मतानुसार अश्लीलता न रहेगी। क्या व्रीड़ाव्यंजकता भी जाती रहेगी? आप तो जानते होंगे कि शब्द प्रकृत में चाहे किसी अर्थ में लिया गया हो, किन्तु अर्थान्तर भी उसका यदि व्रीड़ाजनक है, तो वह शब्द व्रीड़ाव्यंजक अश्लील जरूर माना जाता है। फिर इस अश्लीलता से आप उन स्थलों का पीछा कैसे छुड़ा सकते हैं? राजशेखर ने काव्यादि की समता दिखाते हुए स्पष्ट ही लिखा है कि 'तदिदं श्रुतौ शास्त्रे चोपलभ्यते।' ऐसी अश्लीलताएँ श्रुति और शास्त्रों में भी मिलती हैं। इतने ही पर आपका आकाश पाताल एक करना, और वक्ता को अनभिज्ञ ठहरा लेना क्या न्याय है?

अन्त में हम द्विवेदी जी महाराज से यही विनय करते हैं कि आप व्यक्तिगत संबन्ध से समालोचना में काम लेना छोड़ दें, यह आपके स्वरूप के अनुरूप नहीं। कम से कम अनधिकार-चर्चा तो आपको छोड़ ही देनी चाहिए। और आपके शब्दों में कहें तो यह भी एक बार सच्चे अन्तःकरण से परमात्मा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामने आपको कहना चाहिये—

क्षन्तव्यो मेऽपराधोऽनधिकृतविषये
साहसाज्जात ईश।"

आर्य समाज के साथ शास्त्रार्थों का दौर उन दिनों खूब चल रहा था। स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थों में प्रमाण का झगड़ा उठ खड़ा होता था। किस ग्रन्थ को प्रमाण रूपमें उपस्थित किया जाय इस झगड़े का निपटारा न होने से कई शास्त्रार्थों के कार्यक्रम फेल हो जाते थे। मुझसे अनेक उपदेशक मित्रों ने आग्रह पूर्वक कहा और लिखा कि "ब्रह्मचारी में एक लेख लिखकर इस झगड़े को हमेशा के लिए समाप्त कर दो।" आर्य समाज की ओर से भी कहा जाने लगा कि आपलोग बैठ कर प्रमाण ग्रन्थों का निर्णय क्यों नहीं कर लेते। एक बड़े शास्त्रार्थ का संदर्भ भी उपस्थित था। इस पर मैंने ब्रह्मचारी में एक लेख लिख दिया। वह इस प्रकार था—

प्रमाण का झगड़ा

पाठकों को प्रायः विदित हो चुका होगा कि आज प्रायः दस माह से श्री सनातनधर्ममण्डल यू० पी० (मेरठ) और श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा यू० पी० में परस्पर शास्त्रार्थ की बात चल रही है। किन्तु नियमों की उलझन अभी नहीं सुलझ पाती, और धर्मजिज्ञासु-जनों को एक महान् शास्त्रार्थ देखने का अवसर नहीं मिलता। आरम्भ में स० ध० मण्डल ने इस उद्देश्य से शास्त्रार्थ का प्रस्ताव उठाया था कि हर एक सभाओं में जो छोटे-छोटे शास्त्रों के खिलवाड़ होते हैं—और दोनों पक्ष 'हम जीते-हम' जीते की डीगें मारा करते हैं—इससे जनता उलटी भ्रम में पड़ती है। इसलिए उचित यह है कि दोनों पक्ष अपने-अपने योग्य-योग्य सब विद्वानों को एक बार इकट्ठा कर कई दिन लगातार एक महाशास्त्रार्थ करा लेवें और इसमें दोनों पक्षों की उक्ति प्रत्युक्ति लेखबद्ध रहें, जिससे किसी को अन्यथा कहने का अवसर न मिले, और जिज्ञासु-जनता को पूर्ण लाभ हो। बात बहुत अच्छी थी, किन्तु उनके लिये कि जो यथार्थ में सत्यासत्य-निर्णय चाहते हों। भला श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा कब ऐसे दाव में आने वाली ठहरी। प्रतिष्ठा बचाने को पत्र-व्यवहार तो उसने आरम्भ कर दिया, किन्तु बात टालमटोल में पड़ जाय, इसके लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई यत्न—कोई चाल—उठा न रक्खी। मण्डल के दिए हुए विषय पलटे, समय और नियम आदि के निर्णय में अपना ही प्रधान अधिकार जमाया। सब कुछ होते-होते अन्त में एक बात पर आ अटकी। बात वही जो सब जगह प्रायः उपस्थित होती है अर्थात् प्रमाणों की बहस। आर्यप्रतिनिधि सभा कहती है—कि मण्डल अपने पक्ष-समर्थन में केवल वेद की चार संहिताओं के प्रमाण दे सकेगा, और हम मण्डल के विरोध में वेद, स्मृति, पुराण वगैरह सब के प्रमाण देंगे। मण्डल वाले कहते हैं—भाई, या तो दोनों पक्ष केवल वेद को ही प्रमाण रक्खो, या आपके आचार्य स्वामी दयानन्द जी ने जिन-जिन ग्रन्थों को प्रमाण—कोटि में मान लिया है—उनको आप भी प्रमाण मान लो और हम हमारे सब प्रमाणों को शास्त्रार्थ के लिये मान लेते हैं। या हमें शास्त्रार्थ के समय सब प्रमाणों की विवेचना के लिये बाध्य करते हो तो तुम भी कम-से-कम स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों को तो प्रमाण-कोटि में ले लो। किन्तु प्रतिनिधि सभा एक भी बात नहीं सुनती। मण्डल पर जो वह जोर डालती है कि पुराण आदि को शास्त्रार्थ में आने देना नहीं चाहते, तो इनको स्पष्ट अप्रमाण लिख दो, किन्तु जब उससे कहा जाता है कि आप अपने पर ही यह न्याय क्यों नहीं लगातीं, यदि स्वामी जी के ग्रन्थों को शास्त्रार्थ में आप नहीं आने देना चाहतीं, तो उनको अप्रमाण लिख दीजिये—तब वह चुप हो जाती है। तात्पर्य यह कि दोनों अपने-अपने हठ पर डटे हुए हैं—और इसी में शास्त्रार्थ टल जाता दीखता है। और-और सभाओं में भी यह प्रश्न शास्त्रार्थ के समय उठ खड़ा होता है—और इस पर बड़ा विवाद उठकर बहुत सा समय नष्ट होता है। हमारे विचार से क्या ही अच्छा होता कि इस अवसर पर यू० पी० मण्डल और आ० प्र० सभा पहले इस ही बात पर शास्त्रार्थ कर लेते कि कौन-कौन ग्रन्थ प्रमाण होने चाहिये, या शास्त्रार्थ के समय उभय पक्ष के क्या-क्या प्रमाण रहने चाहिये? और 'प्रामाण्य वाद' के आधार पर इसका कुछ भी निर्णय हो जाता तो, बहुत बड़ा लाभ होता। सब शास्त्रार्थों का रास्ता साफ हो जाता। अब भी यदि इन लोगों की यथार्थ निर्णय की आकांक्षा है—तो इस विचार को सभ्यता और विवेक से प्रस्तुत करें जिससे उचित लाभ हो।

हरिद्वार के गुरुकुल और विद्वत्समिति के सुप्रसिद्ध 'वर्णव्यवस्था' वाले शास्त्रार्थ के समय भी पत्रव्यवहार में यही विवाद बड़े जोर शोर से छिड़ा था, किन्तु लाला मुंशीराम जी (वर्तमान स्वामी श्रद्धानन्द जी) ने अपना हठ निःसार देख स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों का प्रमाण लेना मान लिया था,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्योंकि उनको शास्त्रार्थ करवाना था। किन्तु प्रतिनिधि सभा ऐसा नहीं करती। साथ ही यह भी हमें कहना ही पड़ता है कि ला० मुंशीराम जी ने जिस सभ्यता से पत्र-व्यवहार का निर्वाह किया था, प्रतिनिधि-सभा के प्रधान लाला घासीराम जी वैसा न कर सके। इस पत्र-व्यवहार में जोश, तेजी, और अनुचित कटाक्षों की मात्रा बहुत ही बढ़ गई है। लाला घासीराम जी को अपनी तर्कशक्ति का बेहद अभिमान है, जैसा कि उनके पत्रों से पदे-पदे टपकता है। चाहे इस विवाद में आपकी तर्कशैली कितनी ही गिरी हुई है, किन्तु आप अपने वकालत के रंग-में-रंग कर उसे बड़ी पुर-असर सिद्ध करने से कदापि नहीं हटते। अस्तु, हम यह विवाद मिटाने के लिये और शास्त्रार्थ का रस्ता साफ कर देने के लिये दोनों पक्षों से थोड़ा सा निवेदन करना चाहते हैं। और हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे इस तुच्छ से कथन पर यदि दोनों पक्ष के सज्जन निष्पक्षपात विचार करें और यथार्थ में शास्त्रार्थ करना चाहें—तो निम्नलिखित प्रश्नों पर दो-दो अक्षरों के छोटे-छोटे उत्तरों से अनायास यह विवाद मिट सकता है, यदि इन प्रश्नों को वाक्य-जाल में फँसा कर और-का-और रूप न दिया जाय, और केवल हाँ या ना में स्पष्ट उत्तर परस्पर दे दिया जाय।

प्रथमतः विषय की पोजिशन पर विचार कर लेना चाहिये कि उसमें किस प्रमाण कि जरूरत है। अभी तक प्रतिनिधि सभा और मण्डल में परस्पर शास्त्रार्थ के लिये दो विषय निर्वाचित हुए हैं। एक तो यह कि 'आर्यसमाज-मत वेदोक्त है या वेदविरुद्ध'। अब जो कुछ भी बुद्धि रखता है, वह समझ सकता है कि इस विषय में स्मृति, पुराण आदि प्रमाणों की कहीं भी कोई भी गुंजायश नहीं। आर्यसमाज के मन्तव्यों को वेदोक्त सिद्ध करने के लिये पुराण, स्मृति आदि सर्वथा अप्रयोजक हैं। मण्डल जिन मन्तव्यों को वेदविरुद्ध कह कर आक्षेप करेगा, उन्हें वेदोक्त सिद्ध करने के लिये वेद का ही प्रमाण प्र० नि० सभा को देना होगा, यह साफ और मोटी बात है। जरा लाला घासीराम जी अपनी भयंकर तर्कशक्ति को काम में लेकर सीधा-सीधा बतावें तो कि वे स्मृति, पुराण आदि का प्रमाण देकर प्रकृत-विषय में क्या साधन करेंगे? मान लो कि सनातन ध० मण्डल ने किसी आर्य समाज के मन्तव्य पर आक्षेप किया कि यह वेदोक्त नहीं, और मान लो कि आर्य समाज ने उस मन्तव्य को स्मृति,समर्थन स्मृति पुराण या ब्राह्मण में दिखा दिया, तो पुराण या ब्राह्मण में उक्त होने पर वेदोक्त तो वह न हो सका, क्योंकि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनको आप वेद तो मानते नहीं। फिर वेदोक्त या वेदविरुद्ध होने के प्रकृत शास्त्रार्थ से उस स्मृति पुराण आदि के द्वारा साधन का संबन्ध ही क्या हुआ? सुतरां इस विवाद में केवल वेद संहिता का ही उपयोग है प्रमाणान्तर लेने वाला विषयान्तर निग्रहस्थान में जरूर जायगा। आनन्द की बात तो यह है कि इस तर्क को लाला घासीराम जी स्वयं भी मान रहे हैं। आप अपने १९–८–१८ के पत्र में लिखते हैं प्रश्न यह है कि आर्यसमाज के अमुक-अमुक मन्तव्य वेदोक्त हैं, या वेदविरुद्ध हैं। उनकी वेदोक्तता या वेदविरुद्धता वेदों से ही दिखाई जानी चाहिये। अब यदि आप वेदों का प्रमाण न देकर किसी अन्य ग्रन्थ का प्रमाण दें कि उस ग्रन्थ में अमुक मन्तव्य को माना है तो वह कैसे ठीक हो सकता है। परमेश्वर भला करें आपका—हम भी यही कहते हैं कि कभी ठीक नहीं हो सकता। यह विवाद केवल वेदप्रमाण पर ही चल सकता है। फिर आप प्रति-पक्ष से स्मृति, पुराण मानने का आग्रह क्यों कर रहे हैं? इस विषय में उनके मानने से हानि लाभ क्या है? क्या आप शास्त्रार्थ के विचार से इतने घबड़ा गये कि पूर्वापर-विरोध का भी ध्यान नहीं। दूसरे पर जो न्याय लगाते हैं वह अपने पर नहीं लगाते।

दूसरा विषय है, मूर्तिपूजा। किन्तु इसका भी स्पष्टीकरण प्रतिनिधि सभा के प्रधानजी स्वयं अपने २५-७-१८ के पत्र में यों करते हैं ऐसे ही मूर्तिपूजा पर हमारा पक्ष यह है कि वेदविहित अर्थात् वेद संहिता विहित नहीं हैं। आपका प्रतिपक्ष यह है कि वह उक्त संहिताओं के अनुकूल है, जब यह विवाद का स्वरूप आपने ही कायम कर दिया, तो इसमें भी स्मृति, पुराणादि का कोई उपयोग रहा ही नहीं। वेदविहित या वेदविरुद्ध सिद्ध करने के लिये वेद ही उपयोगी है स्मृति पुराणादि का इस शास्त्रार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं। हम लोग स्मृति, पुराण आदि को प्रमाण मानते हैं—मानते रहें। प्रकृत-शास्त्रार्थ से उसका सम्बन्ध क्या? वेदोक्त और वेदानुक्त का निर्णय उससे कैसे होगा? इस इतनी मोटी बात पर इतने बड़े तार्किक विद्वान् यों वृथा माथा खपाते रहें, तो इसे टालटूल के सिवाय कहा क्या जाय? सारांश यह है कि कोई कि स्मृति पुराण को प्रमाण चाहे माने, चाहे न माने, इस शास्त्रार्थ से स्मृति, पुराण का कोई सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। यदि हो सकता है, तो कैसे हो सकता है—यह पूरी बुद्धि खर्च कर लाला घासीराम जी सीधा-सीधा बतादें।

अच्छा यदि लालाजी अपना स्पष्टीकरण वापस ले लें, और विषय निवेश यों करें कि 'मूर्तिपूजा प्रमाण सिद्ध है—या अप्रामाणिक' तब सब प्रमाण-ग्रन्थों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का प्रसंग आ सकता है। किन्तु वहाँ हम यह पूछेंगे—कि शास्त्रार्थ में गृहीत होने का प्रयोजक प्रमाण्य है या स्वतः प्रामाण्य ? अर्थात् स्वतः प्रमाण ग्रन्थों को ही आप शास्त्रार्थ में लेना चाहते हैं—या प्रमाण मात्रको ? यदि कहो कि स्वतः प्रमाण को तो स्मृति, पुराण आदि का कोई प्रसंग नहीं रहता, क्योंकि दोनों के मत में स्वतः प्रमाण वेद ही है। हम स्मृति, पुराण आदि को प्रमाण कहते हैं—स्वतः प्रमाण नहीं। प्रामाण्य और वस्तु है, स्वतः प्रामाण्य और वस्तु। भगवान् जैमिनि ने स्पष्ट निर्णय किया है कि —

विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्' (मीमांसा सूत्र)

अर्थात्—वेदविरुद्ध होने पर स्मृति (पुराण आदि भी स्मृति के ही अन्तर्गत हैं) त्याज्य हैं—विरोध न होने पर मूलभूत श्रुति का अनुमान करके तन्मूलक वह स्मृति प्रमाण मानी जाती है। बस, स्मृति आदि का प्रमाण्य श्रुतिमूलक है। अतः स्मृति, पुराण आदि प्रमाण हैं, स्वतः प्रमाण नहीं हैं। जैसे वेदविरुद्ध सिद्ध होने पर स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों को छोड़ने को आप तैयार होते हैं—वैसे ही वेदविरुद्ध सिद्ध होने पर सनातनी भी स्मृति, पुराण सब छोड़ सकते हैं। फिर आप उन ग्रन्थों से बचते हुए भी हमको ये सब मानने को किस आधार पर लाचार करते हैं ? हाँ, यदि प्रमाणमात्र शास्त्रार्थ में लिये जाने चाहिए—यह आपका मत हो, तो स्मृति पुराणों को हम लेने को तैयार हैं—किन्तु आपको भी स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों की जिम्मेवरी लेनी होगी। या आप उससे बचना चाहेंगे, तो स्पष्ट लिख देना होगा कि स्वामी जी के ग्रन्थ हमारे लिये प्रमाण नहीं, तो फिर आप खुशी से केवल वेद ले सकेंगे और हम स्मृति, पुराण आदि सब ले सकेंगे। स्वामी जी के ग्रन्थ प्रमाण हैं या नहीं इसका स्पष्ट उत्तर शब्द में लिखना होगा। 'स्वत.प्रमाण नहीं' 'वेद-विरुद्ध को हम नहीं मानते' इन उलझन की बातों से काम नहीं चल सकता। हमारा उत्तर स्पष्ट है—स्मृति, पुराण आदि प्रमाण हैं, स्वतः प्रमाण नहीं हैं, वेदविरुद्ध होने पर जरूर अप्रमाण हैं।

अब यदि आप हम से स्पष्ट पूछें कि पुराण-स्मृति आदि का कोई अंश तुम वेद-विरुद्ध मानते हो या नहीं तो हम स्पष्ट कहेंगे कि कदापि नहीं। हमारे मत से स्मृति, पुराण सब पूरे वेदानुकूल हैं—अतएव प्रमाण हैं। सब को वेदानुकूल मानने के कारण ही आप उन्हें शास्त्रार्थ में लिये जाने का हम से हठ करें—तो हम भी आप से पूछेंगे कि—स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों का कोई अंश

९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेद-विरुद्ध है या नहीं ? आप कहेंगे 'है', तो यह आप को लिख देना होगा कि अमुक-अमुक अंश स्वामी जी के ग्रन्थों में वेद-विरुद्ध है। यदि कहेंगे, 'नहीं', तो आपको भी उन ग्रन्थों को प्रमाण-रूप से शास्त्रार्थ में जरूर लेना पड़ेगा—'यह उभयत: पाशारज्जु' है, इस से किसी युक्ति द्वारा आप बच नहीं सकते।

यह हम खूब जानते हैं कि इस हमारे लेख पर बिना समझे, अपनी आदत के अनुसार 'आर्य-समाजी' पेपर आकाश-पाताल एक करेंगे, और खूब डिण्डिम पीटेंगे कि—सनातन धर्मी पेपर ने पुराणों को स्वत: प्रमाण मानने से इनकार कर दिया, वेद-विरुद्ध पुराणों को अप्रमाण मान लिया, यह आर्य-समाज की भीषण कामयाबी है; इत्यादि-इत्यादि। इसलिये इस वेद-विरोध के मसले को हम खूब साफ कर देना चाहते हैं। पाठक जरा ध्यान से विचार लें।

१—जो कर्म या इतिहास वेद में स्पष्ट रीति से कहा गया है और स्मृति या पुराणादि में भी आया है, वह वेद के ही आधार पर माना जायगा। स्मृति, पुराणादि वहाँ वेदानुवादक होंगे।

२—जिस कर्म या इतिहास का वेद में निर्देश तो है किन्तु उसकी पूरी इतिकर्तव्यता या पूरा विवरण वेद में नहीं मिलता और स्मृति, पुराणादि में पूरी इतिकर्तव्यता या पूरा विवरण मिलता है, वहाँ स्मृति पुराणादिक हमारे मत से वेदानुकूल कहे जायेंगे और स्मृति पुराणादिक के आधार पर इतिकर्तव्यता या विवरण निश्चित होगा।

३—जिसका वेद में अति संक्षिप्त कथन या इशारामात्र है, स्मृति-पुराणादि में स्पष्ट उल्लेख है, वह भी स्मृति-पुराणादि कथित रीति से प्रामाणिक माना जाता है, स्मृति पुराणादि वहाँ वेदानुकूल कहे जाते हैं।

४—वेद की व्याख्या जिस विषय में संदिग्ध है और स्मृति, पुराणादि भी जिसका किसी रूप से प्रतिपादन कर रहे हैं, वहाँ स्मृति पुराणादि के अनुसार वेद की व्याख्या मानी जायगी। विरुद्ध व्याख्या अनादृत होगी। स्मृति पुराणादि वहाँ वेदानुकूल ही माने जायेंगे।

५—जिसके सम्बन्ध में वेद में विधि-निषेध कुछ नहीं मिलता, और स्मृति पुराणादि में उसका विधि या निषेध मिले तो वहाँ स्मृति पुराणादि द्वारा मूलभूत श्रुति का अनुमान कर हम उसे प्रामाणिक मानते हैं और वेद-विरुद्ध न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने के कारण स्मृति पुराणादि वहाँ वेदानुकूल ही समझे जाते हैं। याद रहे कि वेद में अनुक्त-विषय वेद-विरुद्ध नहीं कहला सकता, जिससे विपरीत बात वेद में मिलती हो, वही वेद-विरुद्ध कहाता हैं।

६—यदि ऐसा कोई कर्म हो कि वेद में तो उसका निषेध किया हो, और स्मृति आदि ने विधान किया हो, या वेद ने विधान किया हो और स्मृति आदि ने निषेध कर दिया हो, या ऐसा कोई इतिहास मिले कि वेद में तो वह और प्रकार से हो, और पुराण में उसके विपरीत और प्रकार से लिख दिया गया हो, तो वहाँ स्मृति पुराणादि वेद-विरुद्ध होने से सर्वथा अप्रामाणिक होंगें। किन्तु सनातनधर्मियों का विश्वास है कि ऐसा कदापि है नहीं।

बस, यही सनातन-धर्म में स्मृति पुराणादि की पोजीशन है। और यह सदा से चली आती है, किसी ने इसके विरुद्ध नहीं लिखा।

आर्य-समाज यदि वेद के सामान्यतः निर्दिष्ट, संक्षिप्तोक्त, संदिग्धोक्त, या अनुक्त विषय में किन्हीं ग्रन्थों का या स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों का हमारे पूर्व कथनानुसार सहारा लेता है, तो उन ग्रन्थों को शास्त्रार्थ में उसे प्रमाण मान लेना चाहिये। और यदि नहीं लेता, तो प्रतिनिधि सभा के प्रधान जी को स्पष्ट लिख देना चाहिये कि वेद में जिसकी पूरी इतिकर्तव्यता है, उसे ही हम मानते हैं, संक्षिप्तोक्त, संदिग्धोक्त, या अनुक्त-विषय में स्वामी दयानन्द जी के या अन्य किन्हीं ग्रन्थों का आधार नहीं लेते। ऐसा स्पष्ट लिख देने पर आर्य-समाज में स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों की पोजीशन साफ हो जायगी, फिर उनका रहना न रहना आर्य-समाज के लिये अप्रयोजक होगा। ऐसी दशा में स० ध० मण्डल को भी उनसे उन ग्रन्थों का प्रमाण लेने का हठ नहीं करना चाहिये। फिर उनके कथनानुसार शास्त्रार्थ हो सकता है।

इस विषय को और स्पष्ट करने के लिये हम प्रश्नोत्तर रूप में लिख देते हैं।

प्रश्न	सनातन-धर्म का उत्तर
१—क्या स्मृति, पुराणादि स्वतः प्रमाण है ?	नहीं।
२—क्या स्मृति पुराणादि प्रमाण हैं ?	हाँ।
३—वेद-विरुद्ध सिद्ध होने पर क्या स्मृति पुराणादि प्रमाण माने जा सकते हैं ?	नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४—क्या स्मृति, पुराणादि या उनका कोई अंश वेद-विरुद्ध है ? नहीं।

५—क्या वेद की व्याख्या करने में स्मृति पुराणादि की सहायता ली जाती है ? हाँ।

६—वेद में सामान्यतः निर्दिष्ट या संक्षिप्तोक्त की पूर्ण इतिकर्तव्यता क्या स्मृति पुराणादि के आधार पर मानी जाती है ? हां।

७—वेद में अनुक्त और स्मृति पुराणादि में उक्त विषय को क्या प्रामाणिक मानते हो ? हाँ।

८—वेद में जिसके विपरीत लिखा हो—ऐसे स्मृति पुराणादि को प्रमाण मानते हो ? नहीं।

इन आठों प्रश्नों में 'स्मृति, पुराणादि' शब्द के स्थान में 'स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थ' यह शब्द लिखकर आर्य-समाज से भी पूछना चाहिये। यदि उनके उत्तर में चतुर्थ प्रश्न के अतिरिक्त कहीं भी 'हाँ' आ गया या चतुर्थ प्रश्न के उत्तर में 'नहीं' आ गया तो न्याय के अनुसार वे सर्वत्र शास्त्रार्थ में उन ग्रन्थों को मानने के लिये वाध्य होंगे। यदि न मानें तो हमको भी पुराण आदि मानने को वाध्य नहीं कर सकते। यदि वे सब प्रश्नों में 'नहीं' उत्तर देवें, तो उनसे यह लिखाकर फिर उनसे दूसरे ग्रन्थ मानने का हठ कभी न करना चाहिये और अपने सब प्रमाण भूत ग्रन्थों को शास्त्रार्थ में प्रमाण मान लेना चाहिये। आ० प्र० सभा यू० पी० के प्रधानजी से हमारा अनुरोध है कि वे इन बातों का साफ-साफ उत्तर देकर अपनी पोजीशन साफ करें, और यू० पी० मण्डल के नेताओं से भी विनय है कि वे इसी मार्ग पर उनसे प्रश्न कर स्पष्ट उत्तर माँगें, जिससे शास्त्रार्थ का मार्ग साफ हो। और और सभाएँ भी इस मार्ग पर प्रश्नोत्तर कर उस झंझट को हटा दिया करें।

हाँ ब्राह्मण की बात दूसरी है। वह हमारे मत से वेद है, अतएव स्वतः प्रमाण है। यह भी आर्य-समाज और सनातन-धर्म के मन्तव्यों में एक विवादास्पद विषय है कि 'ब्राह्मण वेद है या नहीं ?' अस्तु, इतना तो अवश्य है कि यदि आर्य-समाज स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों को मानें, तो वह ब्राह्मण को अप्रमाण नहीं कह सकता। क्योंकि स्वामी जी ने ब्राह्मण को अप्रमाण कहीं नहीं लिखा, न उसमें प्रक्षिप्तांश होने का कोई स्पष्ट प्रमाण दिया है। प्रत्युत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मण के अनुसार जो वेद व्याख्या हो, उसे ही प्रामाणिक मानने का दावा किया है और ईश्वर की ओर से ऋषियों को जो वेदार्थ मिले, वही ऋषियों ने ब्राह्मणों में लिखे हैं—ऐसा माना है। तब ब्राह्मण को प्रमाण मानने से आर्य-समाज बच नहीं सकता। अस्तु, यदि स्वामी जी के कथन को भी न मानता हुआ आर्य-समाज ब्राह्मण को प्रमाण मानने से इनकार ही करता रहे तो कोई बात नहीं। उस अवस्था में शास्त्रार्थों में ब्राह्मण की पोजीशन यह रहनी चाहिये कि आर्य-समाज अपने मन्तव्य की पुष्टि में ब्राह्मण का प्रमाण कभी न दे सके, क्योंकि वह उसे प्रमाण नहीं मानता। सनातन-धर्म के किसी मन्तव्य के विरुद्ध यदि वह ब्राह्मण का प्रमाण उपस्थित करे, तो सनातनियों को उसका उत्तर देने की जिम्मेदारी लेनी चाहिये। किन्तु इस बात का स्वतंत्र रीति से स्पष्ट निर्णय कर आर्य-समाज से पहले लिखा लेना चाहिये कि वह 'ब्राह्मण को प्रमाण कोटि में गिनता है या नहीं?' अर्थात् संहिता में संक्षिप्तोक्त, संदिग्धोक्त या अनुक्त विषय की पूर्ति ब्राह्मण द्वारा करने को तैयार है या नहीं ? उसका पूरा उत्तर हिम्मत कर आर्य-समाज के प्रधान नेता दे दें, तो बड़े-बड़े गुल खिलेंगे।

इस लेख को अनेक समाचार-पत्रों ने ब्रह्मचारी से उद्धृत किया। पंजाब की एक सनातन-धर्म सभा ने इस लेख को ट्रैक्ट रूप में भी छपा कर वितरित किया। आर्य-समाज के सद्धर्मप्रचारक आदि पत्रों में इसका उत्तर भी छपने लगा, परन्तु न तो वे स्वामी जी के ग्रन्थों को प्रमाण ही मान सके और न उनको अप्रमाण ही कह सके। आगे के अनेक शास्त्रार्थों में प्रमाणों का यह झगड़ा जब-जब उठा तब उक्त लेख खूब काम आया। स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों के अनेक उद्धरणों से स्वतः जन्मना वर्णव्यवस्था और ईश्वर की साकारता स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। आगे के लाहौर के कुछ शास्त्रार्थों में जब स्वामी जी के वे स्थल पढ़ कर उसका उत्तर माँगता तब प्रायः आर्य-समाज के वक्ता को लाक्षणिकता का आश्रय लेना पड़ता था, परन्तु बिना प्रयोजन की लक्षणा का कोई प्रामाण्य होता नहीं, रूढ़ि दिखाई ही नहीं जा सकती। आर्य-समाज के पत्रों में इस लेख की जो आलोचनाएँ हुईं उन सबका संक्षिप्त उत्तर मैं ब्रह्मचारी की सम्पादकीय टिप्पणियों में देता रहा। "सद्धर्म-प्रचारक" तो इतना ही उत्तर देकर अलग हो गया कि—"अब आर्य-समाज इन सब बातों से बहुत आगे बढ़ गया है।" अस्तु,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'ब्रह्मचारी' के सम्पादन काल में मेरी एक लम्बी लेख माला भी प्रायः एक वर्ष तक छपती रही, उसका शीर्षक था "गोस्वामी जी के दार्शनिक विचार"। इस लम्बे लेख में मैंने यह दिखाया था कि गोस्वामी तुलसीदास जी को लोग परम वैष्णव मानते हैं, किन्तु उनके रामचरितमानस आदि ग्रन्थों में उनके विचार श्रीशंकराचार्य के मायावाद के ही अनुकूल हैं। इस लेख माला के छपने के समय ही कुछ पत्रों में इसका प्रतिवाद भी निकलने लगा। इस लेख माला से श्री द्वारिकाप्रसाद जी चतुर्वेदी, श्री इन्द्रनारायण जी द्विवेदी प्रभृति वैष्णव विद्वान् कुछ रुष्ट हुए। उन्होंने मेरे लेख का कोई खंडन तो नहीं किया परन्तु यह लिखा कि गोस्वामी जी ने अपने ग्रन्थ को अप्टूडेट बनाने के लिए मायावाद का उल्लेख किया है। लेखमाला की समाप्ति पर मैंने आलोचनाओं का संक्षिप्त उत्तर भी 'ब्रह्मचारी' में दिया। यह लेख आगे नागरी-प्रचारिणी से प्रकाशित 'तुलसी-ग्रन्थावली' में भी छपा और इस पर आलोचना प्रत्या-लोचनाएँ भी चलीं। मेरे दार्शनिक लेखों की संग्रह पुस्तिका 'दर्शन-अनुचिन्तन' जो कलकत्ता के भारतीय ज्ञानपीठ से कुछ दिनों पूर्व प्रकाशित हुई है, उसमें यह लेख भी संगृहीत हो गया है। इनके अतिरिक्त भी छोटे बड़े कई लेख मैंने ब्रह्मचारी में लिखे। सनातन-धर्म और संस्कृत के विद्वानों के निधन पर अनेकधा शोक प्रकाश भी संपादकीय कर्तव्य के नाते करना होता था। म० म० श्री शिवकुमार शास्त्री जी का स्वर्गवास इन्हीं दिनों हुआ था और सनातन-धर्म के एक बड़े व्याख्याता श्री भीमसेन जी भी इन्हीं दिनों दिवंगत हुए थे। उनके शोक प्रकाश की पंक्तियाँ ब्रह्मचारी में इस प्रकार छपीं—

जब हम गत वर्ष की घटनाओं पर दृष्टि डालते हैं, तो फिर एक बार हमें विषाद का दीर्घ निःश्वास छोड़ना पड़ता है। वस्तुतः धर्म और विद्या के रत्नों को एक-एक कर बीनने में इस अतीत वर्ष ने कमाल ही कर दिया। कौन जानता था कि भारतवर्ष को भारत के सूर्य म० म० पूज्यपाद श्री शिवकुमार शास्त्री जी से वियुक्त करके भी दुर्दैव की आशा पूर्ति न होगी, और वह फिर भी इस ही स्वल्पकाल में अनेक रत्नों का बलात् अपहरण करेगा। शोक है कि सनातन-धर्म और वेद-विद्या के चमकते हुए रत्न श्री पं०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भीमसेन जी भूतपूर्व वेद-व्याख्याता कलकत्ता विश्वविद्यालय को इस ही दुष्ट वर्ष ने भारतवर्ष से चुराया है। उक्त पंडित जी अपनी पूर्व अवस्था में कुछ काल आर्य-समाज के सिद्धान्तों के अनुयायी रहे थे सही, किन्तु अपने शास्त्र विचार द्वारा समाज के सिद्धान्तों की निःसारता समझ अन्त में उन्होंने वह प्रायश्चित्त किया कि जो शायद किसी से न हो सकेगा। मित्रवर पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न ने अपनी कविता में बहुत ठीक लिखा है कि भीमसेन न केवल अपने-आप धोखे के लाक्षागृह से निकले, किन्तु उन्होंने पाण्डवरूप अपने बहुत से साथियों को भी उससे निकाला। एक आर्य-समाज ही क्या, जो कोई भी मत या संप्रदाय सनातन-धर्म पर कभी कुछ भी आक्रमण करता था, उसका उत्तर देने को आपकी लेखनी सदा प्रस्तुत रहती थी। आपका चलाया 'ब्राह्मणसर्वस्व' पत्र सनातन-धर्म की ढाल का काम देता रहा, यह कहने में किसी को कुछ भी संकोच नहीं। वेद, धर्म-शास्त्र आदि के आप मार्मिक ज्ञाता थे, और कुछ रोजगारियों की तरह नहीं, बल्कि हृदय से धर्म के सच्चे सेवक थे। आप स्वयं बड़े कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। अपने ग्राम में आपने शिवलिंग स्थापना की थी और अग्निग्रहण कर श्रौतयाग करने के संकल्प से आप गंगातीर पर जा विराजे थे। सामग्री भी सब एकत्रित हो चुकी थी, किन्तु दुर्दैव ने वह होने न दिया। इन पंगितयों के लेखक के आग्रहपूर्ण विनीत अनुरोध से ही इस वार आप प्रयाग की महासभा में पधारे थे, वहीं आपका प्रथम और चरम-दर्शन हमें प्राप्त हुआ। वृद्ध होने पर भी कई धार्मिक कार्य करने की आपने वहाँ बड़े उत्साह से प्रतिज्ञा की थी। हमने यज्ञ दर्शन कराने का आप से विनीत अनुरोध किया और आपने सहर्ष उसे स्वीकार किया, तदनुसार एक दिन पहले यज्ञ का निमन्त्रण आया, और दो एक दिन के अनन्तर ही इस दुःसह शोक का हेतु प्रियवर ब्रह्मदेव जी काला पत्र मिल गया। सब मन की मन में ही रह गई। आपके स्वर्गगमन से धर्म की जो हानि हुई है वह अपूरणीय है।

इनके शोक से उच्छ्वास लेने का भी अवसर न मिला था कि एक अति घोर वृतान्त सुन पड़ा। ब्रह्मचारी के पाठकों के सुपरिचित, सरल मधुर कविता सरोजिनी के सरोवर, नवयुवक कविरत्न सत्यनारायण जी भी इस संसार से अचानक चल बसे। अंग्रेजी के सुयोग्य विद्वान् होने पर भी आपका अति सादा सुचारु वेष और मधुरस्मितयुक्त मूर्ति जहाँ आखों को नहीं भूल सकती वहाँ आपकी मधुर मनोहर वाणी द्वारा आपकी ही कविता कानों में जो अमृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेचन करती थी उसका स्मरण भी आजन्म रहकर हृदय में शूल की तरह चुभता रहेगा। खड़ी बोली की काफियाबन्दी के इस जमाने में आप ब्रजभाषा के एक सुयोग्य होनहार कवि थे, इसमें सन्देह नहीं। इस थोड़ी ही अवस्था में आपके बनाये नाटक विश्वविद्यालयों तक में स्थान पा चुके थे और बहुत बड़े-बड़े सम्मेलन और सभाएँ आपकी सुचारुगीति रूप कविता के सरल मधुर प्रवाह में आप्लावित हो चुके थे। इन सब गुणों के साथ आप पक्के धर्मनिष्ठ थे और धर्म-सेवा की आपके द्वारा बहुत बड़ी आशा थी। आपकी अचानक मृत्यु से धार्मिक और साहित्य-संबंधी बहुत बड़ी हानि हुई है। और भी गंगाप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य (भरतपुर) पंजाब के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० दुर्गादत्त शास्त्री जी (लाहौर) वैद्य पं० गंगाधर भट्ट जी (जयपुर) वैद्यराज राधावल्लभ जी (विजयगढ़) प्रभृति कई एक धार्मिक और साहित्य-सेवी सुयोग्य विद्वान् इन पिछले कुछ ही महीनों में स्वर्गत हुए हैं। इन मृत्यु घटनाओं से यह अतीत वर्ष धार्मिक-जगत् के लिये बहुत ही हानिकारक सिद्ध हुआ है।

ब्रह्मचारी के संपादन के सम्बन्ध में एक घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन दिनों राजनैतिक संघर्ष में क्रांतिकारी दल की हिंसक प्रवृत्तियां भी खूब जोरों पर थीं। मैंने भी ब्रह्मचारी की एक सम्पादकीय टिप्पणी में हिंसक प्रवृत्ति की निन्दा की थी। उसके कुछ दिन बाद एक विचित्र-सा व्यक्ति ऋषिकुल में आया और कुछ दिनों वहाँ के अतिथि भवन में ठहरा। वह कलकत्ता के एक सज्जन का परिचय-पत्र लाया था। ऋषिकुल के सामने एक घनी पहाड़ी है। वह प्रायः उस पहाड़ी पर चला जाता और घंटों वहीं रहता। एक दिन वह मुझ से आकर कहने लगा कि सामने की पहाड़ी में एक स्थान ऐसा है जहाँ से मसूरी का पहाड़ साफ दिखाई देता है। मसूरी हरिद्वार से थोड़ी ही दूर है, परन्तु इतना पास भी नहीं कि वहाँ का पहाड़ हरिद्वार से दिखाई दे जाय। मैंने इस पर कुछ आश्चर्य व्यक्त किया। उसने मुझ से वहाँ चल कर वह दृश्य देखने का आग्रह किया। कौतूहलवश मैं उसके साथ चल दिया। पहाड़ी के बीहड़ भाग से घुमा कर सचमुच वह मुझे ऐसी जगह ले गया जहाँ से बहुत दूर का एक पहाड़ दिखाई दिया। उसने वही मसूरी का पहाड़ बतलाया। लौटते समय वह एक दूसरे मार्ग से मुझे लाया। मार्ग में एक बीहड़ स्थान पर, जो सर्वथा गुप्त कहने योग्य था,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह कुछ रुका और मुझ से कहने लगा कि—"मैं क्रान्तिकारी दल का एक सदस्य हूँ और आपका आशीर्वाद चाहता हूँ। आपने ब्रह्मचारी में जो टिप्पणी लिखी है. वह उचित नहीं, अच्छा हो यदि आप इस विषय में मौन रहें।" उसने मुझ से क्रान्तिकारी कार्यों के लिए ऋषिकुल में थोड़ा-सा स्थान प्राप्त कराने की बात भी कही जिसे मैंने स्वीकार नहीं किया। वह एक दो दिन रह कर चला गया। फिर कभी मुझे उसके दर्शन नहीं हुए।

यह 'ब्रह्मचारी' पत्र के संपादन का संक्षिप्त विवरण हुआ। कह चुका हूँ कि ऋषिकुल छोड़ने के बाद आगे भी कई वर्षों तक मैंने ब्रह्मचारी का संपादन किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वतन्त्र भ्रमण

ऋषिकुल छोड़ने के अनन्तर स्वास्थ्य-लाभ के लिए कुछ दिन मैं जयपुर ही रहा। स्वस्थ होने पर बम्बई गया। वहाँ सनातनधर्म के विख्यात उपदेशक श्री नन्दकिशोर जी वाणीभूषण ने वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य श्री देवकीनन्दनाचार्य जी के सुपुत्र गोस्वामी श्री वल्लभलाल जी को प्रेरणा कर सनातन-धर्म-सम्मेलन का एक वृहद् आयोजन किया था, उसी में मुझे बुलाया था। पं०दीनदयालुजी भी उस अवसर बम्बई आये थे। बम्बई के वल्लभ सम्प्रदाय के बहुत सज्जन इसमें सम्मिलित हुए थे। मैं बीच में ही अहमदाबाद के पास मातृ-गया में माता का श्राद्ध कर बम्बई जा पहुँचा। मेरी बम्बई की यह पहली ही यात्रा थी। इसलिये वहाँ खूब भ्रमण करता रहा। मथुरा के श्रीयुत अमृतराम जी भी आये थे, उनसे श्री वल्लभलाल जी गोस्वामी बड़ा स्नेह रखते थे। बम्बई की यह यात्रा बहुत सुख-प्रद रही। इधर-उधर भ्रमण भी खूब किया। नौका में चढ़कर आस-पास के स्थान भी देखे। वहाँ के सुविख्यात प्रेसों के अध्यक्षों से भी परिचय हुआ। इतने में अधिवेशन का समय आ गया। अधिवेशन के लिये एक बहुत सुसज्जित पंडाल बनवाया गया था। जो लोग उसे देखकर आते थे वे पंडाल की बड़ी स्तुति करते थे। मैं भी देखने गया। नन्दकिशोर जी ने यू० पी० से दो अन्य उपदेशकों को भी बुला लिया था। पंडाल की सब लोग तारीफ कर रहे थे कि इतने में रात्रि को ऐसे जोर की वर्षा हुई कि पंडाल का पुर्जा-पुर्जा भी शेष न रहा। सब कुछ पानी में बह गया। अब प्रातःकाल यह विचार चला कि अधिवेशन का नोटिस हो चुका है, उसे किस प्रकार निभाया जाये ? कई सज्जन कहते थे कि कोई थियेटर किराये पर लेकर उसमें अधिवेशन कर लिया जाय, कई का मत था कि यहाँ श्री गोस्वामी जी के हॉल में ही अधिवेशन किया जावे, कई कहते थे कि पंडाल के आस-पास के स्थानों पर ही कार्यावही पूरी की जावे। अन्त में बहुत देर तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई निर्णय न होने पर भगवान् श्रीकृष्ण के नाम पर चिट्ठी डाली गई। वहाँ से यही आदेश मिला कि अधिवेशन उसी स्थान पर किया जाय। तब उस दिन की तो कार्यवाही किसी तरह पंडाल के आस-पास में पूरी की गई। सभापति श्रीवल्लभलाल जी का भाषण तो मैंने ही लिखा था, पंडित दीनदयालु जी की प्रेरणा से मैंने ही पढ़कर सुना भी दिया और उसी दिन प्राग जी सूर जी नामक सेठ ने बहुत से मजदूर लगाकर आर्डर दिया कि आज रात में ही वैसा ही पंडाल फिर तैय्यार किया जावे। ये प्राग जी सूर जी वे महाशय थे जो रंग के व्यापारी थे और इनके यहाँ बहुत-सा रंग पड़ा-पड़ा सड़ गया था। तब वे उसे समुद्र में फेंकने की तैय्यारी करने लगे थे। समुद्र में उन दिनों गवर्नमेंट की आज्ञा प्राप्त करके ही कोई चीज डाली जाती थी। वह आज्ञा भी इन्होंने प्राप्त कर ली थी। इतने में ही पहला विश्वयुद्ध छिड़ गया। उससे रंग पर ३२ गुना दाम बढ़ गया। तब जो रंग फेंका जा रहा था उससे ही इन्होंने प्रायः १ करोड़ रुपया प्राप्त किया। उसमें से कई लाख रुपये अपने गुरू जी श्री वल्लभलाल जी की भेंट भी किये। अब तो क्या था, प्राग जी सूर जी का नाम प्रसिद्ध हो गया। रात में ही फिर वैसा ही पंडाल तैय्यार किया गया और दूसरे दिन से दो दिन तक उसी पंडाल में कार्य सम्पन्न हुआ। वहाँ बहुत लोग सेठ आदि एकत्रित होते रहे और बड़े शान से भजन व व्याख्यान चलते रहे। अन्त में समाप्ति के दिन इन लोगों ने अभिलाषा प्रकट की कि मेरा एक व्याख्यान सनातन-धर्म के स्वरूप के विषय पर और हो, किन्तु पंडित दीनदयालु जी ने निषेध कर दिया कि हम यहाँ के प्रसिद्ध गायक के स्थान पर जाना स्वीकार कर चुके हैं। इस से कल कोई व्याख्यान नहीं हो सकता।

वहाँ एक दिन बड़े मंदिर में शास्त्रार्थ भी हुआ था, भट्ट बलभद्र जी और श्री रमानाथ जी वेदभूषण वहाँ उपस्थित थे, उनसे मेरा कुछ-विचार हुआ था उसमें एक श्रुति भट्ट बलभद्र जी ने कुछ अशुद्ध पढ़ी थी उसका मेरे सहचारी लीलाधर शास्त्री ने संशोधन कर दिया। इस पर भट्ट बलभद्र जी ने क्षमा माँग ली। इस पर हमारे श्री गोस्वामी जी ने अपना बहुत गौरव माना कि हमारे यहाँ के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक विद्यार्थी ने ही बड़े पंडित जी से क्षमा मँगवा ली। श्रीयुत भट्ट बलभद्र जी से हमारे 'संस्कृतरत्नाकर' नाम के पत्र में पहले बहुत कुछ लिखा-पढ़ी हो चुकी थी।

बम्बई से द्रव्य भी मुझे अच्छा मिला और यन्त्रालयों से बहुत सी आवश्यक पुस्तकें भी मैंने खरीद लीं। पंडित दीनदयालु जी ने इस बात की प्रेरणा दी कि 'इस बार ऋषिकुल के सभ्यसंग में तुम अवश्य जाना।' इस प्रकार बम्बई यात्रा समाप्त कर मैं लीलाधर के साथ जयपुर लौट आया।

उसके अनन्तर केदारनाथ जी का ऋषिकुल से पत्र आया कि इस बार सभ्यसंग सी० पी० (वर्तमान एम० पी०) जाने की तैय्यारी कर रहा है। इसमें पूर्व प्रतिज्ञानुसार मैं भी सम्मिलित हुआ। उसी वर्ष फिर प्रयाग का कुंभ पर्व आ पड़ा था। श्री दीनदयालु जी ने मुझे लिखा था कि मैं श्री मालवीय जी की सहायतार्थ प्रयाग जाऊँ और वहाँ कुम्भ पर्व का सब आयोजन करने में श्री मालवीय जी की सहायता पाऊँ। पहिले सी० पी० भ्रमण में जाकर अन्त में प्रयाग में सम्मिलित होने का मैंने निश्चय किया। लीलाधर भी मेरे साथ ही था। इस बार भी कानपुर से ही हम सम्मिलित हुए थे। कानपुर के उत्सव में मैं प्रति वर्ष ही जाया करता था। उसी उत्सव में भाग लेकर सी० पी० में जाने की तैय्यारी की। पं० केदारनाथ जी और कृपाराम जी भी कानपुर ही आ गये थे। इन लोगों ने ऋषिकुल में मेरे स्थान पर एक पंजाब के विद्वान् विश्वम्भर शास्त्री को नियत कर लिया था। किन्तु वे महाशय अधिक दिन नहीं ठहरे, वापस ही चले गये। देहरादून के रईस श्री लाला बल्देव सिंह को भी मैंने वचन दे दिया था कि प्रयाग के कुम्भ में आपके कैम्प में रहूँगा और व्याख्यान आदि किया करूँगा। अस्तु, पहले हम कानपुर होकर सी० पी० के शिवनी, छिन्दवाड़ा, कटनी, जबलपुर आदि स्थानों में गये और वहाँ व्याख्यानादि द्वारा प्रचार कर और ऋषिकुल के लिये आवश्यक द्रव्य संग्रह कर वहाँ से ही प्रयाग में सम्मिलित हो गये। संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का भी अधिवेशन श्रीशारदा सम्पादक आदि विद्वानों ने उस वर्ष प्रयाग में भी निमंत्रित किया था। और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विख्यात दक्षिणात्य विद्वान् म० म० टी० गणपति शास्त्री जी उसके सभापति निर्धारित हुए थे। सी० पी० में जबलपुर में विख्यात ज्योतिर्विद् लक्ष्मीप्रसाद मिश्र के प्रवन्ध से हमारा सभ्य-संग ठहरा था। वहाँ से ही एक दिन मोटर का प्रवन्ध कर नर्मदा स्नान के लिये भी हम लोग गये थे। नर्मदा पर एक चरित्र स्मरण योग्य है। हमारे साथ जो पंडित कृपाराम थे, वे पंजाबी थे। अपनी दुराचार आदि की घटनायें हमें सुनाया करते थे। नर्मदा के तट पर पहुँचते ही उनका ऐसा ध्यान हुआ कि मैं तो नर्मदा में ही डूब कर मरूँगा। मैं और पं० केदारनाथ जी उनको वलात् रोकते रहे किन्तु वे ऐसा ही कहते थे कि जिस आदमी ने अपना चरित्र नहीं सुधारा और कई प्रकार के दुराचारों में ही अपना जीवन विताया उसके जीवन से ही क्या लाभ ? उनका उस समय स्वरूप ही बदलता गया था। वड़ी कठिनता से हम लोग उनको वहाँ से मोटर में डाल कर वापस लाये। थोड़े समय के बाद फिर कुछ असर न रहा। इस से यह चमत्कार विदित हुआ कि नर्मदा में ऐसी शक्ति है कि वह पापियों को पश्चात्ताप का अवसर देती है। जबलपुर में एक दिन धोखे से लक्ष्मी प्रसाद जी ने एक रिफार्मर महाशय को सभापति बना दिया था। उन्होंने मेरे व्याख्यान का कुछ खंडन कर दिया और अपने रिफार्मों की बातें कह दीं। मैं उसी समय उनका उत्तर देने लगा किन्तु लोगों ने कहा कि आपकी तो व्याख्यान माला चलेगी, कल उत्तर दे दीजिएगा। दूसरे दिन वहाँ के एक प्रतिष्ठित रईस सभापति थे। उस दिन मैंने उनकी पूर्व दिन की बातों का उत्तर दिया। उस यात्रा में मैं लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के 'गीतारहस्य' का खूब अध्ययन करता रहा था, उनके एक शिष्य भी वहाँ हमारे साथ थे जो उनकी चर्या आदि सुनाते रहते थे। मैं आश्चर्य करता था कि जन्म भर राजनीति का काम करते हुए भी तिलक महाशय को ऐसा शास्त्र-ज्ञान का अवसर कैसे प्राप्त होता था। इस पर उन्होंने कहा कि उनका नियम था कि नियत समय तक स्वाध्याय उस समय भी अवश्य किया करते थे।

यों यह सी० पी० का भ्रमण समाप्त कर और वहाँ से ऋषिकुल के लिये द्रव्य संग्रह कर मैं तो लीलाधर के साथ प्रयाग ही चला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आया और केदारनाथ जी आदि ऋषिकुल चले गये। इस प्रयाग की यात्रा में हम लोग हरिद्वार के श्री स्वामी आत्मस्वरूप जी के कैम्प में ठहरे। वहीं पंजाव के श्री विश्वम्भरदत्त जो मेरे स्थान में ऋषिकुल में नियुक्त किये गये थे, मिले। श्री स्वामी आत्म-स्वरूप जी ने हमारे ऋषिकुल छोड़ आने पर बहुत ही पश्चा-त्ताप किया। अस्तु, यों कुछ दिन वहाँ ठहर कर अभी कुछ दिन कुंभ के लिये बाकी हैं यह सोच कर मैं जयपुर चला आया। उन दिनों मुझे कलकत्ता के श्री विशुद्धानन्द विद्यालय से स्थायी रूप से कार्य करने के लिए आह्वान मिला था। उस समय जयपुर में प्लेग का आक्रमण होने के कारण पिताजी आदि सब लोग राज्य के द्वारा दिये गये ग्राम में चले गये थे। वहीं मैं भी गया। लीलाधर को भी हमारे ग्राम का दर्शन कराया। पिताजी से पूछने पर उन्होंने कलकत्ता जाने का निषेध ही किया कि हमारी शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं है कि तुम दूर जाओ। उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैंने कलकत्ता को निषेध लिख दिया। फिर प्रयाग ही कुंभ पर चला गया। इस समय श्री मालवीय जी के कैम्प में ही ठहरा। देहरादून के लाला बल्देवसिंह जी के कैम्प में भी व्याख्यान आदि करता था। श्री मालवीय जी इतने व्यस्त थे कि मैं उनसे पूछता कि महाराज अधिवेशन के लिये किन-किन उपदेशकों को बुलाना है तो वे यही कहते कि जिसको भी उचित समझो बुला लो। मैंने सब विख्यात उपदेशकों को निमन्त्रण पत्र भेज दिये।

प्रायः सब ही आ गये। यों अधिवेशन की अच्छी शोभा हो गई। उसी समय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का भी अधिवेशन था। श्री मालवीय जी ने उसे गंगा तट पर ही करना चाहा था किन्तु नागरिक सज्जनों ने यह नहीं माना। उसके लिये नगर में भी मुझे जाना पड़ता था। वहाँ श्री गणपति शास्त्री जी का बहुत रोचक व्याख्यान हुआ। यों यह अधिवेशन तो समाप्त हो गया किन्तु अन्त में उपदेशकों को मार्ग-व्यय देने की कठिनता आ पड़ी। पुरी से श्री मधुसूदन तीर्थ शंकराचार्य को श्री मालवीय जी ने बुलाया था। साधुओं की भी एक सभा थी। उसके कार्य में भी श्री मालवीय जी व्यस्त रहते थे। उसके प्रमुख कार्यकर्त्ताओं का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह आग्रह था कि हम श्री मालवीय जी से ही प्रस्ताव लिखायेंगे। मैंने बहुत कहा कि मैं लिख दूं, किन्तु उन्होंने नहीं माना और कहा हम तो श्री मालवीय जी से ही लिखा लेंगे। श्री मालवीय जी ने अत्यन्त व्यस्त रहते हुये भी उन्हें कुछ समय दिया ही। वहाँ इस बात पर भी विवाद चला था कि सभापति सन्यासी हो या उदासी। इस विवाद को भी एक-एक दिन दोनों का सभापतित्व होना समझा कर किसी तरह श्री मालवीय जी ने समाप्त किया। सन्यासियों के सभापतित्व के दिन तो सब साधुओं के सम्प्रदाय एकत्रित हो गये थे, किन्तु उदासियों के सभापतित्व के दिन सन्यासियों के प्रमुख नहीं जाने लगे। उस विवाद को भी थोड़ी देर के लिये उन्हें जाने की प्रार्थना कर श्री मालवीय जी ने समाप्त किया। लीलाधर के ऋषि-कुल से बहुत से साथी वहाँ कुम्भ-पर्व पर आ गये थे इसलिये लीलाधर उनके साथ ही लग गया। मेरा साथ उसने छोड़ दिया। मुझे बिहार के मुंगेर वाले अधिवेशन में वहाँ से ही जाना था। उसमें साथ जाने वाले की कठिनता आ पड़ी।

अधिवेशन समाप्त होकर मार्ग-व्यय देने का भार अपने भ्राता श्यामसुन्दर जी और मुझ पर छोड़ कर श्री मालवीय जी तो अपने एक मित्र की श्मशान यात्रा में चले गये और हम पर मार्ग-व्यय देने की बड़ी कठिनता पड़ी। मैंने तो मार्ग-व्यय लाला बल्देव सिंह जी से ही ले लिया था इसलिये वहाँ के झमेले में न पड़ा किन्तु अन्यान्य उपदेशकों के मार्ग-व्यय में श्री शंकराचार्य के मार्ग-व्यय की राशि भी समाप्त हो गई। आगे श्री मालवीय जी ने कुछ और प्रबन्ध कर उसे निपटाया। मैं ऋषिकुल के ही एक छोटे अध्यापक को साथ लेकर मुंगेर चला गया। वहाँ से लौटने पर फिर प्रयाग स्टेशन पर श्री मालवीय जी के दर्शन मिल गये थे। उन्होंने मुझ से भी मार्ग-व्यय लेने का आग्रह किया। किन्तु "मैं प्राप्त कर चुका हूँ" यही कह कर मैंने निषेध कर दिया। फिर मैं जयपुर चला आया। वहाँ उसी समय मेरे पुत्र का चौल-संस्कार नियत था उसमें लग गया। वहाँ फिर लीलाधर का क्षमा-प्रार्थना का पत्र भी मिला। फिर अन्यान्य सभाओं में जाते समय लीधाधर का साक्षात्कार भी हुआ। लीलाधर ऋषिकुल की ओर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से सभाओं में जाता रहा था। मैंने ब्रह्मचारी का सम्पादन और ऋषिकुल की सहायक शिक्षा-समिति का भार अपने ऊपर लिया था इसलिये समय-समय पर ऋषिकुल की शिक्षा-समिति के अधिवेशन में जाना पड़ता था। इस प्रकार ऋषिकुल छोड़ने के अनन्तर प्रायः दो वर्ष मैं भ्रमण में ही रहा। श्री पं० अखिलानन्द जी, जो सनातन-धर्म में आये थे उनका मेरा भी बहुत साथ रहा। वे आर्य-समाज के प्रति तीव्र भाषण करते थे। किन्तु मैं शान्ति से ही बोलता था। उस दो वर्ष के भ्रमण में पंजाब के रावलपिंडी, डेराइस्माइल खाँ, डेरा गाजी खाँ, क्वेटा आदि स्थानों का व बिहार में रोसरा आदि स्थानों का, राजस्थान में ज़ोधपुर, उदयपुर, कोटा-बूंदी आदि स्थानों का खूब भ्रमण किया। बंगाल में प्रायः नहीं गया था। इस भ्रमण में मैं अपने कनिष्ठ भ्राता पितृव्य पुत्र श्री गंगाप्रसाद, व बुआ के लड़के श्री आनन्दीलाल, अपने श्याल श्री वंशीधर आदि किसी-न-किसी स्वजन को व कभी-कभी किसी और को भी साथ रखा करता था। भ्रमण का पूरा वृत्तान्त तो लिखना बहुत कठिन है किन्तु जो विशेष बातें हैं वही लिखी जायेंगी। कहा जा चुका है कि श्री गणपति शास्त्री प्रयाग में संस्कृत-सम्मेलन के सभापति हुए थे। वे दूसरे साल के लिये दक्षिण में सम्मेलन को निमंत्रित कर गये थे। उन्होंने स्वयं तो अधिवेशन का आयोजन नहीं किया किन्तु श्रीरंगम् के पास एक विद्वान् आनरेबल रंगस्वामी आयंगर जो प्रति वर्ष अनेकों विद्वानों को आमन्त्रित किया करते थे उनके ही ऊपर षष्ठ अधिवेशन का भार डाल दिया। मैं इसके लिये दक्षिण में जाने को तैयार हुआ। मैंने पिता जी से भी प्रार्थना की कि आपकी भी श्री रामेश्वरम् यात्रा की इच्छा है, मैं दक्षिण यात्रा में जाता हूँ, आप भी चलिये। पहिले तो उन्होंने पौत्र को छोटा देखकर निषेध किया किन्तु फिरश्री आनन्द के कहने से मान गये। तब मैं और पिता जी तथा आनन्द हम तीनों ही जयपुर से प्रस्थान कर दक्षिण यात्रा के लिए चले। राजस्थान के एक विद्वान् ने कलकत्ता का कुछ काम बताया था और वहाँ एक स्वामी जी का यज्ञ भी था उसमें भी सम्मिलित होना था। इसलिये हमने कलकत्ता होकर ही जाने का निश्चय किया। मार्ग में वैद्यनाथ धाम की यात्रा की, फिर कलकत्ता पहुँचे। वहाँ एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने सम्बन्धी के यहाँ ही ठहरे थे। ऋषिकुल के सहायक सभा के मन्त्री जी को भी तार दिया था किन्तु उनके यहाँ से कोई लेने नहीं आया इससे अन्यत्र ही ठहरना पड़ा। वहाँ भोजन में हाथ पखारते समय पिताजी को हाथ में कुछ चोट लग गई थी इस से वे आरंभ में ही वहुत व्यग्र हो गये। कलकत्ता से एकदम मद्रास का टिकिट लिया। प्रायः तीन दिन रास्ते में ही चलना पड़ा। किसी तरह फलाहार आदि करते हुए मद्रास पहुँचे। मद्रास के श्री गोपालाचारलू पहले जयपुर में, श्री लक्ष्मीराम जी वैद्य के यहाँ आ चुके थे, उनसे परिचय हो गया था। उनके ही स्थान पर रहने का निश्चय किया। वे महाशय मद्रास स्टेशन पर ही मिल गये थे। उन्होंने अपने घर ले जाकर हम लोगों को वड़े सत्कार के साथ रक्खा और आगे त्रिचनापल्ली के पास श्री रंगम् के टिकिट आदि क व्यवस्था भी बड़ी सावधानी से कर दी। उनकी व्यवस्था के अनुसार ही हम लोग श्री रंगम् के पास कोड़ियालम ग्राम में गये। वहीं संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन था। उन महाशय ने सम्मेलन के विद्वानों को तो बहुत कम बुलाया था किन्तु उनके यहाँ जो विद्वान् आया करते थे वे ही अधिकांश में उपस्थित थे। हमने पहले कलकत्ता से म० म० श्री हाथीभाई शास्त्री को सभापतित्व के लिये तार दे दिया था, वे ही उस साल निर्वाचित हुए थे। वे वहाँ पहुँच गये। उनके ही सभापतित्व में वह षष्ठ अधिवेशन सम्पन्न हुआ। दक्षिणात्य विद्वानों में अनेक महानुभाव वहाँ संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन के सदस्य वने। श्री गोपालाचारलू ने पिताजी को औषध दे दी थी उसका ही उपयोग करते हुए और उससे लाभ उठाते हुये वे चलते रहे। वहीं एक दिन अस्पताल में उन्होंने आपरेशन भी कराया।

वहाँ से चलकर श्री रामेश्वरम् पहुँचे। वहाँ ऐसी व्यवस्था थी कि तीन दरवाजे बाहर से दर्शन कराया जाता था किन्तु जो संध्या-वंदन आदि करने वाले होते थे उन्हें दो दरवाजे भीतर ले लिया जाता था। हमने भी दो द्वार भीतर जाकर श्री रामेश्वर भगवान् का दर्शन प्राप्त किया। उस दिन शिवरात्रि थी। वहाँ भोजन में कुछ व्रतोल्लंघन हो जाने के कारण मैंने चार शिवरात्रि निराहार व्रत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहने का व १५ वर्ष प्रदोष व्रत करने का प्रायश्चित रूप से संकल्प किया। वह मैं निभाता रहा। रामेश्वरम् से कुछ दूर धनुष्कोटि की भी हमने यात्रा की और वहाँ से फिर कन्याकुमारी के दर्शनार्थ यात्रा करने का भी विचार हो गया। इसके लिये वहाँ जाकर पूर्व परिचित म०म० श्री त० गणपति शास्त्री जी के ही आवास पर ठहरे। इन महाशय ने अपना सब मकान हमारे अधीन कर दिया और इतना निर्व्याज स्नेह मुझ पर तथा मेरे पिताजी पर प्रकाशित किया कि हम लोग अन्यत्र उनके व्यवहार को उदाहरण रूप से कहते रहे। हिन्दी का अल्पप्रचार होने के कारण संस्कृत माध्यम से ही इस भ्रमण में हमारा कार्य चला। जितने दिन मैं श्री गणपति शास्त्री जी के यहाँ रहा प्रतिदिन वे एक न एक उत्सव दिखाते रहे। मेरे आग्रह पर उन्होंने वहाँ की भाषा के व्यवहारोपयोगी शब्द भी लिख दिये जिन्हें उलटा सीधा बोल कर हमने यात्रा में वहुत कुछ निर्वाह किया। अनेक वर्षों से वे भास के नाटकों की पाण्डुलिपियाँ एकत्र कर रहे थे, तब तक सम्भवतः "भासनाटकचक्र" प्रकाशित करा चुके थे और उन दिनों उसकी आलोचनाओं का उत्तर तैयार कर रहे थे। वहाँ पद्मनाभ जनार्दन और कन्याकुमारी दर्शन प्राप्त किये और फिर वहाँ से प्रत्यावर्तित हुए। लौटते समय भी मार्ग में अनेक स्थानों के दर्शन करते हुए आये। कन्याकुमारी में ऐसा चमत्कार देखा कि पहले आरंभ में जो हमने मन्दिर में दर्शन किया उस समय यह विदित हुआ कि माता की प्रतिमा सुवर्णमयी है, फिर दूसरी बार दर्शन करने पर विदित हुआ कि सुवर्णमयी तो नहीं किन्तु गौर प्रतिमा है। फिर तीसरे वार दर्शन करने पर स्पष्ट प्रतीत हुआ कि श्यामवर्ण प्रतिमा है और श्रृंगार करके उसी के नाना रूप दिखाये जाते हैं। श्री गणपति मन्दिर का जीर्णोद्धार वहुत दिन से हो रहा था, हम पहुँचे तव तक भी जारी था। मन्दिर में प्रकाश के लिये खिड़की आदि भी लगाई जा रही थी।

शास्त्री जी ने जो कई अमूल्य ग्रन्थ लिखे थे वे भी उनने मुझे उपहार में समर्पित किये। इस प्रकार कई स्थानों में भ्रमण करते हुए हम लोग फिर श्री गोपालाचारलू के ही स्थान पर मद्रास में आ गये। मैं वहीं अपनी डाक का प्रवन्ध कर गया था, आते ही मैंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डाक माँगी तो उसमें एक वृत्तान्त यह विदित हुआ कि मेरी पत्नी के आठ मास का एक अधूरा बालक उत्पन्न हो गया है। यह जयपुर से मेरे मित्र श्री चन्द्रदत्त जी का तार था। मैं तार पढ़ कर कुछ देर चिन्तित रहा फिर सोचा कि तार को आये चार दिन हो चुके थे। तब यही विचार आया कि चार दिन तो हो गये और वहाँ से जल्दी से जल्दी करने पर भी चार दिन बिना जयपुर नहीं पहुँचा जा सकता। इस तरह आठ दिन हो जायेंगे तब खतरे का समय तो निकल ही चुकेगा, किन्तु पिताजी को यदि यह वृत्तांत कह दिया जायेगा तो वे यही कहेंगे कि एकदम जयपुर पहुँचो, मार्ग में बहुत असुविधा उठानी पड़ेगी। इससे यही उचित होगा कि उनसे यह बात कही न जावे। यही सोचकर मैंने उनसे कह दिया कि सब कुशल है। अपने मित्र चन्द्रदत्त जी को एक तार दे दिया कि पत्नी की अब क्या हालत है सो लिखिये। तीसरे दिन उनका उत्तर मिल गया कि अब ठीक है। इससे निश्चिन्तता हो गई। श्री गोपाला-चारलू से वहाँ के गुजराती और मारवाड़ी सज्जनों ने अनुरोध किया कि पंडित जी आये हैं तो यहाँ एक गुजराती-मारवाड़ी पाठशाला की भी स्थापना कर दी जावे। इस आयोजन व नोटिस आदि के निका-लने में कुछ दिन लगे, इसलिये हम पाँच-सात दिन श्री गोपालाचारलू के ही स्थान पर ठहरे रहे। इस बीच में श्री गोपालाचारलू ने मुझे एक पार्टी भी दी, उसमें एक चाँदी का पञ्चपात्र व आचमनी उपहार में दी। वह पञ्चपात्र मेरे पास अब भी सुरक्षित है।

अंतिम दिन मारवाड़ी-गुजराती पाठशाला की स्थापना की गई थी। उसी दिन गुजराती-मारवाड़ियों ने मुझे उपहार रूप से भेंट भी दी जो चार-पाँच हजार रुपये के लगभग थी वह मैंने पाठशाला के कोश में ही दे दी। कुछ बहुमूल्य वस्त्र आदि भी वहाँ से प्राप्त हुए। अब तक हमारे सहचर आनन्द आदि विशेष खिन्न हो चुके थे। इसलिये अब मद्रास से प्रस्थान कर आगे कान्जीवरम् आये। वहाँ आशौच निवृत्ति का दिन समझ कर मैंने अपने सब सहचरों को यज्ञोपवीत परिवर्त्तन करवा दिया। इस से पिताजी को कुछ ध्यान हो गया कि जयपुर में कोई घटना हुई है। उन दिनों गुसाईं श्री वल्लभलाल जी ने कामा के पास आनं-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दाद्रि में एक आयुर्वेद सम्मेलन का आयोजन कर रक्खा था। उसके तार आदि मेरे पास भी आ रहे थे। गुसाईं श्री वल्लभलाल जी से मेरा पहले ही वम्बई में सम्पर्क हो चुका था। वह सम्वन्ध अव भी चलता ही रहा था। उन्होंने 'वैष्णव धर्म पताका' का संपादन-भार भी कुछ दिन मेरे ही आधीन कर दिया था। इस कारण हमें यात्रा में शीघ्रता करनी पड़ी। कांजीवरम् से तिरुपति बालाजी गए। वहाँ दर्शन के लिये बहुत ऊपर कई मील चलना पड़ता है। पिताजी के लिए तो उनके असमर्थ होने के कारण हमने पालकी तय कर दी थी। मैं और आनन्द पैदल ही चलते रहे। वहाँ तिरुपति बालाजी के दर्शन किये तथा अन्य भी वहाँ एक तीर्थ-स्थान है उसकी भी यात्रा की। इस यात्रा में हम लोग इतने थक गये थे कि लौटने पर खाने-पीने का प्रवन्ध भी कठिनता से हो सका। इस यात्रा को समाप्त करके वम्बई आये। कामा की तारीख अधिक समीप होने से मैं पिताजी को आनन्द के साथ छोड़ कर वाम्वे-मेल से भरतपुर के लिये चल पड़ा। इन को कह आया था कि आप लोग श्री द्वारकाधाम की यात्रा कर आना। किन्तु वे ऐसा न कर सके। वे भी सीधे जयपुर ही चले आये। कामा में मेरी मुलाकात जयपुर के श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी वैद्य से हो गई थी, उनसे घर के कुशल समाचार भलीभाँति विदित हो गए। वहाँ से निवृत्त होकर जयपुर आया। पिताजी मुझ से पहिले ही पहुँच गए थे। वहाँ की घटना सुनकर वे बहुत अकचकाये। तब तक पत्नी को पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ हो चुका था।

"ब्रह्मचारी" में मैंने अपनी दक्षिण यात्रा का जो वर्णन लिखा उसे यहाँ उद्धृत करता हूँ—

दक्षिण प्रान्त की कुछ बातें

इस बार दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध स्थान श्रीरंगम के समीप कोडियालम् ग्राम में श्रीमान् आनरेवल रंगस्वामी आयंगर महाशय के सुप्रवन्ध से फरवरी मास में आ० भा० संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का षष्ठ अधिवेशन हुआ था। इस ही निमित्त इस पत्र के संपादक को भी उस प्रान्त में जाना आवश्यक हुआ, और इतनी दूर उस देश में जा कर वहाँ के मुख्य तीर्थ-स्थानों का दर्शन न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना अनौचित्य की पराकाष्टा होती—अतः प्रायः डेढ़ मास वहाँ के मुख्य स्थानों के दर्शन में व्यतीत किया। यों तो दक्षिण देश उत्तर भारत से ऋतु, प्रकृति, भाषा, भूमि आदि बहुत-सी बातों में सर्वथा भिन्न-सा ही है। वहाँ की सब ही बातें यहाँ की दृष्टि से निराली हैं—उन सब का वर्णन एक वृहत् पुस्तक के रूप में परिणत हो सकता है। किन्तु कुछ अत्यावश्यक विशेष बातें—जिनका प्रभाव दर्शक के अन्तःकरण पर विशेषरूप से हुआ—उनका संक्षिप्त वर्णन पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ दिया जाता है।

ऋतु

दक्षिण उष्णता-प्रधान देश है। वहाँ थोड़े से समय के लिए नाम मात्र को शीतकाल होता है। सुना कि कई एक प्रदेशों में वर्षा और शीत ऋतु कार्तिक के आगे २-३ मास साथ ही साथ हो जाती हैं, शेष सब महीनों में गरमी ही गरमी। फल्गुन मास में प्रातः ७ बजे से ही धूप असह्य होती है। उत्तर भारत में जो अन्न, शाक, फल आदि चातुर्मास्य में उत्पन्न होते हैं—उन सबकी फाल्गुन मास में वहाँ प्रचुरता देख कर अकचकाना पड़ता है। आम्र तो प्रायः बारहों मास ही उस देश में रहता है, किन्तु वह सुस्वादु प्रायः नहीं होता।

मन्दिर

उत्तर भारत के प्रत्येक मनुष्य को चकित कर देनेवाली प्रधान वस्तु वहाँ के मन्दिरों का शिल्प और विस्तार है। इधर के रहनेवाले मनुष्य वैसे मन्दिरों का ध्यान भी नहीं कर सकते। उत्तर भारत में कदाचित् कुछ मन्दिर वैसे पूर्वकाल में हों, किन्तु यवन-साम्राज्य ने उनका नाम निशान तक मिटा दिया। प्राचीन भारत का अद्भुत शिल्प-चातुर्य अब दक्षिण के मन्दिरों में ही देखने को मिलता है। मन्दिरों के निर्माण और उनके सुवर्ण-रत्नादिमय उपस्कर में वहाँ अतुल संपत्ति लगी है। उन्हें देख कर प्राचीन भारत की समृद्धि और उदारता का चित्र सामने आ जाता है। इसमें संदेह नहीं कि वहाँ मन्दिर बनवाने वालों ने पानी की तरह रुपया बहाया है। एक-एक मन्दिर विस्तार में एक-एक बड़े ग्राम या छोटे कसबे के समान कहा जा सकता है। बड़े-बड़े विशाल दशों गोपुर, कई एक बड़े-बड़े सरोवर और बहुत से मण्डप तो प्रायः प्रतिष्ठित मन्दिरों में होते ही हैं, किन्तु 'सहस्रस्तम्भमण्डप' होना और उन सहस्रों स्तम्भों में मूर्तियाँ खुदी होना भी वहाँ एक साधारण बात है। ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कई मन्दिरों में देखा गया। प्राय: वहाँ मन्दिर चतुरस्र (चौकोर) होते हैं, और उनके चारों ओर गोपुरमण्डित विशाल द्वार होते हैं।

सुवर्ण मण्डित शिखर कई मन्दिरों में है। प्रधान देव प्रतिमा के आगे सुवर्ण के विशाल स्तम्भ तो अनेक प्रतिष्ठित मन्दिरों में देखे जाते हैं। घोड़े, वृषभ गरुड़, मयूर, पालकी, सिंहासन आदि सुवर्ण के उपस्कर प्रतिष्ठित मन्दिरों मे बहुत हैं। गोपुरों की उच्चता, उनमें खचित मूर्तियां, चौड़ी छती हुई कई परिक्रमाएँ, दर्शक को आश्चर्य-चकित कर देतीं हैं। विस्तार में श्रीरंग मन्दिर, परिक्रमाओं के संनिवेश और तीतों की अधिकता में श्रीरामेश्वर मन्दिर, एवं शिल्प में मधुरा का श्री मीनाक्षी मन्दिर सर्वोत्कृष्ट है। मीनाक्षी मन्दिर का शिल्प और संनिवेश अद्भुत है, मधुरा जो कि दक्षिण देश का एक प्रतिष्ठित नगर है—इस मन्दिर को केन्द्र बनाकर वीथी के रूप में चारों ओर बसा है। इस मन्दिर का उपस्कर भी सर्वोत्कृष्ट दर्शनीय है। त्रिचनापल्ली में ऊँचे पहाड़ की चोटी पर बने हुए गणेश-मन्दिर और शिव-मन्दिर के मार्ग में कई सौ छती सीढ़ियाँ देखकर भी कम आश्चर्य नहीं होता।

जीर्णोद्धार

इन विशाल मन्दिरों में मुख्य देवस्थान, कई परिक्रमाओं से घिरा रहने के कारण, अत्यन्त अन्धकार में रहता है। देव-दर्शन कराने के लिए वहाँ दिन में सैकड़ों दीपकों की आवश्यकता होती है, रात्रि में तो दीपावली का इन मन्दिरों में बहुत ही बड़ा व्यय है। वर्तमान में पुराने मन्दिरों का जहाँ कहीं जीर्णोद्धार होता है, वहाँ समयानुसार अन्धकार कम करने की ओर नेताओं का स्वभावत ध्यान होता ही है। वे जाली आदि निकाल कर प्रकाश का प्रबन्ध करते हैं। श्रीरामेश्वर के मन्दिर का जीर्णोद्धार-कार्य भी कई वर्षों से चल रहा है, बहुत कुछ हो चुका है, और भी बहुत बाकी है! सुना है—पहले इस मन्दिर में बहुत अन्धेरा था, किन्तु जीर्णोद्धार के साथ-साथ प्रकाश का भी यथाशक्ति प्रबन्ध हो रहा है। यों जहाँ इस कार्य को उत्तम कहा जा सका है, वहाँ इसके द्वारा बहुत बड़ी हानि भी हो रही है। दस-बारह वर्ष पहले समाचारपत्रों में आन्दोलन उठा था कि मन्दिर कमेटी के सदस्य रामेश्वर-मन्दिर का आमूल चूड़ संस्कार करना चाहते हैं, प्राचीन मन्दिर को पलटकर बिलकुल नया मन्दिर बनवा देना चाहते हैं, प्राचीन शिल्प का खोज मिटा रहें हैं। इसपर बहुत कुछ विरोध हुआ था। शायद उसका कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फल भी हुआ। उतना परिवर्तन करने का विचार उन्हें त्यागना पड़ा। किन्तु आन्दोलन तो थोड़े दिन रह कर समाप्त हो जाता है और काम में समय लगता है। पुकारने वालों की चिल्लाहट बन्द हो जाती हैं, काम करने वाले फिर अपना मार्ग निष्कण्टक देख यथेच्छाचार करते हैं। इस मन्दिर में जो शतशः लिंग और मूर्तियाँ हैं, उनमें- से बहुत से प्रधान माने जाते हैं। ऐसे प्रधान लिंग और मूर्तियाँ भी कमेटी के प्रधान महाशय की आज्ञा से एक स्थान से हटा कर दूसरे स्थान पर रक्खे जा रहे हैं। इस उपद्रव से कई मूर्तियाँ खण्डित भी हो जातीं हैं। एक बड़ी विशाल सुन्दर गणेश-मूर्ति को खण्डित पड़ा हमने स्वयं देखा। वहाँ के पण्डा ने ऐसी ही और भी मूर्तियाँ खण्डित हो जाने की बात कही। हमें मूर्तियों की दुर्दशा देखकर आन्तरिक दुःख हुआ। हम चाहते हैं कि समुद्र तट पर होने वाले इस अनर्थ की पूरी जाँच विवेक से हो, मूर्तियों के साथ इतनी बेपरवाही न की जाय।

साउथ इण्डिया रेलवे

दक्षिण के दृश्यों में वहाँ की रेल का भी एक प्रधान दृश्य गणनीय है। मद्रास से आगे छोटी लाइन है, नाम है साउथ इण्डिया रेलवे। वस्तुतः तो इसे 'भूतों की गाड़ी' कहें तो कुछ भी अत्युक्ति नहीं। नंग-भुजंग हजारों भूतों का प्रति स्टेशन इस पर आक्रमण होता रहता है। रेल के डब्बों में बोरों की तरह मनुष्य भरे जाने की जो बात कही जाती है, वह वहाँ ठीक-ठीक आँख के सामने आ जाती है। इस बुरी तरह इसमें मनुष्य नामधरी 'जन्तु' ठँसते हैं कि अनुभव किये ही बने, शब्दों में वह चित्र दिखाने की सामर्थ्य नहीं। कुम्भ आदि पर जो दृश्य कभी-कभी हमारी रेलों में दीख पड़ता है—वहाँ उससे बढ़े-चढ़े दृश्य का सतत अनुभव होता है। इस ट्रेन में सुरंग द्वारा सब डिब्बों का परस्पर संबंध रहता है। एक डिब्बे में चढ़कर सीधे अन्त तक की गाड़ी तक घूम सकते हैं। यह सुविधा ऐसे अवसर में बड़ी भयंकर सिद्ध होती है। जिस समय सृष्टि के विस्तार का चित्र आँख के सामने आते हुए पूर्वोक्त दल बादल एक गाड़ी में चढ़ कर वहाँ से सर्वत्र फैलते हैं, उस समय ट्रेन-मात्र में किसी के जान-माल की खैर नहीं रहती। स्वतः ही इनके शरीर का सौरभ बहुत उत्कृष्ट है, फिर 'सूखी मछली' आदि बड़े उत्तम पदार्थ भी इनके साथ रहते हैं। इनके शरीर का संघर्ष, और उस गन्ध का महत्व। ओह, उस दशा का स्मरण कर अब भी प्राण काँपता है। ऐसे प्रदेश में भी गाड़ियाँ कम कर रेलवे कम्पनी ने देश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर अपूर्व दया की है। क्या कहें! इस आपत्ति से बचने को कोई सेकिण्ड क्लास में चढ़ना चाहे, तो भी निस्तार नहीं। सेकिण्ड क्लास भी प्रायः इतने भरे होते हैं कि सीट ही नहीं मिलती। सेकिण्ड क्लास के टिकिट वालों को कई अवसर प्रतीक्षा में खोने होते हैं। 'बोट-मेल' के सेकण्ड, फर्स्ट क्लास तो कई दिन पहले रिजर्व हो सकते हैं। इण्टर की तो वहाँ कथा ही नहीं, बस, उस आपत्ति का भोग दुर्निवार है। कुछ आन्दोलन होने पर रेलवे कम्पनी ही दया कर गाड़ियाँ बढ़ावे तो कुछ प्रतीकार हो।

मालावार प्रदेश

मधुरा से एक लाइन तो रामेश्वर की ओर जाती है, और एक मालावार प्रदेश की ओर जाती है। इस प्रदेश में ताम्रपर्णी नदी, तेनकाशो, पद्मनाभ, जनार्दन, कन्याकुमारी क्षेत्र, तोताद्रि आदि कई एक प्रसिद्ध तीर्थ हैं। उत्तर-भारत के यात्री प्रायः रामेश्वर लाइन से ही लौट कर चले जाते हैं। मालावार प्रदेश में इस तरफ के यात्री बहुत कम जाते हैं। किन्तु हमारे विचार से मालावार प्रदेश की यात्रा छोड़ देना, इतने बड़े द्रव्य व्यय और परिश्रम का उत्कृष्ट फल छोड़ देना है। यह प्रदेश अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ के पहाड़ों की हरियाली, पुष्प, फल, मेवा आदि की समृद्धि, जल-निर्झर, कहीं-कहीं जल-प्रपातों का अद्भुत दृश्य, एक से एक बढ़ कर हैं। प्रायः समुद्र के किनारे-किनारे ही यह प्रदेश है। कई एक योग्य विद्वान् इसे ही मलयाचल प्रदेश कहते हैं। त्रिवेन्दम् जाते हुए मार्ग में कई स्टेशनों तक शिमले के मार्ग का-सा दृश्य मिलता है, विशेषता इतनी है कि केला आदि फलों के जंगल के जंगल इस प्रदेश में बहुत अधिक हैं। नगर भी बहुत बड़े-बड़े मिलते हैं। ट्रावन्कोर की राजधानी त्रिवेन्द्रम् बहुत विस्तृत और खुला नगर है। पद्मनाभ भगवान् की सोती हुई विशाल मूर्ति यहाँ दर्शनीय है। इस मन्दिर का बहुत बड़ा महत्व यह है कि सहस्रों ब्राह्मण यहाँ प्रतिदिन दोनों सन्ध्या भोजन करते हैं। वह पंक्ति का दृश्य देखकर चित्त बड़ा उल्लसित होता है। उत्तर भारत में भी वल्लभसंप्रदाय आदि के बहुत बड़े-बड़े मन्दिर हैं जिनमें भोगराग आदि का खर्च किसी से कम नहीं। क्या ही अच्छा होता, यदि इनमें भी ब्राह्मण-भोजन की ऐसी ही व्यवस्था होती। वह भोग का इतना खर्च भी एक महत्व के कार्य में लग जाता है, और मन्दिरों के कर्मचारी भी 'प्रसाद-विक्रय' के बड़े पाप से बच जाते।

पद्मनाभ की मूर्ति द्वादश सहस्र शालग्राम घटित कही जाती है। ट्रावन्कोर राज्य के अधीश्वर ये ही हैं। उनके चरण में वर्तमान राजा के पूर्वजों ने राज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समर्पित कर दिया था। अब वहाँ के राजा केवल 'पालक' के तौर पर हैं। राजा को स्वयं नित्य भगवान् के दर्शन करने होते हैं। यहाँ के पुजारी इस प्रदेश के 'मालावारी' ब्राह्मण हैं जो कि 'ऊर्ध्वशिख' रहते हैं। उनका यात्रियों के साथ व्यवहार अच्छा नहीं होता। ये लोग हृदय के शुद्ध नहीं। पद्मनाभ भगवान् की पूजा स्मार्त संप्रदाय के अनुसार होती है। भगवान् के चार हाथों में से एक हाथ शिवलिंग पर है। विष्णु भगवान् सोते हुए भी निरन्तर उस एक हाथ से लिंग पूजा करते हैं, यह प्रसिद्धि है। दक्षिण प्रदेश में, जहाँ कि शैव वैष्णवों का अत्यन्त विद्वेष बढ़ा हुआ है, वहाँ इस प्राचीन मूर्ति का दर्शन कर चित्त उच्छ्वास लेता है। यह मूर्ति पुराण-प्रसिद्ध मूर्ति है। प्राचीन भावों का आदर्श इस से भलीभाँति सामने आता है।

कन्या कुमारी क्षेत्र भी अति रमणीय प्रदेश है। तीन ओर कल्लोल-माला-कुलित धनुपाकार समुद्र, बीच में साफ-सुथरी असंकीर्ण छोटी-सी बस्ती, बड़ी स्वच्छ धर्मशाला, अति सुन्दर दिव्य मूर्ति सब ही बातें प्रभावोत्पादक हैं। समुद्र में थोड़ी दूर एक छोटी-सी पहाड़ी है जो वस्तुतः तपस्या का स्थान प्रतीत होता है। यहीं कुमारी ने तप किया बताया जाता है। इस क्षेत्र के एक वृद्ध पण्डाजी जैसे सभ्य, सुशील, मधुर-भाषी और सन्तोषी मिले—वैसे पण्डा अन्यत्र हमारी दृष्टि में नहीं आये। विद्वान् भी ये अच्छे थे। अस्तु, इस प्रदेश की यह एक बड़ी विलक्षणता है कि मूर्ति का श्रृङ्गार करने वाले पुजारी लोग केवल चन्दन आदि के श्रृङ्गार और आभूषणों की सहायता से मूर्ति के अनेक विलक्षण दृश्य बना देते हैं। कन्याकुमारी और जनार्दन-क्षेत्र में इस विशेषता का हमने स्पष्ट अनुभव किया। रात्रि को पहुँचते ही जब कुमारी भगवती के दर्शन किये, तो दूर से आभूषणों की प्रभा से सब सुवर्णमयी प्रतीत हुई, किन्तु कुछ समीप जाकर दर्शन करने पर गौर-वर्ण अति सुन्दर मृण्मय मूर्ति का अनुभव हुआ। दूसरे दिन स्नान की हुई प्रतिमा जब देखी तो है निश्चय हुआ कि मूर्ति श्याम पाषाण की है। थोड़ी ही देर में चन्दन का श्रृङ्गार होकर वह फिर गौर-वर्ण सुन्दर मूर्ति बन गई। जनार्दन-क्षेत्र में जनार्दन भगवान् की भी चतुर्भुज खड़ी मूर्ति है। किन्तु लोग जैसा दर्शन करना चाहें वैसा ही उनकी रुचि के अनुकूल उस ही मूर्ति का दर्शन करा दिया जाता है। मोहिनी अवतार, राम, वंशीधर, कृष्ण, नृसिंह आदि भिन्न-भिन्न रूपों में श्रृङ्गारित उस मूर्ति के दर्शन होते हैं, इन पृथक्-पृथक् दर्शनों के लिये भेंट का परिमाण पृथक्-पृथक् नियत है। यों द्रव्य लेकर भगवान् के रूप पलटना हमारी दृष्टि में उचित प्रतीत नहीं हुआ, किन्तु वह शिल्प अत्यन्त प्रशंसनीय है—इसमें सन्देह नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रदेश में न जाने वाले यात्री बहुत-सी विशेषताओं के देखने से वंचित रह जाते हैं, अतः इतना द्रव्य और समय लगाकर इतने परिश्रम से दक्षिण यात्रा करने वाले उत्तर भारत के यात्रियों को यह प्रदेश अवश्य देखना चाहिए। पहले इधर जहाज और बैलगाड़ियों में घूमना होता था, किन्तु अब वह बात भी नहीं। ट्रेन त्रिवेन्द्रम् तक ले जाती है, खर्च भी मधुरा से उधर जाने में बहुत अधिक नहीं। हाँ एक क्लेश इस प्रदेश में अवश्य है। यात्रियों का प्रसर कम होने से उधर के मनुष्य उत्तर भारत की भाषाएँ बिलकुल नहीं समझते। उन भाषाओं का भी लेश मात्र भी इधर के लोग भला क्यों समझेंगे? अतः वहाँ काम चलाना भी बड़ा कठिन हो जाता है। शिक्षित मनुष्यों की भी वहाँ न्यूनता है, अतः संस्कृत वा अंग्रेजी से भी काम मुश्किल से निकल सकता है। त्रिवेन्द्रम् में ट्रावंकोर राज्य की तरफ से पद्मनाभ मन्दिर में दो एक बहुभाषाभिज्ञ दर्शक नियत हैं, वे दर्शन आदि में सहायता किसी कदर देते हैं, किन्तु इतने से काम नहीं चलता। धर्मशाला ढूंढ़ने तक में बड़ा कष्ट होता है। त्रिवेन्द्रम में हम म० म० श्रीगणपति शास्त्री राजपण्डित के अतिथि थे, अतः वहाँ कोई कष्ट नहीं हुआ, किन्तु औरों को बहुत कष्ट पाते देखा। अन्य स्थानों में हमें भी इस कष्ट का अनुभव हुआ। इसके लिये एक दोभाषिया साथ रखना पड़ा। यहाँ हिन्दी प्रचार के प्रयत्न होने की अधिक आवश्यकता है।

उन दिनों गवर्नमेंट के सामने पटेलबिल उपस्थित हो रहा था। उसका आशय था कि कोई भी वर्ण किसी भी वर्ण के साथ विवाह सम्बन्ध कर सकता है इसमें कोई बाधा नहीं मानी जावेगी। इस से भारतवर्ष की जनता में बहुत हलचल मची हुई थी। मुझे उन दिनों गोरखपुर का निमन्त्रण मिला हुआ था। वहाँ श्री पं० दीन-दयालु जी भी निमन्त्रित थे। हम दोनों काशी में ही एकत्रित हुए वहाँ भी श्री आनन्द ही यात्रा में मेरे साथ थे। काशी में श्री सत्यनारायण के मंदिर के पास आदिविश्वेश्वर में हम लोग ठहरे हुए थे। श्री दीनदयालु जी के साथ हम लोगों का भी भोजन आदि का प्रबन्ध श्री शिवप्रसाद गुप्त ने कर रक्खा था। वहीं गोस्वामी श्री व्रजनाथ जी, व पं० अखिलानन्द जी भी आगये थे। पटेलबिल के विरोध में एक दिन सभा करने का विशेष आयोजन वहाँ किया गया। उसका नोटिस लेकर श्री शिवप्रसाद गुप्त ने पं० दीनदयालु जी से कहा कि पंडित जी हम आपकी सभा बिगाड़ देंगे। पंडित जी ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनको उपेक्षा पूर्ण उत्तर दे दिया, कह दिया कि, "क्या करोगे सो दिखाई पड़ जावेगा"। अन्तत: सभा का दिन आया और उसमें काशी की प्राय: सभी विद्वन्मंडली एकत्रित हुई। उसमें श्रीशिवप्रसाद गुप्त व डाक्टर भगवानदास आदि कुछ प्रतिष्ठित लोग आये। उस समय पं० अखिलानन्द जी का भाषण हो रहा था। उनके भाषण में ये लोग गड़बड़ी की कुछ चेष्टायें करने लगे। सभापति वनाये गये थे गोवर्धनपीठ के श्री शंकराचार्य। ये चेष्टायें देखकर पं० दीनदयालुजी ने मुझ से कहा कि तुम खड़े हो जाओ। प्रश्न यह उठ खड़ा हुआ था कि यह केवल सनातन-धर्मियों की सभा है या इसमें आर्य-समाजी व अन्य रिफार्मरों का भी प्रवेश हो सकता है। मैंने उठकर केवल यही प्रतिपादन किया कि यह केवल सनातनधर्मियों की ही सभा है, जो सनातन-धर्मी नहीं हैं उन्हें इसमें भाग नहीं लेना चाहिए। उक्त सज्जनों ने सभापति से निर्णय माँगा तो सभापति ने यही निर्णय दिया कि नोटिस के उपक्रम और उप-संहार से यह सनातन-धर्मियों की ही सभा सिद्ध होती है। इस पर आगत प्रतिष्ठित सज्जन जाने लगे तो जाते समय श्री दीनदयालु जी ने कहा कि—"मेरे पास सामग्री वहुत है चाहो तो शास्त्रार्थ करा लो"। "देखा जायगा" कह कर आगत सज्जन चले गये। मैंने सभा को सूचित कर दिया कि कुछ सज्जन जो यहाँ आये थे वे इस सभा में भाग लेने में अपना अधिकार न समझ कर वापस जाते हैं, सभा की कार्यवाही अब आगे चलेगी। इस सूचना से कुछ अन्य सज्जन. जो सभा को समाप्त समझ कर उक्त सज्जनों के साथ जाने को उद्यत हो चुके थे, वे वापस बैठ गए और केवल वे चार-पाँच सज्जन उठ कर चले गए। अन्य कोई भी विद्वान् उनके साथ नहीं उठा। इसी समय पं० दीनदयालु जी ने यह घोषणा की कि अन्य मतावलम्बी चाहे जितने पंडित बुला लें, हम अपनी तरफ से केवल गिरिधर शर्मा को ही देते हैं। इनको यदि अन्य मतावलम्बी पंडित लोग परास्त कर देंगे तो सनातन-धर्म अपने को हारा हुआ मान लेगा। यह प्रत्यक्ष घोषणा थी। इसके बाद सब पंडितों की उपस्थिति में सभा का कार्य धड़ल्ले से होता गया और पटेलबिल के विरुद्ध प्रस्ताव भी पास हुआ। फिर हम लोग गोरखपुर चले गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोरखपुर से लौटते समय मुझे दो उपनयनों के आवश्यक निमंत्रण प्राप्त हुए। एक आगरे के गोस्वामी व्रजनाथ जी का और एक बरेली के शालिग्रामशास्त्री जी का। मैंने शालिग्रामशास्त्री जी के यहाँ ही जाना निश्चित किया। अयोध्या होता हुआ मैं बरेली पहुँचा। वहाँ शालग्रामशास्त्री जी के दो पुत्रों के उपनयन में सम्मिलित होकर फिर जयपुर आ रहा था कि मध्य में ही मेरे श्याल वंशीधर जी के विवाह में सम्मिलित होना आवश्यक हुआ। पिताजी आदि बारात में आ रहे थे, उनके साथ ही मैं भी हो लिया। इलाहाबाद के पास करेंटी एक माथुर चतुर्वेदियों का स्थान है, वहीं विवाह था। उसमें सम्मिलित होकर फिर जयपुर आया। इस प्रकार प्रायः दो वर्ष के लगभग भिन्न-भिन्न स्थानों में यात्रा करता रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाहौर में निवास

इन यात्राओं में अनुभव होने लगा कि इस तरह निरंतर भ्रमण करने से स्वास्थ्य में वहुत बाधा पहुँचेगी। इसलिये किसी एक स्थान पर ही बैठना अच्छा है। लाहौर के सनातनधर्मावलम्बी बहुत आग्रह से बुला रहे थे, उनसे पत्र-व्यवहार कर संवत् १९७६ में लाहौर चला गया। मध्य-मध्य में भी पं० अखिलानन्द जी के साथ लाहौर जाना होता रहता था, फिर वहीं रहना निश्चित किया। आरंभ में तो सनातनधर्मसभा के आह्वाहन पर ही लाहौर गया था और प्रायः दो वर्ष उन्हीं के अधिकार में रहा, किन्तु वे मेरा डेढ़ सौ रुपयों का वेतन-भार सहन कर लेने में असमर्थ थे। इसलिये दो वर्ष बाद श्री रघुवरदयाल जी के सम्पर्क से सनातनधर्म कालेज के अधिकार में चला गया।

लाहौर जाते ही पिताजी का, पुत्र चि० देवीदत्त की रुग्णता का तार मिला। इससे शीघ्र ही जयपुर आना पड़ा। फिर देवीदत्त के स्वस्थता लाभ करने पर अश्विन में लाहौर लौट गया। जाते समय महामहोपाध्याय श्री शिवदत्त जी साथ थे। हरिद्वार में ब्रह्मचारी का सम्पादन और शिक्षा समिति की सदस्यता भी अभी बनी हुई थी। वहाँ समय-समय पर शिक्षा-समिति के अधिवेशनों में मेरे मित्र श्री सूर्यनारायण जी भी आया करते थे। ऋषिकुल में इस समय बहुत परिवर्तन हो गया था। वहाँ बूंदी के अमात्य गंगासहाय जी के पुत्र हरिवल्लभ शर्मा इस समय प्रिंसिपल नियत हुए थे। पूर्व प्रेसिडेंट पं० आनन्दनारामण जी का भी परिवर्त्तन हो गया था। उनके परिवर्त्तन में भी गोस्वामी श्री व्रजनाथ जी और मैं भी कारण थे। गोया हमको ऋषिकुल से निकालने का ही वदला हमने लिया था। अब प्रेसिडेंट लालासुखवीरसिंह नियत हुए थे। शिक्षा-समिति के सदस्यता के अधिकार से मैंने कुछ प्रश्न लिख कर नोटिस भेजा था। उस विषय में हरिवल्लभ महाशय से कुछ कहा-सुनी हो गई। उन्होंने मेरे प्रश्नों का उत्तर देते हुए ही कटु शब्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहे कि मैं किसी बंदी-जन का पुत्र नहीं हूँ वरन् अमात्य का पुत्र हूँ। यह मुझ पर कटाक्ष था क्योंकि मेरे पिताजी जयपुर के राजकवीश्वर थे। उनको ही 'बंदी-जन' शब्द से हरिवल्लभ ने कहा था। मैंने भी जोश में उसका उत्तर कटु शब्दों में ही दे दिया था कि 'बूंदी के अमात्य तो मेरे घर के टुकड़े खाते रहे हैं'। इत्यादि रूप से ऋषिकुल में विवाद हो गया, इस से आगे ऋषिकुल से विरक्ति हो गई। पहिले तो व्याख्यान आदि के लिए ऋषिकुल जाया करता था किन्तु आगे कटु संबंध हो जाने के कारण प्रायः विरक्त ही हो गया। ब्रह्मचारी का सम्पादन भी उस समय से ही मैंने छोड़ दिया था और शिक्षा-समिति में भी वहुत कम जाता था। सनातन-धर्म पताका के सम्पादक का प्रस्ताव था कि ब्रह्मचारी सनातन-धर्म-पताका के साथ ही मिला दिया जाय। इस पर एक लेख लिख कर ही 'ब्रह्मचारी' का सम्पादन छोड़ देना पड़ा। पंडित केदारनाथ जी ने इस वार भी द्वेष निभाया, कि ऋषिकुल के ब्रह्मचारियों को लाहौर बुलाने का मुझ पर कटाक्ष किया। इसका उत्तर भी मैंने दिया था कि ऋषिकुल के ऐसे ही विद्यार्थी लाहौर गए हैं जो कि ऋषिकुल से संबंध छोड़ चुके थ वा पहिले ही स्नातक हो चुके थे। परमेश्वरानन्द शास्त्री को भी मैंने अध्यापक रूप में लाहौर बुला लिया था। एक वहाँ हीरानन्द जी शास्त्री अध्यापक थे। यों हम तीन अध्यापक लाहौर का काम चलाते थे। सनातन-धर्म-पताका क साथ ब्रह्मचारी का एकीकरण होने का तो पं० दीनदयालु जी ने ही विरोध कर दिया था। इस से ब्रह्मचारी स्वतंत्र ही रहा और पंडित केदारनाथ जी ने ही इसका सम्पादन-भार सम्हाला। उनके सम्पादकत्व में भी ब्रह्म-चारी कई वर्षों तक चलता रहा फिर केदारनाथ जी भी अन्यत्र चले गये थे फिर भी वे ऋषिकुल ही आ गये। यों आवागमन उनका वना ही रहा। मैं लाहौर से ही श्री सूर्यनारायण जी के छोटे पुत्र के विवाह में जयपुर आया था। वहाँ मेरी घड़ी किसी सज्जन ने उठा ली। जब इसकी चर्चा हुई और सूर्यनारायण जी ने बुरे-भले शब्द कहे कि आपस में इस प्रकार की घटना होना बहुत ही अनुचित है तब उन सज्जन ने मेरी घड़ी निकाल कर पूछा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि यही घड़ी है क्या ? मैंने उत्तर दिया कि मेरा कोई चिन्ह घड़ी पर है नहीं, वेस्टएण्डवाच कम्पनी की है और ऐसी सैकड़ों हो सकती हैं फिर कैसे कह दूं कि यही मेरी है। वह महाशय यही कहते रहे कि आप यह कह दें कि यह मेरी ही है, तभी दूँगा। मैं यही कहता रहा कि ऐसा भला मैं कैसे कह दूँ। इसी हठ में सारा दिन निकल गया। फिर वे महाशय कहीं चले गये। घड़ी वे किसी दूसरे सज्जन को दे गये यह कह कर कि उनकी ही है दे देना। यह एक मजाक की सी घटना हुई। अस्तु, उसी दिन मेरे पिताजी और पत्नी आदि एक सम्बन्धी के विवाह में रामपुरा-जिला टोंक चले गये और मैं वहाँ से वसुआ एक अन्य सम्बन्धी के विवाह में होता हुआ लाहौर वापस आ गया।

मैं लाहौर में अकेला ही रहता था क्योंकि पत्नी को साथ रखने पर पिताजी को कष्ट होता जो मुझे किसी तरह स्वीकार न था। एक मैथिल परिवार के सज्जन कृपाशंकर जी भी जयपुर से मेरे साथ ही आ गये थे। इन महाशय से छोटी अवस्था में ही परिचय हो गया था। हमने जिस साल पंजाब की शास्त्री की परीक्षा दी थी उसी साल वे प्राज्ञ परीक्षा देने जयपुर सेंटर में आये थे। उसी समय इनको अति चञ्चल देख कर हम लोगों का ध्यान इनकी ओर गया। फिर ये कुछ वर्ष डिटेक्टिव-विभाग में रहे और आगे कोटा में अध्यापक हो गये। पहले ये लाहौर के ओरियन्टल कालेज में पढ़ चुके थे किन्तु उत्तीर्ण न हो पाये थे क्योंकि इनके हस्ताक्षर मुंशियों जैसे होते थे। अतः संस्कृत के पण्डित उन्हें उत्तीर्ण न करते थे। अब मेरा लाहौर जाना सुन कर ये जयपुर में ही मेरे पास चले आये और कई वर्ष लाहौर में मेरे ही साथ रहे। मेरे पास ही पढ़ कर इन्होंने शास्त्री परीक्षा और हिन्दी प्रभाकर परीक्षा उत्तीर्ण की थी। फिर ये अजमेर में गवर्नमेंट सर्विस में चले गये। वहाँ से अब तक भी मेरा इनसे साहचर्य बना हुआ है। अस्तु, ये जयपुर से ही मेरे साथ गये थे और लाहौर में ये और मैं साथ-साथ ही रहे। एक कायमगंज के चतुर्वेदी जो वहाँ के प्रतिष्ठित खानदान के थे—सोहनलाल जी, वे भी अपने भाई या भतीजे को पढ़ाने लाहौर आये थे। कुछ दिन उनका और मेरा एक घर में ही निवास रहा किन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भोजन का संबंध प्राय: उनसे मेरा नहीं बनता था क्योंकि वे लोग जल्दी भोजन करने वाले थे और मेरा अभ्यास विलम्ब से ही भोजन करने का था। इसलिये कभी-कभी छुट्टी के दिनों में ही उनके साथ भोजन का व्यवहार होता था। वहाँ कुछ दिन मेरा पितृव्य पुत्र गंगा-प्रसाद भी मेरे साथ रहा था।

इधर माथुर चतुर्वेदी महासभा के भी अधिवेशन होने लगे थे। मैं लाहौर गया उसी साल संवत् १९७६ में मथुरा में पहिला अधिवेशन दानवीर श्री वैजनाथ जी की अध्यक्षता में हुआ था। दूसरा अधिवेशन मैनपुरी में ही था। उसमें मैनपुरी के कुछ सज्जनों में जिनमें खड्गजीत जी प्रधान थे, वैमनस्य भी हो गया। मेरी ज्येष्ठ पुत्री जो मैनपुरी व्याही थी उसके सास और ससुर पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। मैं क्वेटा यात्रा से सीधा मैनपुरी पहुँचा था वहाँ परस्पर कटुता बहुत बढ़ गई थी। मेरे प्रयास से भी कटुता शान्त न हो सकी। यहाँ तक कि कुछ लोगों ने यह कह डाला कि 'हलुआ-पूड़ी खाय के अपने-अपने घर जाओ'। इस पर श्री वैजनाथ जी विगड़े कि हलुवा-पूड़ी पर जो खर्च हुआ है वह जब तक मुझ से न लिया जावेगा तब तक मैं भोजन नहीं करूँगा। अस्तु, किसी तरह चतुर्वेदी महासभा में वह कलह शान्त किया गया। मैनपुरी के कुछ सज्जनों ने माफी माँग ली। फिर वहाँ से लाहौर आया। उस समय भी मेरे सभापतित्व की बात होती थी किन्तु दूसरा नाम वयोवृद्ध मेरठ के श्री राधेलाल जी का था। इसलिये मैंने उन्हें हटा कर अपने आप सभापति होना उचित न समझा, स्वयं निषेध कर दिया। उसी अन्तर में महासभा का 'सभ्य-सँग' एक बार कलकत्ता गया था उसमें भी मैं सम्मिलित था। वहाँ कुछ सज्जनों से चतुर्वेदी महासभा के लिये सहायता का कुछ द्रव्य भी लिखवाया था। फिर लाहौर चला आया।

संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन के सप्तम अधिवेशन के सभापतित्व के लिए उन्हीं दिनों कुछ वाद-विवाद भी हुआ था। हमने जो नियमानुसार नाम सभापतित्व के लिए भेजे थे उनमें से एक नाम दिल्ली के महामहोपाध्याय श्री हरनारायणशास्त्री जी का भी था। किन्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्री जी ने उसे पसन्द नहीं किया। उन्होंने कलकत्ते के एक सज्जन को सभापतित्व के लिये प्रस्तावित किया। मैंने मंत्री के अधिकार से लिखा कि कलकत्ते में जब अधिवेशन हो उस समय कलकत्ते का ही सभापति होना उचित नहीं है। इस पर बहुत दिन वाद-विवाद चलता रहा और अन्ततः कलकत्ते में वह अधिवेशन नहीं ही हो सका। जो रुपया वहाँ इकट्ठा हुआ था वह यूंही बर्बाद हो गया। तब ग्रीष्मावकाश में मैं जब जयपुर आया उस समय जयपुर में ही अधिवेशन होने का उद्योग किया। हमारे गुरु श्रीमान् विद्यावाचस्पति मधुसूदन जी को स्वागत-समिति का अध्यक्ष भी बना लिया था किन्तु उस समय के संस्कृत-कालेज के म० म० अध्यक्ष श्री दुर्गाप्रसाद जी ने पं० कन्हैयालाल जी के द्वारा श्री पुरोहित गोपीनाथ जी से निषेध करवा दिया। इस-लिये वहाँ भी अधिवेशन नहीं हो सका। अन्ततः अधिवेशन किसी प्रकार करना आवश्यक समझ कर हमने आगरे के श्रीमान् गोस्वामी व्रजनाथ जी को लिखा, उन्होंने स्वीकार किया और वहाँ स्वागत-समिति का संगठन कर अधिवेशन बुला लिया। उसी बीच में मेरे एक पुत्र और हुआ अतः एक बार जयपुर भी जाना पड़ा था। महाराजा धौलपुर का उन दिनों ऐसा नियम था कि अपने जन्म-दिवस के अवसर पर एक विद्वान् को बुला कर उसे पाँच सौ रुपये भेंट देते थे। उस वर्ष मेरा ही नाम प्रस्तावित किया गया था इसलिये मुझे लाहौर से ही जयपुर होकर धौलपुर जाना पड़ा। वहाँ अपनी भेंट तो ली ही, महाराजा धौलपुर से संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन में आने की प्रार्थना भी की। उन्होंने आगरा अति-समीप होने के कारण स्वीकार भी कर लिया और मध्यान्होत्तर थोड़े काल के लिए सम्मेलन में आये और सम्मेलन की सहायता के लिए इक्कीस सौ रुपये का दान कर उसके स्थायी फंड का आरंभ कर गये। इसके अनन्तर कलकत्ते में जब चतुर्वेदी महासभा का अधिवेशन हुआ तो वहाँ मेरा ही नाम सभापतित्व के लिए आया था, इस लिए मैं कलकत्ता भी गया और वहाँ कालिका-भगवती का दर्शन कर वहाँ के अधिवेशन का कार्य निपटाया। उस अधिवेशन की रिपोर्ट अलग छपी हुई है इसलिए यहाँ उसके लिखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। वहीं श्री स्वामी भारतीतीर्थ महराज का भी साक्षात्कार

११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ और उनके प्रोग्राम में भी एक दिन मैं सम्मिलित हुआ, उनके संस्कृत व्याख्यान का अनुवाद भी मैंने ही सुनाया, क्योंकि वे संस्कृत और इंगलिश में ही बोलते थे। अस्तु, इन कामों से निपट कर लाहौर आ गया।

उत्सव में कलकत्ते के तीन सज्जन भी आगरा पधारे थे। प्रार्थना करने पर उन्होंने ही अपने यहाँ सम्मेलन का मंत्रि-पद ले लिया। श्री गीष्पति राय चौधरी सम्मेलन के मंत्री बने। श्री हरनारायण शास्त्री जी का सभापति की वक्तृता का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। श्री पं० दीनदयालु जी भी उसमें सम्मिलित हुए थे और जयपुर से भी अनेक विद्वान् आये थे। उस समय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन की नियमावली का संशोधन भी मैंने प्रस्तुत किया था। उसमें पं० दीनदयालु जी के सुपुत्र श्री मौलिचन्द्र शर्मा जी ने बहुत भाग लिया।

इससे आगे श्री मालवीय जी ने संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन काशी में बुलाया था। अन्ततः कलकत्ते वाले विद्वान् सम्मेलन को चला नहीं सके। उन्हें हरिद्वार में हमने राजा बिड़ला से सहायता भी दिलाई तो भी वे नहीं चला सके। गीष्पतिराय चौधरी जो मंत्री बने थे उनका बहुत शीघ्र ही देहावसान हो गया। इससे सम्मेलन फिर मेरे ही सिर आ पड़ा।

उन दिनों हिन्दू-सभा भी चलने लगी थी। उसके पहले तो श्रीदीनदयालुजी सभापति हुए थे, आगे स्वनामधन्य श्रीमालवीयजी सभापति बने। उसके साथ ही काशी में उन्होंने संस्कृत-सम्मेलन भी बुलाया था। प्रथम दो दिन तो हिन्दू-सभा के अधिवेशन रक्खे थे और अन्तिम दिन संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन को दिया था। हिन्दू-सभा में स्वामी श्रद्धानंद जी आदि आर्य-समाजी विद्वान् भी एकत्रित हुए थे। साथ ही सनातनधर्मी भी बहुत से जुटे थे। श्री मालवीयजी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो प्रस्ताव पास होंगे वे सर्व-सम्मति से ही होंगे। वोट देकर कोई भी प्रस्ताव न पास किया जायगा। हाँ, एक बात कहने से रह गई कि उन्हीं दिनों मलकाना राजपूतों का पुनः संस्कार कर उन्हें मुसलमानों के चंगुल से बचाकर फिर हिन्दू बना लेने का लाहौर से आन्दोलन आरंभ हुआ था। मलकाना वह जाति थी जो कई पीढ़ियों से अधर झूल चल रही थी। मुसलमान उन्हें अपनी ओर खींचते थे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और उनके रिवाज सब हिन्दुओं से मिलते थे। उस आन्दोलन में मैंने भी भाग लिया था। मैं इस पक्ष में था कि खान-पान उनका क्षत्रिय जाति के साथ ही होना चाहिए, हम उन्हें कुछ प्रायश्चित्त करा देंगे, उससे शुद्ध होकर वे अपनी जाति में मिल सकेंगे। इस आन्दोलन का प्रचार केन्द्र आगरा में गोस्वामी श्री व्रजनाथ जी के अधिकार में ही स्थापित था। वहाँ पंजाब के बहुत से सनातन-धर्मी क्रम से सभापति होकर आते थे और एक-डेढ़ महीना अपनी ड्यूटी भुगता कर चले जाते थे। मैनपुरी में भी इसका आन्दोलन हुआ था। वहाँ बहुत से मेरे सजातीय देखने के लिए आए थे कि यह क्या करता है—उनके साथ खान-पान भी करता है या नहीं? किन्तु देखकर उन्हें विदित हो गया कि कोई दोष का काम ये नहीं करता। अस्तु, श्री मालवीय जी द्वारा अधिष्ठित हिन्दू-सभा में पहले श्री श्रद्धानन्द जी ने यह प्रस्ताव रक्खा कि मलकानों की जो शुद्धि की जा रही है उसमें इस हिन्दू-सभा की सहानुभूति है। इस पर मैंने संशोधन रक्खा कि जिनका रज़-वीर्य शुद्ध है अर्थात् विवाह-सम्बन्ध अभी मुसलमानों से नहीं हुआ है उनके शुद्ध करने में हिन्दू-सभा की सहानुभूति है। इस पर आर्य-समाजी चौंक उठे कि रज़-वीर्य की शुद्धि कहने से तो वर्ण-व्यवस्था जन्म से ही सिद्ध हो जावेगी, इसलिए उनकी ओर से इसका विरोध हुआ। अन्ततः पहले परस्पर विवाद होते हुए रात्रि के दो बज गये। सब लोग सहमत होते ही नहीं थे और श्री मालवीय जी बिना सब की सहमति के प्रस्ताव पास नहीं करना चाहते थे। एक बार श्री मालवीय जी ने मुझे झिड़का भी कि बस अब आप चुप रहो, काम आगे बढ़ने दो, परन्तु मैं डटा ही रहा कि या तो वोट लेकर आप मेरा संशोधन रद्द कराइए या संशोधन पास करिए। अन्य सनातनधर्मावलम्बी नेताओं की मेरे साथ सहानुभूति देखकर मालवीय जी मेरे पक्ष में ही फिर हो गये और उन्होंने यह कहा कि पहले जो मैंने आपको झिड़क दिया था उसके लिए क्षमा करें। अन्त में रज़-वीर्य शब्द जरा अश्लील समझ कर इतना ही रक्खा गया कि जिनका विवाह-संबन्ध अभी नहीं बिगड़ा है उनको अपनी जाति में मिला लेने में यह सभा सहानुभति रखती है। योंही दो दिन हिन्दू-सभा में परस्पर विवाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलता रहा। काशी के म० म० श्री जयदेव मिश्र जी आदि विद्वान् भी उसमें सम्मिलित होते थे। एक बार श्री जयदेव मिश्र जी का उपहास करते हुए एक सज्जन ने उपहास सूचक कई शब्द लगा कर श्री जयदेव मिश्र जी का नाम ले दिया। इस उपहास से चिढ़ कर बहुत विद्वान् सभा से उठ गये। फिर उनको मनाकर ठीक करना पड़ा। यूंही ये दो दिन हिन्दू-सभा के व्यतीत हुए। अपनी सभापति की वक्तृता देते हुए श्री मालवीय जी ने बहुत से अस्पृश्य सज्जनों को स्टेज़ पर चढ़ा लिया था, उस पर भी बहुत से विद्वान् जिनमें मेरे गुरू श्री मधुसूदन विद्यावाचस्पति जी भी थे, विगड़ कर उठ खड़े हुए। उनको भी किसी तरह शांत किया गया। यह अधिवेशन हिन्दू-यूनिवर्सिटी जहाँ पहले स्थापित हुई थी उसी स्थान पर कमच्छा में हुआ था। हिन्दू यूनिवर्सिटी की इमारतें आदि तब तक बनी नहीं थीं, इसलिये हिन्दू स्कूल में ही अधिवेशन रक्खा गया था। हमने और हमारे जयपुर के साथियों ने भी हिन्दू यूनिवर्सिटी का निरीक्षण उस समय ही किया था।

संस्कृत-सम्मेलन के समय श्री मालवीयजी ने विद्वानों के विचारार्थ यह प्रश्न उपस्थित किया कि—संस्कृत भाषा में ऐसी कौन-सी विशेषता है कि इसके कारण वृत्ति देकर भी छात्रों को उसे पढ़ाया ही जाय। यदि कोई ऐसी विशेषता ही है तो उसका अनुवाद ही हिन्दी में क्यों न कर दिया जावे। इस विषय पर कई विद्वानों ने अपने वक्तव्य दिये। हरिद्वार से परमेश्वरानन्द और लीलाधर शास्त्री भी इसमें सम्मिलित हुए थे। श्री शालग्राम शास्त्री जी ने इसका उत्तर अपने पद्यों में दिया। शालग्रामशास्त्री जी का यह पद्यमय उत्तर उपस्थित सभी विद्वानों को बहुत पसन्द आया। मालवीय जी ने भी इसकी बड़ी प्रशंसा की। मुझे तो यह उसी समय प्रायः कण्ठस्थ ही हो गया। यहाँ तक कि इसके कई पद्य मुझे याद रहे और उन्हें शालग्राम जी जब भूल जाते तो मैं ही उन्हें स्मरण कराता। वहाँ उपस्थित अन्य डा० भगवानदास जी आदि विद्वानों ने अनुवाद के प्रश्न पर अपने-अपने तर्क उपस्थित किये। मैंने भी अपने तर्क रक्खे। वे सब सम्मेलन की रिपोर्ट में मुद्रित हो चुके हैं। प्रारंभ में मालवीय जी ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वोत्कृष्ट उत्तर देने वाले विद्वान् के लिए पुरस्कार देने की भी बात कही थी परन्तु उपस्थित विद्वानों ने इसे पसन्द नहीं किया। हिन्दू-सभा और संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन दोनों के ही अधिवेशनों में मालवीयजी मुझ से बहुत कुछ कार्य लेते रहे। ठहरा तो मैं स्वामी ज्ञानानन्द जी के पास भारतधर्म-महामण्डल में ही था। परन्तु एक दो दिन मुझे मालवीय जी के ही साथ रहना पड़ा। वहाँ से निवृत्त होकर लाहौर पहुँचा।

अब मैं अपने लाहौर के जीवन का संकलित विवरण ही दूँगा क्योंकि काल-क्रम से घटनाओं का स्मरण करना मेरे लिए कठिन हो रहा है। मेरे लिए वहाँ कई कार्य थे। सद्यः समुद्घाटित सनातन-धर्म-कालेज की उन्नति में मुझे परिश्रम करना पड़ा। इस क्षेत्र का मुझे बहुत कुछ अभ्यास हो चुका था। तत्काल निर्मित हुए हरिद्वार के ऋषिकुलब्रह्मचर्याश्रम को मैं भारत की एक गणनीय शिक्षण संस्था के रूप में प्रस्तुत करने में यथाशक्ति परिश्रम कर चुका था। लाहौर में भी वैसा ही कार्य मुझे करने को मिला। व्याख्यानवाचस्पति श्री दीनदयालु जी के प्रभाव से भूतपूर्व अलवर नरेश श्री जयसिंह जी ने एक बड़ी धन-राशि लाहौर में सनातन-धर्म-कालेज में संस्कृतशिक्षा की व्यवस्था के लिए दी थी। तदनुसार ही यह कालेज खोला गया था। सनातन-धर्म-कालेज नाम की संस्था, जिसमें अधिकतर अंग्रेजी, उर्दू आदि का शिक्षण विश्वविद्यालय के स्तर पर होता था, पहले से प्रतिष्ठित थी। एक प्रसिद्ध रईस और विद्वान् श्रीयुत लालारघुवरदयाल जी उसके प्रिंसिपल थे। सनातन-धर्म-सभा में कुछ दिन उपदेश कार्य करने के अनन्तर ही मुझे नवोद्घाटित सनातन-धर्म-संस्कृतकालेज का प्रिंसिपल बनाया गया। अलवर नरेश के द्वारा दी हुई धनराशि के अतिरिक्त लाहौर के प्रसिद्ध रईसों ने भी इस कालेज के व्यय के लिए एक अच्छा कोष इकट्ठा कर दिया था। इन रईसों में दीवान श्री कृष्णकिशोरजी तथा वैद्य ठाकुरदत्त जी (अमृत धारा वाले) ने प्रमुख भाग लिया था। मेरे लाहौर ने निवास काल में उक्त महानुभावों से मेरी घनिष्टता बढ़ती ही गई। श्रीयुत रघुवरदयाल जी मुझ से बड़ा ही स्नेह रखते थे। हमारा कालेज उन्हीं के अधिकार में चलता था। उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवन्ध समिति के वे ही अध्यक्ष थे। एक बार उन्होंने किसी से कहा था कि जिस दिन मेरी पंडित जी से बातचीत नहीं हो पाती उस दिन मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मेरा कोई आवश्यक कार्य बाकी रह गया है। दीवान कृष्णकिशोर जी मुझ से मिलने की प्रायः इच्छा रखते थे। उन्होंने मुझ से कई महीनों तक महाभारत की कथा भी सुनी थी। लाहौर छोड़ देने के अनन्तर भी उन से मेरा सम्पर्क बना रहा। देश के विभाजन के अनन्तर अन्य नागरिकों की भाँति दीवान कृष्णकिशोर जी भी सपरिवार भारत चले आये। कुछ वर्षों पूर्व उनका देहली में देहावसान हुआ। उनके सुपुत्र दीवान हरिकृष्णदास जी से अब भी मेरा परिचय और सम्पर्क बना हुआ है।

इसके अतिरिक्त डा० लक्ष्मणस्वरूप जी, बुलनरसाहब आदि से भी मेरा सम्पर्क रहा। मालवीय जी कई बार लाहौर आया करते थे। एक बार उनके साथ लाला लाजपतराय से भी मेरा परिचय हुआ। मुझसे उन्होंने विदेश यात्रा करने का आग्रह किया था। उस यात्रा का सारा प्रवन्ध कर देने का भी निश्चय प्रकट किया था, परन्तु अनेक कारणों से मैं वैसा न कर सका।

लाहौर, पंजाब में आर्य-समाज का प्रधान गढ़ माना जाता था। आर्य-समाज के अनेक विद्वान् वहाँ रहते थे। उत्सवों के अवसर पर उत्तेजनात्मक भाषणों से दोनों ओर गर्मा-गर्मी होती रहती थी। लाहौर में मैंने आर्य-समाज के विद्वानों के साथ पब्लिक में खड़े होकर कई बार शास्त्रार्थ भी किये। इन में से दो शास्त्रार्थों के पूरे विवरण हरिद्वार के ब्रह्मचारी पत्र में प्रकाशित भी हुए थे। एक लाला भगवद्दत्त जी के साथ संस्कारों के विषय पर हुआ था और दूसरा श्री राजाराम शास्त्री जी के साथ श्राद्ध विषय पर। इन अवसरों पर सनातन-धर्म और आर्य-समाज दोनों पक्ष के लोगों का भारी जमाव होता था। यह कहना तो आत्म-प्रशंसा होगी कि आर्य-समाज के वक्ता महाशय अपने पक्ष की कोई भी बात सिद्ध करने में कुछ भी सफलता प्राप्त न कर सके। विशेष जिज्ञासुओं को "ब्रह्मचारी" की पुरानी प्रतियों का अन्वेषण करना चाहिये। आगे चल कर लाला भगवद्दत्त जी, व श्री राजाराम शास्त्री से मित्रता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का संबंध रहा। भगवद्दत्त जी आज-कल वेदों और पुराणों के ऐतिहासिक अन्वेषण में लगे हुए हैं यह देख कर मुझे प्रसन्नता होती है। श्रीयुत विश्ववन्धु शास्त्री जी से भी इन्हीं दिनों मेरा परिचय हुआ। ये तब छात्रावस्था में ही थे। आगे चल कर इन्होंने अपने अध्यवसाय और परिश्रम से होशियारपुर में विश्वेश्वरानन्द वैदिक-शोधसंस्थान को उन्नत किया। वहाँ से प्रकाशित वैदिकइण्डेक्स अन्वेषकों और विद्वानों के लिए सहायक सिद्ध हुए हैं। लाहौर की दूसरी संस्कृत शिक्षण संस्था पंजाबविश्वविद्यालय के अन्तर्गत ओरियन्टल कालेज थी। वुलनरसाहव और लक्ष्मणस्वरूप जी वहीं अध्यक्ष थे। उसी में म० म० शिवदत्त शास्त्री जी प्रधान रहे थे। उनसे भी मेरा वहाँ अच्छा सम्पर्क रहा।

मेरे लाहौर निवास-काल में ही अखिलभारतीय हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन का सम्भवतः दूसरा अधिवेशन वहाँ आमंत्रित किया गया। श्री जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। अधिवेशन के लिए वहाँ जो स्वागत-समिति बनी उसका मैं ही मंत्री निर्वाचित हुआ। पंजाब में हिन्दी का प्रचलन वहुत ही कम था, परन्तु अ० भा० हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन बड़े ठाठ से सम्पन्न हुआ। उसका कार्य-विवरण निवन्धावली के रूप में प्रकाशित किया गया था। उसका सम्पादक भी मैं ही था। मेरा भी एक शोधनिवन्ध उसमें प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था—"वर्त्तमान हिन्दी में संस्कृत शब्दों का ग्रहण"। यह एक बड़ा निबन्ध था। इसको तीन भागों में विभाजित करके मेरे लेखों के एक संकलन, "साहित्यिकनिवन्ध" में प्रकाशित किया गया है। इसी समय पंजाब में हिन्दी के प्रचार के लिए पंजाबयूनिवर्सिटी के अन्तर्गत रत्न, भूषण और प्रभाकर नामक परीक्षाओं का प्रारम्भ हुआ। पंजाब यूनिवर्सिटी की संस्कृत परीक्षाओं के नाम प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री थे। भारत में संस्कृत की अन्य परीक्षाओं की तुलना में पंजाब की ये परीक्षाएं कुछ हलके स्तर की थीं। इनका गठन बहुत कुछ अंग्रेजी की परीक्षाप्रणाली की शैली पर हुआ था। वहाँ की शास्त्री परीक्षा में संस्कृत महाकाव्यों के कुछ निश्चित सर्ग निर्धारित थे। लाहौर के प्रसिद्ध संस्कृत प्रकाशक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेहरचन्दलक्ष्मणदास फर्म के प्रधान लाला खजान्चीराम जी के आग्रह से मैंने महाकाव्यों के उक्त संदर्भों की एक विशद् व्याख्या लिखी थी जो "महाकाव्य संग्रह" के नाम से प्रकाशित हुई। आगे चल कर यही पुस्तक शास्त्री में पाठ्य-पुस्तक के रूप में निर्धारित हो गई। अनेक वर्षों तक रही। लाहौर के ही दूसरे संस्कृत प्रकाशक मोतीलालवनारसीदास फर्म के श्रीयुत सुन्दरलाल जी के आग्रह से मैंने "वैयाकरण-सिद्धान्त-कौमुदी" की "बाल-मनोरमा", और "तत्त्वबोधिनी" का सम्पादन कार्य किया। यह पुस्तक उक्त-फर्म से चार भागों में प्रकाशित हुई। इन दोनों साहित्यिक कार्यों में मुझे मेरे शिष्य आयुष्मान् परमेश्वरानन्द शास्त्री से जो वहीं अध्यापक थे, उल्लेखनीय सहायता मिली। डा० लक्ष्मण स्वरूप जी ने विदेश के एक प्रसिद्ध पुस्तकालय से फोटो के द्वारा "वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू" नामक पुस्तक की प्रति प्राप्त की और मुझे उसके हिन्दी अनुवाद और सम्पादन का भार दिया। मैं अनेक स्थानों के भ्रमण में उन दिनों व्यस्त रहा करता था। अतः यह कार्य भी श्री पं० पुरुषोत्तम जी के साथ ही मैं पूरा कर सका। इस को छपवाया भी लक्ष्मणस्वरूप जी ने ही।

लाहौर के निवास काल में मुझे पंजाव, सिन्ध और कश्मीर के प्रदेशों में अनेक नगरों और ग्रामों का भ्रमण करने के प्रचुर अवसर हाथ आये। पेशावर और क्वेटा तथा वलूचिस्तान तक की अनेक यात्राएँ भी भाषण के प्रसंग में मैंने कीं। इन यात्राओं का उद्देश्य उन नगरों की सनातन-धर्म सभाओं के वार्षिकोत्सवों या विशेष उत्सवों में व्याख्यान देना होता था। पंजाव और सिन्ध के सभी प्रमुख नगरों में आर्य-समाज का भी वहुत प्रचार हो चुका था। अतः कहीं-कहीं वैचारिक संघर्ष या शास्त्रार्थ के सार्वजनिक अवसर भी हाथ आते रहते थे। इन यात्राओं में झालरापाटन के श्रीयुत श्रवणलालजी महोपदेशक कविरत्न अखिलानन्द जी आदि का कई वार साथ रहा। मुल्तान, रावलपिण्डी, लुधियाना, अमृतसर, जालंधर, होशियारपुर, कराँची, हैदरावाद, डेराइस्माइल खाँ, शिकारपुर (सिन्ध), सक्खर साधु-वेला तीर्थ आदि नगरों की एकाधिक यात्राएँ की। मुल्तान के गोस्वामी यदुकुलभूषण जी का और मेरा भी कई वार कई जगह साथ हुआ। एक वार क्वेटा की सनातन-धर्म सभामें [श्री यदुकुल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

lाहौर ओरियन्टल कान्फ्रेंस

(परिचय कृपया पृष्ठ पर देखें)

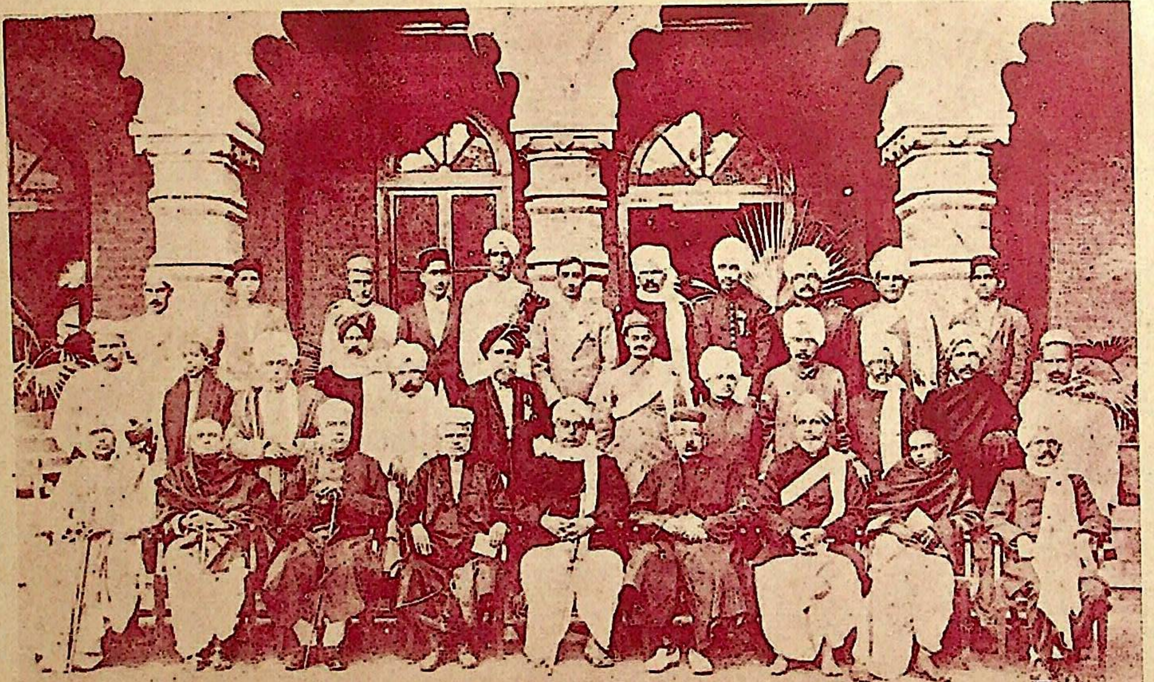

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम पंक्ति में बैठे हुए—१. म० म० मथुराप्रसाद दीक्षित, २. म० म० चिन्न स्वामी, ३. म० म० हरनारायण शास्त्री, ४. विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा, ५. म० म० कुप्पूस्वामी, ६. म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, ७. ...., ८. ...., ९. श्री पं० काशीराम जी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूषण जी ने अपने भाषण में कुछ उत्तेजना भरी बातें कह दीं। उससे तत्काल वहाँ उपस्थित बहुत बड़ी जनता में कुछ हलचल-सी मच गई। हल्ला-गुल्ला भी हुआ, फलतः श्री यदुकुलभूषण जी अपने भाषण को संक्षिप्त करके बैठ गए। उनके बाद ही मेरा भाषण घोषित कर दिया गया। उस समय तक भी जनता में पर्याप्त उत्तेजना दिखाई देती थी। मैंने अपने भाषण के आरम्भ में ही पूछा कि आप लोगों के मुखों पर ये उत्तेजना के भाव क्यों दिखाई दे रहे हैं। इसका उत्तर देने के लिए, जनता के बीच में से एक सज्जन खड़े हुए और उन्होंने कुछ संयत शब्दों में धैर्य के साथ सनातन-धर्म के सिद्धान्तों पर अपनी अनास्था प्रकट की। उसका उत्तर देते हुए ही मैंने अपने भाषण का प्रारम्भ किया। उस दिन मैं दो घन्टे से कुछ अधिक ही बोला। मेरे उस भाषण से वहाँ की जनता पर मेरा अच्छा ही असर पड़ा क्योंकि इसके बाद भी प्रति-वर्ष ही मुझ से वहाँ आने का बड़ा ही अनुरोध किया जाता था। एक बार तो मेरे असमर्थता व्यक्त कर देने पर भी वहाँ के प्रधान महाशय स्वयं ही मुझे लेने लाहौर तक चले आये। परन्तु उस समय मेरे साथ कुछ ऐसी विषम परिस्थितियाँ थीं कि उन्हें निराश ही लौटना पड़ा। लाहौर से ही मैंने बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि नगरों की भी कार्यवश यात्राएँ की थीं जिनका विवरण देना प्रायः पुनरुक्ति ही होगी। संस्कृत क्षेत्र में विशेष स्मरणीय यह है कि वहाँ एक बार ओरियन्टल कान्फ्रेंस हुई। म० म० कुप्पूस्वामी शास्त्री उसके अध्यक्ष होकर आए थे। मेरे गुरु विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदन जी ओझा भी उसमें सम्मिलित होने लाहौर पधारे थे। म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य जी भी वहाँ आए थे और विनोद ही विनोद में उन्होंने मुझे गले लगाते हुए बड़े अच्छे शब्द कहे थे। गुरुवर का वहाँ भव्य स्वागत आयोजन भी बच्छोवाली सभा और टाउनहाल में मैंने कराया था।

मेरी लिखी कई पुस्तकें पंजाब की संस्कृत परीक्षाओं में निर्धारित हो गई थीं। अतः अर्थागम भी अच्छा होने लगा। इस प्रकार विविध कार्यों में व्यस्त रूप से लाहौर रहते-रहते मुझे नौ वर्ष पूर्ण हो गए। इसके आगे ही परिस्थितियों से विवश होकर मुझे लाहौर छोड़कर जयपुर जाना पड़ा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक विशेष घटना का उल्लेख किये बिना लाहौर का यह विवरण अपूर्ण ही रह जायगा। विजयादशमी का उत्सव वहाँ बड़े समारोह से मनाया जाता था। उस वर्ष विजयादशमी को एक तो मुझे अपने आप ही नीलकण्ठ पक्षी का दर्शन हुआ जो बहुत ही शुभ माना जाता है। सायंकाल मैं रावणवध का दृश्य देखने मेले में गया, उस मंच के पास ही खड़ा रहा जिस पर रामचन्द्र की की सवारी हो रही थी। मैंने कुतूहलवश रामचन्द्र की ओर देखा तो लगा कि वे मुझे हाथ के इशारे से अपनी ओर बुला रहे हैं। मैं उनके पास मंच के नीचे पहुँचा, उन्होंने अपने गले से उतार कर पुष्प माला मुझे दी, मैंने प्रसादरूप में उसे ग्रहण किया। ये दोनों ही घटनाएँ निकट भविष्य में विशेष उन्नति की सूचना थी, ऐसा मेरा ध्यान रहा। बात भी वही हुई। इसी वर्ष मुझे गवर्नमेन्ट से "महामहोपाध्याय" पदवी प्राप्त होने की घोषणा हुई और उसी वर्ष जयपुर आने का निमंत्रण मिला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयपुर में बीस वर्ष

सन् १९२४ के दिसम्बर मास में मुझे जयपुर आ जाना पड़ा। यद्यपि लाहौर का क्षेत्र बहुत उत्तम था, बड़े परिश्रम से पंजाब के इस प्रधान नगर में हमने क्षेत्र बनाया था। वहाँ कालेज में बड़े परिश्रमी तथा बुद्धिमान् छात्र मेरे पास अध्ययन कर रहे थे। विनय व सेवा-भाव भी विद्यार्थियों में पर्याप्त था। कालेज का अधिकारि वर्ग भी बहुत प्रसन्न था। लाहौर न छोड़ने के लिये अधिकारि वर्ग ने बहुत आग्रह पूर्ण अनुरोध भी किया था। वेतन भी लाहौर में २५०) मासिक मिल रहा था जब कि जयपुर में १५०) मासिक ही मिल सका। पंजाब की जनता में विशेषतः लाहौर की जनता में धार्मिक भावना भी अधिक थी, अतः हर मास में विभिन्न सभाओं में धार्मिक प्रवचन करने के अवसर अधिकतर प्राप्त होते रहते थे। जनता बड़े प्रेम और उत्साह से धार्मिक व्याख्यानों को श्रवण किया करती थी जनता का प्रेम लाभ तथा समय-समय पर आर्थिक लाभ भी विशेष होता रहता था। इन सब कारणों से यद्यपि मुझे लाहौर छोड़ने में मानसिक खेद रहा, किन्तु दो कारण ऐसे उपस्थित थे कि मुझे लाहौर न चाहते हुए भी छोड़ना ही पड़ा। एक तो सब से प्रबल कारण यह था कि पिताजी को नेत्र-कष्ट उपस्थित हो गया, घर में बालक बहुत छोटा था और दृष्टि में कमी हो जाने के कारण पिताजी को घर की व्यवस्था ठीक रखने में अनेक अड़चनें उपस्थित होने लगीं। अतः मेरा घर में रहना आवश्यक हो गया। दूसरा कारण था कि तत्कालीन शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर श्री श्यामसुन्दर जी एम० ए० ने जयपुर संस्कृत कालेज में पद ग्रहण करने के लिये प्रबल अनुरोध किया था। यहाँ तक कि बिना आवेदन-पत्र के ही मेरे पास नियुक्ति पत्र भी भेज दिया। उक्त डाइरेक्टर महोदय स्वयं अच्छे विद्वान् तो थे ही, गुणग्राहकता भी इन में खूब थी। विशेषतः अंग्रेजी के उच्च विद्वान् होते हुए भी ये न केवल संस्कृतज्ञ ही थे प्रत्युत संस्कृत भाषा के प्रेमी भी थे। ये चाहते थे कि जयपुर संस्कृत-विद्यालय में विद्यालय के स्वरूप के अनुरूप कोई विद्वान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ आ जाय। इसी कारण इनका इतना प्रबल अनुरोध था और जिस विद्यालय में मैं पढ़ चुका था—उस ही विद्यालय में प्रधान पद के लिये अह्वान होने पर, इस तरफ मेरी प्रवृत्ति भी सहज हो चली थी। अतः लाहौर की धार्मिक जनता का उतना वड़ा क्षेत्र छोड़ कर और काफी अर्थ हानि सहन करके भी मैं जयपुर आ गया।

जयपुर के संस्कृतविद्यालय में उस समय अध्यक्ष पद पर महा-महोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसाद जी काम कर रहे थे। ये अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे। मेरे जयपुर आने के अनन्तर ४-५ मास बाद ही इन्होंने विद्यालय से विश्राम ग्रहण कर लिया। जब तक ये काम करते रहे तव तक दर्शन-शास्त्र के अध्यापनार्थ डाइरेक्टर महोदय ने एक स्वतन्त्र क्लास अलग से खुलवा दिया था—उसमें मैं अध्यापन करता रहा। लाहौर से आते समय पंजाब की शास्त्री परीक्षा देने के बाद दो पर्वतीय छात्र विश्वदेव शर्मा शास्त्री और नेत्रमणि शास्त्री दर्शन शास्त्र के विशेष अध्ययनार्थं जयपुर में मेरे साथ ही आ गये थे, जो कि मेरे घर पर ही निवास भी करते रहे। ये दोनों जयपुर आकर दर्शन श्रेणी में ही प्रविष्ट हो गये। इन दोनों के अतिरिक्त वैद्य नन्दकिशोर जी भिषगाचार्य, वैद्य मुकुन्ददेव जी भिषगाचार्य, सिद्ध गोपाल शास्त्री, रामदास जी भिषगाचार्य (मुलतानी) आदि ४-५ स्नातकों ने भी दर्शन श्रेणि में प्रवेश ले लिया। ये सव आयुर्वेद की अन्तिम आचार्य परीक्षा पास करके स्नातक भी हो चुके थे, तो भी दर्शन शास्त्र में विशेष अभिरुचि होने के कारण इन्होंने दर्शन श्रेणी में पुनः प्रवेश किया। इससे पूर्व न तो विद्यालय में दर्शन-शास्त्र को पढ़ाने का कोई पृथक् विद्वान् ही नियुक्त था और न पृथक् किसी क्लास की ही व्यवस्था थी। अस्तु, करीब छ मास इस दर्शन श्रेणी में अध्यापन के अनन्तर नवीन सत्र के आरंभ में, सन् १९२६ के जुलाई मास में श्री दुर्गाप्रसाद जी के अवकाश ले लेने के अनन्तर विद्यालय के अध्यक्ष पद पर मेरी नियुक्ति हो गई। इस पद भार को ग्रहण करने के अनन्तर भी दर्शन-शास्त्र का अध्यापन मैं ही करता रहा तथा आचार्य क्लास का सामान्य पत्र जो सव विषयों के आचार्य श्रेणी के छात्रों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को लेना पड़ता था, उसका अध्यापन भी मैं ही करता रहा और अवशिष्ट समय में कालेज के प्रशासन का काम चलाता रहा।

इस संस्था का बहुत कुछ विवरण प्रारंभ में ही कर चुका हूँ। यह कालेज भारत के इने-गिने संस्कृत कालेजों में गिना जाता था। यहाँ की परीक्षाएँ भी स्वतन्त्र थीं। मुझे इस प्रतिष्ठा प्राप्त संस्था को और भी अधिक उन्नत करने का अवसर मिला यह ईश्वरीय कृपा ही थी।

विशेष सुयोग यह उपस्थित था कि हमारी मित्र मंडली में से भी कई मित्र इस विद्यालय में अध्यापन कार्य मेरे साथ-साथ कर रहे थे जिनमें मेरे अभिन्न श्रीचन्द्रदत्त जी मैथिल व्याकरण के प्रधान प्रोफेसर पद पर, श्री कन्हैयालाल जी दाधीच न्याय के प्रधान पद पर, श्री मदनलालजी प्रश्नवर व्याकरण के असिस्टैंट पद पर, आयुर्वेदाचार्य श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी आयुर्वेद के प्रधान प्रोफेसर पद पर काम कर रहे थे। श्री सूर्यनारायण जी इस विद्यालय में नहीं थे, वे अंग्रेजी कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर पद पर काम कर रहे थे। आरंभ में भट्ट श्री मथुरानाथ जी भी अन्यत्र ही काम करते रहे, किन्तु कुछ समय के अनन्तर साहित्य के प्रोफेसर श्री बिहारीलाल जी के अवकाश ग्रहण कर लेने पर श्री भट्ट मथुरानाथ जी साहित्य से प्रधान स्थान पर आ गए। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सभी विद्वान् संस्कृत जगत् में पूरे देश में विख्यात थे।

आयुर्वेद का तब तक कोई पृथक् कालेज नहीं था, संस्कृत के अन्य व्याकरण, साहित्य आदि विषयों की तरँह आयुर्वेद का अध्यापन भी इस ही विद्यालय में होता था। श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण आयुर्वेद विभाग में छात्र काफी संख्या में थे। जयपुर के तथा बाहर से आये हुए अनेक छात्र प्रौढ़ व्युत्पन्न भी थे। मेरे अध्यक्ष काल तक आयुर्वेद विभाग संस्कृत कालेज के अन्तर्गत ही रहा, बाद में आयुर्वेद का स्वतन्त्र पृथक कालेज बन गया, जो अब भी चल रहा है।

उस समय विद्यालय की व्यवस्था यह थी कि स्कूल विभाग के अध्यापकों की तरँह कालेज-विभाग के लेक्चरार तथा प्रोफेसरों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी विद्यालय के संपूर्ण समय में विद्यालय में ही रहना पड़ता था। यद्यपि प्रोफेसरों के कई पीरियड खाली रहते थे फिर भी वे विद्यालय छोड़ कर अन्यत्र नहीं जा सकते थे। मैंने यह अनुचित समझा और समय विभाग इस तरह बनाया कि प्रत्येक प्रोफेसर को रिक्त समय मिलता रहे और अपने रिक्त समय में प्रोफेसर घर भी जा सकें, इससे सब ही प्रोफेसरों को सन्तोष का अनुभव हुआ। इस विद्यालय में अष्टम श्रेणी तक स्कूल-विभाग तथा आचार्यान्त कालेज-विभाग साथ-साथ चलते थे। अष्टम श्रेणी तक प्रवेशिका नामक स्कूल-विभाग मे उस समय १२४ छात्र पढ़ रहे थे और कालेज-विभाग में ६०, सब मिलाकर १९४ छात्र विद्यालय में थे। स्कूल और कालेज में मिलाकर २५ अध्यापक थे, दो क्लर्क व चार चपरासी थे। मैं जब यहाँ आया था—उस समय 'संस्कृत-पाठशाला' नाम से यह विद्यालय कहा जाता था। तात्कालिक अधिकारि वर्ग से स्वीकृति प्राप्त कर मैंने विद्यालय का नाम 'महाराज संस्कृत कालेज' रक्खा और तब ही से कालेज-विभाग के अध्यापक भी प्रोफेसर कहे जाने लगे। तब तक इस विद्यालय में अंग्रेजी भाषा के अध्यापन का कोई प्रबन्ध नहीं था। हमने यह अनुभव किया कि केवल संस्कृत पढ़ कर छात्र राजभाषा से अपरिचित रह कर आधुनिक जगत् में व्यावहारिक नहीं हो पाते, अतएव उचित सम्मान की दृष्टि से देखे भी नहीं जाते, इस कारण तात्कालिक शिक्षा-विभागाध्यक्ष से हमने एक योग्य अंग्रेजी के अध्यापक की नियुक्ति प्रार्थना की, वह स्वीकृत होकर एक इंगलिश के अध्यापक की विद्यालय में नियुक्ति हो गई और यहाँ अंग्रेजी का अध्ययन सामान्य ज्ञान के लिये प्राय: मैट्रिक तक होने लगा। यद्यपि सारे राजपूताने में संस्कृत का इतना बड़ा यह एकमात्र विद्यालय था, तथापि उस समय तक यहाँ चारों वेदों के अध्यापन का कोई प्रबन्ध नहीं था, केवल शुक्ल यजुर्वेद का अध्यापन एक वैदिक विद्वान् श्री गोडशे शास्त्री करा रहे थे, यह बात बड़ी खटकने वाली थी, अतः शिक्षा-विभागाध्यक्ष से निवेदन कर सन् १९२८ में ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के अध्यापनार्थ तीन वैदिक विद्वानों की नियुक्ति यहाँ की गई। यों चारों वेदों का अध्ययन यहाँ आरंभ हो गया। स्मरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे कि वाराणसेय गवर्नमेंट संस्कृत कालेज में भी चारों वेदों के अध्यापन का पृथक् प्रबन्ध नहीं था। इस विद्यालय में उक्त प्रबन्ध हो जाने से विद्यालय का गौरव बहुत बढ़ गया। हिन्दी-भाषा के स्वतन्त्र रूप से पृथक् अध्ययन का भी प्रबन्ध यहाँ न होने से आचार्यान्त स्नातक भी हिन्दी बोलने व लिखने में गलतियाँ करते थे, यह भी एक बहुत खटकने वाली बात थी, अतः उपाध्याय (मध्यमा) परीक्षान्त हिन्दी का अध्ययन मैंने अनिवार्य कर दिया। आरंभ में तो हिन्दी भाषा के नियत कोर्स के ग्रन्थों को विद्यालय के साहित्य के एक अध्यापक ही पढ़ाते रहे, किन्तु कुछ समय बाद ही हिन्दी परीक्षाओं के स्वतन्त्र ग्रन्थों के अध्यापनार्थ एक योग्य हिन्दी अध्यापक की नियुक्ति मेरी प्रार्थना पर अधिकारियों द्वारा कर देने से विद्यालय की एक बहुत बड़ी क्षति पूर्ति हो गई और यहाँ के स्नातक हिन्दी की विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये हिन्दी की उच्च परीक्षाओं को भी उत्तीर्ण करने लगे जो कि आजीविका प्राप्ति के लिये अंग्रेजी विद्यालयों में भी आवश्यक मानी जाती थी, यों हिन्दी का क्रम चालू हो जाने से स्नातकों को आजीविका प्राप्त करने में भी बहुत कुछ सहायता मिलने लगी।

भारत में संस्कृत विद्यालयों में वेद के अतिरिक्त प्रायः व्याकरण, न्याय व साहित्य का अध्ययन ही प्रचुर मात्रा में चल रहा है। अनेक स्थानों में विद्वानों के समक्ष हमने यह प्रश्न उपस्थित किया कि व्याकरण और न्याय का अध्ययन, अन्य दर्शन, धर्म-शास्त्र, विज्ञान आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आवश्यक माना गया है, किन्तु जिन शास्त्रों के ज्ञानार्थ व्याकरण व न्याय की शिक्षा दी जाती है, उन दर्शनादि शास्त्रों के अध्यापन का स्वतन्त्र प्रबन्ध भी तत्तद् विद्यालयों में होना चाहिये जिससे उन गंभीर विषयों का ज्ञान भी भारतीय विद्वानों में सुरक्षित रह सके, किन्तु दुःखके साथ निवेदन करना पड़ता है कि विद्वानों ने इस प्रश्न पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। कहना होगा कि गत शताब्दी में संस्कृत विद्वान् व्याकरण और न्याय के क्रोड़पत्रों पर ही पूर्ण परिश्रम करके अपने को कृतकार्य मानलेते थे अतः अत्यन्त उपयोगी होते हुए भी अन्य गंभीर विषयों का अनुशीलन करने में बहुत कम प्रवृत्त होते थे। यही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारण है कि व्याकरण, न्याय व साहित्य के अतिरिक्त अन्य गंभीर विषयों का प्रायः ह्रास होता चला गया। भारत का दुर्भाग्य ही इसमें कारण माना जा सकता है। उक्त त्रुटिका अनुभव इस विद्यालय में भी हुआ, यहाँ भी दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण आदि विषयों को पढ़ानेका पृथक् कोई प्रबन्ध नहीं था, अतः शिक्षा विभागके अधिकारियों से सयुक्ति निवेदन करके उक्त विषयों के अध्यापनार्थ पृथक् प्रबन्ध किया गया। दर्शन शास्त्रका अध्यापन तो मैं स्वयं करता रहा, धर्मशास्त्र की भी एक स्वतन्त्र श्रेणी यहाँ स्थापित होगयी जिसमें जयपुर राजकीय धर्मसभा, जो जयपुर में मौज मन्दिर नामसे प्रसिद्ध है—के एक सदस्य विद्वान् उक्त श्रेणी में अध्यापन करने लगे। पुराणोंका भी पाठ्यक्रम तो हमने निर्धारित कर लिया, किन्तु शिक्षा विभाग के अधिकारियों के पुराण विषयसे सर्वथा अपरिचय के कारण विशेष ध्यान न देने से इस विषय के अध्यापक की नियुक्ति विद्यालय में न हो सकी, इस बातका मुझे खेद ही रहा। हम लोगों के अध्ययन कालमें पूज्य गुरुदेव श्री लक्ष्मीनाथ जी शास्त्री के अध्यक्षत्व में यद्यपि विद्यालय में वेदान्तशास्त्र का अध्यापन होता था किन्तु बीच में वह शिथिल पड़ गया, उसका पुनरुज्जीवन कर वेदान्त का एक पृथक् विभाग तथा परीक्षा मैंने स्थापित कर दी और छात्र वेदान्तकी परीक्षा में बैठने लगे। कर्मकाण्ड विषयके व्यावहारिक (प्रैक्टिकल) ज्ञान के लिये एक पौरोहित्य श्रेणी पृथक् आरंभ कर दी गयी। यों दर्शन, वेदान्त, धर्मशास्त्र और पौरोहित्य के अध्यापकों की पृथक्-पृथक् नियुक्ति होकर उक्त विषयों का आचार्यान्त अध्ययन यहाँ आरम्भ होगया।

संस्कृत वाङ्मय में आयुर्वेद शास्त्र अत्यन्त प्रायोगिक शास्त्र माना जाता है, किन्तु विद्यालय में परिस्थिति यह थी कि केवल दो अध्यापकों द्वारा आयुर्वेद के ग्रन्थों का अध्यापन मात्र कराकर उपाध्याय, शास्त्री तथा आचार्य की परीक्षाएँ छात्रोंको पास कराकर अध्यापन की इतिकर्त्तव्यता मानली जाती थी, प्रायोगिक अनुभव प्राप्त करने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं था। एक बड़ी त्रुटि थी, अतः आयुर्वेद विभाग के प्रधानाचार्य मित्रवर वैद्यरत्न स्वर्गीय श्री लक्ष्मीराम जी स्वामी महोदय की संमति लेकर आयुर्वेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभागकी वास्तविक स्वरूप रक्षा के लिये शिक्षाधिकारियों से निवेदन करके बहुत प्रयत्न पूर्वक प्रायोगिक शिक्षा का प्रवन्ध विद्यालय में किया गया। रसायनशाला के लिये एक विद्वान् वैद्यकी पृथक् नियुक्ति की गयी और एक अध्यापक की नियुक्ति भी विशेष होगई। यों आयुर्वेद विभागमें भी चार प्राध्यापक होगए। रसायन शाला में दो कर्मचारियों की विशेष नियुक्ति हुई और निर्मित औषधियों के संरक्षणार्थ तथा आय व्यय के सम्यक् संचालनार्थ एक क्लर्क की नियुक्ति भी होगई। आधुनिक युगकी उपयोगी वस्तुओंको ग्रहण करना चाहिये यह मान्यता मेरी सदा से रही है, अतः पाश्चात्य शल्य-चिकित्सा के प्रायोगिक ज्ञानके लिये अधिकारियों से प्रार्थनाकर एक सुयोग्य डाक्टर की नियुक्ति कराई गई और उनके लिए आवश्यक उपयोगी यन्त्र भी खरीद कर रखवाये गये। अब विद्यालय में साधारण शल्य-चिकित्सा तथा रक्त, मूत्र, कफ आदि की परीक्षा भी कीटाणु शास्त्र के सिद्धान्तानुसार छात्रों द्वारा करायी जाने लगी। इस तरह आयुर्वेद विभाग भी अच्छा उन्नत होगया और प्रायोगिक ज्ञान के साथ में होने से इस विभाग की परीक्षाएँ—भिषक्, भिषग्वर, भिषगाचार्य नाम से प्रचलित हुईं। इनमें उत्तीर्ण स्नातक प्रायोगिक शिक्षा प्राप्त सद्वैद्य होकर निकलने लगे।

किसी भी पदार्थ के वास्तविक स्वरूप ज्ञानके लिये इतिहास का ज्ञान परम आवश्यक है—ऐसी मेरी मान्यता रही है, अतः आरंभ में उपाध्याय परीक्षा में "भारतेतिवृत्तसार" नामक इतिहास का ग्रन्थ पाठ्य-क्रम में नियुक्त कर दिया और कुछ काल के अनन्तर विद्यालय के अन्य कई विद्वानों के विरोध करने पर भी शास्त्री तथा आचार्य परीक्षामें भी इतिहास विषय के ग्रन्थों को पाठ्यक्रम में संमिलित किया और उसके अध्यापनार्थ एक इतिहास के प्राध्यापक की नियुक्ति भी करवा दी गई।

साहित्य पढ़ाने के लिये केवल दो अध्यापक थे। मेरे प्रयत्न करने पर साहित्याचार्य कविशिरोमणि श्री भट्टमथुरानाथ जी की नियुक्ति प्रोफेसर पद पर विशेष हुई और उपाध्यापक के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान के लिये एक शास्त्री की, यों साहित्य विभाग में भी चार अध्यापक होगए।

ज्योतिष विभाग में भी वाराणसी के एक सुयोग्य विद्वान् बुलाकर प्रोफेसर पद पर नियुक्त किये गए, एक उनके साथ उप प्रधान पद पर स्थानीय विद्वान् की नियुक्ति होकर ज्यौतिष में भी दो अध्यापक होगए।

पूर्व लिखा जा चुका है कि मेरे जयपुर आने के समय सन् १९२४ में महाराज संस्कृत कालेज में स्कूल व कालेज दोनों में मिलाकर १८४ छात्र, २५ अध्यापक, दो क्लर्क तथा चार चपरासी थे। यह संख्या सात आठ वर्ष में वढ़कर छात्र संख्या ४५१, अध्यापक संख्या ३६, कर्मचारी चार और सेवकों की संख्या दस हो गई। इस तरह कालेजके स्वरूपकी तो वृद्धि हुई किन्तु तवतक स्थान संकोच बना रहा। यह विद्यालय आरंभ से ही जयपुर के एक वहुत प्रतिष्ठित मन्दिर में चलता रहा है। मेरे अध्यक्षता कालमें जब आयुर्वेद विभाग भी विद्यालयान्तर्गत ही था, छात्रों की संख्या बढ़ने पर स्थानकी कमीका अनुभव होने लगा। यद्यपि मन्दिर यह वहुत विशाल है, इसमें सात बड़े २ चौक हैं, यह मन्दिर यदि संपूर्ण मन्दिर विद्यालय चलाने के लिये होता तो स्थान बहुत था, किन्तु मन्दिर के ऊपर का भाग मात्र उस समय तक विद्यालय के अधीन था। ऊपर का भी केवल वाहरी दो चौकोंका ऊपरी भाग था। अधिकारियों से सयुक्ति निवेदन करने पर ऊपरका सारा भाग व मन्दिर के अन्य भाग भी आयुर्वेद रसायन-शाला बनाने के लिये मिल गये, स्थान पर्याप्त हो गया किन्तु छात्रावासकी कमी का अनुभव अभी हो रहा था। इसके लिये राज्यधिकारियों से निवेदन करने पर नगर से बाहर किन्तु नगरके समीप ही एक प्राचीन राजमहल में जो 'माधवविलास' नाम से प्रसिद्ध है, छात्रावास बना। यह स्थान जयपुर महाराज प्रथम माधवसिंह जी ने अपने विहारके लिये बनवाया था, अतः यह अतिविशाल ही नहीं सुन्दर वाटिका और कूपोंसे परिवेष्टित भी था। इस भवनके बाहर एक अतिविस्तृत क्रीड़ाका मैदान बना हुआ था। उस समय तीस छात्र इस भवन में निवास करते थे। ये छात्र जयपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से बाहर के थे जो अध्ययनार्थ विद्यालय में आये थे। छात्रावास के अतिरिक्त बाहरके अन्य छात्र नगर में भी यत्र तत्र रहते थे।

बाहर का मैदान फुटबाल, बालीबाल आदि क्रीड़ाओं के काम में लिया जाता था। विद्यालय द्वारा वहाँ लोहे के पोल लगवा दिये गए—और जाल लगवा दिया गया। वहाँ सैकड़ों छात्र प्रति दिन खेल में भाग लेते रहे। छात्रावास के निरीक्षणार्थ कालेज के एक अध्यापक, जो अंग्रेजी पढ़ाते थे, उनको नियुक्त कर दिया। वे सपरिवार वहीं निवास करते थे। क्रीड़ा के विशेष प्रबन्धार्थ अधिकारियों से निवेदन करने पर एक ड्रिल मास्टर की नयी नियुक्ति हो गई। कालेज के छात्रों की एक व्यायाम-समिति बना कर कालेज के एक अध्यापक को समिति का मन्त्री निर्वाचित कर दिया। कालेज की इस क्रीड़ा पार्टी ने विभिन्न संस्थाओं के सम्मिलित टूर्नामेंटों में अनेक बार भाग लिया। अनेक स्थानों में प्रथमता भी प्राप्त की। महाराजाकालेज, तथा हाई-स्कूल के साथ हुई प्रतियोगिताओं में तो स्वयं शिक्षा-विभागाध्यक्ष ने कालेजीय छात्रों की प्रशंसा की तथा सम्मान किया।

छात्र समिति—

मेरा यह अनुभव रहा है कि केवल गुरु के मुखसे सुन लेने मात्र से ज्ञानमें प्रौढ़ि प्राप्त नहीं होती। इसके लिये अध्ययन काल के अनन्तर छात्रों की परस्पर उन-उन विषयों पर की गई चर्चा रूप अभ्यास कारण बनता है। इस ही विचारसे कालेजमें एक छात्र-परिषद् की स्थापना की गयी। इस परिषद्‌के अधिवेशन प्रत्येक पूर्णिमा और अमावास्या पर होते रहते थे। अधिवेशनका समय कालेजका नित्यका समय ही रहता था। आरंभके दो अन्तरोंमें विद्यालय का कार्य और काफी समय प्रायः तीन घण्टा छात्र-परिषद् का अधिवेशन चलता था। इसमें व्याकरण, साहित्य, दर्शन, आयुर्वेद धर्म-शास्त्र आदि के पृथक्-पृथक् विषयों पर अपनी संस्कृत में निबन्ध पढ़े जाते थे, अथवा विषय निर्धारण कर परस्पर प्रतियोगिताएँ दो दलों में होती थीं। प्राचीन शैली के व्याकरण, न्याय के शास्त्रार्थ करनेका अभ्यास तत्तत् श्रेणीके छात्र किया करते थे। इसके फलस्वरूप छात्रोंका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत तथा हिन्दी के लेखन व भाषण में अच्छा अभ्यास बढ़ गया। इन छात्रों ने समय-समय पर स्थानीय अनेक संस्थाओं में वाचनिक तथा लेखबद्ध विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लिया और कई बार विजय प्राप्त कर कालेज का यश बढ़ाया। अनेक प्रतियोगिताओं में कालेजके छात्र जयपुरसे बाहर की संस्थाओं में भी आह्वान पर गये। उनमें हरिद्वार आयुर्वेद कालेज तथा वाराणसी में हुए अखिल भारतीय वाद विशेष उल्लेखनीय हैं। वाराणसी की वादप्रतियोगिता में इस कालेज के छात्र ने विजय पाई और विजय के फलस्वरूप काशी से रजत की एक विशाल सरस्वती प्रतिमा हंस सहित लाकर एक वर्ष तक कालेजमें रखी गई। इस प्रकार इस छात्र-परिषद्की स्थापनाका बहुत अच्छा परिणाम हुआ।

उपाधिवितरणोत्सव—

इस विद्यालय में आरंभ से ही वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले छात्रोंको प्रमाण-पत्र अथवा पारितोषिक वितरित किये जाते थे। कभी तो शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष विद्यालय में आकर यह पारितोषित देते थे और कभी विद्यालय के अध्यक्ष ही सब विद्यालयीय अध्यापकों एवं प्राध्यापकोंकी सभामें छात्रोंको पारितोषिक वितरित कर दिया करते थे। सन् १९२६ में मेरी विशेष प्रार्थना पर ध्यान देकर शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष श्रीश्यामसुन्दर शर्माजी ने वार्षिक उत्सवका स्वरूप बढ़ा दिया। कालेज के 'उपाधिवितरणोत्सव' नामसे इस उत्सव की घोषणा हुई, जिसमें संस्कृतभाषाप्रेमी राज्य का कर्मचारीगण, स्थानीय पंडित-वर्ग, नगरके सभ्यजन तथा राजकीय सामन्तवर्ग को आमन्त्रित किया गया। उनके समक्ष बृहत् सभामें छात्रों द्वारा निबन्ध पाठ, वैदिक छात्रों द्वारा वैदिक सूक्तोंके मंगल पाठ, वाद-प्रतियोगिता, छोटे-छोटे संवादात्मक संस्कृतके अभिनय आदि कार्य-क्रम आरंभ किये गये। एक विशिष्ट विद्वान् द्वारा दीक्षान्त भाषण कराया जाता। कालेजका वार्षिक विवरण मैं सुना देता था। स्वयं शिक्षा सचिव "पितृदेवो भव, मातृदेवो भव, आचार्यदेवो भव" आदि उपनिषद् का छात्रों को उपदेश देकर अपने हाथ से उपाधि वितरण करते। यह उत्सव दो दिन चलता था। दूसरे दिन पण्डित सभा नामसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आह्वान होकर, शास्त्रार्थ, निबन्धपाठ, कवितापाठ, प्रतियोगिता, विद्वानोंके पृथक्-पृथक् विषयों पर भाषणादि कार्यक्रम चलता था। इस उत्सव के कार्यक्रम को नागरिक सभ्यवर्ग ने बहुत पसन्द किया, विद्यालय की ख्याति हुई, तथा सामन्तवर्गमें भी विद्यालय का सम्मान बढ़ा। आगे चलकर महामहोपाध्याय रायबहादुर श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा महोदय जैसे विद्वान् भी सादर आमन्त्रित होकर इस उत्सव में सम्मिलित हुए। संस्कृत के प्रति अनुदार भावना के कारण संस्कृतज्ञोंको जो अकर्मण्य समझते थे उनलोगों का ध्यान भी इन उत्सवों के कारण विद्यालयकी ओर आकृष्ट हुआ। इस प्रकार इस उत्सव प्रकरण से विद्यालयकी बहुत ख्याति हुई।

प्राध्यापक समिति

महाराजसंस्कृतकालेज में क्रम यह चल रहा था कि शिक्षा-विभागके अध्यक्ष का कोई आदेश मिलने पर कालेजाध्यक्ष द्वारा ही आदिष्ट कार्यक्रम चालू कर दिया जाता था और प्रोफेसर्स तथा लैक्चरर्स को वह स्वीकार करना पड़ता था अथवा कालेज सम्बन्धी कोई आदेश अध्यक्ष स्वयं जारी कर दिया करता था। उक्त दोनों पक्षों से कालेजीय प्रोफेसरों में कुछ असन्तोष देखकर कालेज में एक प्राध्यापक समिति बना दी गयी। कालेज संबन्धी संपूर्ण कार्यक्रम यह समिति ही निर्धारित करती। अनेक विद्वानोंके सहयोगसे प्रत्येक गुण-दोष पर खूब विचार होकर निर्णय किये जाने पर किसी प्रकार की हानि की सम्भावना प्रायः नहीं रहती थी, साथ ही सब प्रोफेसरों को पूर्ण सन्तोषानुभव भी हो गया, उनके सम्मान की रक्षा हुई। प्रवेशिका श्रेणी तकका संपूर्ण पाठ्यक्रम भी यही समिति बनाती, वार्षिक परीक्षा का पाठ्यक्रम भी पहिले समिति निर्धारित कर लेती, तब अध्यक्षके विचारार्थ रखा जाता, इस प्रकार इस समिति द्वारा काम करने में बड़ा सौकर्य हो गया।

बालचरसंघ

बालकों में स्वयंसेवकत्व का भाव जागरित हो, एतदर्थ कालेज में बालचरसंघ बनाया। आरंभ में छात्रों में इस संघ के प्रति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुत्साह देखकर अपने पुत्र देवीदत्त को, जो इस ही कालेज में उपाध्याय श्रेणी में पढ़ रहा था, इस संघमें सन्निविष्ट किया, तब अन्य भी छात्र उत्साह से इसमें प्रवृत्त हुए। आगे चलकर इस बाल-संघ ने जनसेवा में तो समय-समय पर भाग लिया ही किन्तु कालेजके वार्षिक उत्सवों पर न केवल सम्पूर्ण प्रबन्ध में ही सहायता दी अपितु हिन्दी भाषामें सामयिक संवाद और अभिनय आदिके द्वारा सभ्यजनोंको अनेक वार परितुष्ट भी किया।

आगे चलकर माधवविलास भवन के कालेज के अधिकारमें आ जाने पर तो ये उत्सवादि वहीं मनाये जाने लगे। प्रतिवर्ष जन्माष्टमी महोत्सव तो वहाँ नियमसे होता ही था और भी वसन्तोत्सव, परिहाससम्मेलनादि भी वहाँ होते रहते थे। इतना हमने अवश्य किया कि इन सबमें हमलोग भी स्वयं सक्रिय भाग लेते रहे। इससे विद्यार्थियों में अच्छी जागृति उत्पन्न हुई और उनका उत्साह दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया।

वाराणसेयसंस्कृतकालेज, जो अब संस्कृतविश्वविद्यालय नाम से ख्यात हो चुका है, वहाँके विद्वान् तथा पञ्जाबविश्वविद्यालय के विद्वान् भी अभी तक जयपुर महाराजसंस्कृतकालेज की परीक्षाओं को मान्यता नहीं दे रहे थे। इससे छात्रोंमें बहुत क्षोभ था। आचार्यान्त स्नातक होने के अनन्तर भी छात्र अपने आपको नगण्य सा समझ कर बहुत दुःखी रहते थे। वाराणसीमें तथा पंजाब में बहुत समय तक अत्यधिक प्रयत्नशील रहने पर हम यह मान्यता स्वीकृत करा पाये। अब भारतके सारे विश्वविद्यालय अपने यहाँकी संस्कृत परीक्षाओं के समान ही महाराजसंस्कृतकालेज की परीक्षाओंको मान्यता देते हैं। राजपूतानाप्रान्तीयशिक्षासमिति ने तो न केवल वाचनिक मान्यता दी अपितु इस विद्यालय के शास्त्री, आचार्यके स्नातकों को अंग्रेजीके हाई-स्कूल तथा मिडिल स्कूलों में स्थान देकर विद्यालयका महत्व बढ़ाया एवं शास्त्री और आचार्य स्नातकों को बी० ए० तथा एम० ए० परीक्षाओं में बैठने का अधिकार भी प्रदान किया। शास्त्री पास छात्र केवल अंग्रेजी के पत्र में परीक्षा देकर बी० ए० या एम० ए० की डिग्री प्राप्त कर सकता था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयुर्वेद महासम्मेलन

यह सब कालेजका कार्यक्रम चल ही रहा था कि मध्य में प्रसङ्गान्तर उपस्थित हुआ। कालेजमें आयुर्वेद विभागके प्रधानाचार्य हमारे परम मित्र श्रीस्वामी लक्ष्मीरामजी वैद्य महोदय ने यह इच्छा व्यक्त की कि अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन का वृहद् अधिवेशन जयपुर में सम्पन्न किया जाय। तदनुसार स्थानीय वैद्यों से विचार-विमर्श पूर्वक एक समितिका निर्माण हुआ, उस समिति का मन्त्री मुझे बना दिया गया। हम सबने प्रयत्न कर राजाज्ञा प्राप्त करके सर्वत्र भारत में आमंत्रण प्रेषित कर दिये और नगरके दक्षिण भागमें मोती-डूंगरी गणेशमन्दिर के समीप के मैदान में विशाल पंडालका आयोजन कर तीन दिन तक सम्मेलनका उत्सव क्रम चलाया। बहुत बड़ी संख्यामें भारतका वैद्य-समाज उस समय जयपुर में आया था। यादव जी प्रभृति चोटीके वैद्य उसमें पधारे थे। पूज्य मालवीय जी भी इस अवसर पर जयपुर आये। आयुर्वेद को नवीन दिशा की ओर मोड़ देनेके लिये बड़े प्रौढ़ विचार हुए। फलतः सम्मेलन बहुत सफल माना गया।

इस ही समय घर में विवाह-प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। द्वितीय विवाह से उत्पन्न बड़ी कन्या आयुष्मती शकुन्तला विवाह योग्य हो चुकी थी। लगातार दो-तीन वर्ष परिश्रम करने पर भी इसके लिये वर प्राप्त नहीं हो रहा था, लड़की की कुंडलीमें मंगलीकता होनेसे मंगलीक लड़केका योग ही ठीक हो सकता है—यही विघ्न उपस्थित करता था। अब फर्रूखाबाद के समीप सिकन्दरपुर ग्राममें एक सुयोग प्राप्त हुआ। ये सिकन्दरपुर निवासी होकर भी मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़ इलाकेमें जगदलपुरमें रहते थे। वहाँ इनके पिता, पितामह जंगलके ठेके लिया करते थे। विवाहकालमें पिता तो नहीं रहे थे, वे तो सब लड़के और एक लड़की को बहुत छोटी अवस्थामें छोड़-कर अल्पायु में ही दिवंगत हो गये थे। पितामह वर के विवाह-कालमें उपस्थित थे। विवाह सानन्द हो गया। मेरे ये जामाता श्री नत्थूलाल चतुर्वेदी हैं, ये जगदलपुर गवर्नमेंट हाईस्कूल में अध्यापक हैं। इनके दो पुत्र और एक कन्या है। बड़ा पुत्र चन्द्रहास चतुर्वेदी फुलेरा राजस्थानमें रेलवे विभागमें ड्राइवर की पोस्ट पर है, और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कनिष्ठ प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी एम० ए० इतिहास में रिसर्च कर रहा है। इस तरह यह विवाह परिणामतः बड़ा शुभ हुआ किन्तु मेरे सामने उस समय विवाहके बाद आर्थिक संकट बड़ी तीव्रता से उपस्थित होगया क्योंकि विवाहमें सम्पूर्ण व्यय ऋण लेकर ही किया गया था। पासमें संचित धन तो कभी रहा ही नहीं। अतः इस ऋणके शोधनार्थ बाहर सभाओंमें विशेष भाग लेना आवश्यक हो गया, किन्तु जयपुरसे बाहर जानेके लिए—अवकाश तो सीमित ही मिलते थे। उन ही अवकाशों में एक दिन भी व्यर्थ न खोते हुए मैं बाहर जाने लगा। यों ग्रीष्मावकाश में प्रायः प्रति वर्ष पंजाब का दौरा होता ही रहता था। प्रायः दो मास लाहौर या लाहौर के आसपास मुल्तान रावलपिंडी आदिमें व्यतीत हुआ करते थे। दो मासका यह समय और एक मासका अतिरिक्त समय, ये तीन मासका अवकाश मेरे लिये कम पड़ रहा था, क्योंकि अच्छी-अच्छी जगहों की सभाओंके साग्रह निमन्त्रण आ रहे थे, सम्मान सहित द्रव्यलाभ का सुयोग प्राप्त था, परन्तु मैं विवश था। इस समय शिक्षा-विभागाध्यक्ष पद पर श्री श्यामसुन्दर जी नहीं रहे थे, उन्होंने रजिस्ट्रार पद पर आगरा यूनिवर्सिटीमें स्थान ग्रहण कर लिया था। उनके जयपुरमें रहते समय महाराजसंस्कृतकालेज की जैसी हम चाहते रहे, उन्नति होती रही। ये भारतीयआर्यसंस्कृतिके अत्यन्त पक्षपाती, गुणग्राही पुरुष थे और संस्कृत भाषाके प्रेमी भी थे। यही कारण था कि ऐसे विषम समय में, जब कि देशमें न केवल संस्कृत भाषा की उपेक्षा ही हो रही थी बल्कि इसपर प्रहार भी हो रहे थे, कालेज ने आशातीत उन्नति की। अब इनके स्थान पर शिक्षा विभागके अध्यक्ष एक काश्मीरी विद्वान् ब्राह्मण श्री कैलासप्रसाद जी किचलू महोदय नियुक्त हो गये थे। इनको स्पेशल एज्यूकेशन औफिसर का पद प्राप्त था। विभागीय शिक्षा व्यवस्था में ये प्रौढ़ सिद्ध हुए, व्यवहार-कौशल इनमें बहुत था और व्यवहारमें अत्यन्त शीलपूर्ण उदारतासे वर्ताव करते थे। ये सब कुछ होते हुए भी दुर्भाग्यवश ये संस्कृत-भाषासे सर्वथा अपरिचित थे। यद्यपि ये ब्राह्मण थे और काश्मीर जैसे भारतीय-संस्कृति के केन्द्र स्थान में इनके पूर्वजोंका निवास रहा था तथापि अंग्रेजी और फारसीका ही विशेष अध्ययन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका हुआ था, संस्कृत का नहीं। इनके अधिकारकालमें शिक्षा-विभागकी परिवृद्धिके लिये शिक्षा-विभागके अधिकारियोंका अध्यापकोंका और निरीक्षक आदिका वेतन बढ़ाकर अर्थ सचिव के सम्मुख रखा गया। सचिव महोदय ने वजटमें कमी होनेके कारण शिक्षा-विभागाध्यक्षको निर्देश किया कि शिक्षा-विभागमें व्यय थोड़ा कम किया जाना चाहिये—जिससे राजकीय वज़टमें असुविधा न पड़े। इसका उत्तर इन महाशयने यह दिया कि और तो शिक्षा-विभागमें कहीं कमी नहीं की जा सकती, यह संस्कृत कालेजमें होने वाला तीस हजार रुपया वार्षिक व्यय व्यर्थ मालूम पड़ता है, इस कालेज द्वारा शिक्षाकी कोई खास उन्नति भी नहीं दिखायी देती, आदि।

शिक्षाके स्पेशल एज्यूकेशन औफीसर, विभागके अध्यक्ष की ऐसी सम्मति देखकर शिक्षा सचिवका उसपर ध्यान देना आवश्यक था, किन्तु चिरकालसे चलती आरही इस संस्थाका सर्वथा उच्छेद कर दिया जाय, यह उनको उचित न जान पड़ा, इसलिये यह पता लगानेके लिये कि वास्तवमें संस्कृत कालेज पर किया जाने वाला व्यय निरर्थक होरहा है अथवा इस व्ययसे कुछ अपेक्षित लाभ भी होरहा है, एक समितिका निर्माण उनने कर दिया। इस समिति का अध्यक्ष मन्त्रियोंमें वयोवृद्ध गृहसचिव रायबहादुर सर पुरोहित श्री गोपीनाथजी एम० ए० को बनाया गया। राज्य-मन्त्रियोंके श्रद्धा-भाजन श्रीवीरेश्वर शास्त्री द्रविड़ महोदय, राज्यके प्रधान पंडित विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदनजी ओझा महोदय, महाराज (अंग्रेजी) कालेजके प्रिंसिपल श्रीमाधवरामचन्द्र ओक महोदय, सामन्तों में हिन्दी के प्रौढ़ विद्वान् खाचरियावास के ठाकुर श्रीकल्याणसिंह महोदय इस समिति के सदस्य बनाये गये। इन पाँचों ने मिलकर कालेज का सूक्ष्म अन्वीक्षण आरंभ कर दिया और अनेक दुःसमाधेय प्रश्न कालेजके अध्यक्ष के रूप में मेरे समक्ष उपस्थित कर दिये। उन प्रश्नों के समुचित समाधान पर ही कालेज का भविष्य निर्भर करता था। भगवत्कृपा से मेरे द्वारा सब प्रश्नों का सयुक्ति उचित समाधान पा लेने पर इस समिति ने कालेज की महती आवश्यकता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिये जो रिपोर्ट प्रकाशित की थी वह अवलोकनीय है। मेरे गुरु श्री विद्यावाचस्पति जी के भी समिति में रहने से मेरा काम हल्का हो गया। उन्हीं के प्रभाव से सभी सदस्य कोलेज के समर्थक बने रहे। कथंचित् संस्कृत विद्वानों के सम्मान की तथा संस्कृत भाषाकी रक्षा हो सकी।

शारदा एक्ट

उधर एसेम्ब्लीमें इस समय चाँदकरण शारदा महोदय ने ने शारदाबिल उपस्थित किया था—जिसमें हिन्दू लड़कियों तथा बालकों का विवाह बड़ी उमर हो जाने पर किया जाय, इसके लिये कानून बनाने की माँग उपस्थित की गई थी। इसका विरोध समाचार पत्रोंमें लिखकर तथा स्थान-स्थान पर सम्मेलन आदि कर-वाकर हमने खूब किया। पूर्व लिखा जा चुका है कि जयपुर में भी श्रीदीनानाथ मन्दिर में एक सनातनधर्म सभा का आयोजन हमलोगों ने कर रखा था, पाक्षिक वा मासिक कभी साप्ताहिक अधिवेशन भी इसके होते रहते थे। इसमें हमारे साथ मित्रवर श्रीसूर्यनारायण जी व्याकरणाचार्य विशेष भाग लेते थे। शारदा ऐक्ट के विरोध में इस सभा का विशेष अधिवेशन किया गया। नगर में नवीन सुधारकों द्वारा एक 'समाज सुधारक मण्डल' संस्था भी चलाई जा रही थी। इसमें प्रमुख भाग एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण श्रीशिवकिशोर जी तिवारी व आर्यसमाजी विदुषी श्रीयमुनादेवी ले रही थी। ये लोग विधवाविवाह, बाल-विवाह आदि विषयों को लेकर कभी-कभी विवाद उपस्थित किया करते थे। इन लोगों ने एक बड़ा दल बनाकर उक्त शारदा ऐक्ट का औचित्य सिद्ध करनेके लिये सनातन-धर्म सभा के उक्त अधिवेशन में बड़ा प्रबल आभियान किया। तीन चार दिन खूब विचार संघर्ष चला, परस्पर विरोधी वक्तृताएँ हुईं, इस अधि-वेशन में ही नहीं, नगर में अन्यत्र भी अनेक स्थानों पर पृथक्-पृथक् संस्थाओं द्वारा इस ऐक्ट पर विचारार्थ अधिवेशन हुए, नगरमें इस विषय को लेकर खूब विचार विनिमय हुआ। सर्वत्र देशमें धार्मिक जनता अत्यधिक संख्या में इस ऐक्ट का विरोध कर रही थी, अतः उस समय तो यह ऐक्ट लागू नहीं किया गया, कालान्तर में इसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पास किया गया। मैंने धर्माचार्यों, उपदेशकों, विद्वानों तथा धार्मिक जनता को सम्बोधित करते हुए एक खुली चिट्ठी पेपरों में भेजी। वह कई पेपरों में छपी। उसका असर यह हुआ कि सारे देश से प्राय: २०० विद्वान् और आचार्य देहली में एकत्र हुए और "वर्णाश्रम-स्वराज्यसंघ" नामक संस्था स्थापित हुई। काशी के प्रमुख विद्वान् त्यागमूर्ति श्री लक्ष्मणशास्त्री जी द्रविड़ने उसमें प्रमुख भाग लिया।

नाट्य संघ—

हमने देश में यत्र-तत्र अनेक वार यह सुना कि 'संस्कृत भाषा भी क्या कभी व्यावहारिक बनाई जा सकती है ? संस्कृत पढ़नेवाले छात्र सिवाय पुराने शास्त्रों को रट कर कंठस्थ करने के और क्या कर सकते हैं ?' स्थानीय नागरिक सभ्य जनों के व राजकीय अधिकारियों के भी बहुत कुछ ऐसे ही विचार पाये गये। इसके परिहारार्थ कुछ करना आवश्यक हो गया। संस्कृतज्ञों के प्रति ऐसे गिरावट के भाव नागरिकों में हो जाना अवांछनीय था। इसके लिए अपने कालेज में व्यावहारिक नवीनता जागृत करने के लिए एक 'नाट्य-संघ' की स्थापना की गयी। इसमें श्री प्रभुनारायण शर्मा "सहृदय" जो इस ही कालेज में अध्यापन कर रहे थे, उनकी विशेष सहायता ली गयी। आरंभ में तो इस नाट्य-संघ द्वारा कालेज के वार्षिक अधिवेशनों पर संस्कृत के संवादात्मक छोटे-छोटे अभिनय ही उपस्थित किये गये, किन्तु उनको देखकर राज्य के शिक्षा सचिव श्री नरेन्द्रसिंह जी ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और आज्ञा दी कि बड़े पैमाने पर पूरी तैयारी करके संस्कृत का कोई पूरा नाटक राज्य की नाट्य-शाला के रंगमंच पर करना चाहिए। सौभाग्य से वैसा अवसर भी उपस्थित हो गया। जयपुर नरेश महाराज मानसिंह जी की महारानी ने राजकुमार को जन्म दिया। इस गद्दी पर अनेक पीढ़ियों से राजा को औरस सन्तान प्राप्त नहीं होती थी, गोद लेकर ही राजा बनाये जाते थे, स्वयं महाराज मानसिंह जी भी दूसरे स्थान से गोद लेकर ही राजा बनाये गये थे। इसके पहिले के महाराज माधवसिंह जी, महाराज रामसिंह जी आदि भी दत्तक ही आये थे। इतने समय के अनन्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवत् कृपा से राजकुमार का जन्म होने पर सर्वत्र नगर में नागरिकों द्वारा बड़े-बड़े उत्सव मनाये गये। राज्य के आश्रित संपूर्ण विभागों ने भी मुक्तहस्त से व्यय करके अनेक उत्सव किये। महाराज-संस्कृत-कालेज में भी विशेष उत्सव का आयोजन हुआ। स्वयं श्री मानसिंहजी ने इस उत्सव में संमिलित होकर पंडितवर्ग का उत्साह बढ़ाया, किन्तु इस उत्सव से कालेज के अन्य विद्वानों कोतथा हमको भी सन्तोष नहीं हुआ। अतः महाकवि भवभूति रचित "उत्तर-रामचरितम्" नाटक का अभिनय राजकीय नाटचशाला में किया जाय यह स्थिर हुआ। इस अभिनय के लिए करीब १॥ मास तक लगातार रिहर्सल आदि में छात्रों को शिक्षण देने में मेरे साथ-साथ अन्य विद्वानों ने बड़ा परिश्रम किया। कालेज भवन में ही रात्रि में देर तक यह कार्यक्रम चलता रहता था। इस नाटक में पुरुष पात्रों की भाषा तो संस्कृत ही रखी गयी, किन्तु स्त्री पात्रों की हिन्दी कर दी गयी थी। एक दो गीत भी हिन्दी के बनाकर संमिलित किये गये, बाकी गीतियाँ संस्कृत की ही रहीं। राजकीय नाटचशाला रामप्रकाश नाटक घर के रंगमंच पर यह नाटक तीन दिन खेला गया। इस नाटक में प्रधान पात्र रामचन्द्र का पुत्र लव, और लक्ष्लण का पुत्र चन्द्रकेतु है। चन्द्रकेतु की भूमिका में जयपुर के ख्याति प्राप्त पं० मोतीलाल शास्त्री ने काम किया था, और लव का पार्ट मेरे पुत्र देवीदत्त ने किया था। नागरिक सभ्यजनों ने इस आयोजन की प्रशंसा की कि संस्कृतज्ञ विद्वान् भी ऐसे नाटक खेल सकते हैं यह आशातीत विषय है। महाराज श्री मानसिंह जी ने नाटक देखने के लिए केवल आधा घंटा समय देने की स्वीकृति दी थी, किन्तु नाटक के प्रारंभ काल में ही वे आये और समाप्ति पर्यन्त पूरा अभिनय उन्होंने देखा। अनेक दृश्यों में ताली बजाकर तथा मन्द हास द्वारा अपनी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने अभिनय करनेवाले छात्रों को स्वर्ण पदक तथा २०००) रु० पारितोषिक रूप में दिये और कहा कि छात्रों द्वारा किया गया ऐसा नाटक हमने कभी नहीं देखा था। राज्य के संपूर्ण सामन्तवर्ग तथा मन्त्रियों की भी यह सम्मति थी कि न केवल संस्कृतकालेज के इतिहास में ऐसा नाटक होना नई बात है, अपितु जयपुर नगरके इतिहासमें यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नयी बात हुई है। नगर के धनिकवर्ग ने भी अभिनेता छात्रों को स्वर्ण पदकादि प्रदान करके उनका सम्मान किया। ऐसे ही कुछ आयोजनों से संस्कृतज्ञों पर थोपी गई अव्यावहारिकता का बहुत कुछ शोधन वहाँ हुआ। अस्तु,

कश्मीर यात्रा:—

सन् १९३३ के ग्रीष्मकाल में कश्मीर यात्रा का प्रसंग उपस्थित हुआ। कश्मीर के दीवान बदरीनाथ जी, जो दिवंगत हो चुके थे, उनकी विधवा धर्मपत्नी ने भागवत सुनाने के लिये मुझे बुलाया था। मेरे साथ मेरा ज्येष्ठ पुत्र देवीदत्त तथा एक पंजाबी शिष्य राधेश शास्त्री थे। लाहौर से ही हम लोग दीवान परिवार के साथ कश्मीर यात्रा पर गये। जाते समय रावलपिंडी के मार्ग से गये थे और लौटते समय जम्बू के मार्ग से आये। रावलपिंडी में अपने मित्र श्री यदुकुलभूषणजी शास्त्री, जो मुलतान के थे किन्तु उस समय रावलपिंडी में रह रहे थे, उनका साग्रह आतिथ्य ग्रहणकर मोटर-कार द्वारा श्रीनगर के लिये चल पड़े। मध्य में पर्वतों से वेष्टित एक सुन्दर स्थान पर रात्रि को विश्राम किया। यहाँ इस ग्रीष्मऋतु में भी शीत का अनुभव होने लगा। पानी इस स्थानका अद्भुत पाचन शक्ति रखता है। भोजन करने के तीन घंटे वाद ही बड़ी तीव्र क्षुधा मालुम पड़ी और इतना क्लेश हुआ कि गाड़ी रुकवाकर एक जगह पुनः कुछ मिष्टान्नादि ग्रहण करना ही पड़ा। दूसरे दिन २०० मील की यात्रा कार द्वारा पूरी कर काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में पहुँच गये। मार्गके सुन्दर प्राकृतिक मनोहर दृश्यों से तथा सुन्दर जलप्रपातों के दर्शन से चित्त खूब प्रसन्न रहा। श्रीनगर विख्यात झेलम नदीके तट पर बसा हुआ है। नदी ने नगर के दो भाग कर दिये हैं। लकड़ी के अनेक सुन्दर पुलों द्वारा इन दोनों भागोंको जोड़ा गया है। झेलम के तट पर ही दीवान बदरीनाथ जी का एक विशाल मकान है, इसके एक भाग में हम लोगों के निवास का प्रवन्ध हुआ। काशी के पं० पद्मनाभ शास्त्री भी उपनिषद् सुनाने को हमारे साथ ही आये थे। संस्कृत-साहित्य-संमेलन के प्रधान मंत्री पं० केदारनाथ सारस्वत के ये पिता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। हम लोग सब एक ही स्थान में ठहरे थे। भोजन दोनों का पृथक्-पृथक् बनता था। दीवान साहब की धर्मपत्नी ने मेरे समक्ष उपनिषद् सुनाने का प्रस्ताव रखा था, किन्तु उपनिषद सुनने में शास्त्रीय मर्यादा की बाधा देख कर मैंने यह स्वीकार नहींकिया। तब वे भागवत का एकादश स्कन्ध मुझसे सुनने लगीं और पं० पद्मनाभ जी इन्हें उपनिषद् सुनाने लगे। हमारा यह प्रवचन कार्य माध्यान्होत्तर ३ बजे से ५-५।। बजे तक चलता था। बाकी समय बहुत कुछ तो नित्यनियम में तथा भोजनादि की व्यवस्था में बीतता और कुछ नगर के विशेष स्थानों के भ्रमण करने में जाता था। भ्रमण के लिये हम को एक मोटर दे दी गई थी—अत: दूर-दूर तक के स्थान देखने की अच्छी सुविधा प्रप्त हो गई। डलझील, शालीमारबाग, मार्तण्ड तीर्थ, वैरी नाग, व शेषनाग नामके जलके प्रपात, जहाँसे झेलम का स्रोत आरंभ हुआ है, इन सबकी खूब सैरकी। गान्दर्वल (गन्धर्ववन), शङ्कराचार्य का मठ आदि दूर-दूर के स्थान भी हम देख सके। इन सब यात्राओं में पद्मनाभ शास्त्री जी हमारे साथ-साथ भ्रमण करते थे। यद्यपि काशीमें ये प्रसिद्ध लड़ाकू पंडित माने जाते थे किन्तु हम लोगोंका काश्मीर निवास का समय तो बहुत ही स्नेहपूर्ण व्यतीत हुआ। कश्मीर राज्य के राजपंडित जी से भी भेंट हुई। ये सज्जन साग्रह निमंत्रण देकर अपने घरभी ले गये। भोजन तो हम वहाँ न कर सके किन्तु फल, मेवा आदि उनके द्वारा दिया गया आतिथ्य हमने स्नेह से ग्रहण किया। झेलम के तट पर ही इनका बड़ा सुन्दर छोटा सा किन्तु रमणीय निवास स्थान बना हुआ था। काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में उस समय संस्कृत शिक्षाका कोई प्रबन्ध न देखकर मन में खेद हुआ। अस्तु, इस प्रवचन कार्य को चलते हुए अभी १५—२० दिन हुए थे कि वर्षा आरंभ हो गई और २ सप्ताह निरन्तर होती रही। बड़ा विचित्र दृश्य नगर का होगया। बाजारों में सर्वत्र जल व्याप्त हो जानेसे व्यापारिक सारे काम छोटी-छोटी नावों द्वारा पूर्ण किये जा रहे थे। प्रत्येक मकान में से सैकड़ों स्रोत पानी के बह रहे थे। यहाँ मकान बनाते समय ही ध्यान रखकर मकान के आर-पार सैकड़ों छिद्र मकानों में रखे जाते हैं जिससे पानीके द्वारा मकान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को क्षति न पहुँचे। झेलम नदी दिन प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही थी। यहाँ तक कि एक दिन हमारे प्रबन्धकों ने हमसे कहा कि आप लोगों का सामान ऊपर की मंजिल में ले चलते हैं, यहाँ झेलम के पानी आजाने का अन्देशा है। अबतक हम लोग नीचे की मंजिल में ही निवास कर रहे थे। उनके कथन पर हम लोग ऊपर आ गये। यद्यपि झेलम का पानी अभी काफी नीचे था किन्तु दूसरे दिन प्रातः काल जागने पर जो दृश्य देखा, उससे तो हैरान हो गये। हमारे उस कमरेमें जिसमें गत दिन तक हमारा निवास था, कमर तक पानी भरा हुआ था, यदि प्रबन्धक महाशय के कथनानुसार हमने परिवर्तन न किया होता तो वास्तव में बहुत कष्ट उठाना पड़ता। झेलम का पानी क्रमक्रम से बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि पुलों से जा लगा। झेलम का जल शहर में घुस पड़ेगा, यह आशंका होने लगी। नगर की रक्षाके लिये झेलम नदी पर बाँधा हुआ विशाल बाँध तोड़कर जल निकाल दिया जाय, यह विचार अधिकारियों ने स्थिर किया किन्तु कश्मीर राज्य का तब तक नियम यह था कि बाँध पर पहले स्वयं महाराज गोली दागें तब तोप से गोले चलाये जाकर बाँध तोड़ा जा सकता था और तत्कालीन महाराज श्रीमान् हरीसिंह जी नगर से ५०-६० मील दूर किसी स्थान पर विराज रहे थे। उस वर्षा में उनके वहाँसे बाँधके स्थान तक पहुँचने में अधिक समय लग गया, सात-आठ घन्टे तक बराबर यह आशंका बनी रही कि झेलम का पानी किसी भी समय नगर में घुस पड़ेगा। पानी पुलोंके ऊपर आने लगा था कि तब ही महाराज ने बाँध पर पहुँचकर राज्य नियमका पालन किया और बाँध तोड़ डाला गया तो झेलम का पानी काफी नीचे उतर गया। नगर की रक्षा तो हुई किन्तु सैकड़ों की संख्या में गाँव बाँध टूट जानेके कारण बह गये। हजारों मनुष्य घरबार विहीन हो गये। हमने स्वयं मोटर द्वारा जाकर वह करुण दृश्य देखा था कि वृक्षों पर सैकड़ों नर-नारी बालक आश्रय ग्रहण किये हुए थे। राज्य की ओर से उनके भोजनका समुचित प्रबन्ध किया गया था, हमारे समक्ष भी उनको रोटियाँ बाँटी जा रही थीं, किन्तु दृश्य बड़ा ही भयानक था। सैकड़ों गाय, बैल, भैंसें और अन्य जीव पानी में बहते चले जा रहे थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी तरह कठिनता से यह वर्षाकांड रुका, नगरमें कुछ शान्ति प्रतीत होने लगी कि एक दूसरी दुर्घटना ने नगरका संपूर्ण वातावरण ही खराब कर डाला। श्रीनगर काश्मीर में हिन्दू जनसंख्या अधिक है और मुसलमानों की कम, वहाँ प्रायः साम्प्रदायिक दंगे नहीं होते थे। इस समय कुछ लोग पंजाब से वहाँ पहुँच गये थे, उनके भड़काने से वहाँ कुछ साम्प्रदायिक भाव उत्पन्न हो गये। कुछ लोगों के द्वारा एक बालिका की हत्या कर दी गयी, परिणाम स्वरूप नगरमें उत्तेजना बढ़ गयी। वहाँ के प्रधान बाजार में आग लगा दी गई, बड़ी कठिनतासे वह बुझाई जा सकी, बहुत बड़ी धन हानि हुई। तब राज्य की ओर से कठोर दमन किया गया, नगरमें १४४ धारा लागू हो गयी। नगरका वातावरण अव्यवस्थित हो गया। यद्यपि हमारा प्रवचन कार्य बराबर चल रहा था और वह प्रायः पूर्ण हो चुका था, उधर ग्रीष्मावकाश भी समाप्त हो रहा था, क्योंकि अवकाशके आरंभका बहुत समय प्रायः सारा मई मास हम लाहौर में ही व्यतीत कर चुके थे, अब यहाँ से चल पड़ना चाहिये यह विचार हुआ, किन्तु नगरमें प्रतिबन्ध होने के कारण न नगर से बाहर कोई जा सकता था न बाहर से आज्ञा प्राप्त किये बिना कोई आ सकता था। ऐसी स्थिति में दीवान साहब की पत्नी ने बहुत प्रयत्न करके राजाज्ञा हम लोगोंके श्रीनगर से बाहर जाने के लिये प्राप्त की और सम्मानपूर्वक एक काश्मीरी उत्तम दुशाला और आने-जानेके मार्ग-व्यय सहित आठ सौ रुपये भेंट करके अपनी कार में श्रीनगर से हम लोगों को विदा किया। लौटते समय का मार्ग जम्बू होकर रहा यह लिखा जा चुका है। जम्बू में १ दिन ठहरे। वहाँ के पंडितों से भेंट की तथा जम्बू के प्रधान २ मन्दिरों के दर्शन किये, वहाँ एक मन्दिर में सवालाख शिव मूर्तियों के दर्शन किये। लौटते समय पहिले लाहौर रुकने का विचार था किन्तु अवकाश समाप्त हो जाने के कारण राधेश शास्त्री को लाहौर में उतार कर हम सीधे जयपुर के लिये चल पड़े और जिस दिन कालेज खुला उस दिन प्रातः काल ही जयपुर पहुँच सके।

कालेजका नवीन सत्र आरंभ हो गया। इस बार कालेज की छात्र परिषद् ने संस्कृत लेखों का अभ्यास बढ़ाने के लिये एक मासिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पत्रिका निकालने का निश्चय किया। तदनुसार 'प्रतिभा' नाम की मासिक पत्रिका निकलने लगी। व्ययकी न्यूनता के कारण कालेज द्वारा इसको मुद्रित कराने का प्रबन्ध नहीं किया जा सका, राज्य द्वारा इसके लिये पृथक् व्यय की स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई। अतः छात्र स्वयं अपने हाथों से ही सुन्दर लेखन द्वार इस पत्रिका का सम्पादन करने लगे। इसमें छात्रोंके लेख तो प्रधानतया रहते ही थे, विशेष गम्भीर विषयों पर प्रोफेसरों के लेख भी बड़े महत्वशाली एवं पठनीय होते थे। यदि राज्य द्वारा इस पत्रिका के मुद्रण का प्रबन्ध हो जाता तो वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालय से जैसे "सारस्वती-सुषमा" नाम की पत्रिका प्रकाशित की जा रही थी उसी प्रकार जयपुर-संस्कृतकालेज द्वारा इस पत्रिका का प्रकाशन भी चलता रह सकता था। अभी हस्तलिखित इस पत्रिका का आरंभ कर दिया गया था।

राजदर्वार में कुर्सी की प्राप्ति

पूर्व लिखित राजकुमार के जन्मोत्सव प्रसङ्गमें यह बात लिखने से रह गई कि उस समय राज्यकी ओर से एक विशिष्ट दरबारका आयोजन राजमहलमें किया गया था। इस दर्बार में महाराज-संस्कृत-कालेजके अध्यक्षको भी निमन्त्रण मिला तथा दरबार की परिगणित कुर्सियों में एक कुर्सी मुझे प्राप्त हुई। यह कालेज के इति-हासमें प्रथम घटना थी, इससे पूर्व कभी भी राजदर्वारमें कालेज के अध्यक्षको आमन्त्रित नहीं किया गया था। उस समय राजाओं के शासन कालमें दरबारमें कुर्सी प्राप्त कर लेना बड़ा महत्वशाली कार्य माना जाता था। सौभाग्यवश बिना किसी प्रयासके ही यह सम्मान हमको सुलभ हो गया। पृथक्-पृथक् विषयों पर नगरमें होने वाले मेरे व्याख्यानोंको सुनते रहनेके कारण सामन्तवर्ग तथा मन्त्रि-वर्ग विशेष श्रद्धा रखने लगे थे, यह ही इसमें कारण था।

समुद्र में दुर्घटना

घरमें इस समय एक संकट उपस्थित हो गया। अभी दो वर्ष पूर्व जिस लड़की का विवाह किया था, वह इस समय जयपुर में ही थी, वह बीमार होगई, आरंभ में इसे हिस्टीरिया के फिट्स आते थे, फिर इसे अग्निमान्द्य होगया और इसने सबकुछ खाना पीना छोड़ दिया, यह स्थिति एक वर्ष तक चलती रही। इसकी चिकित्सा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरंभ से अन्त तक श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी वैद्य ही करते रहे। मध्य में लखनऊ से हमारे परम मित्र श्री शालग्राम जी वैद्य भी इसे देखने को जयपुर आये, और मोती घोटकर, उसके अनुपान से औषध देने लगे। १५—२० दिन वे मेरे घर पर ही रहे। उनकी औषध से यहाँ तक तो उन्नति हुई कि लड़की रोटी की ऊपर की पपड़ी—२—४ ग्रास लेने लगी, किन्तु यह क्रम उनके लखनऊ लौट जाने पर स्थायी नहीं रह पाया, कुछ दिन ही चल सका, फिर पूर्ववत् स्थिति हो गयी। श्री शालग्राम जी ने लिखा कि अब आगे ऐसे मरीज का इलाज लखनऊ लाकर रखने पर ही हो सकता है। लखनऊ ले जाकर रखने की व्यवस्था, साथ में कौन रहे इस असुविधा के कारण हम कर नहीं पाये, और उपचार श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी का ही चलता रहा।

वसन्त के अनन्तर ग्रीष्मारंभ में ही वम्बई में बड़े मन्दिर के आचार्य गोस्वामी श्री गोकुलनाथ जी महाराज ने धार्मिक सम्मेलन का एक वृहद् आयोजन माधववाग में किया, उसमें संमिलित होने हम बम्बई चले गये। देश के विद्वानों की बड़ी संख्या में उपस्थिति थी। काशी से श्री लक्ष्मण शास्त्री द्रविड़ आदि भी संमिलित हुए थे। सम्मेलन के कार्यक्रम के बाद भी कुछ दिन वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के प्रचारार्थ वहाँ रुक जाना पड़ा—क्योंकि ग्रीष्मावकाश आरंभ हो जानेसे हमारे पास समय था। प्रचार कार्य सन्तोष जनक हुआ, अपील करने पर अच्छी मात्रा में संघ को द्रव्य लाभ हुआ। वम्बई में ही यह विचार आया कि पिताजी अन्य सब तीर्थ व धामोंकी यात्रा कर चुके हैं किन्तु द्वारिका यात्रा उनकी नहीं हो पायी है—अतः इस समय यह काम पूर्ण कर दिया जाय। वम्बई से ही पिताजी को विस्तृत पत्र लिखा कि आप जिस-जिस को आवश्यक समझें, साथ लेकर, सिद्धपुर गुजरात में आजाइये, मैं वहाँ मिल जाऊँगा और हमलोग द्वारिका चले चलेंगे। तदनुसार ये लोग सिद्धपुर एक सप्ताह के बाद आगए। पिताजी के साथ मेरे छोटे साले श्री छोटेलाल जी, मेरा बड़ा पुत्र, उससे बड़ी वह वीमार लड़की भी थी क्योंकि वैद्यजी ने परामर्श दिया कि यात्रा में स्थान-स्थान के जलवायु परिवर्तन से इसको स्वास्थ्य लाभ होगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतः ले जाना चाहिये, अतः वह भी आयी, उसकी देखभाल के लिए एक ब्राह्मणी भी साथ आई। मेरे पुत्र से छोटी दो कन्याएँ अभी अविवाहित और थीं, उनमें से सबसे छोटी मालती तो घर पर ही माता के पास रही, उससे बड़ी शान्तिकुमारी जिसकी आयु करीब आठ वर्ष थी, वह भी साथ आगई। यों सिद्धपुर में द्वारिका यात्रा के लिये अनेक सदस्य हम एकत्रित होगए तो विचार हुआ कि सिद्धपुर को मातृगया कहा है, अतः माताका श्राद्ध यहाँ करके ही चलना चाहिये। अन्वेषण करनेपर एक दक्षिणी विद्वान् कर्मकाण्डी मिल गए और उन्होंने वह श्राद्ध कार्य सन्तोष पूर्वक पूर्ण करा दिया। यहीं पर हमारे मित्र महामहोपाध्याय श्री हाथीभाई शास्त्री का जामनगर से प्रेषित पत्र मिला। द्वारिका यात्राका संकेत हम बम्बई के संमेलन में इनको कर चुके थे। इन्होंने लिखा कि इस यात्रा में जामनगराधिपति से भेंट अवश्य होनी चाहिए, वे इस समय सुदामापुरी (पोर बंदर) में हैं। आप भी वहीं आ जाइये, द्वारिका यात्रा का क्रम भी उन्होंने यह बताया कि पहिले सुदामापुरी जाकर—तब द्वारिका जाना चाहिए। अतः उनके आमन्त्रण को स्वीकार कर तार द्वारा सुदामापुरी पहुँचने का संकेत कर हम सब लोग सिद्धपुर से सुदामापुरी आ गये। स्टेशन पर ही श्री शास्त्री जी राजकीय वाहनों सहित मिल गये। राजकीय अतिथिशाला में हम लोग ठहराये गये। सब प्रबन्ध राज्यकी ओरसे सुव्यवस्थित था। दूसरे दिन सायंकाल का समय महाराज से मिलने का पंडित जी ने बताया। उस दिन हमने स्थानीय मन्दिरों के दर्शन कर सुदामापुरी की यात्रा का विधान पूर्ण किया, किन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल ही यह विचार हुआ कि यहाँ समुद्र है, अतः समुद्र स्नान भी करना चाहिये। अषाढ़ कृष्ण चतुर्दशी का दिन था। बड़ा भयंकर यह दिन सिद्ध हुआ, भीषण दुर्घटना हमारे साथ हो गयी, प्रातः ९ बजे के करीब हम समुद्र-स्नानार्थ पैदल ही चल पड़े क्योंकि सामने थोड़ी दूर पर ही समुद्र दिखाई दे रहा था। पिताजी और रोगिणी लड़की तो गैस्ट हाउस में ही रहे, बाकी सब चल पड़े। आरंभ में तो बालिका शान्तिकुमारीने भी समुद्र स्नान केलिये निषेध ही किया, किन्तु फिर सबको जाते देखकर उसे भी उत्साह हुआ और हमलोगों के स्नानार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चल पड़ने के बाद अपने वस्त्र लेकर वह भी पीछेसे दौड़ती हुई आगई, मानो भावी उसे बुला रही थी। समुद्र तट पर पहुँच कर एक जगह जहाँ बड़े बड़े शिलाखंड पड़े थे और एक तरफ एक टूटेहुए मकान के कुछ भग्नावशेष थे, वहीं हम लोगोंने स्नान करने का विचार कर एक शिलाखंड पर अपने वस्त्रादि रखे, अभी अपने शरीर से वस्त्र खोलभी नहीं पाये थे कि समुद्र से पानीकी एक वहुत वड़ी लहर आयी और शिला पर रखेहुए हमारे सब वस्त्रादि समेट लेगई, साथ ही दूसरी लहर आई-उसमें वे सब वस्त्रादि वापस आगये केवल समुद्र में चढ़ाने को जो श्रीफल और उसपर बँधा हुआ यज्ञोपवीत हम लाये थे—वह वापस नहीं आया तो हमको बड़ा कुतूहल हुआ कि समुद्र कोई चीज अपने पास रखता नहीं है, लेकिन वास्तव में यह समुद्र द्वारा आनेवाले खतरे का संकेत था जिसे हम समझ न सके। उक्त विचारों में कुछ क्षण ही वीते होंगे कि एक प्रवल लहर फिर आयी और उसके धक्केसे हमलोग गिर गये, बालक मेरे पास ही खड़ा था वह भी गिर गया, अभी हम सँभल भी नहीं पाये थे कि फिर वड़ी प्रवल जल राशि हम लोगोंके ऊपर छागई, यह लहर कई मंजिल ऊँची आई थी, इसके अनन्तर कुछ शान्त सा हुआ, हम गिर कर उठे, घबराकर हमने बालक को देखा वह भी सँभल रहा था, पीछे दृष्टि डालने पर, वालिका और परिचारिका ब्राह्मणी नहीं दिखायी पड़ी। हम समझे लहरोंके उपद्रव से डरकर वे और पीछे चली गयी होंगी किन्तु सामने समुद्र की तरफ देखा तो वृहद् जलराशि में दोनों पास-पास डुवकी लगा रही थीं। हम बहुत अधिक आकुल हो गये, लड़का दौड़कर चट्टान पर चढ़ गया और उन दोनोंकी तरफ वढ़ने का प्रयत्न करने लगा कि फिर एक बड़ी लहर आयी जिसने ब्राह्मणी और लड़के को तो किनारे ला पटका और वालिका को अपने अन्दर समेट लिया। सामने अनन्त जलराशि में कहीं भी उसका दर्शन नहीं होरहा था। सड़क पर से अनेक तांगेवाले व अन्य जन दौड़े आए और उन लोगों ने व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ते हुए हम लोगोंको पकड़ लिया और समझाने लगे कि दुःसाहस करने पर आप सव भी विपत्तिमें पड़ जायँगे। किन्तु हम वालिका को प्राप्त करने को व्याकुल थे। इतने में कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदमियों की दृष्टि पड़ी और एक दिशामें करीब सौ गज दौड़ कर 'वह आगई' कहते हुए वे गए, वहाँ समुद्र की लहर ने बालिका का शरीर ला पटका था। बहुत कुछ जल तो उसके पेटसे वहीं निकाला गया किन्तु जीवनके कोई लक्षण न देखकर, तांगे में डालकर उसे तत्काल राजकीय अतिथिशाला में लेजाया गया और फोन द्वारा तत्काल सिविलसर्जन को बुलाया गया। महाराज ने स्पेशल आर्डर डाक्टर को दिया कि पूर्ण अवधान से उपचार किया जाय। किन्तु सब तरह यन्त्र आदिसे परीक्षण करने के पश्चात् डाक्टर ने यही कहा कि पंडित जी मुझे दुःख है, मैं अब कुछ नहीं कर सकता। पानीके अत्यन्त वेगके कारण बालिका का हार्टफेल हो गया है। सुनकर हम सब निराश होगये और शवका दाह संस्कार करने को समुद्र तटपर पुनः लेजाने की तैयारी करने लगे। मृत्युके समाचार सुनने के अनन्तर ही पुकार करते हुए पिताजी तो बराबर हरे राम, हरे कृष्ण का उच्चारण श्मशान भूमि तक करते ही रहे। उनको बहुत कष्ट हुआ क्योंकि यह बालिका उनके पास बहुत रहती थी, सैकड़ों व्रजभाषाके छन्द उनने इसे सिखाकर कण्ठ करा दिये थे—जिनको प्रतिदिन यह बोलती रहती थी। इसपर उनका शिष्य-वत् प्रेम था। जामनगरके महाराज ने इस समय बड़ी उदारता का व्यवहार किया, उनने शवदाहमें उतावली करनेसे हमको रोका और राजकीय बैंड तथा लवाजमा भेजा, जिसमें हाथी, घोड़े, ऊँट, तथा सिपाहियोंके अतिरिक्त कुछ प्रतिष्ठित मन्त्रिवर्ग भी सम्मिलित हुए थे। स्वयं पंडित जी व उनके पुत्र तो थे ही। इस दुर्घटनासे सबही बड़े दुःखित थे, करीब तीन घन्टेमें यह दाह-संस्कार करके अपरान्ह-कालमें हमलोग लौट कर आये। उस दिन लगातार वर्षा भी होती रही, किन्तु चिताग्नि में वह विशेष बाधक नहीं हुई। दाहके अनन्तर भस्मावशेष सब समुद्रमें ही प्रवाहित कर दिये गये। अब तीन दिन तक वहीं रहना आवश्यक हो गया। इस दुर्घटनाके समाचारसे जयपुरमें कोई अन्य घटना न होजाय, क्योंकि छोटी बालिका सहित बालकोंकी माता अकेली घर पर थी यह सोचकर छोटेलाल जी को हमने यहीं से जयपुर लौटा दिया और हम लोगोंने कठिनतासे वह तीन दिनका समय वहाँ बिताया। चित्त खिन्न हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानेसे महाराज से भेंट करने का प्रोग्राम भी स्थगित कर दिया। यद्यपि श्रीशास्त्री जी व उनके पुत्र प्रायः हर समय हमारे पास बने ही रहे किन्तु हम लोगों का मन फिर वहाँ नहीं लगा।

तीन दिनके अनन्तर उस कन्यारत्न को खोकर हम वहाँसे वेरावल प्रभास तीर्थमें आगये। वर्षा वहुत होते रहनेके कारण यहाँ दो-तीन दिन धर्मशालामें ही पड़ा रहना पड़ा। रात दिन वर्षा होती रही। समुद्रका किनारा होनेसे वायु भी प्रचण्ड चल रहा था। समुद्रकी रेतीके कण उड़कर शरीर पर आघात करते थे, बड़ी चुभन होती थी, बड़े कष्टसे यह समय व्यतीत हुआ। किसी तरह वर्षा शान्त होनेपर समुद्र तट पर श्राद्धादि कार्य किये गए। स्थानीय एक प्रतिष्ठित विद्वान् को श्री हाथीभाई शास्त्रीजी ने सूचना भेज दी थी। इनने यहाँ हमारी बड़ी सहायता की। यहाँसे निवृत्त होकर द्वारिकापुरी पहुँचे। यद्यपि पिताजी का कथन था कि अब द्वारिकापुरी न जाकर घर लौट चलना चाहिये किन्तु इतने समीप आकर बिना दर्शन किये वापस लौट जाना उचित नहीं जान पड़ा, अतः हम द्वारिका चले ही गये। वहाँ समुद्र तथा गोमती के संगममें स्नान कर द्वारिकाधीश का दर्शन किया, फिर नौका से वेट द्वारिका गये। वेट द्वारिका का वैभव द्वारिकासे विशिष्ट था। यहाँ भगवान् कृष्ण की आठ पटरानियों के अलग-अलग महल बने हैं। नियत दिनों में क्रमशः अलग-अलग महलों में भगवान्का अर्चन विशेष होता है। अर्चन-व्यवस्था और प्रसादकी व्यवस्था यहाँकी वहुत उत्तम थी। वेट द्वारिका में महन्त जी ने एक प्रवचन भी हमारा कराया। यहाँ समुद्र तटपर एक हनुमान जी का अतिप्राचीन पीठ है। बड़ी चमत्कृत मूर्ति है। यहाँ एक दिन और एक रात्रि निवास कर हम लोग नौका से पुनः द्वारिका आगये और वहाँ भी दर्शनादिसे निवृत्त होकर जयपुर लौट आये। इस तरह यह यात्रा पूर्ण हुई। रोगिणी लड़की पर इस यात्राका कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा, वल्कि सुदामापुरी की दुर्घटनासे चित्तमें खेद अधिक हो जाने से हालत कुछ और बिगड़ गयी। इसकी चिकित्सा तो आते ही तत्परतासे आरंभ कर ही दी, चिकित्सक स्वामी लक्ष्मीरामजी ही रहे। इसके लिए एक देवानुष्ठान भी उस समय करवाया। भृगुसंहिता से इस लड़की के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्म पत्रका विवरण लिखवाया था, उसमें लड़की की तत्कालिक आयुमें लम्बे अर्से तक रोगी रहनेका स्पष्ट उल्लेख था और उसका परिहार करने के लिए एक बड़े मन्त्रका सवा लाख जप तथा हवन आदिके अनुष्ठान का उल्लेख था। देवता की एक छोटी स्वर्ण प्रतिमा बनाकर प्राण प्रतिष्ठा कर पूजन करना और अनुष्ठान समाप्ति पर ब्राह्मणको दान कर देना, यह लेख भी था। यह अनुष्ठान घरपर ही वैदिक ब्राह्मणों द्वारा कराया गया, २१ दिनका यह प्रयोग था। फल इसका उत्तम हुआ, रोगिणी न केवल अन्न ग्रहण करने लगी, अपितु पूर्णाहुतिके दिन उसने स्वयं बहुत देर तक अग्निके सान्निध्य में बैठकर प्रसन्नता से अनुष्ठान पूर्तिमें भाग लिया और आगे क्रमशः स्वास्थ्य में सुधार होता गया। इस तरह यह एक बहुत भारी चिन्ता का भार हटनेसे प्रसन्नता हुई।

पुत्र का विवाह

यात्रामें बहुत व्यय हो जानेसे और उक्त अनुष्ठानादि में भी अधिक व्यय हो जानेसे, द्रव्य की चिन्ता सामने उपस्थित थी। पिछले ऋण का भुगतान अभी पूर्णतया हुआ नहीं था कि आगामी सन् १९३५ के ग्रीष्मकालमें मेरे ज्येष्ठ पुत्रका विवाह कर देने के लिए कन्यापक्ष की ओरसे पत्र आया। मेरा पुत्र देवीदत्त कालेज में उपाध्याय श्रेणीमें अध्ययन कर रहा था। मेरे लाहौर रहते समय ही बहुत पूर्व इस की बाल्यावस्था में ही पिताजी ने आगरा जिलेमें बाह तहसीलके पास कमतरी ग्रामके एक चतुर्वेदी परिवारकी कन्या के साथ यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया था। कन्याके नाना जयपुर में ही रहते थे और राज्याधिकारियों में महकमा पुण्यके प्रधान पदपर कार्य करते थे। इनके विशेष आग्रहके कारण ही पिताजी ने इसे स्वीकार कर लिया था। अब कन्यापक्ष का विवाहार्थ पत्र आने पर पिताजीने साग्रह यह इच्छा प्रकट की कि यह विवाह हमारे सामने ही हो जाना चाहिए अतः आगामी ग्रीष्म ऋतु का विवाहमुहूर्त स्वीकार कर लिया जाय। आगे चलकर पिताजीका यह भविष्य भास होना सत्य सिद्ध हुआ क्योंकि आगामी दीपावली पर उनका देहान्त हो गया। मेरी इस विषय में अनुमति नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी क्योंकि लड़के की शिक्षा अभी पूरी तो क्या आधी भी नहीं हो पायी थी। शिक्षामें व्याघात हो जानेका डर था। अतः मैंने इसका विरोध किया किन्तु पिता जी का अधिक आग्रह देखकर स्वीकार करना पड़ा और आगामी ज्येष्ठ मासमें गंगादशमीका मुहूर्त विवाहार्थ स्थिर होगया। अब प्रश्न द्रव्यका उपस्थित हुआ। हमारे जीवनमें प्रथम वार पुत्रका विवाह होने जा रहा था, अतः अपने मित्रों तथा बन्धुजनों को इसमें अवश्य सम्मिलित करने का संकल्प था। उनकी संख्या बहुत थी और हमारी जातीय सभा ने यह नियम बना दिया था कि बरातियोंकी संख्या तीस से अधिक नहीं होनी चाहिये। इतनी थोड़ी संख्या से मेरा काम चलना अति कठिन था—अतः तत्कालीन जातीय-सभा के सभापति महोदयसे इस विषय में मेरे लिये कुछ उदारता बरतनेके लिये प्रार्थना की तो उनने सौ आदमी बरातमें ले जाने की आज्ञा दे दी और हमारे परम मित्र वैद्यवर श्री स्वामी लक्ष्मीरामजी ने विवाहार्थ ऋण रूपमें द्रव्य देकर अर्थ चिन्ता को मिटा दिया। मकान बहुत जीर्ण होने लगा था अतः उसकी मरम्मत तथा कुछ नवीन निर्माण भी किया गया। शीत और वसन्त वीत कर ग्रीष्मकाल आगया तब मकानके शोधनका काम पूरा कर दिया और विवाह प्रकरण आरंभ होगया। पुत्रियाँ तथा सम्बन्धिजन एक मास पूर्वसे ही आने लगे, घर अतिथियोंसे पूर्ण होगया। इस वर्ष वैशाख मासमें भगवतीकी कृपासे मेरे दूसरे पुत्र शिवदत्त का जन्म हुआ, जो संप्रति व्याकरण साहित्याचार्य, एम० ए० आदि उपाधि प्राप्त करनेके अनन्तर हिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी में साहित्यके प्राध्यापक पद पर काम कर रहा है। इसके जन्मसे घरमें आनन्दमय उत्साह बढ़ गया। बारातके लिए जयपुरसे आगरा पर्यन्त एक तीसरी श्रेणीकी बोगी रिजर्व करा ली गई। साग्रह प्रार्थना करने पर हमारी मित्र मंडलीके प्रोफेसर, जो कालेज में काम कर रहे थे, वे और जो अन्य संस्थाओं में काम कर रहे थे वे भी बरातमें सम्मिलित हुए। बाहरसे श्रीशालग्राम जी शास्त्री (लखनऊ), श्रीराधेश्यामजी कथावाचक (बरेली) श्रीवंशीधर जी ज्वालापुर (हरिद्वार) आदि मित्र आये। १०-१२ शिष्य भी बाहर से आये। लीलाधर शास्त्री, राधेश शास्त्री, राघवानन्द शास्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि शिष्यों ने बड़ा परिश्रम इस विवाह में किया। अन्य हमारे परिवार के स्थानीय और बाहरके नजदीकी सम्बन्धिज़न, कालेजका सेवक वर्ग आदि मिलाकर सवा सौ करीव बराती हो गये। आगरा पहुँचने पर वहाँ मित्रवर श्री ब्रजनाथ जी गोस्वामी ने बरातके ठहरने तथा भोजनादिका प्रवन्ध हमारी पूर्व सूचना प्राप्त करके कर रखा था। स्नान भोजनादिसे निवृत्त होकर बसों द्वारा हम बाह तहसीलके इस ग्राममें पहुँचे। ग्राम यद्यपि छोटा है किन्तु चतुर्वेदियोंके परिवार ही उससमय ग्राममें अधिक थे और उनके सब मकान पक्के और विशाल बने हुए थे, सब सम्पन्न जमींदार थे। शिक्षाका भी ग्राममें अच्छा प्रचार था, केवल इस ग्राममें ही उस समय तीस ग्रेजुएट बताये जाते थे। ग्रामके समीप ही थोड़ी दूर पर यमुना बहती है। श्रीझाऊलाल जी डूंगरमल जी के परिवारमें हमलोग विवाहार्थ आये थे। कन्याके पिता का नाम श्रीजयकृष्ण जी चतुर्वेदी था, वे छ मास पूर्व दिवंगत हो चुके थे। कन्याके पितामह तथा भाई श्री अनन्तरामजी थे। इनके परिवारमें इस समय तीन कन्याओं का विवाह एक साथ हो रहा था, अन्य दो बरातें मैनपुरी तथा इटावा से आयी थीं। उन दोनोंमें मिलाकर अनुमानतः १५० व्यक्ति थे। कन्यापक्ष पर विशेष भार न पड़े इस विचारसे पंडितमंडलीका भोजनादि प्रवन्ध स्वतन्त्र रूपसे जनवासे में ही कर लिया गया, वहीं भट्टी चालू कराकर एक हलवाई द्वारा भोज्य-पदार्थ बनवा लिये जाते थे। कन्या पक्षके फल, मेवा, चाय, दुग्ध आदि सम्मान रूपसे स्वीकार किये गये, केवल छतपर जातीय भोजमें हमारे साथ के जातीय बन्धु ही सम्मिलित होते थे। उस समय तीन दिनमें विवाहका कार्यक्रम पूर्ण किया जाने लगा था, इससे पूर्व पाँच दिन लगते थे। किन्तु जातीय-सभा द्वारा नियम बना देनेसे अव तीन दिनमें किया जाता था। ये तीन दिन यमुना आदिके विहार द्वारा पंडितमंडली के आनन्दसे व्यतीत हुए। एक दिन कविसम्मेलन रूपमें सभाका आयोजन भी हुआ। तीनों बरातोंके तथा स्थानीय सारे चतुर्वेदी बन्धुगण उसमें सम्मिलित हुए। सरस कविता पाठ, प्रवचन आदि से आयोजन उत्साह पूर्ण रहा। इसमें कीर्तनकलानिधि श्रीराधेश्याम जी कथावाचकका अभिनय सहित गायन हुआ—जिसे सब लोगोंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत पसन्द किया। उस ग्रामके इतिहासमें ऐसे उत्सव में इस तरह की सभाके आयोजनका यह प्रथम अवसर है, ऐसा ग्रामके वृद्धजन कह रहे थे। हमारी बरात के नवयुवकोंने दूसरी बारातके युवकोंके तथा स्थानीय युवकोंके साथ वालीवालके मैच खेले। मित्र मंडलीका समय पूर्ण विनोद तथा परिहास से व्यतीत हुआ, इस तरह तीन दिन वाद विवाहके सब कार्योंसे निवृत्त होकर वधूको साथ लेकर हमलोग मोटर द्वारा आगरा आ गये। वहाँ दिन भर विश्राम तथा भोजनादि करके रात्रिकी गाड़ीसे रिजर्व बोगीमें सुखपूर्वक बैठकर जयपुर लौट आये। यहाँ आनेके वाद वधूके आगमन प्रयुक्त विशेष भोजका आयोजन किया गया। समागत अतिथि तथा स्थानीय बन्धुओं मिलाकर भोजमें सात सौ के करीब व्यक्ति सम्मिलित हुए। यों यह विवाह प्रकरण सानन्द सम्पन्न हुआ। पहले वालकका जन्म और कुछ दिन वाद ही नव-वधूके आगमनसे घरका वातावरण विशेष आमोद युक्त रहने लगा। घरके सम्पूर्ण वातावरण पर पूज्य पिताजीका बड़ा मधुर शासन रहता था। मेरी सन्तानोंमें छोटी-वड़ी सब सन्तति अपने पितामहमें पूर्ण अनुरक्त रहती थी। छोटोंकी छोटी बातोंका तथा वड़ोंकी महत्वपूर्ण बातोंका निर्णय वे स्वयं बड़े मधुर ढंगसे स्नेहपूर्वक समझाकर कर दिया करते थे। घरके किसी सदस्यकी कोई बात उनके लिए अज्ञेय नहीं रहती थी। नव-वधू ने इनका चरणोदक लेकर भोजन करनेका एक वर्षका व्रत लिया तो ये तत्परतासे शीघ्र स्नान करके तैयार रहने लगे कि वधू अधिक काल तक क्षुधित न रहे, किन्तु उसका वह वर्ष भरका व्रत पूर्ण न हो सका, दो-तीन मासके अनन्तर दीपावली की रात्रिको पिताजी ने शरीर छोड़ दिया। बीमारीका कष्ट उनको ३-४ दिन हुआ। उनकी इच्छापर अखंड रामध्वनि चार दिन तक होती रही। घरके सदस्य, तथा शिष्यगण ने यथावसर योग देतेहुए इसे चालू रखा। भगवती कमला (महालक्ष्मी) की उन्हें दीक्षा थी और खास महालक्ष्मीके पर्वके ही दिन उनका प्रयाण देखकर कम आश्चर्य नहीं हुआ। महालक्ष्मीका पूजन होगया यह सुनकर ६ बजे रातमें उनने रुग्ण शैय्या पर लेटे-लेटे ही प्रणाम किया। तदनन्तर हालत कुछ बिगड़ने लगी, घरमें गौ वर्तमान थी—अतः उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पास लाकर गोपुच्छ उनके हाथमें देकर हमने संकल्प बोल दिया, "करिष्ये" कहनेपर उनने पूँछ को छोड़ दिया। तत्काल गोबर का लेपन कर, इनको पृथ्वी पर लेकर मैंने अपने अङ्कमें थाम लिया। गंगाजल तथा तुलसीदल लेनेके अनन्तर इनने प्राण त्याग कर किया। उस ही रातको मुझे अनुभव हुआ कि मैं पितृविहीन होगया। मेरी आयु इस समय प्राय: ५० वर्ष की थी। चिन्तित होनेका कोई कारण न था। किन्तु घरकी सारी समस्या चाहे वह वाहर की हो चाहे घरेलू वे ही पूर्ण किया करते थे। मेरा इन सब बातोंसे कोई सम्बन्ध ही नहीं था। उनके न रहनेसे अब यह सब भार मेरे सिर पर आ पड़ा। उनके और्ध्वदेहिक श्राद्ध कर्मके लिए मथुराके सुप्रसिद्ध कर्मकाण्डी विद्वान् हमारे मित्र श्री अमृतरामजी पंड्याको सादर आमन्त्रितकर जयपुर बुला लिया। इन्होंने पूर्ण शास्त्रीय विधि से नारायणवलि वृषोत्सर्ग आदि संपूर्ण अङ्गों सहित श्राद्ध कर्म कराया। शास्त्रीय विधियाँ तथा मन्त्रोंकी इनकी स्मृति तथा कौशल देखकर यहाँ की पंडितमंडल भी जो श्राद्धकाल में उपस्थित था—अत्यन्त चकित हुआ। वृषोत्सर्गकी घटनाने तो सबको स्तब्ध ही कर दिया। वृषोत्सर्गके लिए जो बैल लाया गया था, वह ग्रामसे नया-नया नगरमें आया था और खूब पुष्ट एवं बलिष्ठ था। नगरके वातावरणसे चौंकनेके कारण यह अत्यन्त उद्धत हो रहा था। चार-पाँच आदमियों ने मोटे रस्सोंसे इसे वाँध कर कब्जे में कर रखा था किन्तु इतना उद्धत यह पशु भी श्री पंड्याजी महाराज के मंत्रोंसे प्रोक्षण करनेपर एकदम शान्त खड़ा हो गया। उस समय इसके सारे बन्धन खोल दिये गए थे। दशों दिक्पालोंके निमित्त त्यागके मन्त्रोच्चारण में अनुमानतः बीस मिनटका समय लगा, तब तक यह न केवल शान्त खड़ा रहा प्रत्युत जिस-जिस दिशाके दिक्पालको संबोधन किया गया इसने अपना मुख भी उस ही दिशाकी ओर कर लिया। यह दृश्य देखकर पंड्याजी की आस्थाकी उपस्थित पंडित मंडली ने भूरि-भूरि प्रशंसाकी।

ओझाजीका अभिनन्दन

पूज्य पिताजीका श्राद्ध कार्य संपन्न कर कालेजके कार्योंमें मैं प्रवृत्त हुआ। इस वर्ष पूज्य गुरुवर विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदन जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओझा ने सत्तरवें वर्षमें प्रवेश किया था। इस अवसर पर हम सव उनके शिष्योंने श्रीओझाजी महाराजका जयन्ती महोत्सव मनानेका विचार किया। जयपुर कालेजमें आनेके कुछ समय बाद ही मेरे संपर्क में आये पंडित श्रीपुरुषोत्तम जी चतुर्वेदी साहित्याचार्य। ये आरंभ में मेयो कालेज अजमेर—जो राजकुमारोंकी शिक्षण संस्था थी, उसमें धर्म-शिक्षक के पद पर काम करते रहे वहाँ काशिराज भी अध्ययन करते थे, वे इनसे बड़े प्रभावित हुए और कालेजका अपना अध्ययन सम्पूर्ण होजाने के अनन्तर ये उक्त पंडितजी को राजपंडितके पद पर अपने साथ काशी ले गये। काशीमें इनने वहुत वर्ष काम किया, किन्तु दुर्दैव वश ५५ वर्ष की आयु में काशी में ही इनका देहावसान होगया। इनने साहित्य विषय की अनेक पुस्तकें हिन्दी तथा संस्कृतमें लिखी हैं। साहित्य तथा व्याकरणका ज्ञान इनका अत्यन्त प्रौढ़ था। मेरे कालेजमें आने के समय ये 'हिन्दी रसगंगाधर' लिख रहे थे। रसगंधरके विशेष शास्त्रार्थ स्थलों पर विचार करनेके लिए ये कुछ समय जयपुर रहे थे और प्रतिदिन सायंकाल के समय मेरे साथ रसगंगाधर पर विचार-विमर्श करते रहते थे। उनही दिनों ये मेरे साथ श्रीओझाजी के घर भी जाने लगे। पूर्व लिखा जा चुका है कि जयपुर निवासके समय मैं कभी भी विद्यावाचस्पतिजी के घर अध्ययनार्थ जानेमें प्रमाद नहीं करता था। जिस दिन उनको कोई राजकीय आवश्यक कार्य होता उस दिन न जाता, वाकी दिनोंमें प्रतिदिन अवश्य ज़ाया करता था। पंडित पुरुषोत्तमजी चतुर्वेदीसे परिचय प्राप्त कर और इनको परम व्युत्पन्न देखकर श्रीओझाजी महाराज बड़े प्रसन्न हुए और कहा कि ये हमारे पास रहने योग्य विद्वान् हैं। इस प्रकार ये भी ओझा जी के सान्निध्यमें आकर उनके द्वारा अन्वेषित वैदिक-विज्ञानका अनुशीलन करने लगे। आगे जव-जव अवकाश कालमें ये जयपुर आते तो ओझा जी के घर नियमसे अवश्य जाते थे। श्रीओझाजी के जयन्ती महोत्सव पर उनके अभिनन्दन आयोजनमें श्रीपुरुषोत्तम जी ने वहुत योग दिया। ये वैष्णव वाल्लभसंप्रदाय में दीक्षित थे। वाल्लभ संप्रदायके आचार्यों में इनका अच्छा सम्मान था, इनके द्वारा उद्योग करके जयन्तीके अवसर पर वम्वई के वड़े मन्दिरके आचार्य सुप्रसिद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्वान् गोस्वामी श्रीगोकुलनाथ जी महाराज को इस जयन्ती उत्सवका सभापति बनाकर सादर आमन्त्रित किया गया। जयपुर के रामनिवास बागमें म्यूजियम के विशाल सुन्दर भवनमें यह अभिनन्दन समारोह मनाया गया। संस्कृतरत्नाकर मासिक पत्र का, जिसे हम लोगोंने अबतक बराबर चला रखा था और अब संस्कृत-साहित्य-सम्मेलनका मुखपत्र माना जाता था, ओझाजीके जयन्ती अवसर पर 'वेदाङ्क' नामका एक विशेषाङ्क पुस्तकाकारमें सजधजके साथ श्रीओझाजी को भेंट किया गया। वेदाङ्कमें वेद विषय पर भारतीय सामयिक सुप्रसिद्ध विद्वानों द्वारा लिखे गये महत्वपूर्ण निबन्धोंका उत्तम संग्रह हुआ है। वैदिक विज्ञानकी मुख्य आधारभूत खगोल संस्थाका सरलतासे ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अनेक रंगीन ब्लाक चित्र सूर्य-संस्थाके और खगोल संस्थाके इसमें छापे गये हैं। यद्यपि इनके निर्माणमें व्यय और परिश्रम अधिक हुआ, किन्तु एक अच्छा उपादेय ग्रन्थ हम संस्कृत जगत् को भेंट कर सके इससे पूर्ण सन्तोष हुआ। स्थानीय विद्वानों तथा सम्मानित राज्यकर्मचारी और सामन्त गणके अतिरिक्त भारतके अन्य सुप्रसिद्ध अनेक विद्वान् भी इस उत्सवमें सम्मिलित हुए। दो दिन खूब समारोहसे अभिनन्दनोत्सव मनाया गया। विक्रम संवत् १९९३ तदनुसार सन् १९३६ के दिसम्बर मासमें यह उत्सव सम्पन्न हुआ।

वैद्यजीका अभिनन्दन

आगामी वर्ष सत्रके आरंभमें ही मित्रवर श्रीस्वामी लक्ष्मीरामजी वैद्यने कालेजसे अवकाश ग्रहण कर लिया। इनका अभिनन्दन भी बड़े समारोहके साथ कालेज भवनमें ही किया गया। इनके अनेक सुयोग्य स्थानीय तथा जयपुरसे बाहरके शिष्योंने इस अभिनन्दनोत्सवमें बड़े उत्साहसे भाग लिया। संस्कृत रत्नाकर का "आयुर्वेदाङ्क" प्रकाशित कर इनको भेंट किया गया। इन शिष्योंमें जयपुर नगरके प्रसिद्धि प्राप्त श्रीनन्दकिशोर जी भिषगाचार्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये व्यवहार के अच्छे ज्ञाता एक विद्वान् पुरुष थे। नगरके श्रेष्ठि समाजमें, राजकीय सामन्त कुलोंमें तथा अन्य नागरिक सम्भ्रान्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्गमें श्रीनन्दकिशोर जी वैद्यकी समान रूपसे गति थी। अत्यन्त लोकप्रिय होनेके कारण समाजमें इनका विशेष आदर था अतः उत्सवादि सामाजिक आयोजनोंमें इनके द्वारा बड़ी सहायता हमको मिला करती थी। इनने आरम्भमें कुछ समय मेरे पास दर्शन-शास्त्रका अध्ययन किया था, अतः गुरुभावसे ही मेरे साथ व्यवहार करते रहे। सब तरह सुयोग्य होते हुए भी दुःख है कि इनने आयु विशेष नहीं पायी, मध्यायुमें ही इनका देहान्त होगया। श्रीस्वामी लक्ष्मीरामजी वैद्यके अवकाश ग्रहण के वाद उनके स्थानपर कालेजमें श्रीनन्दकिशोर जी भिषगाचार्यकी ही नियुक्ति हुई थी। मेरे अध्यक्ष कालमें इनने कई वर्ष काम किया। मेरे सामने ही इनकी प्रबल इच्छा थी कि आयुर्वेद विभाग, महाराज संस्कृत कालेजसे हटाकर स्वतन्त्र रूपमें आयुर्वेद कालेजके नामसे चलाया जाय। मैं इस विषयका इसलिए विरोध कर रहा था कि सम्मिलित अवस्थामें आयुर्वेद विभाग की तथा अन्य संस्कृत विभागोंकी समान रूपसे उन्नति हो रही है। पृथक् कर देने पर आरम्भ में दोनों संस्थाओंको हानि पहुँचेगी। आगे चलकर जो कुछ भी हो वह भविष्य पर निर्भर है। प्रवल इच्छा रहते हुए भी मेरे काल तक इनने आयुर्वेद विभागको कालेजसे पृथक् नहीं किया। मेरे अनन्तर यह पृथक् होगया। अब माधवविलासभवन को सुधार कर सुपरिष्कृत रूप दे दिया गया है, और आयुर्वेद कालेज—माधवविलासमें ही चल रहा है।

एक आघात

इस समय घरमें विचित्र दुर्घटना घटी। जिस आशंकासे हम उस समय पुत्रका विवाह नहीं करना चाहते थे वह आशंका सत्य सिद्ध हुई। वड़ा कटु परिणाम उसका हुआ। मेरा पुत्र देवीदत्त अभी उपाध्यायसे उत्तीर्ण होकर शास्त्री कक्षामें दो वर्षसे पढ़ रहा था कि अचानक उसका चित्त अध्ययनसे विरक्त होगया। इसने कालेज जाना ही छोड़ दिया। सारा समझाना-बुझाना व्यर्थ हुआ, इसका अध्ययन क्रम टूट ही गया। इसके जन्मपत्रका फल भी हमने भृगु-संहितासे लिखवाया। उसमें इसकी तात्कालिक आयुमें विद्यामें वाधा होना लिखा था और उसके परिहारके लिए अनुष्ठानका विधान भी लिखा था। तदनुसार एक अनुष्ठान नगरसे बाहर पश्चिम दिशामें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ दूर ढेर ग्राम के हनुमानजी के मन्दिरमें कराया गया। दस दिन तक हम वहीं जाकर रहे। इस मन्दिरका परिवेश (परकोटा) बहुत बड़ा है। आवासके लिए मकान भी काफी बने हैं। ग्रीष्म ऋतुमें अनुष्ठान किया गया था—अतः छत आदि होनेसे रात्रि शयनकी अच्छी सुविधा थी। इस अनुष्ठानमें दस ब्राह्मण मेरे साथ वहीं रहते थे। उनके भोजनादिका प्रबन्ध वहीं किया गया था। इस अनुष्ठान का भी कोई विशेष फल नहीं हुआ। कालेजके नियमित अध्ययनका क्रम लड़केका नहीं ही चल सका। इतना अवश्य हुआ कि स्वेच्छासे कुछ प्राइवेट अध्ययन यह करने लगा। कालेजमें रहते समय इसका क्रम ठीक चल रहा था। अपने विषयके अध्ययनके साथ-साथ छात्र-परिषद्के आयोजनोंमें विशेष भाग लेते रहनेके कारण इसकी व्याख्यान और लेखनशैली धीरे-धीरे बढ़ रही थी। इससे कुछ आशा मेरे मनमें बँध चली थी कि यह कुछ योग्य हो सकेगा। इस घटनासे बहुत मानसिक आघात हुआ, सब आशा नष्ट होगयी। इस घटनासे हमने शिक्षा ग्रहण की और कनिष्ठ पुत्र शिवदत्तका विवाह हमने तब ही किया—जब उसने शिक्षा पूर्ण कर ली।

पांडवविजय

इस ही वर्ष शीतकालमें हमारी जातीय चतुर्वेदी महासभाका विशेष अधिवेशन कलकत्ता में होने जा रहा था। जातिमें इस समय दो दल हो रहे थे, एक सुधारवादी और एक परंपरावादी। दोनों ने अपनी-अपनी पृथक् संस्था बना रखी थी, दोनोंके अलग-अलग मासिक-पत्र निकलते थे। इस समय इस बातका आयोजन किया जा रहा था कि दोनों दलोंमें सामंजस्य होकर विरोध हट जाय। श्री डिप्टी राधेलालजी चतुर्वेदी जो कलकत्तामें एक विशिष्ट व्यवसायी ही नहीं, अंग्रेजी भाषाके प्रतिष्ठित विद्वान् भी हैं, वे तथा जातिके अन्य प्रमुख सदस्य इसमें भाग ले रहे थे। समय पर हम कलकत्ता जाकर इसमें सम्मिलित होगये। साथमें देवीदत्त गया और रानीगंजसे आकर कलकत्तामें भाई आनन्द भी मिलगये। अधिवेशनका कोई विशेष फल तीन दिनके कार्यक्रममें नहीं हुआ। परस्पर विरोधी व्याख्यानों में ही संपूर्ण समय व्यतीत हुआ। कलकत्ता आते समय मनमें यह भी संकल्प

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया था कि सबसे छोटी कन्या मालती, जो अब विवाह योग्य हो गई थी, इसके लिए वरका अन्वेषण करना है। तदनुसार कलकत्तामें ही फलोंकी आढ़तका व्यापार करने वाले, ग्वालियरके पास भदावर स्टेटमें तरसोखर ग्रामके निवासी श्री रामस्वरूप जी (डोरूजी) के पुत्र श्री गिरीशचन्द्र को देखकर हमलोगोंने पसन्द कर लिया और वाग्दानका दस्तूर पूरा कर दिया। तदनन्तर जयपुर लौट आए। कालेजकी नाट्य-संघसमितिने इस वर्ष निर्णय किया कि नाट्य-शालाके रङ्गमञ्चपर एक संस्कृत नाटकका अभिनय और करना चाहिये। तदनुसार हमारी मित्र मंडलीने 'पांडवविजयनाटकम्' नामसे अभिनय तैयार करके उसका रिहर्सल नाट्य-संघ द्वारा कराना आरंभ कर दिया। यह नाटक 'वेणीसंहार' तथा 'बाल-भारत' नाटकोंके प्रधान-प्रधान स्थलोंका सन्निवेश कर बनाया गया था और कुछ अंश हम लोगों ने नवीन कल्पना कर सन्निविष्ट कर दिया था। यह नाटक भी राजकीय नाट्यशालाके मंच पर अभिनीत हुआ। चार दिन यह नाटक खेला गया। आरंभ के दो दिन तो निःशुल्क दिखाया गया, फिर जनता की विशेष अभिरुचि देख कर दो दिन टिकिट लगाकर दिखाया गया। इस नाटककी तैयारीमें उस समय दो सहस्र मुद्राका व्यय हुआ था। नाटककी सफलताका अनुमान इससे ही किया जा सकता है कि संस्कृत भाषाके इस नाटकको टिकिट खरीद कर भी जनताने देखा और उन दो ही दिनोंमें नाटक पर किया गया खर्च टिकिटोंके मूल्य रूपमें प्राप्त हो गया। इस नाटकके अवलोकनार्थ जयपुर नरेश तो नहीं आ सके, किन्तु उस समय प्रधान सचिव पद पर काम करने वाले राजा उपाधिधारी श्री ज्ञाननाथजी को नरेशने अपने प्रतिनिधि रूपमें अभिनय दर्शनार्थ भेजा था। इनने पूरा अभिनय रुचिपूर्वक देखा और अभिनय देखकर ये इतने प्रभावित हुए कि जयपुरके सचिव पदको छोड़कर जब ये इन्दौर राज्यके प्रधान सचिव पद पर गये तो वहाँ बहुत बड़े शिक्षित समुदायके समक्ष इनने उद्गार प्रकट किये कि जयपुर महाराजसंस्कृतकालेजके छात्रोंने जैसा अभिनय किया—वैसा अभिनय हमने कहीं नहीं देखा था। यह अभिनय सन् १९४० में हुआ। इस ही वर्ष जिस कन्याका सम्बन्ध हम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत साहित्य सम्मेलन का गाजियाबाद अधिवेशन—

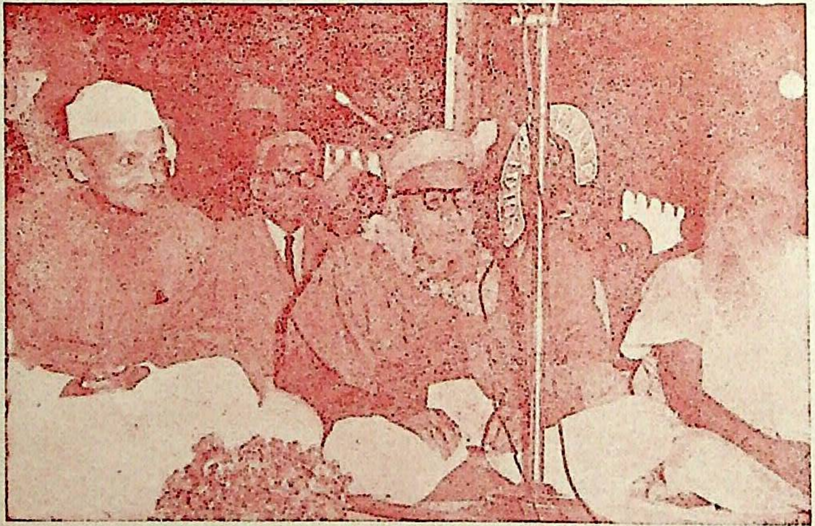

श्री लालबहादुर शास्त्री के लिए अध्यक्षता का प्रस्ताव रखते हुए
श्री गिरिधर शर्मा जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अ० भा० संस्कृत साहित्य सम्मेलन की कार्य समिति—

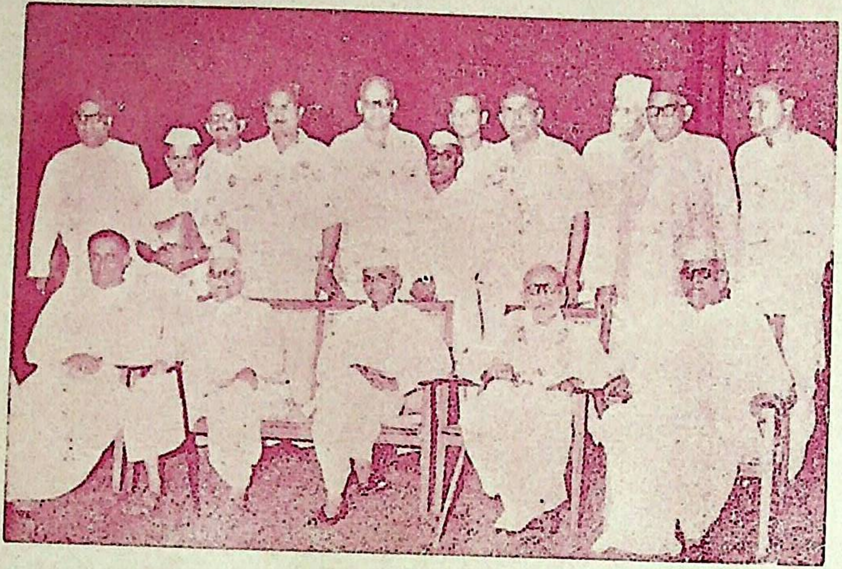

डा० पट्टाभिरामन्, श्री न० वि० गाडगिल, श्री लाल वहादुर शास्त्री,
म० म० श्री गिरिधर शर्मा, श्री हरिहरस्वरूप शर्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलकत्तामें निश्चित कर आये थे, उसका विवाह शीतकालमें वसन्त-पंचमीके मुहूर्त पर कर दिया गया। वरात ग्वालियर राज्यान्तर्गत तरसोखर ग्रामसे आयी थी। यह सम्पूर्ण ग्राम चतुर्वेदियोंका ही है। धन, जन, सदाचार की दृष्टिसे इस ग्रामकी हमारी जातिमें अच्छी प्रतिष्ठा है। ग्वालियरके अन्तर्गत छोटी स्टेट भदावरके ग्राम प्रायः चतुर्वेदियोंके अधिकारमें ही थे, अथवा क्षत्रिय ठाकुरोंके अधिकारमें। इनमें धन, जनके साथ-साथ शिक्षाका उच्च प्रबन्ध 'होलीपुरा' ग्राममें उत्तम था, यह बटेश्वर तीर्थके समीप बाह तहसीलके पास है। अन्य जातीय सदाचारोंकी दृढ़ताकी दृष्टिसे तरसोखर की प्रसिद्धि थी। इस वरातके स्वागतार्थ कुछ विशेष आयोजन सोचा गया क्योंकि बरातमें प्रतिष्ठित धनीमानी सज्जनोंके आगमनकी भी आशा थी। एक प्रतिष्ठित-ठाकुर साहबकी हवेलीमें, जो कि प्रायः खाली रहती थी और जिसके स्थानाधिपति नगरसे बाहर नयी कोठी बनाकर रहते थे, बारातके ठहरनेका प्रबन्ध कियां गया। हमारे मकानके पीछे ही यह हवेली है। राजाओंके शासनकालमें उनके भाई-बन्धु सामन्तवर्गमें प्रत्येकके यहाँ, हाथी, घोड़े, ऊँट, बग्घी, रथ, मोटर आदि सब वाहन प्रचुर संख्यामें रहते थे। बरातकी शोभायात्रा [निकासी] के लिए सवारियोंकी व्यवस्था सामन्तवर्गके ठिकानोंसे पत्र लिखकर माँगने पर पूर्ण होंगयी। अन्यान्य ठिकानोंसे पृथक्-पृथक् अनेक यान समय पर आगये। तरसोखर के बरातियों-के उद्‌गार सुनाई पड़े कि यह ही बरात हमलोगोंने जीवनमें ऐसी की है—जिसमें निकासीमें पुराने बैलके छकड़ेसे लेकर, [जिसमें बरातियोंका सामान रखा गया था और एक छकड़े पर नगारा बजाने वाले बैठे थे] हाथी, घोड़े, ऊँट, रथ, बग्घी, मोटर आदि पुरानी व आधुनिक सब सवारियोंका प्रबन्ध किया गया। तीन दिन विवाहका कार्यक्रम रहा। यथाशक्ति भोजनादिका प्रबन्ध किया गया। विवाहका दूसरा दिन राजस्थानमें 'बढार' नामसे प्रसिद्ध है। इसदिन स्थानीय प्रतिष्ठित हमारे व्यवहारी, नागरिक जनों तथा सामन्तवर्गको सादर आमन्त्रित किया गया—और उत्सवमें पधारे हुए उन सभ्यजनोंसे बरातियोंका स्नेह परिचय कराया गया। इस शिष्टाचारसे बरातीजन बहुत प्रसन्न हुए। नगर भ्रमणके लिए मोटर,

१४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बग्घी आदि की व्यवस्था समुचित रही। तीसरे दिन कन्याकी विदाई होगई।

विवाह कार्य सम्पन्न कर हम कालेजके कार्योंमें लग गये। सायंकाल प्रतिदिन अध्ययनार्थ श्रीविद्यावाचस्पति ओझाजी के घर पर जाना होता ही था। कालेजके अनेक स्नातक भी इस अध्ययन गोष्ठीमें सम्मिलित होने लगे थे। श्रीमोतीलाल शास्त्री, श्रीवृद्धिचन्द्र शास्त्री व्याकरण-धर्मशास्त्राचार्य, श्रीनवलकिशोर काङ्कर आदि व्युत्पन्न स्नातकोंके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें पं० मोतीलाल शास्त्री ने तो श्री ओझाजी के वैदिक विज्ञान विषयों पर व्याख्यान देनेका इतना अच्छा अभ्यास कर लिया कि वे प्रसिद्ध व्याख्याता माने जाने लगे, दुःख है कि अल्पायुमें ही इनका देहावसान होगया। श्रीओझा जी महाराजके यहाँ इन स्नातकोंके आजानेसे नये-नये विषयोंके अध्ययन आरम्भ हुए जिससे अच्छी चेतना आगयी। इन स्नातकों द्वारा अनेक संस्थाओंमें विभिन्न वैदिकविज्ञान विषयके व्याख्यानों द्वारा गुरुदेवके अन्वेषित विज्ञानका प्रचार नगरमें होने लगा। लेख लिख कर बाहरकी पत्रिकाओं में भेजे जाने लगे। ओझाजी के अनेक ग्रन्थ अव तक मुद्रित हो चुके थे। गीता-विज्ञान-भाष्य नवलकिशोर प्रेसमें इससमय छप रहा था, इसके प्रूफ संशोधन करनेमें इन दिनों बहुत समय लग जाता था। तीन खंडोंमें यह छपकर तैयार होगया।

शिष्य मण्डली

मेरे अध्यक्ष कालके कुछ स्नातकोंके नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। व्याकरण विभागमें श्रीवृद्धिचन्द्र जी आचार्य, जिनने व्याकरणाचार्य उत्तीर्ण करनेके अनन्तर धर्मशास्त्रकी आचार्य परीक्षा भी दी, इसका अध्ययन इनने मेरे सान्निध्यमें ही किया। पंजावकी शास्त्री परीक्षा भी पास की। अन्य अनेक दर्शनके ग्रन्थोंका अध्ययन भी मेरे पास किया और स्नातक होनेके अनन्तर ये स्कूल विभागमें मेरे समयमें ही अध्यापक वना दिये गये। आगे चलकर ये कालेजमें धर्मशास्त्र के प्रधान प्रोफेसर पद पर आगये। इस पद पर पूरे काल तक काम करके अनुमानतः २५-३० वर्ष बाद ५५ वर्षकी आयुमें ये कालेजकी सेवासे मुक्त होगये। दुःख है कि अवकाश लेनेके ४-५ वर्ष बाद ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका मध्यायुमें ही देहान्त होगया। कालेजके अनन्तर इस शेष कालमें इनने संस्कृत-साहित्य-सम्मेलनकी भी सेवा की। जयपुर के हमारे शिष्यवर्ग में ये सुयोग्य सिद्ध हुए। यद्यपि व्याकरणका अध्ययन इनका मित्रवर श्रीचन्द्रदत्त जी ओझा के सान्निध्यमें हुआ था किन्तु उसके अनन्तर वहुत वर्षो तक अध्यापक होजाने के बाद भी ये मेरे पास अध्ययन करते रहे। इनके दो पुत्र हैं, छोटा पुत्र प्रभाकर आचार्य पास करनेके अनन्तर एम० ए० तथा पी० एच ०डी० उपाधि प्राप्त करके शिक्षाविभागमें अध्यापनकर रहा है। व्याकरणके ही दूसरे स्नातक पं०मोतीलाल शास्त्री थे। शास्त्री-परीक्षा व्याकरण की उत्तीर्ण कर दर्शन शास्त्री इनने मेरे पास पढ़कर उत्तीर्ण किया। तदनन्तर ये श्रीओझाजी महाराजके सान्निध्यमें चले गये और एकान्ततः वहीं अध्ययन करते रहे। इनके व्याख्यानों की अच्छी प्रसिद्धि हुई, धन भी इनने विशेष अर्जन किया, नगरसे बाहर मानवाश्रम नामसे एक बहुत बड़ी बिल्डिग् इनने बनवायी।

हमारे परम मित्र श्रीचन्द्रदत्तजी ओझाके दो पुत्र श्रीभवदत्त शर्मा तथा श्रीदुर्गादत्त शर्मा भी आरम्भमें व्याकरणके ही स्नातक हुए। आचार्य होनेके अनन्तर इन दोनोंने साहित्य की आचार्य परीक्षा भी उत्तीर्ण की। साहित्यका अध्ययन इनने कुछ मेरे पास भी किया और व्याकरणका अपने पिता श्रीचन्द्रदत्ता जी से। छोटे श्रीदुर्गादत्ता व्याकरण साहित्याचार्य तो रिटायर्ड होनेपर अपने पिता के स्थान पर ही नियुक्त हो गये और बड़े श्रीभवदत्ता शर्मा आचार्य दूसरी संस्थामें अध्यापन कार्य कर रहे हैं। ये दोनों अपने-अपने विषय के अच्छे व्युत्पन्न विद्वान् बने हैं। श्रीगुलाबचन्द्र चतुर्वेदी भी व्याकरणके ही स्नातक हुए। अध्ययनावस्थामें पारिवारिक आर्थिक स्थिति अच्छी न होते हुए भी इस छात्रने अनवरत श्रम करके आचार्यान्त परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे चलकर शिक्षा-विभागमें अध्यापक पद पर काम करने लगा। हमारे समयमें व्याकरण विभाग में अन्य भी दो-तीन छात्र रामप्रपन्न शर्मा, लक्ष्मीनारायण शर्मा आदि आचार्यान्त स्नातक हुए—जो शिक्षण संस्थाओंमें अध्यापन करा रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्य विभागमें जगदीश साहित्याचार्य, शान्ति भिक्षु त्रिशूली, गोपीनाथ भट्ट, नवलकिशोर काङ्कर, गंगाधर द्विवेदी नन्दकिशोर शर्मा नामावल, नन्दकुमार शर्मा नामावल आदि आचार्यान्त स्नातकोंके नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें श्रीजगदीश, श्रीगंगाधर द्विवेदी और श्रीनन्दकुमार शर्मा तो कालेजमें ही साहित्य श्रेणियोंके अध्यापक हैं। अन्य स्नातक अन्यान्य शिक्षण संस्थाओंमें काम कर रहे हैं। इनमें शान्तिभिक्षु त्रिशूली जो बाहरसे आया हुआ यू० पी० प्रान्तका छात्र था, परम मेधावी तथा व्युत्पन्न था, साहित्याचार्य करनेके अनन्तर यह बहुत कालतक मेरे पास दर्शन-शास्त्रोंका अध्ययन करता रहा, बौद्ध दर्शनमें इसे विशेष अभिरुचि हुई। बौद्ध दर्शनपर पाली भाषामें बहुत बड़ा साहित्य है। अतः इसने कालेज से मुक्त होनेके बाद पाली भाषाका अध्ययन किया। तदनन्तर बौद्ध शास्त्रोंका अध्ययन कर यह इतना प्रभावित हुआ कि बौद्ध भिक्षु सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया। दीक्षित होनेके पश्चात् भिक्षुवेष में यह काशी में मुझसे मिलने आया था। दर्शन विभागके आचार्यान्त स्नातक श्रीविश्वदेव शर्मा, श्रीनेत्रमणि शर्मा, तथा श्रीयुगलकिशोर चतुर्वेदी हुए। विश्वदेव और नेत्रमणि लाहौरसे ही मेरे साथ आये थे यह पूर्व लिखा जा चुका है। इनमें विश्वदेव शर्मा अद्भुत मेधावी छात्र था, शास्त्र को ग्रहण करनेमें, लेखन कलामें, व्याख्यान कला आदिमें इसने अच्छी पटुता प्राप्त की थी। पूर्ण आशा थी कि यह यशस्वी बनेगा किन्तु दुर्दैववश प्रथम श्रेणीमें आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करनेके अनन्तर ही यह अचानक अल्पायुमें ही कालकवलित होगया। वे दोनों उत्तर-प्रदेशके गढ़वाल जिले के निवासी थे। नेत्रमणि शर्मा, टिहरी हाईस्कूलमें अध्यापक पद पर काम कर रहा है। युगलकिशोर चतुर्वेदी दर्शनाचार्य करनेके अनन्तर कालेजमें ही प्रोफेसर पद पर नियुक्त होगये।

आयुर्वेद विभागके आचार्यान्त स्नातक श्रीनन्दकिशोर वैद्य, श्रीमुकुन्ददेव वैद्य, श्रीजयरामदास स्वामी आदि थे। बाहरके स्नातकोंमें श्रीठाकुरदत्त जी मुलतानी उनके पुत्र श्री भानुदत्त जी, श्रीरामदास स्वामी मुलतानी, भूदेव वर्मा, ब्रह्मदत्त शर्मा, उपेन्द्र नाथ शर्मा, प्रेमशंकर शर्मा, कल्याण प्रसाद शर्मा, मोहनलाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भार्गव, गोपालदत्त शर्मा, अविनाशचन्द्र सिंह आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें नन्दकिशोर जी के विषय में लिखा ही जा चुका है। मुकुन्ददेव जी चिकित्सा क्षेत्र में यशस्वी हैं। स्वामी जयरामदास जी नन्दकिशोर जी के अनन्तर आयुर्वेदिक कॉलेज के अध्यक्ष बने। ये स्वामी लक्ष्मीराम जी के उत्तराधिकारी हैं। इनकी ख्याति भी सर्वत्र है। प्रेमशंकर जी आयुर्वेद विभाग के डाइरेक्टर हैं। अविनाशचन्द्र सिंह ने कानपुर में कुँवर आयुर्वेदिक फार्मेसी का संचालन किया, "वेदनानिग्रहरस" नामक औषध इनकी निकाली हुई सारे देश में प्रसिद्ध है। अन्य स्थानीय वैद्य अथवा बाहरके स्नातक सब प्रतिष्ठापूर्वक काम करते रहे हैं। ठाकुरदत्तजी मुलतानी तथा नन्दकिशोर जी ने तो चिकित्सा क्षेत्रमें अपने गुरूके समान ही ख्याति तथा धन प्राप्त किया।

ज्यौतिष विभागमें आचार्यान्त स्नातक स्थानीय बद्रीनारायण शर्मा और पर्वतीय तारामणि शर्मा हुए। तारामणि स्वतन्त्र व्यवसाय ज्यौतिषका करता है और बद्रीनारायण शर्मा कालेजमें ही ज्यौतिषके उपाचार्य पद पर काम कर रहे हैं। वेदके आचार्यान्त स्नातक श्रीशिवप्रताप शर्मा, श्रीरामकृष्ण शर्मा, श्रीसूर्यनारायण शर्मा तथा श्रीरामनारायण शर्मा आदि उल्लेखनीय हैं।

काशीमें ओरियन्टल कान्फ्रैन्स

इसप्रकार सब विभागोंमें उससमय अनेक वर्षोंमें अच्छे स्नातक कालेजने तैयार किये। कालेज अपनी अच्छी उन्नति पर था। इस समय सन् १९४४ के शीतकालमें काशीमें ओरियन्टल कान्फ्रेंसका आयोजन हिन्दू विश्वविद्यालयमें किया गया। उसकी पंडित परिषद् का सभापति मुझे निर्वाचित किया गया। जयपुरसे भी अनेक विद्वान् इसमें हमारे साथ गये। भट्ट श्रीमथुरानाथ जी साहित्याचार्य, श्री-वृद्धिचन्द्रजी शास्त्री, श्रीयुगलकिशोर चतुर्वेदी, श्रीभवदत्त शर्मा मैथिल, नन्दकिशोर जी शर्मा साहित्याचार्य, वैद्य श्रीजयरामदास जी स्वामी आदि ९-१० विद्वान् जयपुरसे गये। मेरा बड़ा पुत्र देवीदत्त भी साथ था। वर्तमान राष्ट्रपति सर्वपल्ली डाक्टर श्रीराधाकृष्णन् जी उस समय हिन्दू विश्वविद्यालयके वाइसचांसलर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद पर आसीन थे। इस कान्फ्रेंसमें विभिन्न विषयोंकी पृथक्-पृथक् परिषदोंके अधिवेशन यूनिवर्सिटी के पृथक्-पृथक् स्थानोंमें हुए। अनेक विद्वानोंकी गम्भीर वक्तृतायें विभिन्न विषयोंपर सुननेको मिलीं थीं, कुछ वर्ष पूर्व काशीमें एक पंचभूतपरिषद का आयोजन हुआ था। इसमें नवीन आयोजन यह किया गया था कि काशीके सुप्रसिद्ध वक्ता सम्मानीय विद्वान् श्रीदेवनायकाचार्य जी को विभिन्न लौकिक तथा शास्त्रीय विषयोंमें पूर्वपक्ष उपस्थित करने वाले प्रश्नकर्त्ताके रूपमें खड़ा किया गया और मुझे उत्तर देनेके लिए कहा गया था। ४-५ दिन यह क्रम बड़ी शान्तिसे गम्भीरतापूर्ण चला था। इससे भारतके सम्पूर्ण समागत विद्वान् बहुत प्रसन्न हुए थे। उसका समागत विद्वान् इस समय भी स्मरण करते थे। आयुर्वेद विभाग वालोंने यूनिवर्सिटीके आयुर्वेद कालेजमें स्वतन्त्र अधिवेशन एक दिन किया। अखिल भारतीय संस्कृत छात्र संघ द्वारा आयोजित अधिवेशनमें वाद प्रतियोगिता रखी गयी। संस्कृत भाषा राष्ट्रभाषा वन सकती है कि नहीं यह वादका विषय था। इस वादमें मेरे पुत्र देवीदत्तने भी सम्मिलित होनेकी इच्छा व्यक्त की तो पं०पुरुषोत्तमजी चतुर्वेदीने संस्कृत कालेज जयपुरके भूतपूर्व छात्रकी हैसियत से छात्र-संघमें उद्योगकर वाद प्रतियोगितामें इसका नाम भी सन्निविष्ट करा दिया। इसका पक्ष संस्कृतभाषाको राष्ट्रभाषा वनाया जानेके अनु-मोदनमें था। वक्तृता सब संस्कृतमें होरही थी। वाचिक वाद रूपमें, लिखकर बोलना निषिद्ध था। प्रत्येक वक्ताको सात मिनिट भाषणके लिये दिये थे। विजय प्राप्त होनेपर पुरस्कार रूपमें हंसवाहिनी सरस्वती की रजत प्रतिमा जो "रनिंग् ट्राफी" के रूपमें विश्व-विद्यालय में रखी थी, दी जाती थी। इस प्रतियोगितामें देवीदत्त को विजय लाभ हुआ और इसके द्वारा सरस्वतीकी वह प्रतिमा महाराज संस्कृत कालेज—जयपुरमें लायी गयी। इस कान्फ्रेंसके समय हम सब जयपुरीय विद्वान् गंगातट पर मान-मन्दिर नामक जयपुर नरेश द्वारा निर्मित एक बड़े महलमें ठहरे थे। कान्फ्रेंसके अनन्तर काशीके मन्दिरोंके दर्शनादिके लिए दो दिन विशेष निवास किया गया। पौष शुक्ला दशमीको काशीमें ही हमारी जन्मतिथि मनायी गयी। सबको मिलकर विशेष सहभोज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ और नवीनता यह हुई कि श्री भट्टमथुरानाथ जी तथा वृद्धिचन्द्र शास्त्रीका विशेष आग्रह देखकर हमने उन सबके साथ उस दिन सिनेमा भी देखा, चित्र सम्भवतः रामराज्य था। चित्रमें जब वशिष्ठ ऋषिको गाते हुए प्रवेश करते देखा तो इस अनौचित्य पर चित्त वृत्ति उखड़ गयी उसके बाद जबतक चित्र चलता रहा, मैं शयन करता रहा। समाप्त होने पर मित्रों द्वारा जगाये जाने पर घर लौट आया। दूसरे दिन यह मंडली जयपुर लौट आयी। सरस्वती प्रतिमा हमलोगोंके साथ ही जयपुर आयी। वाराणसी जैसे क्षेत्र से अखिल भारतीय दलमें से जीतकर प्रतिमा का लाना महत्त्वपूर्ण मान कर कालेजके छात्र-संघने एक उत्सवका आयोजन कर, व्याख्यानादि द्वारा इस घटनाका सर्वत्र प्रचार कर दिया इससे लोगोंकी दृष्टिमें कालेजका महत्व बढ़ा। इस समय जयपुरके प्रधान सचिव पद पर सर मिर्जा इस्माइल काम कर रहे थे। इनके समयमें जयपुरकी कायापलट हुई। सब कच्चे रास्ते पत्थर जड़कर पक्के करवा दिये गये। अब जयपुर नगरमें बहुत कम स्थान ऐसे होंगे जहाँ पक्की सड़क न हो। बाजारमें दोनों तरफ लाइनसे अशोकके वृक्ष लगा दिये गये, जो अब बड़े होकर अशोकवाटिकाका स्मरण कराते हैं। इनके ही समयमें रामनिवास बागका रूपान्तरण हुआ। पहिले सब प्रकारके घने वृक्षोंसे घिरा यह एक बहुत बड़ा बाग था। अब सब बड़े पेड़ काट दिये गये और यह आधुनिक युगका एक सुन्दर बड़ा पार्क बन गया। जयपुरकी गलता गद्दीके महन्त पदका निर्णय भी इनके समयमें ही हुआ। उससमय बड़ा संघर्षका वातावरण बन गया। गलता गद्दी पर अपना अधिकार सिद्ध करनेवाले दो दल प्रधान बन गये। एक तो थे लोहागढ़ साम्प्रदायिक गद्दी से प्रेषित इस स्थानके अभिलाषी और दूसरे थे नगरके निवासी गलतासे सम्बन्ध रखनेवाले एक महानुभाव। अन्य भी प्रत्याशी थे किन्तु उन लोगोंका पक्ष प्रबल नहीं था। इन दो दलोंमें संघर्ष होने जारहा था। लोहागढ़के पक्षमें दक्षिणी पंडितोंकी मंडली १५-२० की संख्यामें आयी थी। प्रधान सचिवने अपनी अध्यक्षतामें राजकीय खासा कोठीमें एक सभाका आयोजन किया जिसमें कि रामानुज-सम्प्रदाय सम्बन्धी तात्विक बातों पर गवेषणापूर्ण विचार किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस सभामें प्राय: जयपुरकी सम्पूर्ण पंडित मंडली सम्मिलित हुई। सम्भ्रान्त नागरिक जन भी उपस्थित थे। इसमें दाक्षिणात्य पंडितोंके यह कहनेपर कि शास्त्रार्थ हो जाय, हमारे मित्र पं० कन्हैयालाल जी नैयायिकने बड़े आवेशसे कहा कि—शास्त्रार्थके लिए आह्वान जयपुरमें अस्वीकृत नहीं हो सकता, जयपुरको दूसरी काशी समझिये। मुझे भी स्पष्ट कहना पड़ा कि श्रीप्रधान सचिवकी अध्यक्षता में ही यह शास्त्रार्थ अभी हो जाना चाहिए किन्तु प्रधान सचिवने बड़े चातुर्यसे उस वातावरणको वदल दिया। स्थानीय तथा दाक्षिणात्य दोनोंको साम नीतिसे शान्त कर सभाको समाप्त कर दिया। कालान्तरमें गलता गद्दी पर लोहागढ़ के प्रत्याशी ही नियुक्त हुए। सर मिर्जा इस्माइल महोदयके समयमें ही नये सत्र के आरम्भ होनेसे पूर्व ही हमलोगोंके रिटायरमेन्टके आर्डर आगये। एक साथ सात विद्वानोंको कालेजकी सेवासे मुक्त कर दिया गया। व्याकरणके प्रोफेसर श्रीचन्द्रदत्त जी मैथिल, श्रीकन्हैयालाल जी नैयायिक, श्रीमदनलाल जी प्रश्नवर, भट्ट श्रीमथुरानाथ जी, श्रीगिरिजाप्रसाद जी द्विवेदी ज्योतिषाचार्य आदिके साथ-साथ मैं भी थोड़े काल के अन्तर से सेवा मुक्त हुए। खाली हुए स्थानों पर उचित सन्निवेश तत्काल न हो सकने के कारण कालेज सूना होगया। यदि क्रमश: ४-५ वर्षोंमें एक-एकको हटाया जाता तो कालेज को इतनी क्षति नहीं पहुँचती। क्रमश: स्थानपूर्ति योग्य विद्वानों द्वारा हो सकती थी। किन्तु यह सब शासकोंके हाथकी चीज थी इसमें कोई क्या कर सकता था। इसप्रकार सन् १९४५ में कालेजके कार्यसे अवकाश मिल जाने पर संस्कृत कालेजके विद्वानों द्वारा तथा संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन द्वारा मेरे अभिनन्दनका आयोजन भी किया गया और इस उपलक्ष्यमें संस्कृत रत्नाकरका "दर्शनाङ्क" नामक विशेषाङ्क पुस्तकाकारमें निकाला गया। इसमें दर्शनके पृथक्-पृथक् गम्भीर विषयोंपर भारतके सम्माननीय विद्वानोंके मननीय निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। अस्तु, मेरे लिये यह अवकाश एक दृष्टिसे वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि अब तक १२-१३ हजार का ऋण मेरे ऊपर वर्तमान था। वर्षमें देशकी संस्थाओंसे निमन्त्रण वहुत आते थे किन्तु कालेजसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयपुर संस्कृत कालेज से अवकाश ग्रहण करने के उपरान्त
अभिनन्दन समारोह में—

श्री अमरनाथ अटल, म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, म० म० श्री चिन्न स्वामी,
श्रीयुत नन्दकिशोर वैद्य, कविशिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, श्री श्यामानन्द झा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवकाश न मिल सकनेके कारण बहुत थोड़ी जगह सम्मिलित हो-पाता था। अब वह कठिनाई नहीं रही। अब मैं सब स्थानोंके निमन्त्रण स्वीकार करके सर्वत्र जाने लगे। यह ज्ञात होनेपर कि मुझ को कालेजसे अवकाश मिल चुका है, संस्थाओंके निमन्त्रण भी बहुत आने लगे।

—:o:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवकाश ग्रहण के बाद तीन वर्ष

जयपुर संस्कृत कालेजसे अवकाश ग्रहण करनेके अनन्तर प्राय: ३ वर्ष मुझे जरा भी अवकाश नहीं मिला। कार्य करने की क्षमता प्राप्त होनेके अनन्तर घरसे दूर-दूर यात्राएँ करनेके अवसरोंका इतना आधिक्य रहा कि बहुतसे आमन्त्रणों को मुझे अस्वीकार करना होता था। उससमय भी सनातन-धर्म सभाओंके उत्सव जैसे मेरी प्रतीक्षा ही कर रहे थे।

मुझे हैदराबादकी सनातन-धर्म सभा का निमन्त्रण मिला। वहाँ ३ भाषण देनेके बाद वहीं अमरावती की सभा वालोंने घेर लिया। उन्होंने दो सप्ताह प्रवचन करनेका अनुरोध किया। मुझे भी वहाँ का वातावरण रमणीय प्रतीत हुआ और स्वास्थ्य भी कुछ हल्का प्रतीत हुआ। मैंने वहाँ जाना स्वीकार कर लिया। वहाँके श्रोताओंने गीता और योगवासिष्ठ पर मेरे प्रवचन सुने। एक सप्ताह गीता और एक सप्ताह योगवासिष्ठके विशिष्ट स्थलोंपर वहाँके प्रवचन हुए। प्रवचनों के वहाँ पूरे नोट्स भी लिये गए थे और उनकी मुद्रित करानेका भी प्रवन्ध वहां हुआ था। परन्तु न तो वे मुद्रित ही हुए और न उनका कुछ पता ही चला। इन व्याख्यानोंका प्रचार भी वहाँ बहुत किया गया था। प्रतिदिन व्याख्यानोंमें भीड़ बढ़ती ही गई जिसके कारण व्याख्यानका स्थान भी बदलना पड़ा। मेरे व्याख्यानोंमें भारतीय वैदिक विज्ञान और वर्तमान साइन्सके सिद्धान्तों की तुलना बराबर रहती आई है और वर्तमान साइन्स हमारे पराकाष्ठाको पहुँचे हुए विज्ञानकी तुलनामें कितना नगण्य है यह विषय भी मैं बराबर कहता आया हूँ, इसीसे शिक्षित वर्गमें व्याख्यानोंका बड़ा असर पड़ता है, ऐसा मेरा अनुभव है। इन विषयों का प्रतिपादन करने योग्य वहाँ अच्छा समुदाय जमता था। अमरावतीमें दो सप्ताह मेरे रह जानेसे घरके अनेक कार्य रुक गए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे, यद्यपि वहाँ भी उज्जैन आदि कई स्थानोंसे साग्रह निमन्त्रण प्राप्त हो रहे थे, परन्तु वहाँसे निवृत्त होकर मैं सीधा जयपुर ही गया। जयपुर पहुँचकर अपने घर पर उज्जैनसे मुझे लेने आये दो सज्जनोंको ठहरा हुआ पाया। घर पर जो आवश्यक कार्य जागीरसे सम्बद्ध रुके पड़े थे उन्हें ४-५ दिनों में पूरा करके उन महाशयोंके साथ उज्जैन चला गया।

उज्जैन में मैं दो ही व्याख्यान दे सका। वहाँ लाहौरसे मुझे शीघ्र बुलानेका तार पहुँचा, एक तार जयपुरसे भी मिला कि लाहौरकी सभा वाले आपको बहुत शीघ्र अपने यहाँ बुलाते हैं। अमरावती और उज्जैन के व्याख्यानों से अच्छी अर्थ प्राप्ति हुई जिसकी मुझे तत्काल आवश्यकता भी थी।

लाहौर पहुँचने पर पता चला कि मेरी वहाँ बहुत प्रतीक्षा की जा रही थी। बात यह हुई कि जयपुर संस्कृत कालेजसे मेरे रिटायर्ड होने की बात गोस्वामी गणेशदत्तजी ने पंजाब की सनातन-धर्म सभाओंके कार्यकर्ताओं को बतला दी थी। पंजाब की धार्मिक जनता में मेरे व्याख्यान सुननेका बहुत आकर्षण रहता था यह अनुभव मैंने अपने पिछले लाहौर निवासमें प्राप्त कर लिया था। मेरे लाहौर पहुँचते ही वहाँके लोगोंमें कार्यक्रम बनानेके लिए बहुत वाद-विवाद रहा। मैं कुछ दिनों लाहौर रुका। वहाँसे चार व्याख्यान देने मुलतान चला गया। वहाँसे रावलपिण्डी जाकर दो व्याख्यान दिये। रावलपिण्डीमें पंजाबके अनेक उपदेशक मित्रोंसे भी भेंट हो गई।

प्रायः १ मास मैं पंजाब और सिन्ध प्रदेश की सभाओंमें भाषण देनेके लिए भ्रमण करता रहा। इस अवसरमें भिन्न मत वाले समुदायोंसे कुछ शास्त्रीय विचार-विमर्श भी हुए। जैसा पहिले कह चुका हूँ पंजाब में मेरी विशेष प्रसिद्धि आर्य-समाजके साथ शास्त्रीय विषयों पर शास्त्रार्थ करने से ही हुई थी। वह अवसर मेरे सामने बराबर उपस्थित होता रहा। मेरी कार्य-क्षमताका प्रधान समय पंजाबमें ही व्यतीत हुआ था और पंजाब ही आर्य-समाजका भी प्रधान गढ़ था। जिस अवसरका विवरण दिया जा रहा है वह समय भी सनातन-धर्म और आर्य-समाजके वैचारिक संघर्ष का ही था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस लम्वे प्रवाससे निवृत्त होकर जयपुर वापस लौटा। इसी अवसर पर एक प्रतिष्ठित संस्था के द्वारा सनातन-धर्म के स्वरूप पर एक ग्रन्थ लिखने का आग्रह मुझसे किया गया। परन्तु उस समय मैं निश्चिन्ततासे वैठकर ग्रन्थ लिखने की स्थिति में नहीं था। यद्यपि मेरे पास इस विषयके पत्र वरावर आते थे और कई मित्रोंके आग्रह वरावर होते रहते थे कि मैं धार्मिक विषयों पर कुछ पुस्तकें लिख दूं। मेरी भी ऐसी आन्तरिक अभिलाषा थी, कई ग्रन्थोंकी रूपरेखाएँ भी वनाई, उनमें में कुछ पुस्तकों का प्रारंभ भी किया, उनका आंशिक मुद्रण भी उस समयके संस्कृत और हिन्दी पत्रोंमें हुआ, परन्तु सभाओं के आह्वानों और अनेक कार्यों में व्यस्त रहनेके कारण इनमेंसे किसी भी पुस्तक को पूरा करना संभव न हो सका।

इस भ्रमण कालमें मैंने अपने स्वास्थ्य को गिरता हुआ अनुभव किया। यद्यपि अधिकांश सभाओं में लाउडस्पीकर की व्यवस्था रहती थी फिर भी मैंने यह अनुभव किया कि भाषण देनेको अपना नियत क्रम वना लेनेसे यात्रा श्रमके कारण शरीर की दुर्वलता वढ़ती जाती है। मेरे उपदेशक मित्र युक्ति विशारद स्वर्गीय श्रीकालूराम शास्त्री जी ने मुझे वहुत पहिले ही इस विषयमें सावधान किया था कि व्याख्यान क्रम को सर्वदा के लिए अपना लेने से स्वास्थ्य जल्दी गिर जायगा। इसलिए एक स्थान पर स्थायी रूपसे वैठ कर कुछ कार्य करने की मेरी अभिरुचि देखकर गोस्वामी गणेशदत्त जी ने मुझे स्वयं भी पत्र लिखे और पूज्य मालवीय जी महाराज तथा कुछ अन्य परिचितोंसे भी मुझे पत्र लिखवाए कि मैं लाहौरमें अपनी योजनाके अनुसार एक उपदेशक संस्था वनाकर वैठूं, जहाँ अनुसन्धान कार्य का भी संचालन करूँ। उसके सारे व्यय का भार उन्होंने स्वयं लेना स्वीकार किया। लाहौर इस कार्यके लिए उपयुक्त क्षेत्र भी था। देशमें उस समय वह शिक्षा का एक वड़ा केन्द्र था। परन्तु मुझे उनका यह सुझाव व्यावहारिक प्रतीत नहीं हुआ। गोस्वामी गणेशदत्त जी सनातन-धर्म प्रतिनिधि सभा के कर्ताधर्ता थे जिसके द्वारा वे धर्म की मर्यादाओंमें युगानुरूप सुधार चाहते थे। मैं इसके विपरीत कट्टरता का समर्थक रहा हूँ और सुधारवादी दृष्टिकोण की सर्वत्र कटु आलोचना करता आया हूँ। अपने दैनिक जीवनमें भी धार्मिक नियमों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृढ़ता को मैंने सर्वदा स्थापित रक्खा है। मेरा यह निश्चित मन्तव्य रहा है कि धार्मिक विषयोंमें सुधारके लिए कोई अवकाश नहीं है। वर्तमान साइन्सके द्वारा जो सुविधाएँ हमें मिल रही हैं उनको स्वीकार करनेका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम अपनी धार्मिक निष्ठाओं तथा आराधनाओं को जलांजलि दे दें। मेरे देखते-देखते अनेक उपदेशक जो पहिले कट्टर थे, सुधारकों के खेमेमें पहुँच गए थे और ऐसा करके उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी बना ली थी। परन्तु मेरे लिए आज तक यह संभव नहीं हो सका। आगे के जीवन में भी ऐसे अनेक अवसर आए जब कि सुधारोंका समर्थन करनेके लिए अनेक आग्रह मुझसे हुए। स्वयं महामना मालवीय जी महाराजने एक बार एक यह धारा चलाई थी कि वर्णों के विभेद तक तो बात ठीक है, परन्तु वर्णोंमें भी जो अवान्तर जाति विभाग हैं, उनके कारण बहुत बड़ा रागद्वेष फैल रहा है, उसे रोक देना चाहिए। भारतवर्ष भर के ब्राह्मण परस्पर विवाहादि सम्बन्धों से आवद्ध रहें, अन्य वर्ण भी इसी प्रकार अपने-अपने वर्णके भीतर आहार-व्यवहार करें, इसका उन्होंने प्रतिपादन किया था। कई अवसरों पर सामान्य वातचीतमें जब यह बात उन्होंने मुझसे कही थी तब उनके साथ किसी विवादमें न पड़नेके उद्देश्यसे मैंने भी यही कहा था कि ऐसा होनेसे अच्छा ही रहेगा। एक बार जब मैं हिन्दू-विश्वविद्यालय की प्राच्य विद्या समितिमें भाग लेने काशी आया तब अपने नियमानुसार उनके दर्शन करने भी गया। उस समय उन्होंने एक बना हुआ मसविदा, जिसमें उक्त व्यवस्था लिखी थी, हस्ताक्षर के लिए मेरे सामने रखा। मैंने उनसे इस पर विचार करनेके लिए कुछ समय माँगा। उन्होंने जोर देकर कहा कि अब इसमें विचार की क्या बात है, तुम तो पहिलेसे ही इसका समर्थन करते हो। मैंने विनम्र निवेदन किया कि आज यदि आप सभी ब्राह्मणोंके लिए तथा अन्य वर्णों के लिए यह छूट देते हैं तो ब्राह्मण कौन है यह भी तो बतलाना होगा। गांधी जी की कृपासे आज सभी अपने को ब्राह्मण क्षत्रिय आदि कहनेमें स्वतन्त्र हो चुके हैं। यज्ञोपवीत भी बड़ा सस्ता है और सभी इसे धारण कर सकते हैं, तब इसका नियमन कैसे होगा कि कौन किस वर्ण का है। इस पर उन्होंने कहा कि इतना इसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और जोड़ देते हैं कि जो अपनी कुल परम्परासे ब्राह्मण हों ऐसे सब व्यक्तियोंमें परस्पर आहार-विहारादि हो। इस पर पुनः मैंने निवेदन किया कि जो आज अपना वर्ण यथेच्छ परिवर्तित घोषित कर चुके हैं उनके पुत्र-पौत्रादि परम्परानुसार उसी वर्णके प्रसिद्ध हो जायँगे। ऐसी स्थितिमें ऐक्यका समर्थन करना, वर्ण परिवर्तन का ही समर्थन करना होगा और यह बात आपके मूल उद्देश्यसे अलग हट जायगी। अन्तमें फिर उन्होंने कहा कि काशी के अन्य अनेक विद्वानोंने अभी तक यही कह कर हस्ताक्षर नहीं किये हैं कि जब गिरिधर शर्मा का हस्ताक्षर हो जायगा तब हम भी कर देंगे। तुम जैसा उचित समझो मसौदे में सुधार करके हस्ताक्षर कर दो। मुझे छूटने का और मौका मिला, मैंने कहा कि जब अनेक विद्वान् मेरे लिए रुके हैं तब कृपया मुझे उनसे विचार तो कर लेने दीजिए। यह कहकर मैंने वहाँसे छुटकारा पाया। ऐसा ही प्रसंग एक बार स्वर्गीय श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन जी के साथ भी उपस्थित हुआ था, उन्हें भी निराशा ही होना पड़ा। गोस्वामी गणेशदत्त जी को यह ज्ञात था कि मैं आर्थिक दृष्टिसे ऋणग्रस्त हूँ, उन्होंने मुझे पत्र लिखकर ऋणसे निर्मुक्त करने की बात भी कही थी, परन्तु मुझे उनका वह आग्रह भी स्वीकार्य नहीं हुआ। फिर भी मैं किसी ऐसे अवसर की प्रतीक्षामें अवश्य था कि किसी स्थान पर निश्चिन्ततासे बैठकर कुछ उपदेशकों को तैयार करता और गुरुवर विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदनजी ओझाके द्वारा आविष्कृत वैदिकविज्ञानके अन्वेषणमें कुछ विद्वानोंको दक्षता प्राप्त कराता। सभाओंके निमन्त्रणों और आग्रहोंके कारण निश्चिन्तता पूर्वक घर बैठना भी कठिन होता था, यह भी एक कारण था जिससे मैं चाहता था कि कहीं स्थायी रूपसे बैठूँ जिससे जाने-आनेके लिए विवशता प्रकट की जा सके। अन्यथा घनिष्ठ मित्रोंके आग्रह को टालना कठिन हो रहा था। साथ ही किसी कार्य को स्वीकार करनेके लिए मैं किसी प्रकारके बन्धन को स्वीकार करना नहीं चाहता था। अब तक का जीवन मैं बन्धनमें रहकर बिता चुका था, इसलिए अपनी चरमावस्थामें वह मुझे अब स्वीकार्य नहीं था। स्वर्गीय सेठ गौरीशंकर जी गोयनका ने जयपुरके संस्कृत-कालेजसे निवृत्त होने पर मझसे अपने काशी के गोयनका संस्कृत विद्यालयमें आनेका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आग्रह किया था, वह भी मैंने बन्धन की स्थिति के कारण ही छोड़ दिया था।

इस अवसर की लाहौर यात्रामें अपने भाषणोंमें मैंने वेदों और पुराणोंके अन्वेषणका सुझाव वहाँके रईस सज्जनोंके सामने रक्खा। तभीसे उस योजनाके प्रति वहाँके रईसोंका ध्यान आकृष्ट हुआ, जिसमें दीवान कृष्णकिशोर जी मुख्य थे। एक ट्रस्ट भी वहाँ इस कार्य को उठाने आगे आया जिसे वहाँके लालामूलचन्द्रजी ने स्थापित किया था, उसका नाम मूलचन्द्रखैरातीराम् ट्रस्ट था। दीवान कृष्णकिशोर जी उसमें प्रमुख स्थान रखते थे, उन्होंने ट्रस्ट की मीटिंग में मेरी योजनाको रखा तथा अन्य सदस्योंकी भी सम्मति मिल जाने पर मैंने एक विद्यापीठ की योजना बनाकर उन्हें दी। उसके अनुसार सन् १९४४ में "मूलचन्द्रखैरातीराम-सनातन-धर्मसंस्कृतविद्यापीठ" नामकी संस्था लाहौरमें स्थापित हुई। विद्यापीठ की स्वतन्त्र नई बिल्डिग बनी। मुझे ही इस संस्थाके संचालकत्वका भार उठाना पड़ा। मैं प्रायः वर्षमें तीन महीने लाहौरके इस विद्यापीठमें रहा करता था। शास्त्री और आचार्य पास करनेके अनन्तर प्रौढ़ छात्रोंको विद्यापीठ में प्रविष्ट किया जाता था, उन्हें छात्रवृत्ति दी जाती थी और दो वर्ष तकके प्रशिक्षण कालमें उन्हें वैदिक अन्वेषणमें प्रवृत्त किया जाता था। अनेक प्रमुख विद्वानों को बाहरसे बुलाकर, उनके भाषण भी वहाँ कराये जाते थे। विद्यापीठके पास अपना एक अच्छा पुस्तकालय भी होगया था। विद्यापीठ की छात्र संख्या भी अच्छी होगई थी और वहाँ कई सुयोग्य छात्र आये थे जो बहुत शीघ्र वैदिक विज्ञानके विषयोंके अच्छे अन्वेषक और वक्ता बन गए थे। थोड़े ही समयमें लाहौरका यह विद्यापीठ प्रमुख शिक्षाविदोंका आकर्षण केन्द्र बन गया था। मेरी अनुपस्थितिमें कुछ दिनों तक तो पर्वतीय विद्वान् श्रीललिताप्रसाद जी डबराल उसके वाइस प्रिंसिपल पद पर रहे, वे ही वहाँका संचालन कार्य करते थे, बादमें मेरे शिष्य, सनातन-धर्म कालेजके संस्कृतविभागके अध्यक्ष महामहोपाध्याय परमेश्वरानन्द शास्त्री वहाँके वाइस प्रिंसिपल बनाये गए, वे मेरी अनुपस्थिति में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्यक्रमका संचालन करने लगे थे। कलकत्तासे महामहोपाध्याय श्रीविधुशेखरभट्टाचार्य, महामहोपाध्याय अनन्तकृष्णशास्त्री, श्रीजीवन्यायतीर्थ, अजमेरसे पंडित पुरुषोत्तमशास्त्री, जयपुर से भट्ट मथुरानाथ जी, व श्रीसूर्यनारायण जी आचार्य लाहौरके श्रीयुत भगवद्दत्त जी, श्रीराजाराम शास्त्री, प्रभृति विद्वान् समय-समय पर विभिन्न विषयों पर भाषण देनेके लिए वहाँ आमन्त्रित किये गये थे। लाहौरके विद्यावाचस्पति प्रभुदत्त जी भी विद्यापीठ की प्रबन्ध-कारिणी समितिके सदस्य थे और विद्यापीठ की कार्य प्रणालीमें दिलचस्पी लेते थे। यहाँके पाठ्यक्रमका निर्धारण भी देशके प्रमुख संस्कृत विद्वानोंके परामर्शसे किया गया था, इनमें वेदों, दर्शनों, पुराणों, आदिके गम्भीर विषयोंके ज्ञानके साथ उनकी आधुनिक विषयोंके साथ तुलनात्मक आलोचना विस्तारसे समझाई जाती थी। इतिहास, विज्ञान, गणित आदि आधुनिक विषयोंके विद्वानों को भी भाषणार्थ वहाँ आमन्त्रित किया जाता था। इतिहासके एक विद्वान् श्रीदेवसहाय त्रिवेद की नियुक्ति भी वहाँ की गई थी। मेरे शिष्य चन्द्रभानु शास्त्री और नेत्रमणि शास्त्री की नियुक्ति भी पुराण और मीमांसाके अध्यापनार्थ वहाँ की गई थी। आगे चलकर वेदके एक विद्वान् को भी रक्खा गया था। छात्रोंके लिए प्रत्येक भाषणके पूरे नोट्स लेकर उन्हें पूर्ण रूपसे लिखकर देना अनिवार्य था। एक पत्रिका के प्रकाशनका भी आयोजन था जिसमें अन्वेषणके विषयोंका प्रकाशन होता था। इस प्रकार यह संस्था मुझे अपनी रुचिके अनुकूल संचालनार्थ मिली, मैंने भी पूरे परिश्रमसे इसका काम चलाया।

इसी अवसर की एक दूसरी विशिष्ट घटना है मेरा स्वामी करपात्री जी महाराजसे विशेष सम्पर्क। मेरा पहिला स्वामी हरिहरानन्द जी करपात्री महाराजसे सम्पर्क हरिद्वारमें होगया था। मैंने देखा कि इनमें तपश्चर्या भी वड़ी उत्कट है और विद्वत्ता भी खूब है। उसके अनन्तर प्रयागके कुम्भमें मैंने उनका दर्शन और साहचर्य प्राप्त किया। इसी वीच पानीपत में एक यज्ञका आयोजन हुआ जिसमें मैं भी सम्मिलित था। वहाँ अपने भाषणमें मैंने कहा कि यज्ञ तो हमारे यहाँ आज भी वहुत हो रहे हैं, परन्तु एक ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यज्ञ है जिसका ग्रन्थोंमें उल्लेख मात्र मिलता, वह कहीं प्रयोग में नहीं देखा गया। पानीपतका वह यज्ञ प्रधान रूपसे स्वामी कृष्ण-बोधाश्रम जी महाराजके द्वारा आयोजित था। मेरी बात सुनकर वहाँ उपस्थित अन्य वक्ताओं ने कोटिहोम के प्रयोग किये जाने पर बल दिया। धीरे-धीरे यह बात स्वामी करपात्री जी महाराज तक पहुँची और उन्होंने इस यज्ञके दिल्लीमें अनुष्ठान करने की प्रतिज्ञा कर ली। यह एक बहुत बड़ा यज्ञ होता है जिसमें एक करोड़ आहुतियाँ दी जाती हैं। उस समय के अनुमान के अनुसार इस यज्ञमें पाँच लाख रुपये का व्यय संभावित था। इस द्रव्य राशिको एकत्रित करनेके लिए हम लोगोंने यह विचार किया था कि सभी प्रसिद्ध नगरोंमें द्रव्य संग्रहके लिए भ्रमण किया जाय। पानीपत में ही एक श्रद्धालु महानुभाव इस यज्ञ की चर्चा से इतने प्रसन्न हुए कि वहाँ की सभा की समाप्ति पर उठे और प्रसिद्ध "जटाकटाहसंभ्रम" से प्रारंभ होनेवाले शिवताण्डव स्तोत्रको पढ़ते हुए नृत्य करने लगे और अन्तमें पाँच रुपये मुझे देते हुए बोले कि आपका यह संकल्प अवश्य पूर्ण होगा। जब कोटि होम यज्ञका कोश इकट्ठा होने लगा तब मैंने वे पाँच रुपये सर्वप्रथम उस कोशमें जमा करा दिये। स्वामी करपात्री जी ने हम लोगों का यह प्रस्ताव नहीं माना कि द्रव्य संग्रह के लिए प्रसिद्ध नगरों में अपील करते हुए भ्रमण किया जाय। इन्होंने अपना दृढ़ मत व्यक्त किया कि जो व्यक्ति अपनी इच्छासे जितना द्रव्य देना चाहे उसी को हम स्वीकार करेंगे। यह सुनकर हम लोग बहुत निराश हुए, परन्तु कुछ ही दिनोंमें यज्ञ की बात सभी जगह फैल गई और स्वामीजी के संकल्पानुसार स्वयं धनिकोंके द्वारा पर्याप्त धन मिलने लगा। स्वामी जी ने यज्ञके प्रारम्भ में ही मुझे दिल्ली बुला लिया और यज्ञका सर्वोपद्रष्टा बनाकर प्रबन्ध का बहुत सा भार मुझे सौंप दिया। वह एक अभूतपूर्व दृश्य था। पहिले हमारे मनमें यह आता था कि कोटि होम केवल ग्रन्थोंमें ही देखने को मिलता है, उसका प्रयोगात्मक रूप नहीं देखा परन्तु उस यज्ञके बाद वैसा यज्ञ कभी नहीं देखा यह निःसंकोच कहा जा सकता है। उस अवसर पर यज्ञके लिए इतना दान मिला कि प्रतिदिन लाउडस्पीकर पर यह कहा जाता था कि—"अन्न दाता लोग क्षमा करें, इतनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वस्तुएँ इकट्ठी हो गई हैं कि अब इन्हें रखने को हमारे पास स्थानका अभाव है।" जनता की भीड़ का भी वैसा दृश्य कुम्भ पर्व को छोड़ अन्यत्र नहीं मिल सकता। मैंने वहाँ स्वामी जी से कहा कि इस अवसर पर सनातन-धर्मके समस्त प्राचीन और नवीन उपदेशकों को भी निमन्त्रण देना चाहिए जिससे एक बार सभी उपदेशकों और विद्वानोंका जमाव हो जाय। इसका भार भी स्वामी जी ने मेरे ही ऊपर छोड़ दिया। मैंने श्रीकालूराम शास्त्री, श्रीअखिलानन्द जी कविरत्न श्रीरलाराम जी, श्रीगणेशदत्त जी आदि जो-जो उस समय कार्य-क्षेत्रमें थे और वे भी जो अब विश्राम कर रहे थे, सभी से इस अवसर पर दिल्ली आनेका साग्रह अनुरोध किया। सभी शंकराचार्य रामानुजाचार्य प्रभृति आचार्यगण भी इस अवसर पर पधारे। श्रीमाधवाचार्य जी तो प्रारंभ से ही इसके प्रधान प्रबन्धकों में थे ही उन्होंने यह भी उत्साह प्रकट किया कि इस समय सनातनधर्म का पूर्ण उपदेशक मण्डल उपस्थित है अतः आर्य-समाजके भी प्रमुख उपदेशकों को निमन्त्रण दिया जाय। तब आर्य-समाजके उपदेशक भी आए तो स्वभावतः शास्त्रार्थ की भी चर्चा चल पड़ी और उसी विशाल पण्डाल में ३ दिन लेख-बद्ध शास्त्रार्थ का भी दृश्य उपस्थित हुआ।

इस कोटि होम यज्ञ की इतनी धूम मची कि प्रमुख धनिकों ने ऐसे यज्ञोंका अन्यत्र भी कई स्थानों पर आयोजन करनेका विचार स्वामी जी महाराजके सामने उपस्थित किया। इस यज्ञमें द्रव्य देने वाले अनेक थे और सामान्य जनता ने भी इसके लिए बहुत दान दिया था, प्रमुख भाग श्रेष्ठिप्रवर श्रीछोटेलाल जी कानोडिया और स्वर्गीय सेठ गौरीशंकर जी गोयनका का रहा। यज्ञमें जो द्रव्य बाकी बचा उससे अखिलभारतीयधर्मसंघ की स्थापना दिल्ली के निगमबोध घाट पर की गई जो कि आज भी अच्छी स्थितिमें चल रहा है। दिल्ली के उस यज्ञके उपरान्त कानपुर और काशीमें भी स्वामी करपात्री जी महाराजके द्वारा विशाल यज्ञोंका आयोजन हुआ और फिर तो स्वामी जी ने सारे भारत में ही यज्ञोंका ताँता सा लगा दिया। कानपुर और काशीमें भी यज्ञसे बचे हुए धनसे धर्म-संघ की शाखाओं की स्थापना की गई। काशीके धर्म-संघका भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप आज भी उल्लेखनीय है, यहीं बैठकर मैं अपनी यह आत्म-कथा लिखा रहा हूँ।

इसी समय की एक और घटना है मेरा अलवर नगरमें संस्कृत कालेज की अध्यक्षता स्वीकार करना। जयपुर संस्कृत कालेजसे अवकाश ग्रहण करनेके अनन्तर ही मुझे अलवर राज्यसे वहाँके संस्कृत कालेज की अध्यक्षता पर जानेका आह्वान मिला था। परन्तु जयपुरका संस्कृत कालेज राजपूताने की एक बड़ी संस्था थी यही नहीं इस सयय तक वह भारतमें एक प्रतिष्ठित शिक्षण-संस्था मानी जाती थी। वहाँका दीर्घकाल तक अध्यक्ष रह कर फिर किसी छोटी संस्थामें जानेका मुझे कोई उत्साह नहीं था, इसलिए मैंने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया। कुछ समयके बाद अलवर नरेशका विशेष आग्रह हुआ कि मैं वहाँके संस्कृत कालेज की बिगड़ती हुई स्थिति को सँभालूं। उन्होंने मुझे उनके संस्कृत कालेज की स्थिति को देखकर उसके सुधारके लिए एक योजना बना देने को भी कहा। मैंने एक विस्तृत योजना संस्कृत कालेजके स्वरूपको उन्नत करनेके लिए उन्हें बना कर दी। उस योजना को कार्यान्वित करनेके लिए अलवर नरेशने जयपुर नरेशको मुझे वहाँ जाने की प्रेरणा करने को लिखा। अलवरमें पूर्ण प्रतिष्ठासे रहनेका प्रबन्ध भी उन्होंने यह किया कि संस्कृत कालेजके प्रिंसिपल पदके अतिरिक्त राज्यका मुझे राजपण्डित भी बनाया। उस समय वहाँ इस प्रकारके चार प्रतिष्ठित पद माने जाते थे, राजपण्डित, राजपुरोहित, राजज्योतिषी और राजवैद्य। इस आग्रहके कारण मुझे वहाँ जाना पड़ा। अलवर से मेरा पहिले भी थोड़ा बहुत सम्बन्ध बना हुआ था। वर्तमान अलवर नरेश श्रीतेजसिंह से पहिलेके श्रीजयसिंह जी के शासनकालमें भी सभाओं अनेक बार सम्मिलित होनेका मुझे अवसर मिला था। जयपुरसे अलवर राज्य की सीमाएँ भी मिलती हैं। दूसरी ओर भरतपुर राज्य है। राज्योंके विलयनके उपरान्त अलवर मत्स्यराज्य में सम्मिलित किया गया था, अब ये सभी रियासतें राजस्थान राज्य के अन्तर्गत आगई हैं।

अलवर में मेरे मित्र श्री रामभद्र जी ओझा रियासतके एक ऊँचे अधिकारी थे। वे संस्कृत और आंग्लभाषा में पूर्ण प्रवीण थे। संस्कृतमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्यरचना बहुत अच्छी करते थे और शीघ्र करते थे। उनका मेरे गुरु श्रीविद्यावाचस्पति जी से पारिवारिक सम्वन्ध था और इसी सम्वन्धसे मेरा उनसे परिचय हुआ था, यह परिचय साहित्यचर्चाओं में प्रगाढ़ होता रहा। अलवरके भूतपूर्व नरेश श्रीजयसिंह जी और वादके नरेश श्रीतेजसिंह जी पर श्री पं० रामभद्र जी का पूर्ण प्रभाव था। जयसिंह जी की रजतजयन्ती पर अलवरमें वड़े-वड़े उत्सव मनाए गए थे। उन्हीं उत्सवोंमें एक सनातन-धर्मके उपदेशकों की सभा का भी कार्यक्रम था। श्रीरामभद्र जी ने उस अवसर पर मुझे भी अलवर राज्य की ओरसे निमन्त्रण भिजवाया था। वहाँ उपस्थित उपदेशक विद्वानों में स्वर्गीय व्याख्यानवाचस्पति श्रीदीनदयालु जी और उनके सुपुत्र श्रीहरिहर स्वरूप जी, श्रीज्वालाप्रसाद जी विद्या-वारिधि, भारत-धर्म महामण्डलके श्रीस्वामी दयानन्द जी तथा महात्मा हंस स्वरूप जी प्रभृति सम्मिलित हुए थे। अलवर नरेश श्रीजयसिंह जी स्वयं सभामें उपस्थित होकर उसकी अध्यक्षता करते थे। सभामें बहुत भीड़ रहती थी। प्रारंभ में स्वामीदयानन्द जी का अवतार वाद पर पहिले दिन सुन्दर व्याख्यान जमा। दूसरे दिन ज्वालाप्रसाद जी का व्याख्यान हुआ। महाराजा अलवर अपनी इच्छानुसार व्याख्यानका विषय और व्याख्यानका क्रम तत्काल निर्धारित करते थे। तीसरे दिन मुझे पुराणों पर बोलनेके लिए आदेश मिला। वहाँ के वोलने वालोंका क्रम अवसरके अनुकूल था। वक्तागण विषय पर कहने की अपेक्षा महाराजा जयसिंह की स्तुति अधिक करते थे। यह क्रम प्रारंभसे ही चल पड़ा। स्वामी जी के व्याख्यानके बाद अन्य तीन चार उस दिनके वक्ताओंने महाराजा की ही अत्यधिक स्तुति की थी, दूसरे दिन भी वही क्रम रहा। मेरे भाषण में मैंने पुराणके मुख्य विषय सृष्टि, प्रतिसृष्टि, वंश, मन्वन्तर वंशानुचरित आदिका विस्तृत परिचय देना प्रारंभ किया। मैं देख रहा था कि जनता मेरे भाषण को तल्लीन होकर सुन रही है, करीव आधा घन्टे मैं वोला होऊंगा कि महाराज जयसिंह उठकर मेरे पास आए और मेरे कानमें वोले कि—"पंडित जी, आप जो बातें कह रहे हैं वे वहुत गंभीर हैं, यहाँ की जनतामें इन वातों को कौन समझ रहा होगा, कुछ सरल बातें कहिये," मैंने विनयपूर्वक कहा "अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्टिसे मैं विषयों को बहुत सरलतासे कह रहा हूँ, आपकी आज्ञानुसार अब और भी सरलता से कहूँगा"। परन्तु वहाँ बात विषय की गंभीरता और सरलता की नहीं थी। महाराज का ध्यान शायद उस समय अपने विषयमें ही कुछ सुनने में केन्द्रित था। वह मैं कुछ कह नहीं रहा था। मेरा भाषण कुछ और आगे बढ़ा और पुराणों की सृष्टि प्रक्रिया को मनोरंजक बनाते हुए मैं कहने लगा। एक घन्टे से कुछ कम मैं बोल पाया था कि रामभद्रजी ने मुझे कहा कि महाराज कहते हैं कि अब आपका समय समाप्त हो चुका है। इससे उपसंहार के समय जो थोड़ी स्तुति महाराज की करनी पड़ती उससे भी मुझे छुट्टी मिली। कुछ दिन बाद श्रीजयसिंह जी राज्य च्युत होकर भारत भ्रमण कर रहे थे। एक अवसर पर एक सभामें आमन्त्रित होकर मैं अयोध्या गया हुआ था। वहाँ प्रातः सरयू नदी में स्नान करके तट पर सन्ध्योपासन कर रहा था। प्राणायाम कालमें कुछ देर नेत्र बन्द रहे। प्राणायाम कर चुका तब आँख खोलने पर देखा कि मेरे सामने एक पुरुष खड़ा है, पहिचाननेमें देर नहीं हुई कि ये अलवर नरेश श्रीजयसिंह जी थे। मुझे आसन से अभ्युत्थानके लिए प्रयत्न करते देखकर उनके मुंहसे "नहीं" "नहीं" शब्द निकला। मैं बैठा रहा और वह मेरे नमन और अभ्युत्थानार्थ प्रयत्न का नमस्कार और स्मित से उत्तर देकर चले गए। कोई बात नहीं हो सकी।

अलवर नरेशके ये पूर्व प्रसङ्ग अलवरके प्रसङ्ग से स्मरण हो आए। अस्तु, अलवर राज्यके इतने आग्रह पर मैंने अलवर जाना जाना तो स्वीकार कर लिया परन्तु मेरी शर्त वहाँ भी यही रही कि मैं बन्धन स्वीकार नहीं करूंगा और जब आवश्यकता हुई सूचना मात्र देकर बाहर जा सकूंगा। प्रारंभ में दो वर्षके लिए मुझे वहाँ आनेका आह्वान मिला। मैं उस समय लाहौर विद्यापीठमें था। वहाँसे जयपुर लौटते समय मैंने कुछ दिन रहकर अलवर की व्यवस्था देखनेका निश्चय किया। लाहौर विद्यापीठके कार्यकर्ताओं को भी मैंने इसकी सूचना दी।

अलवर मेरा निवास प्रायः दो वर्ष रहा। वह समय हमारे देशमें ऐतिहासिक उथल-पुथल का था। जैसा कि संकेत किया जा चुका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है मैंने लाहौरके मूलचन्द्रखैरातीराम सनातन-धर्मसंस्कृतविद्यापीठ का संचालन और अलवरसंस्कृत कोलेज की अध्यक्षता दोनों एक साथ करनेके लिए ग्रहण की थीं। मेरा संकल्प वर्षमें ६ मास अलवर तीन मास लाहौर और शेष तीन मास जयपुर रहना मैंने निश्चय किया था। लाहौरमें मेरे साथ मेरा दौहित्र दिनेशचन्द्र रहा करता था, वह वहाँ सनातन-धर्म आयुर्वेदिक कालेजमें पढ़ता भी था। मेरे भोजनादि निर्माणका भार उसी पर था। मेरे कुछ दिन साथ रहते-रहते उसे भोजनादि बनानेमें प्रवीणता प्राप्त हो गई थी। मेरी अनुपस्थितिमें भी वह लाहौर ही मेरे निवास-स्थान पर रहता और अध्ययन करता था। मैंने लाहौरसे लौटकर अलवर संस्कृत कालेज़ का कार्य-भार सम्हाला। अलवरके संस्कृत-कालेज की स्थिति अच्छी नहीं थी। छात्रों की संख्या भी अल्प ही थी और समुचित सुविधाओंका भी अभाव था। मैंने उसकी अभ्यु-न्नतिके लिए एक योजना बनाकर दी, परन्तु उसके कार्यान्वियन पर वहाँ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। वहाँके राज्य-कर्मचारी और आफिसर लोग प्रायः संस्कृत शिक्षा को उपेक्षा की दृष्टिसे देखनेवाले ही मालूम हुए। वहाँके होम-मिनिस्टर श्रीरघुवीरसिंह जी जो जावलीके अधीश्वर थे धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति थे और संस्कृत-शिक्षा की उन्नति के विषयमें मेरी योजना को कार्यरूप देने की आरंभ में कुछ उत्सुकता भी उन्होंने दिखाई, वहाँके महाराज श्रीतेजसिंह जी स्वयं भी मुझसे मिलने आये और कई बार मुझे भी अपने यहाँ विजयमन्दिर में बुलाया जो कि उनके महलका नाम है, परन्तु उनका वहाँका परिकर संस्कृतके अनुकूल नहीं था। जनता की रुचिको संस्कृत शिक्षा की ओर आकृष्ट करनेके लिए मैंने नियत क्रमसे कुछ सभाओंका आयोजन करवाया। ये सभाएँ वहाँके विशिष्ट पुरुषोंके स्थान पर आयोजित हुआ करती थीं और कुछ प्रमुख नागरिक और संस्कृतके विद्वान् इन सभाओंमें उपस्थित हुआ करते थे। इन सभाओंके अपने व्याख्यानों में मैं संस्कृतके विषयोंके महत्त्व का ही विशेष रूपसे प्रतिपादन किया करता था जिससे वहाँके लोगोंके हृदयोंमें संस्कृत शिक्षाके प्रति आकर्षण उदित हो। आंशिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपसे इसका फल भी यह तत्काल देखनेको मिला कि वहाँ की छात्र-संख्या जो कम होने लगी थी, तत्काल कुछ बढ़ने लगी। अन्य कालेजों की ही तरह वहाँ भी कालेजके साथ एक छात्रावासका प्रबन्ध है। उसका भवन भी संस्कृत कालेजके साथ ही संलग्न है। यह स्थान नगरसे बाहर एक तरफ था जिसे 'घोंडाफेर' नाममें वहाँ कहा जाता है। कालेजके बराबर ही एक राजकीय उद्यान है, जिसे 'नजर बगीची' कहा जाता है। कालेजके सामने ब्राह्मण बोर्डिङ्ग हाउस और क्षत्रिय बोर्डिङ्ग हाउस थे। उसके आगे एक छोटी पहाड़ी थी। अलवर नगर छोटी पहाड़ियों की तलहटी में बसा हुआ है।

यहाँ मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहा। वातावरण वहाँका बड़ा मनोरम था। प्रारंभ में मैं अपने छोटे पुत्र शिवदत्त को साथ लेकर वहाँ गया था, वही भोजनादि बनाया करता था। यह घटना सन् ४७ की है। उस समय सारे देशमें दंगे हो रहे थे, और जहाँ-जहाँ हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ रहते थे वहाँ-वहाँ बराबर दंगे होनेका भय बना रहता था। यात्राओंमें कई बार मैं आक्रमणसे बाल-बाल बचा था। इष्टदेवका स्मरण ही मेरा मुख्य बल था। दिल्ली और आगरामें मेरे साथ दो-तीन बार इस प्रकार की घटनाएँ इसी बीच में हुई थीं। इसी अवसरमें मुझे लाहौर जाना पड़ा। पंजाब में उस समय सभी नगरोंमें दंगे हो रहे थे। विद्यापीठ की परीक्षाओंका समय था अतः उसकी व्यवस्थाके लिए मेरी वहाँ आवश्यकता थी। उस समय ही वहाँ इतना आतंक छाया हुआ था कि पाकिस्तान बननेके बाद की घटनाओंका पूर्वाभास मिलने लगा था। मैं जिस दिन लाहौर पहुँचा उसी दिन शामको हमारे निवास-स्थानके सामने गोलबागमें पुलिसने एक भीड़ पर गोली चलाई जिससे लाशोंका ढेर लग गया। दूसरे दिन वैसी ही खबरें मुलतान, रावलपिण्डी, डेरा इस्माइल खाँ आदि प्रदेशोंसे भी आईं। लाहौरमें मुसलमानों और हिन्दुओं की संख्यामें दो प्रतिशतका फर्क माना जाता था। ४९ प्रतिशत हिन्दू और सिक्खों की सम्मिलित संख्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानी जाती थी और ५१ प्रतिशत मुस्लिम संख्या थी। पाकिस्तान की बात बहुत पहिलेसे उठ चुकी थी। इससे पहिले मैं जब लाहौर आया था तो लार्ड वेवल शिमलामें कांग्रेस और मुस्लिम लीगके सदस्योंके साथ भारतको स्वतन्त्रता देने की बात पर विचार कर रहे थे परन्तु पाकिस्तान की बात बीचमें आजानेसे कोई बात निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रही थी। मिस्टर जिन्ना और उनकी पूरी पार्टी पाकिस्तान की बात पर अडिग थी और उसके लिए डाइरैक्ट एक्शन की धमकी वे दे चुके थे। कुछ दिनों बाद लार्ड वेवल अधूरी योजना छोड़कर चले गए और उनके स्थान पर लार्ड माउन्टबेटन नियुक्त होकर आए। इन दिनों माउन्टबेटनके साथ जवाहरलालजी तथा जिन्ना साहब की बातचीतका ही जिक्र रोज-रोज समाचार-पत्रोंमें छपता था। गांधी जी उस समय तक पाकिस्तान माननेके बिलकुल पक्षमें नहीं थे। पंजाबमें मुसलमानों की तो पूरी तैयारी थी ही, हिन्दुओं की भी राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघ संस्था बड़े पुरुषार्थके साथ स्थितिसे निपटने को सन्नद्ध थी। सिक्खोंमें पर्याप्त आत्म-विश्वास और जोश नजर आता था।

मैं अपना परीक्षा आदिका कार्य समाप्त करके अलवर आया। कांग्रेसका आन्दोलन रियासतोंमें तेजी पर था। ग्रीष्मावकाशमें स्वामी करपात्री जी के कई यज्ञानुष्टानोंमें सम्मिलित हुआ। इन अवसरों पर कविरत्न अखिलानन्द जी, माधवाचार्य जी प्रभृति विद्वानोंसे भेंट होती रहती थी। धर्म-संघके शेखावाटीके अधिवेशनकी अध्यक्षता करने गया। पश्चिमी बंगालमें तारकेश्वरमें वर्णाश्रम स्वराज्य-संघका अधिवेशन था। उसका अध्यक्ष भी मैं ही निर्वाचित हुआ था, वहाँ भी गया। गंगाके तटका यह प्रदेश बहुत ही चित्ताकर्षक लगा। अवधके बलरामपुर के राजधर्म-मण्डलसे भी मेरा सम्पर्क हुआ। वहाँ प्रतिवर्ष उत्सव होता था। मुझे साग्रह बुलाया जाता था। वहाँ भी जाता रहा। वहाँ की जनता में गम्भीर विषयों को सुनने की बहुत अभिरुचि देखी। वहाँकी रानी साहब बड़ी विदुषी हैं। उन्हीं की प्रेरणा से ये आयोजन होते थे। वे स्वयं पर्देमें बैठकर पूरे समयतक सभामें भाषण सुनती थीं। वहाँ सत्कार भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खूब हुआ करता था। एक बार जयपुरसे बलरामपुर जाते समय मेरा सारा सामान कम्पार्टमैन्टसे चोरी चला गया। रानी जी को विदित होने पर उन्होंने मेरे बहुत निषेध करने पर भी पूर्ण क्षति पूर्ति की। उस सामानमें मेरे ट्रंकमें अनेक विषयोंके मेरे लिखे, वर्षों से संगृहीत नोट्स थे। उनके चले जानेसे मेरी भारी क्षति हुई। अस्तु,

अगस्तमें मैं लाहौर जानेके लिए प्रस्थान कर जयपुरसे देहली आया। पाकिस्तानके निर्माण की घोषणा हो चुकी थी, भारत स्वतन्त्र हो गया था। लाहौरमें मेरी अनेक आवश्यक सामग्री रह गई थीं। देहलीमें समाचार मिला कि पूरे पंजावमें भीषण मार-काट मच गई है। लाहौरसे देहली पहुँचने वाली गाड़ियाँ बुरी तरहँ भरी हुई आ रही थीं, यात्री बेहाल थे। मैंने निश्चय किया कि ४-५ दिनोंमें जव स्थिति शान्त हो जायगी, तब चलूंगा। तबतक के लिए देहली ही रुका रहा। उस समय तक अफवाह यह थी कि रावी नदी को सीमा माना गया है और लाहौर भारत में ही रहेगा। धीरे-धीरे स्थिति विषम होती चली गई। शरणार्थियों से दिल्ली भरती ही चली गई। कलतक जो बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओंमें निवास कर रहे थे, वे देहली की सड़कों और गलियों में किसी तरह पड़े रह कर समय विताने लगे। राजनीतिका भीषण रूप सामने था। जिनके सामने वह दृश्य उपस्थित था, जो उसके भुक्त भोगी थे, वे स्वतन्त्रताके संघर्षको रक्तहीन क्रान्ति कहे जाने पर हँस देते हैं। अंग्रेजोंके साथ यदि सशस्त्र संघर्ष किया गया होता तो भी शायद इतना रक्त न बहता, इतनी क्षति न होती, यह विचार मनमें अपने-आप आते थे। जब यह स्थिति होगई कि दिल्लीसे लाहौर की ओर बढ़ना सम्भव ही न रहा तो मैं अलवर चला गया। मेरा छोटा पुत्र शिवदत्त मेरे साथ था।

अलवर राज्यका वातावरण भी बड़ा उत्तेजनापूर्ण बना हुआ था। यह पाकिस्तान की घटनाओंका उत्तर था। हम अपने निवास-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान से खड़े होकर देखते थे कि चारों ओर अग्निकांडोंका दृश्य देखने में आ रहा था। धीरे-धीरे अलवर और भरतपुर राज्योंसे अशान्ति मिटी। केन्द्रमें कांग्रेसका मंत्रिमंडल बन गया। अलवर भरतपुर आदि कुछ राज्योंका विलयन कर मत्स्यप्रदेश बनाया गया। देहली में उन्हीं दिनों करपात्री जी ने धर्मयुद्ध आन्दोलन पाँच माँगों को लेकर छेड़ दिया था। एक दिन मैंने भी एक जत्थेका नेतृत्व किया। मेरे साथ ३० व्यक्तियोंका जत्था था। शिवदत्त भी मेरे साथ ही था। हमें मजिस्ट्रेट ने एक लारीमें बिठाकर पानीपतके नजदीक छोड़ दिया। यही प्रक्रिया प्रतिदिन काममें लायी जाती थी। लारीसे उतरनेपर मजिस्ट्रेट मुझे अन्य लोगोंसे हटाकर एक-तरफ ले गया। उसने मेरा चरण स्पर्श कर कहा कि मैंने आपसे लाहौरमें कुछ दिनों तक अध्ययन किया है। सनातन-धर्म कालेजमें रहते हुए प्रिंसिपल रघुवरदयालु जी ने प्रतिदिन १ पीरियड सभी अंग्रेजीके छात्रोंके लिए धर्मोपदेशका रख दिया था। वह क्लास मैं ही लेता था। उसीमें इन महाशयने भी मुझसे कुछ शिक्षा प्राप्त की थी। अन्य भी अनेक संभ्रान्त पुरुष समय-समय पर वहाँ पढ़े हुए मुझे मिल जाया करते हैं, यद्यपि मैं उन्हें नहीं पहिचान पाता, परन्तु वे मुझे अपना गुरू बतलाते हैं।

अलवर लौटने पर काशीके राजकीय संस्कृत कालेजसे दीक्षान्त समारोहके अवसर पर दीक्षान्त भाषण करनेका निमन्त्रण मुझे मिला। मेरे आदरणीय मित्र डा० श्रीमंगलदेव शास्त्री जी उस समय वहाँके अध्यक्ष थे। उन्होंने आग्रह भी किया था। मैंने स्वीकार कर लिया और दीक्षान्त भाषण करने देवीदत्त को साथ लेकर काशी गया। डा० सम्पूर्णानन्द जी उस समय उत्तर प्रदेशके शिक्षा मन्त्री थे और दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता करने वहाँ आये थे। मैंने प्रायः एक घण्टेके अपने भाषणमें संस्कृत भाषाका महत्त्व और संस्कृत स्नातकोंके स्वतन्त्र भारतमें प्राप्त कर्तव्योंका विस्तारसे विवेचन किया। प्रयागमें उन दिनों कई विशिष्ट आयोजन हो रहे थे। मुझे भी वहाँ के निमन्त्रण प्राप्त हुए थे। वहाँ पहुँचा। वहीं गांधी जी की हत्याका समाचार प्राप्त हुआ। वहाँसे अलवर लौटने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर ज्ञात हुआ कि मत्स्य-प्रदेशके शिक्षा सचिव महाशय जो मेरे प्राचीन परिचित थे मेरी धार्मिक प्रवृत्तियों से नाराज हैं। अलवरमें मेरा कार्य काल समाप्त होगया था। मैं जयपुर लौट आया।

राष्ट्र-भाषा की समस्या जोरों से उठ खड़ी हुई। नवनिर्मित संसदमें टंडन जी हिन्दी के पक्ष में अड़ गए थे। उन्हींके प्रयत्नसे उस समय हिन्दीके समर्थनके लिए कई ऊँचे स्तरके वृहद् आयोजन हुए। दिल्ली में एक "राष्ट्र-भाषा व्यवस्था परिषद्" बुलाई गई। स्वर्गीय इन्द्र विद्यावाचस्पति और सेठ गोविन्ददास जी उसके आयोजकों में प्रधान थे। मुझे भी बुलाया गया। सभी प्रान्तों के विशिष्ट विद्वानों ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनानेका प्रबल समर्थन किया। मुझे इन्द्र जी ने संस्कृत में बोलने को कहा। मैंने प्रायः आधे घण्टेके सस्कृत भाषणमें संस्कृत जगत् की ओरसे हिन्दीका समर्थन किया। प्रथम कानून मन्त्री डा० अम्बेडकर ने 'हिन्दू कोडबिल' तैयार किया था। हिन्दू सामाजिक मर्यादाओं की उसमें आद्योपान्त अवहेलना थी। भारतीयता की प्राणभूत विवाह विधि पर खुला आघात उसमें था। सभी ओर उसका प्रबल विरोध हुआ। मैंने सभी आयोजनोंमें भाग लिया, स्वयं भी कई आयोजन कराये। राष्ट्रपति श्रीराजेन्द्र बाबू, श्रीनेहरू जी तथा सरदार पटेल से शिष्ट-मंडल भी कई बार मिले। मैं भी उनमें गया। नेहरूजी के साथ वार्तालापमें कुछ कटुता भी आगई। परन्तु राजेन्द्र बाबू और सरदार पटेल ने हिन्दू कोडबिल की धाराओं से अपनी असहमति प्रकट की। अन्ततः उस समय वह बिल पास नहीं किया गया। देशव्यापी विरोध को देखते हुए और आगामी महानिर्वाचन की बात देखते हुए तथा राजेन्द्रबाबू के कड़े रुख का देखते हुए सम्भवतः हिन्दू कोडबिल उस समय रोक दिया गया। धर्म-विरोधी कानून का यह मैंने तीसरी बार विरोध किया था। इससे पहिले शारदा बिल तथा पटेल बिल का विरोध मैंने किया था। हिन्दू कोडके विरोधके प्रसंगमें कई बार देहली आना होता था। देहली में मैं अपने सजातीय सम्बन्धी भाई अमरचन्द्र जीके यहाँ ठहरा करता था। जवतक श्रीहरनारायण शास्त्री जी जीवित रहे तबतक उनके यहाँ ही ठहरता था। महामना मालवीय जी के सुपुत्र श्रीगोविन्द मालवीय उन दिनों हिन्दू विश्व-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यालयके वाइसचान्सलर थे। उसी अवसर पर हिन्दू-विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर समाहूत प्राच्यविद्यासमिति में सम्मिलित होने मैं देहली से ही काशी गया। वहाँ प्राच्य-विद्या-समिति में यह प्रस्ताव पारित हुआ कि दीक्षान्त समारोहके अवसर संस्कृत विद्वानों को भी 'डी० लिट्' के समान सम्मानित 'वाचस्पति' उपाधि दी जाय। तत्काल मेरे ही नाम का प्रस्ताव भी उपस्थित हुआ। मैंने पहिले तो इसका निषेध करते हुए कहा कि इसके लिए मुझसे भी बड़े विद्वान् बहुत हैं, यह सम्मान उन्हें दिया जाय, फिर इस विचार से कि मेरी उपस्थितिके कारण इसका विरोध करने वाले चुप रहेंगे, मैं मीटिंगसे उठकर चलने लगा, इसपर समितिके अध्यक्ष श्री प० कालीप्रसाद जी ने कहा कि सब कुछ पहिले ही ऊपर की समितिमें निर्णीत हो चुका है। यहाँ नियम पूर्तिके लिए स्वीकृति मात्र देनी है। वहाँ यह भी गौरव प्राप्त हुआ कि सम्मानित डी० लिट् उपाधि प्राप्त करनेवाले विद्वानोंसे पहिले मुझे 'वाचस्पति' उपाधि दी गई और आगे भी पहिले संस्कृत की उपाधि देने की परम्परा रही। श्रीगोविन्द मालवीय जी के वाइसचान्सलर पद पर रहने तक यह उपाधि दी गई। आगेके वाइसचान्सलरों ने शायद इसको आगे नहीं बढ़ाया। उसी समय श्रीगोविन्दमालवीय जी ने मुझसे कहा कि आजकल आप किसी विशेष कार्य पर नियुक्त नहीं हैं अतः हिन्दू-विश्वविद्यालयमें आजाइये। मैंने कहा कि अब मैं सत्तर वर्षका हो गया हूँ अतः किसी बन्धनके कार्य-भार को नहीं उठा सकता। इस पर उन्होंने कहा कि आपके ऊपर कोई बन्धन नहीं होगा। आप जब जहाँ चाहें जांय। जब चाहें यहाँ रहें। मैंने पूछा कि आप मुझे वहाँ किस पद पर रक्खेंगे, तो उन्होंने बताया कि महामहोपाध्याय श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण हिन्दू-विश्वविद्यालयके संस्कृत महाविद्यालयके अध्यक्ष पदसे जब रिटायर्ड हो गए थे तब कुछ और उन्हें विश्वविद्यालय में रखनेके लिए "संस्कृत-शिक्षा संचालक" का एक नया पद बनाया गया था। उनके बादसे वह पद खाली है। उसी पर आपको रक्खा जायगा। उनका मानाग्रह देख मैंने उन्हें अपनी स्वीकृति दे दी। अन्तिम अवस्थामें काशी निवास की मेरी आन्तरिक अभिलाषा भी थी। सन् १९५० के मध्य में निवासार्थ मैं काशीहिन्दूविश्वविद्यालयमें चला गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

७८ वीं जन्मतिथि का स्वागत समारोह—

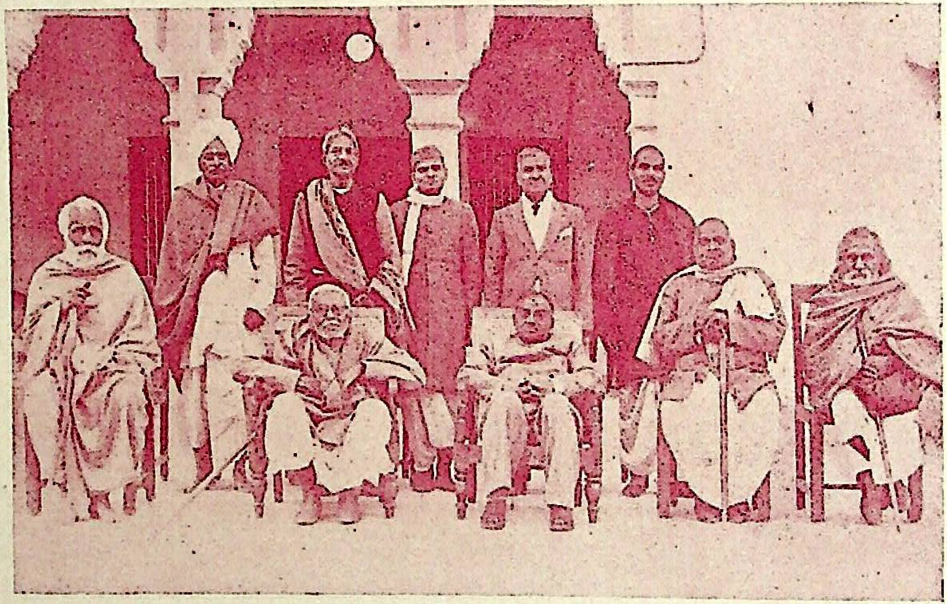

बाँये से खड़े हुए : १. श्री गयाप्रसाद ज्योतिषी, २. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ३. श्री रघुराज शास्त्री, ४. श्रीयुत् सिंहल, ५. श्री रामाधीन चतुर्वेदी।

बैठे हुए : १. पंडितराज राजेश्वर शास्त्री द्रविड़, २. म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, ३. श्रीमान् एन. एच. भगवती (वाइस-चान्सलर B.H.U.), ४. श्री विश्वनाथ शास्त्री, ५. श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु।

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाराणसी निवास

इस प्रकार जीवनके अन्तिम दिनोंमें मुझे भगवान् विश्वनाथके त्रिशूल पर संस्थित महामहिमामयी वाराणसीका निवास प्राप्त होगया। गंगाका सान्निध्य मैं पहिले दीर्घकाल तक हरिद्वारमें भी प्राप्त कर चुका था। परन्तु वहाँका जीवन युवावस्था का जोश भरा जीवन था, वहाँ की गांगधारा भी उद्दाम वेगवती थी, इस समय वार्धक्यमें उत्साहके स्थान पर शरीरमें शैथिल्यका प्रवेश और आधिपत्य हो चुका था, यहाँ गांगधारा भी प्रशांत है।

वाराणसीका संस्कृत का विद्वत्-समाज विश्वविख्यात है। अतः विद्वानोंके निरन्तर साहचर्यका अपूर्व आनन्द भी इस अवस्थामें प्राप्त हुआ। यहाँ शतशः संस्कृत विद्यालयों के उत्सवों तथा समारोहोंमें निरन्तर विद्वत्साहचर्य बना रहा। यह भी मेरा सौभाग्य रहा कि अपने वार्धक्यके अनुरूप बड़े विद्वानों ने भी मुझे इतना आदर सर्वदा प्रदान किया कि उसके भार से मैं लदा ही रहा। हिन्दू-विश्वविद्यालयमें मेरा निवास चार वर्षसे कुछ अधिक रहा। यहाँके संस्कृत महाविद्यालय के आचार्य कक्षासे समुत्तीर्ण छात्र अन्वेषणके लिए चक्रवर्ती श्रेणीमें प्रवेश लेते थे, उन्हें शोधनिबन्ध लिखनेका प्रशिक्षण देना मेरा प्रमुख कार्य था। इससे पूर्व कुछ दिनों प्रशासन-सम्बन्धी कार्य भी मुझे दिया गया था। श्रीगोविन्द मालवीय जी मेरे आने के दो वर्ष बाद उपकुलपति नहीं रहे। उनके उपरान्त आचार्य नरेन्द्रदेव जी उपकुलपति बने। उनके कार्यकाल में भी मैं दो वर्ष वहाँ रहा। रघुराज शास्त्री ने मेरे निर्देशमें "वैदिकीसृष्टिप्रक्रिया" विषय पर शोध-निबन्ध प्रस्तुत कर चक्रवर्ती उपाधि, जो पी० एच० डी० के समकक्ष है, प्राप्त की तथा रामाधीन शास्त्री ने "संस्कृते भाषाविज्ञानम्" शीर्षक प्रबन्ध प्रस्तुत कर चक्रवर्ती उपाधि प्राप्त की। काशीके विद्वान् 'सुप्रभातम्' पत्रके सम्पादक श्रीकेदारनाथ जी सारस्वतने संस्कृत-साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन ऋषीकेशमें आयोजित किया। इससे पूर्वके काशी के अधिवेशन की अध्यक्षता मैंने ही की थी। संस्कृत रत्नाकर भी श्रीनागेश उपाध्याय जी के द्वारा प्रकाशित किया जा रहा था। ऋषीकेशमें कानपुरके रईस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीहरगोविन्द मिश्र जी ने अध्यक्षता की। उसके उपरान्त संस्कृत-साहित्य-सम्मेलनका कार्यालय देहलीमें स्थापित हुआ। वर्तमान में यह सम्मेलन देहली में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। केदारनाथ जी सारस्वतके बाद इसका भार श्रीयुत मंडन मिश्र जी पर रक्खा गया। इन्होंने उत्साह पूर्वक इस कार्य को सम्हाल लिया जिसकी मुझे प्रसन्नता है। आगे जालन्धर, बम्बई, दिल्ली, चित्तौड़, में केदारनाथ सारस्वत ने सम्मेलनके विशाल अधिवेशनोंका आयोजन किया। इनमें मैं सम्मिलित हुआ। मैंने सम्मेलनके अधिवेशनके अवसर पर एक नियत शास्त्रमें नियत ग्रन्थोंमें शलाका परीक्षा प्रारंभ करनेका सुझाव दिया, जिसका प्रारंभ श्रीजयदयाल गोयनका ने एक सहस्र रुपया परितोषिक के रूपमें देकर जालन्धरमें किया। यह परीक्षा व्याकरणके प्रमुख ग्रन्थोंमें निश्चित की गई थी। तीन व्याकरण विद्वान् इसके परीक्षक थे, श्री पं० कालीप्रसाद जी मिश्र, श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, और तीसरा मैं ही था। जालन्धरके अधिवेशनमें यह १ सहस्र का पुरस्कार खुले अधिवेशनमें चार घन्टा परीक्षा लेकर वाराणसी के श्रीरामप्रसाद जी त्रिपाठी को दिया गया। रामप्रसाद जी की व्याकरण प्रौढ़िसे तथा अन्य शास्त्रोंके ज्ञानसे मुझे पर्याप्त प्रसन्नता हुई। मुझे आशा है कि ये महाशय देशमें एक अच्छे विद्वान् बनेंगे। देहली के अधिवेशनमें वेदान्त दर्शन में शलाका परीक्षा ली गई। इसके परीक्षकोंमें मेरे अतिरिक्त श्री पं० लक्ष्मीनाथ झा तथा श्री पं० पुरुषोत्तम जी चतुर्वेदी थे। यहाँ भी खुले अधिवेशन में श्रोताओं से भरे हुए पंडाल में ३ घण्टे तक प्रश्नोत्तर चला और उपस्थित प्रत्याशियोंमें दो प्रत्याशियोंके समान अङ्क होनेसे पुरस्कार की एक सहस्र द्रव्य राशि को दोनोंमें समानरूप से विभक्त कर दिया गया। इनमें एक मेरे छात्र श्री शशिधर शास्त्री हैं जो पर्वतीय प्रदेशमें अच्छे विद्वान् हैं। जालन्धरके अधिवेशनमें श्रीनरहरि विष्णु गाडगिल साहब अध्यक्ष थे। उनके आनेसे सम्मेलन को बड़ी दृढ़ता मिली। इसकी चर्चा सरकारी मन्त्रियोंमें भी पहुँची। चित्तौड़ अधिवेशन में दातार साहब, जो भारत सरकारके गृह-सचिव थे, अध्यक्ष बने। देहली अधिवेशन की अध्यक्षता भारत सरकार के उस समय के वित्तमन्त्री श्रीचिन्तामणि देशमुख जी ने की। वहाँ केदारनाथ जी ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरे ७५ वर्ष पूर्ति के उपलक्ष में मेरी हीरकजयन्ती मनानेका आयोजन किया। दरभंगा नरेशने उस आयोजन की अध्यक्षता की। मुझे दस हजार रुपये की एक थैली भी भेंटमें मिली।

इसके उपरान्त मंडन मिश्र जी ने सम्मेलन का अधिवेशन महानगर कलकत्ता में आयोजित किया जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू ने किया। वहाँ भी मैं उपस्थित था। अभी गाजियाबादके अधिवेशन में भी मैं सम्मिलित हो आया हूँ जिसकी अध्यक्षता श्री लालबहादुर शास्त्रीजी ने की है। सम्मेलन के द्वारा देहली में परिचालित संस्कृतविद्यापीठ भी उन्नति कर रहा है। सारे भारत के सभी प्रान्तों में विगत सौ वर्ष की संस्कृत की सर्वविध प्रगति का लेखा जोखा प्रस्तुत करने के लिए एक विश्वसंस्कृतशताब्दी-ग्रन्थमाला के प्रकाशन का प्रारम्भ भी किया गया है। इसका मुझे ही प्रधान सम्पादक बनाया गया है। काश्मीर का भाग प्रकाशित हो चुका है। यह योजना बहुत अच्छी है।

जब मैंने हिन्दूविश्वविद्यालय का निवास छोड़ा उससे पूर्व काशीनरेश महाराज श्री विभूतिनारायण सिंह जी महानुभाव ने रामनगर के शिवमन्दिर में शिवपुराण पर ११ दिनों तक मेरा प्रवचन कराया। उन प्रवचनों को सुन कर उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मैं सारे पुराणों के विषयों का निरूपण करते हुए एक ग्रन्थ लिखूं। उसके लिए उन्होंने अच्छा परितोषित भी देने का निर्णय किया। मैंने उसका प्रारंभ भी किया। ५–६ वर्षों के परिश्रम से संस्कृत में मैंने पुराणपरिजात नाम से उस ग्रन्थ को लिखकर उसका एक भाग प्रकाशनार्थं महाराजा की सेवा में उपस्थित कर दिया, मेरे घनिष्ठ और सजातीय पडित पुरुषात्तम चतुर्वेदी जी, जिनका संकेत पहिले आचुका है, इन दिनों मेयो कॉलेज, अजमेर की अपनी सर्विस छोड़ कर काशीनरेश, जो अजमेर में उनसे शिक्षा-ग्रहण कर चुके थे, उनके संरक्षण में रामनगर में ही निवास कर कर रहे थे। उन्होंने भी इस ग्रन्थ को मुझसे लिखने के लिए महाराज को प्रेरणा की होगी।

दुःख है कि महाराज श्री काशीनरेश के द्वारा निर्मितपुराण ट्रस्ट के गोरखधन्धे में पड़कर मेरा वह परिश्रम से लिखा गया ग्रन्थ कई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्षों के उपरान्त अब तक भी प्रकाशित नहीं हो पाया है। जब उसके प्रकाशन का सुदिन आयेगा तभी मेरा वह परिश्रम सफल होगा। महाराज काशीनरेश उसके उपरान्त भी प्रायः प्रतिवर्ष मुझे विभिन्नपुराणों के प्रवचनों के लिए बुलाते रहे। उनके जैसे मेधावी, धर्मनिष्ठ राजा को प्रवचन सुनाने का मुझे भी उत्साह रहा करता था। जब से मेरी वाक् शक्ति पर पक्षाघात का आक्रमण हुआ है तब से वह क्रम बन्द है।

गीता प्रवचन

हिन्दू विश्वविद्यालय के निवास काल में ही मैंने प्रति रविवार को होनेवाले गीता प्रवचन में गीता के प्रत्येक श्लोक पर प्रवचन करना प्रारंभ कर दिया था। गीता प्रवचन का यह क्रम श्रद्धेय मालवीयजीने प्रारंभ से ही यहाँ चलाया था जो अबतक चला आ रहा था। श्रद्धेय मालवीय जी के कार्यकाल में मैं जब कभी काशी आया करता था तो उनकी आज्ञा से उनके सामने भी गीता पर प्रवचन किया करता था। यहाँ का क्रम यह था कि संस्कृतमहाविद्यालयके विद्वान् तथा अन्य विद्वान्‌भी प्रत्येक रविवारको गीता पर व्याख्यान सुनाते थे। मुझसे जब प्रथम प्रवचन कराया गया तो उसे सुनकर प्रोवाइस चान्सलर श्री नारलीकरने यह इच्छा प्रकटकी कि जबतक मैं अस्वीकार न करूँ, मेरा ही प्रवचन कराया जाय। मैं ने भी यही उत्तर दे दिया कि अस्वस्थता और वाराणसी से बाहर जाने अथवा किसी अत्यावश्यक कार्य व्याघातको छोड़ कर गीता प्रवचन करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। उसके उपरान्त मैंने प्रारंभिक पद्यसे ही प्रवचनका कार्य उठाया। गीता पर मनन चिन्तनकी सामग्री विपुल मात्रामें सुलभ है। सभी आचार्योंके अपने-अपने मतोंके प्रतिपादक भाष्य, लोकमान्य बालगंगाधर तिलकका गीतारहस्य, मेरे गुरु विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी ओझाका गीता पर विज्ञान भाष्य तथा अन्यान्य आधुनिक गीता ग्रन्थोंका सम्यक् मननकर मैं यह प्रवचन किया करता था। हिन्दूविश्वविद्यालयके विद्वानोंके बीचमें गंभीर विषयोंको कहनेमें भी मन लगता था। मेरे प्रवचन क्रमको आग्रह पूर्वक चलाने में गीता-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाराणसी में पौत्र के यज्ञोपवीत के अवसर पर सपरिवार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

उपराष्ट्रपति से चर्चा—

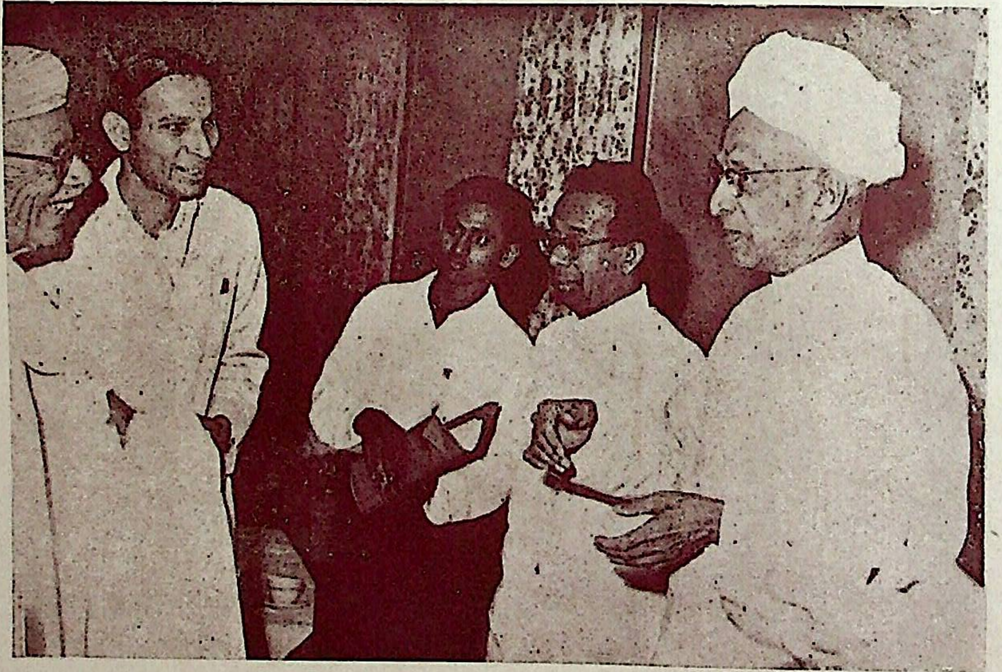

म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, प्रो० हुमायूँ कबीर, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (उपराष्ट्रपति)

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समितिके मन्त्री डा० भीखनलालजी आत्रेय महोदय ने रुचि ग्रहण की थी। पहिले तो प्रारंभ और अन्तिम दिन स्वयं वाइसचान्सलर भी गीता प्रवचन सुनने आते थे, परन्तु जब श्री बीजावत साहब प्रोवाइस चान्सलर बने तब नारलीकर साहब की प्रेरणा से वे प्रारंभ में गीता सुनने आये और तबसे निरन्तर वे गीता प्रवचनके श्रेष्ठ श्रोता बने रहे। जब श्री भगवती महोदय वाइसचान्सलर बने तो वे भी नियमितरूप से गीताप्रवचन सुनने आते रहे। प्राय: ८वर्षों में मैंने गीतापर अपना प्रवचन पूर्ण किया।

विश्वविद्यालयका निवास छोड़कर मैं काशीमें नगरमें रहने लगा था। वहाँसे रविवार को विश्वविद्यालय जाया करता था। गीता पर मेरे प्रवचनोंका लेखन और मुद्रण करानेके लिए प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता और इतिहासके विद्वान् डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जी महोदय ने रुचि ली और मुझसे लिखवाकर अपनी देख-रेखमें काशीहिन्दूविश्वविद्यालय के नेपाल प्रकाशन फण्डसे तीन भागों में उसे प्रकाशित कराया। जब दूसरा भाग पूर्ण होगया तभी पक्षा-घातके कारण मेरी वाणी अस्पष्ट होगई और तब मेरे प्रवचनोंके नोट्सके आधार पर तीसरा भाग मेरे कनिष्ठ पुत्र शिवदत्त ने पूरा किया। वह भी श्रीयुत वासुदेवशरण जी ने मुद्रित करा दिया। गीता पर प्रवचन पूर्ण होजानेके अनन्तर वाइसचान्सलर श्रीभगवती जी ने मुझसे उपनिषदों पर प्रवचन करनेका आग्रह किया। उसे स्वीकार कर मैंने क्रमश: उपनिषदों पर प्रवचन किया। सप्तम उप-निषद् पर प्रवचन करने के हेतु जब जाने की तैयारी मैं कर ही रहा था, स्नान कर चुका था, तभी वस्त्र पहिनते-पहिनते ही मेरी आवाज रुक गई और चिकित्सामें अबतक पड़ा हूँ। कविराज श्रीव्रजमोहन दीक्षित जी तथा काशीके अन्य प्रमुख वैद्यों ने मेरी चिकित्सा की। एक दिन कृपा पूर्वक कविराज श्रीसत्यनारायण शास्त्री जी मुझे देखने आये, लखनऊसे शालग्राम शास्त्री जी के सुपुत्र, जो चिकित्सामें प्रवीण हो चुके हैं, श्रीकान्त शास्त्री, वे भी समय-समय मेरी चिकित्साके लिए आते रहते हैं। इस चिकित्सा का ही यह सुपरिणाम हुआ कि भाषण करने योग्य वाक्शक्ति तो मुझे पुन: प्राप्त न हो सकी परन्तु लेटे-लेटे धीरे-धीरे बोलकर कुछ-कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिखाते रहनेका क्रम कुछ दिन बाद ही चल पड़ा। उपनिषदों पर मेरे प्रवचनों को रिकार्ड किया गया था। उनसे पुनः लेखन कर प्रकाशित करानेका कार्य भी हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा हो रहा है। इसी बीच मेरी स्वस्थ दशामें बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् के अध्यक्ष—श्रीशिवपूजन सहाय जी ने "वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति" विषय पर मुझसे एक पुस्तक परिषद् के लिए लिखने का आग्रह किया। तदनुसार मैंने उक्त विषय पर पुस्तक लिखी। उसके उपरान्त श्रीशिवपूजन सहाय जी ने परिषद् के नियमानुसार मुझे पटना बुलाकर वहाँ मेरे उक्त विषय पर पाँच व्याख्यान करवाए। एक सहस्र मुद्रा दक्षिणा वहाँसे प्राप्त हुई। इस पुस्तकके मुद्रण होनेके अनन्तर यू० पी० तथा राजस्थान सरकारसे पुरस्कार इस पुस्तक पर मिला और फिर देहली की साहित्य अकादमीका पाँच सहस्रका पुरस्कार भी डा० राधाकृष्णन् महोदयके हाथोंसे ग्रहण करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इससे कुछ वर्ष पूर्व भारत-सरकार ने प्रतिवर्ष सम्पूर्ण भारतमें से चुने हुए संस्कृतके चार विद्वानों को सम्मान पत्र और पन्द्रह सौ रुपया वार्षिक देने की घोषणा की थी। उनमें सर्व प्रथम सन् १९५८ के लिए जिन चार विद्वानों को चुना उनमें मेरा भी चयन किया गया। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के कर कमलोंसे सम्मानपत्र ग्रहण करनेका गौरव भी मैंने प्राप्त किया। यह सव अपने गुरूओंके प्रसाद और आशीर्वाद का ही फल है अन्यथा इतने सम्मान ग्रहण करने की मुझ में ऐसी कोई योग्यता हो, ऐसा मेरा अनुभव नहीं है।

मनीषिवर श्री संपूर्णानन्दजीके सत्प्रयत्नों से काशीमें संस्कृत विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई। उसके प्रथम उपकुलपति श्रीमान् आदित्यनाथ झा महोदयने अन्य कतिपय विद्वानोंके साथही मुझे भी संस्कृत विश्वविद्यालयका संमानित प्राध्यापक बनाया। मुझसे "गंगानाथझा व्याख्यान माला" का आरंभ करनेके लिए तीन व्याख्यान भी वेद विषययक उन्होंने कराए। मेरे निवेदन पर उन्होंने वैदिकविज्ञान का भी पाठ्यक्रम वहाँ प्रचलित किया। मेरे शिष्य श्री रघुराजशास्त्रीको वहाँ प्रवक्ता पदपर स्थापित किया। श्री सम्पूर्णानन्दजी आजकल राजस्थान के राज्यपाल हैं। वहाँ भी एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मथुरा में दानवीर बैजनाथ जी चौबे की कांस्यमूर्ति का अनावरण

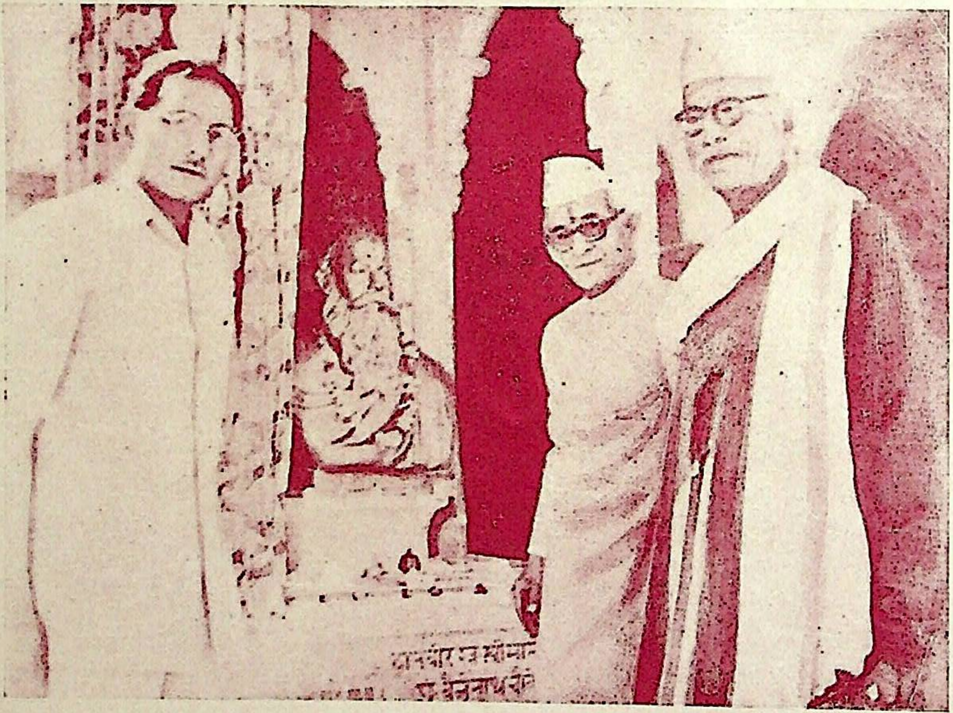

डा० बरसाने लाल जी चतुर्वेदी, श्री के० एम० मुन्शी (राज्यपाल), म०म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना का उनका सत्प्रयत्न चल रहा है। इसप्रकार के संस्कृत के विद्वानों के हाथ में प्रशासन की बागडोर रहने पर ही संस्कृत भाषा का पुनरुत्थान होना संभव है।

दो विशिष्ट यात्राएं—

अपने वाराणसी निवास काल में भी कार्यवश तो मैं अनेक यात्राएं करता ही रहता था। मथुरा के माथुर चतुर्वेद विद्यालय की प्रवन्धकारिणीसमिति का प्राय: ४० वर्षोंसे मैं ही अध्यक्ष था। अत: प्राय: प्रतिवर्ष ही मथुरा जाना होता था। कुछ वर्षों से वहाँ मुकदमेबाजी का अप्रिय प्रसंग उपस्थित हो गया था। उसका विवरण यदि आवश्यक हुआ तो आगे दिया जायगा। अन्य भी अनेक यात्राएँ भाषणादि के लिए मुझे स्वीकार करनी होती थी। यद्यपि यात्राओं में वृद्धावस्था के कारण अधिक कष्ट होने लगा था परन्तु कर्त्तव्यवश जाना ही पड़ता था। परन्तु दो यात्राएँ मैंने धार्मिक कर्त्तव्य पालनार्थ कीं। पहिली बदरीनाथ यात्रा और दूसरी कामरूप के कामाख्यापीठ की यात्रा। बदरीनाथ यात्रा की इच्छा अनेक वर्षों से रहने पर भी पैदल चलने की असुविधा के कारण वह यात्रा मैं नहीं कर पाया था। अन्य सभी तीर्थ स्थानों की यात्राएँ मैं कर चुका था। सन् १९५७ के ग्रीष्म में मैंने सपरिवार वह यात्रा भी सन्पन्न की। कनिष्ठ पुत्र शिवदत्त ही उस यात्रा में मेरे साथ रहा। पत्नी और मैं चार वाहकों वाली दण्डी में बैठे। मण्डली के अन्य सदस्यों में मेरे निकट सम्बन्धी जयपुर के श्री हीरालालजी चौबे आदि थे। प्रसिद्ध सन्त और तान्त्रिक विद्या के पारंगत श्रद्धेय भोपाबाबा (इसी नाम से वे विख्यात हैं) भी हमारी मण्डली का नेतृत्व कर रहे थे। ऋषिकेश से प्रारंभ कर पहिले हम केदारनाथ गए। वहाँ मार्ग में यात्रा लाइन से तीन मील हटकर नीचे की ओर कालीमठ नाम का एक सिद्ध-पीठ है। अन्यलोग वहाँ नहीं गए। हम तीनों ही वहाँ गए। उस स्थान की रमणीयता का वर्णन अपने अनुभव से मैं इतनाही कर सकता हूँ कि वहाँ कालीनदी के तटपर स्नान कर मैं उपासनार्थ बैठा, मेरी दैनिक उपासना में विभिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवताओं के ध्यान के पद्य हैं। ध्यान का जो पद्य मैं वहाँ पढ़ता गया तदनुसार आराध्य देवता की पूरी प्रतिभा सामने आती गई। एक रात्रि वहाँ निवास कर आगे की चट्टी पर हम अपनी मण्डली के लोगों से जा मिले। केदारनाथ का शीत बड़ा प्रचण्ड था। हिम-पात हो रहा था। परन्तु उसमें भी मैंने तो भागीरथी में स्नान कर ही लिया। इससे मुझे उग्र श्वास आने लगा। फिर निवास स्थान पर लौटकर तीव्र अग्नि प्रज्वालन के द्वारा गर्मी प्राप्त होने पर श्वास क्रम ठीक हुआ। दो दिन केदारनाथ में निवास कर वापस लौटे। लौटते समय त्रियुगीनारायण का भी दर्शन किया। गुप्त-काशी के पूर्व ही ऊखीमठ से तुङ्गनाथ के शैल शिखर की परिक्रमा करता हुआ एक पैदल का मार्ग चमोली पहुँचाता है। मण्डली के सदस्य जो पैदल यात्रा कर रहे थे उन्होंने इस मार्ग को पसन्द नहीं किया। रघुराज शास्त्री भी हमारी इस यात्रा मण्डली में सम्मिलित था। इसका विचार बीच में ही वाराणसी लौटने का हो गया, उसे वहाँ समाचार पत्र में कुछ इस प्रकार की सूचना पढ़ने को मिली या वहाँ कोई पत्र उसे मिला जिससे उसे सर्विस मिलने की आशा हुई। इसी-लिए वह वाराणसी पहुँचने को व्याकुल हो उठा। उसी के साथ मण्डली के अन्य सदस्य भी हमारा साथ छोड़कर वापस रुद्रप्रयाग आये। और वहाँ से सीधे बस में बैठ कर पीपल कोटी, जोशीमठ होते हुए बदरीनाथ पहुँचे। हमारा मार्ग ऊखीमठ और तुङ्गनाथ होते हुए था। मैं और पत्नी तो डंडी में सवार थे, शिवदत्त तथा एक पर्वतीय छात्र, जो दर्शक तथा उस प्रदेश से परिचित के रूप में हरिद्वार से ही हमारे साथ था, पैदल चले। शिवदत्त आगे की सीधी चढ़ाई में बहुत थकने लगा तो उसके लिए एक घोड़ा मिला। कुछ दूर वह घोड़े पर भी चला। परन्तु उससे कोई सुविधा न देख उसने घोड़ा छोड़ दिया। आगेका मार्ग सरल था अतः कठिनता नहीं हुई। तुङ्गनाथ इस प्रदेश का सर्वोच्च शैल शिखर है। यहाँ की चोटी पर खड़े होकर हिमालय के ऊँचे-ऊँचे सारे शिखर दिखाई देते हैं। जिस पर्वत से चलकर चार दिन बाद हम यहाँ पहुँचे थे वह भी सामने दिखाई दे रहा था। शैलराज अपने विराट् रूप में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना में विद्वानों और कार्यकर्ताओं के मध्य—

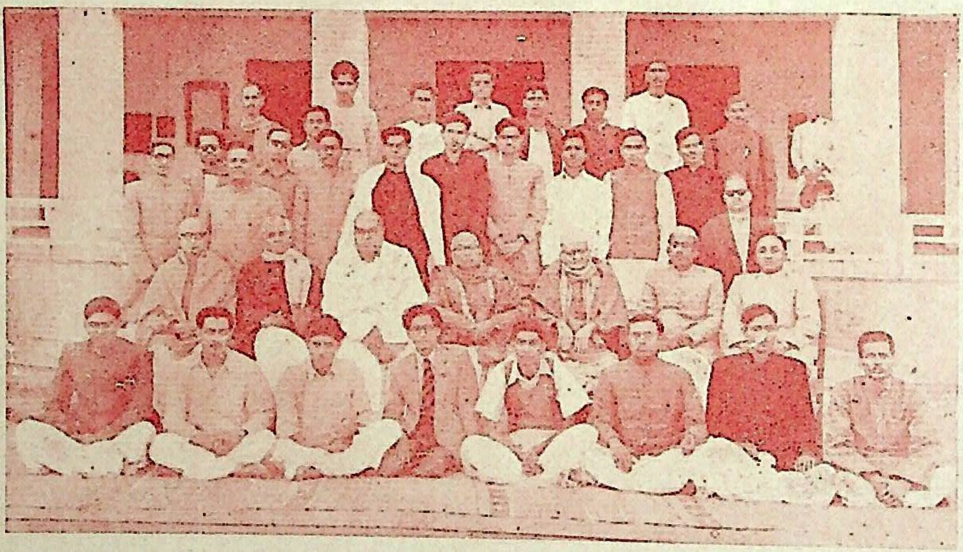

(कुर्सी पर)—१. डा० जनार्दन मिश्र २. .... ३. प्रो० नलिन विलोचन शर्मा ४. म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ५. पद्मभूषण श्री शिवपूजन सहाय (संचालक)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री रामनारायण वैद्य जी को अभिनन्दन पत्र देते हुए
श्री चतुर्वेदी जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेत्रों के आगे विराजमान भासित होता था। शीत भी वहाँ सर्वाधिक था। वहाँ से प्रस्थान कर दो दिन में हम चमोली पहुँचे। चमोली में मेरा एक शिष्य वंशीधर व्यापार कार्य करता है। मैं वहाँ उसे ढूँढ़ने ही लगा था कि वह अपनी दुकान से मुझे देखते ही दौड़कर आया। उसने अपने यहाँ रुकने का बहुत आग्रह किया परन्तु स्नान भोजनादि के अनन्तर हमने वस से पीपलकोटि के लिए प्रस्थान किया। मन्दिर कमेटी के मन्त्री महोदय ने कृपा पूर्वक मुझे निवास के लिए ऐसा सुन्दर स्थान दिया जो बद्री विशाल के मन्दिर के ठीक सामने और तप्त कुंड के ठीक ऊपर था। यहाँ आकर चित्त बहुत ही आनन्दित हुआ। उस दिन स्नान दर्शनादि से निवृत्त हुए। तप्त कुण्ड का स्नान भी बड़ा ही आनन्दप्रद रहा। अन्यथा शरीर को सर्वात्मना कँपा देने वाला शीत वहाँ था। दर्शन के उपरान्त विश्राम किया। दूसरे दिन ब्रह्मकपाली पर श्राद्धकार्य संपन्न किया। उसीदिन सायं वसुधारा यात्रा भी दंडीवालों को अतिरिक्त द्रव्य देकर सम्पन्न की। यह प्रदेश सर्वथा देव भूमि है, यह पद-पद पर अनुभव में आता था। भगवान् बदरीनाथ के सभी आरतियों के अवसर पर उपस्थित होकर दर्शन किये। निर्वाण दर्शन प्राप्त कर अपने को धन्य किया। बदरीनाथ मन्दिर में एक प्रवचन भी किया। नागरिकों के बीच भी एक दिन धर्माचरण पर व्याख्यान दिया। तीसरेदिन मध्यान्ह में वहाँसे प्रस्थान किया। वहाँ वस्तुएँ बहुत मँहगीं थीं। लौटते समय जोशीमठ से ऊपर शंकराचार्य भगवान् के ज्योतिष्पीठ में भी गया। वहाँके सन्यासी अधिकारी ने तथा अध्यापकों और छात्रों ने मेरा प्रेमपूर्ण स्वागत किया। इसी क्रम से वापस हरिद्वार पहुँच कर हमने अपनी बदरी विशाल की यात्रा परिपूर्ण की। जयपुर लौटकर मैंने यात्राङ्ग ब्राह्मण भोजन भी कराया, तदुपरान्त काशी लौट आया।

अब तक अपने कार्यक्रमों के दौरान भ्रमणार्थ मैं भारत के लगभग सभी भागों में घूम आया था किन्तु असम नहीं जा सका था। असम प्रदेश के कामरूप जिले में स्थित देवी कामाख्या का मन्दिर मेरे लिए बहुत समय से एक आकर्षण बना हुआ था। १९६१ में जब मेरा दौहित्र महेन्द्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरकारी कार्य से वहीं स्थानान्तरित हुआ तो मैंने उससे वहाँ आने-जाने के कार्यक्रम के विषय में चर्चा की। फिर भी १९६१ में असम यात्रा संभव न हो सकी। तब ११६२ के ग्रीष्मारंभ के पहले मैंने देवी कामाख्या के दर्शन का कार्यक्रम बनाथा।

काशी से जब मैंने असम के लिए प्रस्थान किया तो मेरे साथ मेरे प्रिय शिष्य रामाधीन शास्त्री के अतिरिक्त मेरी तीसरी पुत्री त्रिवेणी और दामाद श्री कामताप्रसाद जी भी थे। पुत्री त्रिवेणी पहले भी असम यात्रा कर चुकी थी इसलिए यात्रा में विशेष असुविधा न हुई। काशी से चलकर एक दिन के लिए भाटपाररानी रुका। वहाँ मेरे प्रवचन के लिए बहुत दिनों से आग्रह पूर्वक निमंत्रण आ रहे थे, अतः इस बार मैं उसे टाल न सका। भाटपाररानी का कार्यक्रम पूरा करके भटनी रेलवे जंकशन से मैंने अवध तिरहुत मेल से इस यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

भटनी से अमीनगाँव तक लगभग ४० घण्टे की लगातार ट्रेन यात्रा थी। मार्ग में बिहार और पश्चिम बंगाल से गुजरते हुए जाना पड़ता है। अपनी दरभंगा यात्रा में बिहार के इस भाग में आया था किन्तु पश्चिम बंगाल के उत्तरी जिलों में जलपाई-गुड़ी और कचबिहार की यात्रा मेरे लिये नयी थी। सिलीगुड़ी जंकशन के आगे रेलपथ के किनारे चाय के बगीचे और दूर तक फैली हुई सिक्किम की पहाड़ियों के दृश्य यात्रा की थकान को विस्मृत कर देते हैं। प्रातः तड़के ही हमारी गाड़ी अमीन-गाँव स्टेशन पहुँची जहाँ महेन्द्र और उसके मित्र हमें लेने स्टेशन आये थे। स्टेशन के बाहर अन्दर जो दृश्य देखा वह बड़ा मनोहारी था। पुराणों में लोहित नाम से वर्णित विशाल ब्रह्मपुत्र नद हरी-भरी पहाड़ियों के बीच गंभीर गति से बह रहा था। नद पार करने के लिए हमें स्टीमर पर बैठना पड़ा। उन दिनों ब्रह्मपुत्र पर एक पुल का निर्माण हो रहा था और नदी स्टीमर द्वारा पार करना अनिवार्य था। नदी के दूसरे छोर पर पांडू स्टेशन है। मैं वहीं से मालीगाँव चला गया जहाँ महेन्द्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयपुर के रवीन्द्र रंगमंच पर अभिनन्दन—

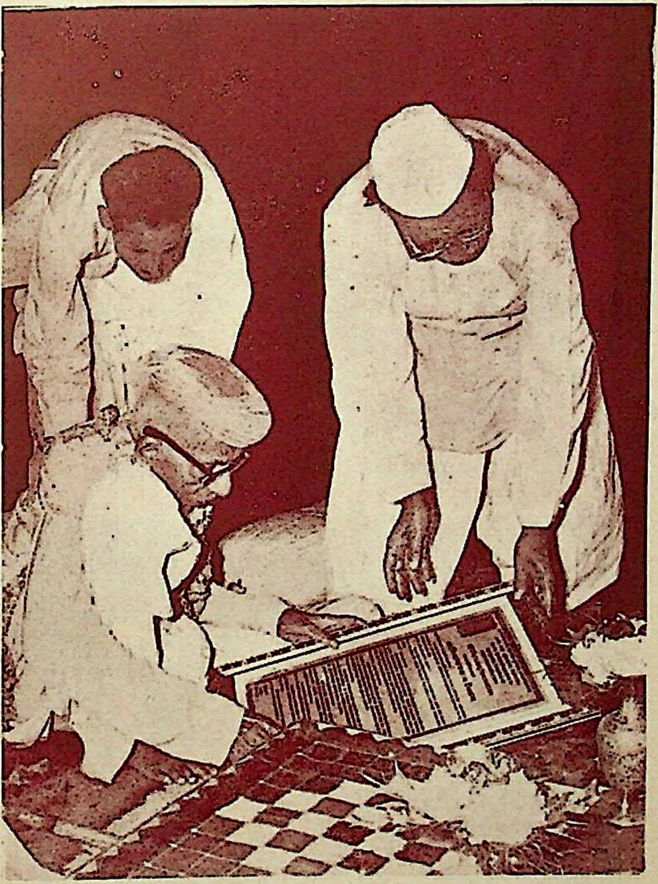

श्री चतुर्वेदी जी को अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुए राजस्थान के राज्यपाल श्री सम्पूर्णानन्द जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंच पर सम्पूर्णानन्द जी से वार्तालाप करते हुए श्री चतुर्वेदी जी

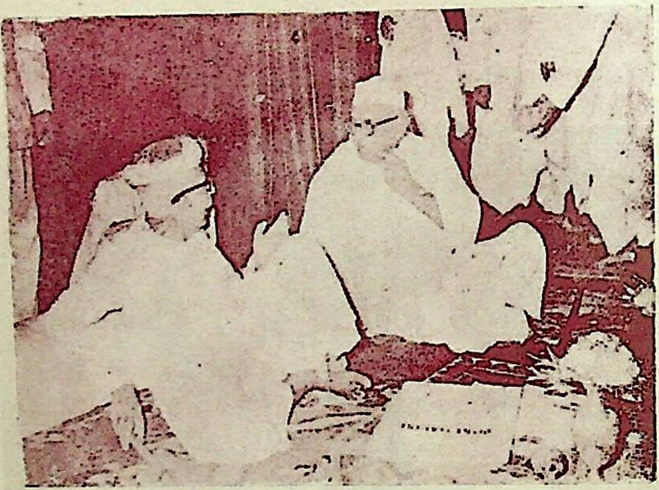

जयपुर के रवीन्द्र रंगमंच पर चतुर्वेदी जी के अभिनन्दन में
डा० सपूर्णानन्द जी का अध्यक्षीय भाषण

श्री हरिभाऊ उपाध्याय प्रभृति महानुभावों के साथ श्री चतुर्वेदी जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के मकान में मेरे रहने की व्यवस्था थी। गौहाटी नगर के समीप ही मालीगाँव रेलवे का मुख्यालय है और यहाँ से देवी कामाख्या का मन्दिर समीप पड़ता है।

अपने पाँच दिन के प्रवास में मैं लगभग नित्य ही कामाख्याजी के दर्शनार्थ जाता था। मन्दिर नीलाचल नामक पहाड़ी पर स्थित है और हमें वहाँ टैक्सी अथवा टैम्पो से जाना होता था। मंदिर में दर्शनार्थी यात्रियों की बहुत भीड़ रहती थी जिसके कारण कभी-कभी पूजन में असुविधा होती थी। फिर भी मुझे वहाँ बड़ा आनन्द आता था। कामाख्या एक प्राचीन शक्ति पीठ है और किसी समय यात्रियों का केन्द्र भी रहा है। नीलाचल पहाड़ी के सबसे ऊँचे भाग पर भुवनेश्वरी मंदिर है जिसके समीप से ब्रह्मपुत्र, पांडू, मालीगाँव, गोहाटी इत्यादि का एक विहंगम दृश्य दिखाई देता है। इस स्थान तक पहुँचने पर सारा श्रम सफल हो जाता है। कामाख्या में अनेक पण्डे हैं जिनके पूर्वज कान्यकुब्ज थे और अहोम राजाओं के आमंत्रण पर कन्नौज से आये थे। अब ये पूर्णतः असमिया हैं और इनके संस्कृत के उच्चारण भी असमिया भाषा से प्रभावित हैं। सामान्यतः पंडों को कुछ श्लोक स्मरण थे जिन्हें वे स्थान-स्थान पर दुहराते रहते थे। गलत श्लोक अथवा अशुद्ध उच्चारण के लिए मुझे कई बार उन्हें टोकने पर विवश होना पड़ा।

कामाख्या देवी के स्थान से कुछ दूर ब्रह्मपुत्र नद के मध्य में एक छोटे से टापू पर उमानन्द मंदिर है जिसके लिए छोटी नौकाओं से जाना होता है। इस मंदिर का दृश्य भी बड़ा रमणीक है। यह स्थान बहुत शान्त है और पूजन आराधन के लिए सर्वथा उपयुक्त भी। तांत्रिकों के अनुसार कामाख्या योगिनी हैं और उमानन्द उनके भैरव हैं।

गौहाटी से प्रायः ११ मील की दूरी पर वशिष्ठ आश्रम नामक एक स्थान भी देखने गया। कहा जाता है कि महर्षि वशिष्ठ ने इस स्थान पर अन्तिम समाधि ली थी। मन्दिर के पास एक छोटा-सा झरना है और सामान्यतः यहाँ पर्यटक भ्रमण के लिए भी आते रहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पांडू में नद के किनारे एक पांडवों का मंदिर है। बाहर घाट पर नद में स्नान का आनन्द लिया और फिर मन्दिर देखा। कहा जाता है कि अज्ञातवास में पाँचो पांडव वेश बदल कर यहाँ आये थे। महेन्द्र के साथ असम के अनेक भागों से पौराणिक आख्यानों के सम्बन्ध के विषय में चर्चा हुई। रामाधीन इस यात्रा में सदैव मेरे साथ रहा और समय-समय पर अनेक विषयों पर उससे भी चर्चा होती रही। असम में मेरे कोई मित्र अथवा परिचित व्यक्ति न थे और महेन्द्र से मैंने किसी सामाजिक आयोजन के लिए निषेध कर दिया था, इस कारण यह यात्रा बहुत शान्त रही और अपनी इच्छा अथवा योजना के अनुसार ही कार्यक्रम सम्पन्न करने की स्वाधीनता रही। पाँच दिन बाद मैं वापिस काशी लौट आया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डायरियों के पृष्ठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डायरी लिपि निदर्शन

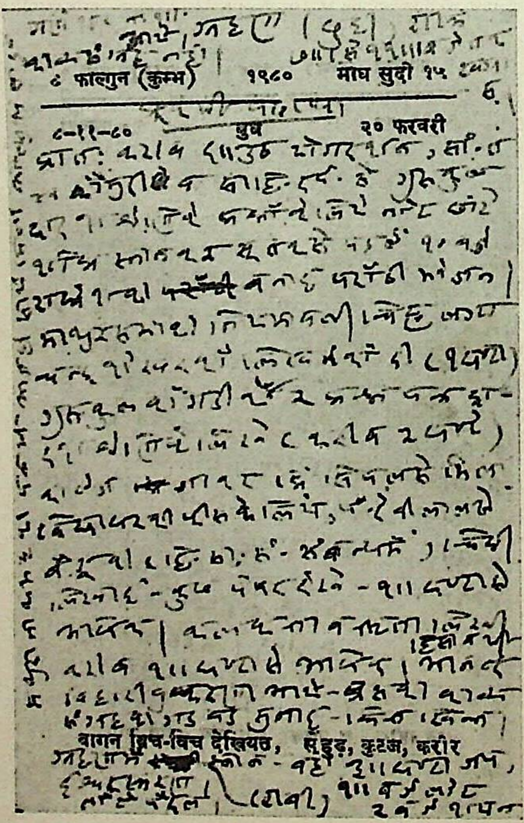
८ फाल्गुन (कुम्भ) १९८० माघ सुदी १५

८-११-८० बुध २० फरवरी

वागन ब्रिच-विच देखियत, सूइड़, कुटज, करीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डायरियों के पृष्ठ

[चतुर्मुखी प्रतिभाके धनी स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा जी द्वारा लिखित उनकी आत्मकथा पिछले प्रकरणों में आपने पढ़ी। कोई भी व्यक्ति अपने जीवनकी समस्त घटनाओं एवं अपने व्यक्तित्वकी विशेषताओंका सूक्ष्म वर्णन नहीं कर सकता। दूसरी बात यह है कि चतुर्वेदी जी ने अपनी आत्मकथा उन दिनों लिखाई जब कि वे ग्रन्थ-लेखन आदि समस्त कार्यों से निवृत्त हो गए थे। वाणी पर पक्षाघातका आक्रमण होजानेसे उसमें तोतलापन आगया था, समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ अत्यन्त शिथिल हो चुकी थीं। यह कम आश्चर्यजनक नहीं है कि उस अवस्थामें भी उन्होंने अपने विषयमें इतनी जानकारी प्रदानकी। सूर्यके समान देदीप्यमान उनके व्यक्तित्व एवं लोकोत्तर चरित्रका परिचय देनेके लिए अनेक ग्रन्थ भी पर्याप्त नहीं हैं। हम लोगोंके सौभाग्यसे महामहोपाध्याय जी की कुछ डायरियाँ प्राप्त हुई हैं। यद्यपि वे डायरियाँ भी कुछ ही वर्षों की हैं इसलिये उनके दीर्घकालीन सार्वजनिक जीवनका पूर्ण परिचय नहीं मिलता तथापि उनसे अधिकांश रूपमें उनकी महानताके संकेत अवश्य प्राप्त हो जाते हैं।

महामहोपाध्याय जी का जीवन इतना व्यस्त था कि वे कदाचित ही समय पर भोजन और शयन कर पाते थे। ऐसा कोई भी दिन नहीं बीतता था कि उन्होंने कोई-न-कोई धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य किसी-न-किसी रूपमें न किया हो। प्रातः उठते ही कुछ अध्ययन करना अथवा लिखना, तदनन्तर शौच स्नानसे निवृत्त हो सन्ध्यावन्दन, गायत्री जप, पाठ आदि करना उनका नित्यका नियम था। अपनी डायरियोंमें उन्होंने इनका उल्लेख किया है किन्तु अधिकतर नहीं भी किया है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उन दिनोंमें उक्त कार्य उन्होंने न किये हों। डायरीमें स्थान एवं समयके अभावके कारण ही उसका उल्लेख नहीं किया गया है। उपर्युक्त कार्यक्रमोंके पश्चात् वे सनातन-धर्म कालेज में छात्रोंको धर्म-शिक्षा देते। वहाँसे लौटकर स्वयं कुकरमैं भोजन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाते। अत्यधिक व्यस्तता होने पर पक्का भोजन ही (बाजारसे पूड़ी आदि) करके कार्यमें जुट जाते थे। रोटी तो कभी-कभी ही वे बनाकर खा पाते थे। भोजन आदिसे निवृत्त होकर कालेजमें अध्यापन करते। पुनः विभिन्न संस्थाओंके कागज-पत्रों की जाँच करते अथवा मीटिंगमें भाग लेते। चतुर्वेदी पत्रिका का सम्पादन करते। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन, ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार, सनातन-धर्म प्रतिनिधि सभा लाहौर प्रभृति संस्थाओंका सञ्चालन आदि के कार्य एक दो दिन के अन्तर से अवश्य ही उन्हें देखने पड़ते थे। साथ ही आगन्तुक व्यक्तियोंसे वार्तालाप तथा समय-समय पर जिज्ञासुओंको धर्म की व्यवस्था देना ये सब भी उनके कार्यक्रमके अङ्ग थे। कभी-कभी कई दिनों तक भागवत आदि की नियमित कथा भी कहते थे। सभाओंमें देशके विभिन्न भागोंमें जाकर धर्म प्रचार करना, वहाँसे कालेजके लिए चन्दा भी संग्रह करना, धर्म-विरोधी राजकीय नियमोंका विरोध करना आदि कार्य भी उन्हें करने पड़ते थे। उपर्युक्त दिनचर्यामें कोइ श्रृंखला नहीं होती थी। आवश्यकतानुसार आगेका कार्य पीछे और पीछेका आगे होता ही रहता था। इस प्रकार चतुर्वेदी जी महान् कर्मयोगी थे यह निस्संकोच कहा जा सकता है।

महामना मदनमोहन मालवीय जी के तो वे दाहिना हाथ ही थे। मालवीय जी की योजनाएँ प्रायः तबतक सफल नहीं होती थीं जब तक कि महामहोपाध्याय जी का सहयोग और सम्मति उन्हें न मिल जाती। सनातन-धर्मके सन्देशवाहक एवं प्रहरीके समान अनेक विभूतियोंसे उनकी गहरी मित्रता थी। धार्मिक समस्याओं पर दलका दल सम्मिलित होकर टक्कर लेनेके लिए भिड़ जाता था। उन विभूतियोंमें पं० दीनदयालु जी, पं० कालूराम शास्त्री जी, यदुकुलभूषण जी, पं० अखिलानन्द जी, गोस्वामी गणेशदत्त जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये मण्डली धर्म-विरुद्ध पटेलबिल, कोडबिल, मठमन्दिर बिलका विरोध तथा गोरक्षा एवं गो-सेवाका प्रचार कमर कसकर किया करती थी। मलकानों की शुद्धि के लिए इस मण्डलीने एड़ीसे चोटी तकका जोर लगाकर उसे सफल बनाया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। कर्तव्य पालनमें वे कितने निष्ठावान् थे इसका एक ज्वलन्त उदाहरण यह है कि एक बार वे कलकत्ता जा रहे थे, रेलगाड़ी की बत्ती खराब होने से वे मोमबत्ती जलाकर डेढ़-दो घन्टे तक वक्तृता तैयार करते रहे। इसके अतिरिक्त महामहोपाध्याय जी की एक अद्भुत विशेषता यह थी कि वे अपने निश्चय एवं सिद्धान्त पर हिमालय की भाँति अडिग रहते थे। शास्त्रीय मर्यादा तथा विधिका उल्लंघन इन्हें सदैव असह्य होता था। ऐसे अवसरों पर चतुर्वेदी जी मालवीय जी से भी भिड़नेमें नहीं चूकते थे। वे एकदेशीय होते हुए भी सार्वदेशिक महापुरुष थे।

धार्मिकता तो महामहोपाध्याय जी रोम-रोममें समायी हुई थी। छोटीसी भूल होजाने पर भी शास्त्रानुसार उसका प्रायश्चित्त कर लेने पर ही उनको शान्ति प्राप्त होती थी। एक दिन भोजनकालके अतिरिक्त समयमें कोई वस्तु खा लेनेके बाद वे कुल्ला करना भूल गये। इससे उन्हें बड़ी खिन्नता हुई और उस दोषका निवारण उन्होंने तीन हजार गायत्री जप करके किया। शास्त्रोंके प्रति उनकी निष्ठा अद्भुत थी। उनके मन, वाणी, और कर्म तीनोंमें एकताके दर्शन होते थे। जो कुछ वे सोचते, वही कहते तथा उसीको आचरण में भी लातेथे। हम दृढ़ताके साथ यह कह सकते हैं कि यदि आप सनातन-धर्मके स्वरूपको समझना चाहते हैं तो आप डायरियोंके इन पृष्ठोंको मननपूर्वक पढ़ें। इस प्रकार महामहोपाध्याय जी महान् कर्मयोगी, उच्चकोटिके भक्त तथा ज्ञानी थे। हमारे इस कथन की सत्यताका प्रमाण आपको डायरियोंके इन पृष्ठोंसे प्राप्त होगा।

विक्रम सम्वत १९७६ सन् १९१९ ईसवीय के सितम्बर मास में लाहौरके सनातन-धर्म कालेजमें प्रधानाचार्यके पद पर महामहोपाध्याय जी की नियुक्ति हुई थी। उसी वर्षसे उनकी डायरियाँ प्राप्त हुई हैं। ये डायरियाँ सूत्र रूपमें लिखी गयी हैं और उन सूत्रोंमें बहुतसे रहस्य छिपे हुए हैं। यों तो चतुर्वेदी जी की डायरियोंका प्रत्येक पृष्ठ महत्त्वपूर्ण है तथा वह अनुसन्धान करने योग्य है किन्तु इस छोटेसे ग्रन्थमें उन सभी पृष्ठोंका समावेश नहीं किया जा सकता। इस कारण कुछ अतिविशिष्ट पृष्ठांशोंको ही यहाँ उद्धृत किया जाता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। डायरियोंके ये पृष्ठ केवल महामहोपाध्याय जी के लोकोत्तर चरित्रका ही परिचय नहीं देते अपितु आजसे ४० वर्ष पूर्व की धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियों पर भी प्रकाश डालते हैं।

इन डायरियोंमें महामहोपाध्याय जी ने प्रातः उत्थानसे लेकर रात्रि शयन तकके अपने वायुके समान वेगवान दैनिक चरित्रको सूत्रवद्ध किया है। ये डायरियाँ उन्होंने अपनी साधारण बोलचाल की भाषामें लिखी हैं। उन पृष्ठोंको हम विना किसी परिवर्तनके उन्हींके शव्दोंमें यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। पाठकों की सुविधाके लिए उनमें शीर्षक, विराम चिन्ह तथा संख्याओं का प्रयोग हमने किया है। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं पर उनके सङ्केतोंको कोष्ठमें स्पष्ट कर दिया है।

स्वामी केशवपुरी
सह सम्पादक

भाद्रपद सुदी ११ वि० सं० १९७६ (सितम्बर'६ सन् १९१९)

संस्थाओंका निरीक्षण

सनातन-धर्म कन्या पाठशालाका निरीक्षण कर रिमार्क दिया।

भाद्रपद सुदी १३ (सितम्बर'८)

१—रतनगढ़ ब्रह्मचर्याश्रम देखा। रिमार्क दिया (दूसरे दिन)

२—रात्रिको ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान। ब्रह्मचर्याश्रमके प्रवन्धकर्त्ता गोकर्ण वकीलसे वार्तालाप। प्रवन्ध साधारण देखा।

भाद्रपद सुदी १५ (सितम्बर'१०)

१—भिवानी ब्रह्मचर्याश्रम, विद्यार्थी-पाठशाला, रात्रि पाठशाला, महाजनी पाठशाला (सब सम्मिलित) निरीक्षण। रिमार्क दिया।

२—विद्यामार्तण्ड श्रीसीताराम शास्त्री से भेंट। ब्रह्मचर्याश्रम पर वार्तालाप। योग्य दार्शनिक, प्रवन्ध दक्ष विद्वान् के लिए उनका कथन। दक्षिणा ५०,६० मासिक। सति सम्भवे अधिक भी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाहौरमें नियुक्ति:भव्य स्वागत

आश्विन बदी १२ (सितम्बर'२)

१—१२, १३, १४ सितम्बर, सनातन-धर्म बाल सभा चन्दौसी का निमन्त्रण। रामरत्न गुप्त मंत्री। जाना नहीं हुआ।

२—लाहौर पहुँचा, स्टेशन पर पचास से अधिक मनुष्यों ने स्वागत किया। मंत्री, पण्डित, विद्यार्थी प्रभृति। रायसाहब रामशरणदास की जोड़ी गाड़ीमें, उनकी लाल कोठीमें निवास।

आश्विन बदी ४ (सितम्बर'१४)

३—कालेजमें अध्यापन आरम्भ किया। पाक क्रियारम्भ। मध्यान्हमें अधिक शयन व पत्रलेख।

२—सायं संस्कृत शिक्षा की आवश्यकता पर ९ बजे तक स० ध० (सनातन-धर्म) सभा मन्दिरमें व्याख्यान दिया।

मातृ-श्राद्ध

आश्विन बदी ९ (सितम्बर'१८)

१—मातृश्राद्धमें सब दिन व्यय। वेदपाठी जयरामजी द्वारा पार्वण। सहस्र गायत्री जप संकल्प (पूर्व दिन स्वाप्निक नियमातिक्रम)।

२—रात्रिमें कुछ ब्रह्मचारी (मासिक-पत्र) का लेख।

३—श्राद्ध-व्यय—ब्राह्मण भोजन—रबड़ी ऽ२ २।।।), मालपूवे ऽ२ २), पूरी १।।–), दही ऽ२ ।।।), धोती १ २।=), अंगोछे ४ १।।=, इत्यादि।

आश्विन बदी १० (सितम्बर'१९)

दिनमें कुछ लेख। पद्मसिंह जी का पत्र। रात्रिमें विद्यालय की मीटिंगमें सम्मिलित।

श्राद्ध पर व्याख्यान

आश्विन बदी ११ (सितम्बर'२०)

दिनके ११ बजेसे १२ बजे तक सनातन-धर्म कालेजमें श्राद्ध पर व्याख्यान। विद्यार्थियोंका प्रश्नोत्तर। शरीरातिरिक्तात्मसाधन पर विचार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्तिक बदी २ (अक्टूबर'११)

सनातन-धर्म कालेजमें प्रातः १० से ११ तक पुनर्जन्म पर व्याख्यान। सबको सन्तोष, प्रश्नाभाव।

मालवीय जी की अध्यक्षता में भाषण

कार्तिक सुदी १ (अक्टूबर'२४)

सनातन-धर्म-सभा लाहौरका उत्सव आरम्भ। श्रीमालवीय जी की अध्यक्षतामें दश-सहस्राधिक जनतामें ईश्वरोपासना पर आधघंटा वक्तृता दी। जनताको दबाया। नगर कीर्तनमें थोड़ी देर सम्मिलित।

कार्तिक सुदी २ (अक्टूबर'२५)

प्रातः पं० दीनदयालु जी से मिलने स्टेशन यात्रा। मध्यान्हमें सनातन-धर्म प्रतिनिधि सभाका संगठन। सायं पब्लिक सभामें सभापतित्व। रात्रिमें पुनः स्टेशन।

एक बजे रात्रितक सभा की बैठक;

कार्तिक सुदी ३ (अक्टूबर'२६)

सनातन-धर्म सभा महोत्सवमें सम्मिलित रहकर पं० रलिया रामजी का झगड़ा निपटवाया, उनका व्याख्यान कराया। अपीलके अन्तमें आध घंटा एक रोचक व्याख्यान दिया। रात्रि १ बजे तक प्रतिनिधि सभा की मीटिंगमें। रात्रिमें पं० यदुकुलभूषण जी के आवासमें शयन।

मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ

कार्तिक सुदी ३ (अक्टूबर'२७)

गंगाप्रसाद का आगमन। पं० यदुकुलभषण जी का राजाराम जी से मूर्ति पूजा पर रात्रिमें शास्त्रार्थ। राजारामजी की दुर्दशा। इस ही की तैयारीमें सब दिन व्यय। कालेजका काम नहीं किया।

श्रीभगवद्दत्त बी० ए० पराजित

कार्तिक सुदी ४ (अक्टूबर'२८)

१—भगवद्दत्त बी० ए० आर्य-समाज, अनारकली, के साथ स्वयं-सामाजिक संस्कारों की अवैदिकता पर शास्त्रार्थ कर उसकी दुर्दशा की रात्रि १२ बजे गृहागमन। जुकाम आरम्भ। कालेजका काम स्वल्प किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्तिक सुदी ६ (अक्तूबर'३०)

१—गाजियाबाद सभा इच्छानुसार तारीखें नियत करवाकर बुलाना चाहती है। लालारामचन्द्र का पत्र। जयपुर जाते कभी सूचना दूंगा, उत्तर।

२—जुकाम अति प्रवल। कालेज वहुत देर से गया। एक पाठ मात्र कराया। स्वास्थ्य वहुत खराव रहा। रात्रि कविराज जी व ठाकुरदास जी से भेंट।

सभा निमन्त्रणों की भरमार

कार्तिक सुदी ७ (अक्टूबर'३१)

१—३१, १, २, ३ का गीदड़वाहा सभाका निमंत्रण, अकोहर के मंत्री दुनीचन्द की ओरसे। मंत्री को लिखो, उत्तर।

२—स्वास्थ्य खराव।

कार्तिक सुदी ८ (नवम्बर'१)

१—गाजीपुरसे श्रीकृष्ण गोशालाका १, २ तारीख का निमंत्रण। गजानन्द मारवाड़ी की ओरसे। निषेध का उत्तार दिया—१९-९-१९।

२—प्रधान मंत्री गोशाला दरभंगा का १ नवम्बरसे निमंत्रण, निषेध उत्तर।

३—१-४ नवम्बर लखीमपुर खीरी, निषेध उत्तर। फिर १४-१६ की सूचना, उत्तार नहीं।

४—स्वास्थ्य खराब, ज्वर। मकान चतुर्वेदी मोहनलाल जी के साथ देखे। वैद्यजी के घर पर भेंट।

५—सनातन-धर्म कालेजमें आध घंटा लैक्चर।

कार्तिक सुदी ९ (नवम्बर'२)

१—कशना सभाका निमंत्रण २-४ नवम्बर। मंत्री को लिखो, उत्तर।

२—स्वास्थ्य अधिक खराब, कार्य में अप्रवृत्ति, दुर्बलता। कालेज नहीं गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi .

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्तिक सुदी १३ (नवम्बर'६)

कार्तिकान्त में टूण्डला सभाका साग्रह निमंत्रण, आगरे के साहित्योपाध्याय गणेशीलाल जी सारस्वत, भदियाकटरा ने भेजा, निषेधोत्तर।

लेखबद्ध शास्त्रार्थ; दङ्गों के बारे में गवाही

मार्गशीर्ष बदी ३ (नवम्बर'१०)

मीरपुर स्त्रीसमाजमें व्याख्यान। दिनमें स्वयम् पाक खिचड़ी। रात्रिमें मीरपुरमें रामगोपाल शास्त्री के साथ श्राद्ध विषय पर लेखबद्ध शास्त्रार्थ।

मार्गशीर्ष बदी १४ (नवम्बर'२१)

१—प्रातः १० बजे तक सम्मेलन कार्यार्थ श्रीरघुवर दयालुजी, श्रीदीनदयालु शर्माजी से भेंट। मौलिचन्द्र से पत्र लिखाया। कालेज में परीक्षा।

२— २ बजे टाउनहालमें गवाही (कमिश्नर से पं० जगतनारायण की जिरह सुनी) पंजाव दङ्गोंके सम्बन्धमें कमीशन के सामने देखी। रात्रि ऋषि भवनमें रास देखा। म० म० श्रीशिवदत्त जी से भेंट। रात्रि कृपाराम जी मिले।

मठमन्दिर बिल विरोध : पुराण तत्व पर महत्वका व्याख्यान

मार्गशीर्ष सुदी ४ (नवम्बर'२६)

पत्र लेख, परचे देखना, रात्रि में सं० (संस्कृत) सम्मेलन की रिपोर्ट की तैयारी। सायं शीतलामठ में मठ मन्दिरादि बिल विरोध सभा। रलियाराम, राजनारायण आदि के व्याख्यान।

मार्गशीर्ष सुदी ५ (नवम्बर'२७)

प्रातः सम्मेलन की रिपोर्ट लिखी। मध्यान्ह में बहुत से सम्मेलन-पत्र, सायं सनातन-धर्म-सभा में पुराणतत्व पर महत्व का व्याख्यान दिया करीब १।। घंटा।

मार्गशीर्ष सुदी ६ (नवम्बर'२८)

१—२८ से ३० नवम्बर—हरमाना, जि० होशियारपुर, मंत्री लछमनदास भल्ला का निमंत्रण, निषेधोत्तर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२—सम्मेलन की रिपोर्ट तैयार कर कलकत्ता रजिष्ट्री भेजने को पैकट बना लिया। आर्य-समाज के आये शास्त्रार्थ पत्र का उत्तार गोविन्दरामजी के कहनेसे लिखवाया। आवश्यक पत्रादि।

३—रात्रिको लायलपुर यात्रा सैकण्ड क्लासमें सुखशयन।

व्याख्यानमें कालेजको सहायता

मार्गशीर्ष सुदी ८ (नवम्बर'३०)

१—लायलपुर में कृष्णचरित और शिक्षा पर दिन और रात्रि में व्याख्यान। रात्रि में जगद्धर जी के यहाँ भोजन कर रात्रि १२ बजे की ट्रेन से लाहौर प्रत्यागमन।

२—लायलंपुर सभा में २५ रु० संस्कृत कालेज के लिये सहायता प्राप्त (ये मंत्री जी के पास भेज दिये)। प्राइव्हेट २५ रु०।

पौष बदी ३ (दिसम्बर'१०)

भोजन विलम्ब प्रयुक्त कालेज गमन विलम्ब। रात्रि में प्रतिनिधि सभा। पंजाब की मीटिंगमें ६ बजे तक सम्मिलित। रात्रि में हिसाब छाँटा।

मालवीय जी से मूर्तिपूजा व उपासना पर व्याख्यान दिलाया

पौष बदी ४ (दिसम्बर'११)

१—प्रात: श्रीमालवीय जी से भेंट। उन्हें मूर्तिपूजा पर व्याख्यान देनेको राजी किया। मूर्तिपूजा पर उनके साथ बहुतर विचार। ११॥। बजे लौटा, एक बजे कालेज गया।

पौष बदी ८ (दिसम्बर'१४)

१—कालेजका अवकाश। ३ बजे से श्रीमालवीय जी का थियेटर में ईश्वरोपासना पर व्याख्यान। साधारण माला पहनाई व धन्यवाद दिया। रात्रिमें नियमलेखादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माघ सुदी ४ (जनवरी सन् १९२० ई०)

१—सनातन-धर्म सभा में कर्मकी प्रधानता पर व्याख्यान दिया। ८।।-९ तक। हरिद्वारसे पं० देवदत्त जी का आगमन, सायम् व रात्रि में उनसे वार्तालाप।

गोवध बन्दी पर मुसलमानों को धन्यवाद

माघ सुदी ९ (जनवरी'२९)

१—प्रातः कापी निरीक्षण। सायम् स० ध० सभा में गो-वध बन्द करने का धन्यवाद मुसलमानों को देने की मीटिंग, रायसाहब के सभापतित्व में भाषण किया।............नाथ जी के साथ, रात्रि में गृह्यसूत्रालोचन।

जादू के खेल

फाल्गुन बदी ५ (फरवरी '९)

(१) अलावकस प्रोफेसर (जगलर) अमृतसर—

बरात में इसके अपूर्व खेल देखे, (५० रु० रोज फीस)

(१) रस्सी कटवाकर जोड़ना (२) दूसरे की कुएँ में फेंकी अँगूठी निकालना (३) मनश्चिन्तित तास का पत्ता बताना (४) गिलास में से अपने आप तास के पत्तों का नोचते हुए निकलना (५) दूसरे के जेब से तास का पत्ता निकलना (६) ५०० रु० में आम, खरबूजे आदि मँगाना (७) आम की गुठली ढूंढ़ना।

(२) अमरनाथ रईस धर्मशाला निर्माता से मुलाकात।

फाल्गुन बदी ६ (फरवरी १०)

(१) आज भी खेल—(१) गरम भात की हाँड़ी आना (२) एकही पत्ते को सब अपना-अपना चिन्तित भिन्न भिन्न समझें (३) हाथ में एक पत्ता दिखाकर डालते ही दूसरा (मनश्चितित) कर देना।

(२) अगले पूर्व दिन व्याख्यान भी मैंने दिया। सायं ५ बजे लाहौर के लिये प्रस्थान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फाल्गुन बदी १० (फरवरी १४)

(१) प्रातः गृहयसूत्रावलोकन, मध्यान्ह (भोजन से पूर्व) पत्र लेख। भोजन विलम्ब, तत्प्रयुक्त कालेज गमन विलम्ब।

(२) रात्रि में संस्कार लेख फिर उपन्यासावलोकन।

फाल्गुन बदी ११ (फरवरी १५)

(१) १५-१८ फेब्रुएरी का वैदिक शिष्ट परिषद्, अहमदाबाद का निमंत्रण, मंत्री जयेन्द्रराव शर्मा, वै० शि० प० बिलाड़ी बाग (आगमन)।

(२) प्रातः कुछ नहीं देखा, शीघ्र निपटकर १०॥ बजे कालेज गमन। १॥ बजे लौटकर भोजन कर पाठशाला (स० ध० सभा मंदिर) निरीक्षण।

(३) प्रतिनिधि सभा की मीटिंग में सभापति पद ग्रहण, फिर पं० रामशरण (सनातन धर्म में आर्यसमाज से अभिनवागत का व्याख्यान सुना)।

फाल्गुन सुदी १ (फरवरी २०)

(१) कालेज की छुट्टी। प्रातः शीघ्र भोजन, कुछ पुस्तकावलोकन, वाल्लभ, मध्यान्ह में व रात्रि का सब समय चिट्ठी में व्यतीत। १२-१३ चिट्ठी लिखीं।

(२) मध्यान्ह २ बजे से सनातनधर्म कालेज गमन। वहाँ स्वामी जगदीश्वरानन्द जी के २००) जमा कराये। पंजाबी प्रेस में शास्त्रार्थ छपाने की बातचीत की।

(३) रात्रि में कुछ विहारी सतसई। रमेश आदि सहचरों का रात्रि को गमन।

फाल्गुन सुदी ८ (फरवरी २७)

(१) २७ से २९ फरवरी का शुजाबाद जि० मुल्तान स० ध० सभा का निमंत्रण, जगन्नाथ-लक्ष्मीदत्तौ मंत्री।

(२) इन्हीं तारीखों में आगरा सनातन धर्म सभा का निमंत्रण स्वीकृत। आगे रामगोपाल सनाढ्य मंत्री—All India स० ध०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुमार सम्मेलन, मेवा कटरा, आगरा का साथ ही उत्सव का निमंत्रण स्वीकृत।

(३) देहली स्टेशन म०म० हर नारायण जी, ऋषिकुल प्रिंसिपल हरिवल्लभ जी मिले। मथुरा प्रेमवल्लभ शास्त्री मिले। मध्यान्ह आगरा प्रवेश। कोकामल जी स्टेशन पर मय गाड़ी के। गजानन्द रविजी से भेंट।

पुराण तत्व, धर्म पर लंबा प्रभावशाली व्याख्यान

फाल्गुन सुदी ९ (फरवरी २८)

(१) २८-२९ का शिवसभा देहली का निमंत्रण, निषेध उत्तर।

(२) सनातन धर्म सभा आगरा में सनातन धर्म के महत्व पर विस्तृत भाषण, अखिलानन्द जी से भेंट।

फाल्गुन सुदी १० (फरवरी २९)

(१) स० ध० सभा आगरा में पुराण तत्व पर लम्बा व्याख्यान, विशेष प्रभाव। चन्दौसी सभा से मंत्री प्रतिनिधि लेने आया, प्रत्याख्यान।

पटेल बिल विरोध

फाल्गुन सुदी ११ (मार्च १)

(१) मार्च में कोई तारीख नियत कर उसपर अवश्य आने का अमरोहा सभा का आग्रह। मंत्री पंडित भगवद्दत्त शर्मा, हैड पंडित टी० जी० सी० हिन्दू स्कूल अमरोहा।

(२) स० ध० सभा आगरा में पटेल विल के विरुद्ध संक्षिप्त वक्तृता, पटेल विल पर आन्तरिक दुःख।

फाल्गुन सुदी १३ (मार्च २)

(१) दिन में मिलना जुलना, वस्त्र, गोटा खरीद। गुजराती लेख शोधन कुछ। आनवाल पाठशाला देखी। सायम् कुमार सम्मेलन में कर्म तत्परता पर कुछ व्याख्यान। कन्नोमल एम० ए० से भेंट, प्रदोषव्रत पारणोत्तर रात्रि में जयपुर के लिए प्रस्थान, सैकण्ड में शयन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चैत्र बदी ३ (मार्च ७)

(१) प्रातः १० बजे देहली, दिनभर वहाँ स्थिति। पं० दीनदयालुजी, मालवीय जी व महाराजा दरभंगा से भेंट। बहुत कुछ प्रोग्राम, वार्तालाप। रात्रि १० बजे प्रस्थान, सैकण्ड में शयन।

चैत्र बदी ५ (मार्च ६)

(१) दो दिन बजार भोजन का १)। यूनिवर्सिटी पेपरों का आयोजन। पुस्तक वेणीसंहार व अभिमन्यु नाटक ।।।) खरीदी, द्रव्य यूनिवर्सिटी से लेना।

(२) देहली का तार, पटेल बिल मीटिंग में बुलाने का, पत्र द्वारा निषेध उत्तर। यूनिवर्सिटी के काम के कारण अगमन। मध्यान्ह में सम्मेलन के पत्र मौलिचन्द्रजी से लिखाये, स्वयम् कई एक पत्र लिखे। तुलसी रामायण, विहारी सतसई, भाषा काव्य संग्रह का परचा बना दिया। रात्रिकों भी काम वही। कालेज में १-२ विद्यार्थियों को बताया। भोजन प्रातः बाजार से।

जम्मू नरेश से वार्तालाप : वर्णव्यवस्था पर व्याख्यान

चैत्र बदी ७ (मार्च १२)

(१) मध्यान्ह १२ बजे कलकत्ता मेल से पं० श्री गणेशदत्त जी के साथ जम्बू प्रस्थान। मार्ग में वजीराबाद देखकर रात्रि ६ बजे मय गुरुदत्ता के जम्बू प्रवेश। विनायक मिश्र की कोठी में निवास। रात्रि में केवल दुग्ध पान। द्वितीय दिन प्रातः यदुकुलभषण जी का भी आगमन।

चैत्र बदी ८ (मार्च १३)

(१) ३० फाल्गुन १-२ चैत्र का जम्बू ब्रह्म मुख्यमण्डल सभा व स० ध० सभा का निमंत्रण। मुन्नालाल शर्मा बी० ए०, एल० एल० बी०, मंत्री, तारामणि सभापति।

(२) सायम् वर्णव्यवस्था पर व्याख्यान, प्रभाव अल्प। य० कु० भू० का (यदुकुल भूषण—) प्रभाव विशेष।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सनातनधर्मियों के कर्तव्य, अवतार और वर्णव्यवस्था पर व्याख्यान, पुराणकथा प्रश्नोत्तर

चैत्र बदी ६ (मार्च १४)

(१) दिन में देवदर्शन। सायम् (रात्रि) स्वल्प व्याख्यान। महाराजा जम्बू का सभा में आगमन, उनसे वार्तालाप। ऋषिकुल परित्यागादि प्रश्न। रात्रि वहीं शयन। दिनभर प्रचण्ड वर्षा, करकापात। रघुनाथ मन्दिर व रणवीरेश्वर दर्शन।

चैत्र बदी ३० (मार्च २०)

(१) १६ को दिन के ४ बजे अमरोहा प्रवेश। अमरोहा में १६—२१ तक ३ दिन लैक्चर। सनातनधर्मियों के कर्तव्य (महत्व नहीं) अवतार और वर्ण-व्यवस्था पर।

(२) २१ को प्रश्नोत्तर, ब्रह्मदत्त स्नातक से पुराण कथाओं पर (देवी भागवतरागीब्रह्मा शिवो रागी, परदारलम्पटः) पार्वती विवाह के समय ब्रह्मा का मोह, कामका शिवपर बाणप्रहार, इसका प्रभाव उत्तम। अखिलानन्द जी का साथ १६ से ही।

चैत्र सुदी १ (मार्च २१)

(१) २१—२३ मार्च बरेली सनातन धर्म सभा साहूकारा श्री शालग्राम शास्त्री का निमंत्रण।

(२) चैत्र शु० १ का नाथ क्षत्रीय ब्रह्मचर्याश्रम काशी का निमंत्रण। शुकदेव वर्मा आचार्य, गदाधरसिंह का आग्रह। पंचकोसी सड़क पर सारन-तालाब। निषेध उत्तर।

(३) अमरोहा से दक्षिणा ४० रु०, मार्ग व्यय के २० पूर्व कुल ६६। रात्रि १ बजे बरेली के लिये प्रस्थान, बरेली टिकिट सैकेण्ड ३॥ ̄)

चैत्र सुदी २ (मार्च २२)

(१) प्रातः अखिलानन्दजी के साथ बरेली प्रवेश। नवरात्र पाठ नहीं। भारत के इतिहास में धार्मिक जीवन का स्थान (पर व्याख्यान) जनता अल्प। डाक मिली, पत्रोत्तार लेखादि, विशेषतः शयन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभा के लिए १८ हजारकी सहायता

चैत्र सुदी ३ (मार्च २३)

कलरात गजानन्द राव भजनोपदेशक का कीर्तन सुना। स्वयम्-पाक पत्रलेख वगहरा। ईश्वरोपासना पर व्याख्यान, प्रभाव उत्तम, जनता साधारण। बरेली में मकान का प्रबन्ध सभा के लिये १२ बारह हजार का आरम्भ हुआ। १ वैश्य का (श्यामलाल) व्याख्यान सुना। सभा में १०) भेंट।

चैत्र सुदी ४ (मार्च २४)

(१) २४—२८ मार्च का श्री भारत सत्यसनातन धर्म महासंगम के संगठन का श्री अयोध्यापुरी में राजा फतहसिंह वर्मा (चन्द्र) पुंआया राजाका निमंत्रण, संदिग्ध उत्तर, पुनः पत्र।

(२) श्राद्ध पर व्याख्यान। बरेली से भेंट ५१ रु० (आज ४०रु०), फिर अयोध्या से लौटनेपर ११रु० प्राइवेट भेंट श्यामलाल वैश्य ५०), कायस्थ ७रु० (आज २) आगे ५) स्वयम्-पाक।

चैत्र सुदी ५ (मार्च २५)

(१) २५-२८ मार्च का अबोहर मण्डी जि० फिरोजपुर का मंत्री दुनीचन्द का साग्रह निमंत्रण। कालेज को लिखो उत्तर। कालेज से मंत्री को लिखने की सूचना मिली।

(२) प्रातः ४ बजे अयोध्या के लिये प्रस्थान। ३ बजे श्री अयोध्या प्रवेश।

राजाओं की उपस्थिति में व्याख्यान : ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना

चैत्र सुदी ६ (मार्च २६)

(१) अयोध्या में व्याख्यान—२५ को, सत्य सनातन धर्म महासंगम की आवश्यकता और संगठन पर। २६ को साधारण १०-५ मिनिट, २७ को ब्रह्मचर्य पर, २८ को पटेल बिल विरोध पर। प्रभाव उत्तम। सभा कनकभवन में धूम-धाम से। बरहार.......... टीकमगढ़ बिजावर आदि कई राजा मिलित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चैत्र सुदी ७ (मार्च २७)

चैत्र सुदी ७-९ हापुड़ सभा का निमंत्रण। निषेध प्राय उत्तर (कालेज सहायता का नियम लिख दिया)। मंत्री जानकी शरण, श्री सरयू स्नान, दर्शन आदि। अयोध्या में ब्रह्मचर्याश्रम खोलने को करीब १८ हजार का चन्दा सभा में। बलदेवप्रसाद वकील महामंत्री संगम (वृद्ध) का विशेष उत्साह पूवाँया आदि राजाओं का दान। ब्रह्मचर्याश्रम की अपील मैंने की, सफलता पूर्ण।

चैत्र सुदी ८ (मार्च २८)

(१) २८-१ एप्रिल तक फीरोजाबाद सभा का निमंत्रण। लक्ष्मीचन्द्र मिश्र महल्ला मिश्रों का, मंत्री, संदिग्ध उत्तर।

(२) २८ से रामपुर जि०सहारनपुर का निमंत्रण, निषेध उत्तर।

(३) रामनवमी पर धनौली जि० नाभा स्टेट का निमंत्रण, निषेध उत्तर।

(४) रामनवमी रात्रि में अयोध्या से वापस। अयोध्या में संस्कृत साहित्य सम्मेलन खाते रघुवरदास जी वेदान्ती बड़ा स्थान का स० द० १ रु०। श्री महासंगम से भेंट १०४)। बरेली तक का टिकिट सैकण्ड का पृथक राजा की विद्वद्दक्षिणा ५) कुल ११०)।

चैत्र सदी ११ (मार्च ३१)

(१) शालग्राम जी के यहाँ उपनयन सम्बन्धी सभा में यज्ञोपवीत पर व्याख्यान, दावत में सम्मलित। ११ वजे रात्रि को बरेली से प्रस्थान। बरेली से मार्ग व्यय—टिकट सैकण्ड देहली तक ७।=) हिसार तक ६।।=) रतन गढ़ तक ५)।

सभा निमन्त्रणों की वर्षा

चैत्र सुदी १२ (अप्रैल १)

(१) १-४ एप्रिल का वैदिक शिष्ट परिषत् अहमदाबाद का विशेष आग्रह। लाहौर से तार बरेली मिले। १०० मार्ग व्यय के लाहौर आये। पत्र द्वारा निषेध, प्रातः देहली हरनारायण शास्त्रीजी से भेंट। रिवाड़ी स्नान, हिसार भोजन। रात्रि ३ वजे रतनगढ़ प्रवेश। सब दिन सफर में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चैत्र सुदी १३ (अप्रैल २)

(१) २ एप्रिल से ५ एप्रिल तक लखनऊ सनातनधर्म अवध मण्डल का निमंत्रण, गुणानन्द द्वारा, संदिग्ध उत्तर।

(२) चैत्र शु० १४, १५, सिरसा का निमंत्रण, तारीख पलटो, उत्तर।

(३) वैद्य हजारीलाल शर्मा स० म० स० ध० चैत्र शु० १३-१५, १-३ एप्रिल रतनगढ़ ब्रह्मचर्याश्रमका निमंत्रण, सूरजमल वैद्य मंत्री, संदिग्धोत्तर।

(४) शिक्षा पर रतनगढ़ में व्याख्यान, प्रभाव स्वल्प। अखिलानन्द जी का अत्यधिक। लीलाधर, श्रीदत्त शास्त्री आदि से भेंट।

संस्थाओं का निरीक्षण

चैत्र सुदी १५ (अप्रैल ३)

(१) २,३,४, एप्रिल ब्राह्मण कान्फरेन्स झंग का निमंत्रण, रामरंग मंत्री निषेध उत्तर।

(२) प्रातः रतनगढ़का औषधालय, विद्यालय, पुस्तकालय आदि संस्थाएँ देखकर रिमार्क दिये। सायं 'कर्त्तव्य' पर ब्रह्मचर्याश्रम रतनगढ़ में व्याख्यान। प्रभाव अधिक। रात्रि में रतनगढ़ से प्रस्थान। अहमदाबाद को तार अर्जेन्ट जिज्ञासार्थ आश्रम से दिलाया।

अहमदाबाद में व्याख्यान व मूकबधिर विद्यालय निरीक्षण

वैषाख बदी ३,४ (अप्रैल ६,७)

(१) मध्यान्ह १ बजे अहमदाबाद पहुँचा, स्टेशन पर कोई नहीं। श्री देवकीनन्दन महाराज के बंगले पर ठहरकर वं० परिषत् का पता लगाया। परिषत् साधारण।

(२) पूर्व दिन और आज साधारण व्याख्यान दिया। प्रस्ताव पर भी बोला, आनन्द थियेटर में व्याख्यान, जनता स्वल्प। चन्द्रशेखर रिवाडीवाला भी आया। नर्मदा शंकर जी Thaker असिस्टेन्ट मैनेजर सर चीनू भाई मिल शाहपुरा अहमदाबाद के लाल बंगले पर स्थिति। जयन्तराव मंत्री (रायपुर) रुग्ण से भेंट। गूंगे बहरों का स्कूल साश्चर्य देखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाजे बाजे से स्वागत्

वैशाख बदी ६,७ (अप्रैल ९,१०)

(१) प्रातः भटिण्डा पर दीनदयालु जी से भेंट। ९ बजे सिरसा (जि० हिसार) प्रवेश। गाजे-वाजे से स्वागत। पण्डित जी के साथ ही ठहरा। सायं सनातन धर्म के महत्त्वपर व्याख्यान, प्रभाव उत्तम, अखिलानन्द जी, कालूराम जी मिले।

(२) सिरसा में सायं श्राद्ध पर व्याख्यान, प्रभाव अत्यधिक। हरिद्वारको तार सिरसा से दिलाया। सायं सिरसा से प्रस्थान। सिरसा से प्राप्त ७१ रु०

वैशाख बदी ९ (अप्रैल १२)

(१) हरिद्वार में शिक्षा समिति कार्य, पूर्व प्रस्तावों का परावर्तन। पं० पद्मसिंह शर्मा जी से भेंट। पं० गङ्गासहाय जी का ग्रन्थ (न्याय प्रदीप) वेंकटेश्वर प्रेस से प्राप्त। रात्रि में स्कीम निर्माण।

शङ्कराचार्य जयन्ती मनाकर रावलपिण्डी यात्रा : धर्म, शिक्षा, श्राद्ध पर व्याख्यान

वैशाख सुदी ६ (अप्रैल २४)

(१) २३ को रात्रि में शङ्करजयन्त्युत्सव, मूलचन्द मन्दिर में व्याख्यान देकर व विष्णुदिगम्बर का गानादि सुनकर रावलपिण्डी प्रस्थान।

(२) सैकण्ड रिजर्व सीट पर यदुकुलभूषणजी सहित शयन, प्रातः १० वजे रावलपिण्डी, सनातनधर्म के महत्त्व पर व्याख्यान, प्रभाव साधारण, चक्रधर विद्यार्थी विशारद का साथ, श्रवणलालजी, प्रकाशानन्द जी, रलियाराम आदि से भेंट।

वैशाख सुदी ७ (अप्रैल २५)

(१) पिण्डी सभा में साधारण शिक्षा सुधार पर व्याख्यान, प्रभाव अति साधारण, वर्षा आदि, दिनभर गपशप।

वैशाख सुदी ८ (अप्रैल २६)

(१) रावलपिण्डी निरीक्षण, वार्तालाप आदि। रात्रि में श्राद्ध पर व्याख्यान, प्रभाव उत्तम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२) कालेज की भेंट प्रतिनिधि सभा के लिये (चिट्ठी पर फैसला) सभा से ५०) (अमानत जमा)।

ज्येष्ठ वदी १२ (मई १५)

(१) पं० अखिलानन्द जी का सत्यार्थ प्रकाशालोचन देखकर उसमें आवश्यक निवेदन लिखकर रजिस्ट्री भेजा। तबियत कुछ ठीक, पत्र लेख आदि। भोजन कुकर में कच्चा रहा, फिर पकाया कालेज कमेटी की मीटिंग।

शङ्कराचार्य का अद्भुत व्याख्यान

ज्येष्ठ सुदी १० (मई २७)

(१) पूर्व दिन प्रात: नियम संशोधन कमेटी ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम की। अव्यवस्था के कारण कुछ कलह। मध्यान्होत्तर जनरल मीटिंग में खूब वाद-विवाद। (२) सायं सभा में श्री शङ्कराचार्य (त्रिविक्रम स्वामी) के शिष्य श्री भारतीकृष्ण तीर्थ, प्रभास पट्टन, का संस्कृत में पण्डित्यपूर्ण अद्भुत व्याख्यान, नोट लिये।

श्री गङ्गा पूजा, मीटिंगें तथा सभा

ज्येष्ठ सुदी ११-१२ (मई २८, २९)

(१) गत दिवस (१० को) प्रात: तीर्थ पुरोहितों के साथ श्री गङ्गापूजा। मध्यान्होत्तर हरिद्वार में मीटिंग्। प्रिंसिपल हरिवल्लभ मिश्र के साथ अनुचित कलह। (२) सायं सभा में श्रीकृष्ण जोशी (नाभा) का व्याख्यान। अपील दुर्गादत्त पन्त द्वारा। एकादशी को प्रात: खर्च घटाने की कमेटी। मध्यान्ह में आयुर्वेद कालेज कमेटी। सायं श्री गङ्गा सभा में गङ्गा महत्त्व पर अपना भाषण। पं० दीनदयालु जी की वक्तृता। (३) आज प्रात: कनखल स्नान, श्री दक्षेश्वर दर्शन। मध्यान्होत्तर हिन्दू सभा में सम्मिलित। सायं श्री विल्वेश्वर दर्शन आदि।

हाथी पर जुलूस : विद्वानों व राजमंत्री से भेंट

ज्येष्ठ सुदी १५ (जून १)

प्रात: १०॥ बजे पटियाला के लिए सहारनपुर से प्रस्थान। ४ बजे पटियाला प्रवेश। सायं कुर्सीदार हाथी पर चढ़कर प्रोसेशन के साथ भ्रमण।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अषाढ़ बदी १ (जून २)

प्रातः पटियाला में माधवराम, केदारनाथ (कालेज छात्र) आदि से भेट। कुकर में पाक। सायं धर्मसभा में सनातन धर्म के महत्त्व पर व्याख्यान, दृष्टान्त नहीं, प्रभाव उत्तम, स्वामी दयानन्द जी से भेट श्री कृष्ण शास्त्री जी के रुग्णावस्था में दर्शन। वहाँ दुग्ध पान।

अषाढ़ बदी २,३ (जून ३,४)

(१) प्रातः कालिका जी व श्री राजेश्वरी जी दर्शन। राजकीय बारादरी का अवलोकन। सायं सभामें "भक्ति" विषय पर व्याख्यान—प्रेम भक्ति, प्रभाव उत्तम। मध्यान्ह में स्वामी दयानन्द जी से भेट, स्कूलों में धर्म शिक्षा प्रचार के सम्बन्ध में उनका प्रस्ताव, स्वीकृत। (२) प्रातः सौरादि से निवृत्त हो मुल्कराज शास्त्री के घर फल आदि का जलपान कर मध्यान्ह में मोतीमहल दर्शन। सायं भक्ति का शेष व्याख्यान। धर्म सभा के उत्सव की समाप्ति।

गोरक्षा पर व्याख्यान

आषाढ़ बदी ४ (जून ५)

(१) प्रातः पटियालाकी विद्वन्मण्डली से वातचीत, सबका आगमन। मध्यान्होत्तर पटियाला राजमन्त्री दीवान दयाकृष्ण जी कौल से भेट, वार्तालाप। (२) श्री देवीदर्शन पूर्वक गोशालामें गोरक्षा पर व्याख्यान। रात्रि १२ बजे स्टेशन पर आगमन। शयनाभाव।

विष्णु दिगम्बर जी की कथा सुनी

अषाढ़ बदी ५ (जून ७)

लाहौर में प्रातः स० ध० कालेज जाकर रघुवरदयालु जी से भेट। रिजल्ट आदि की वातचीच मध्यान्ह में मन्त्री आदि धर्मसभा वालोंका आगमन। रात्रि में विष्णु दिगम्बर कथा श्रवण, पत्रलेख, धर्मशिक्षा पुस्तक नोट आदि।

आषाढ़ बदी १० (जून १२)

(१) प्रातः पाकाभाव, ब्रह्म विज्ञान, पत्र लेखादि। ब्रह्मचारी के लेख भेजे। रात्रि १ वजे तक स० ध० सभा में विष्णु दिगम्बर जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का हरिकीर्तन। अतिशयानन्द प्राप्ति। रात्रि में शयनाभाव। ऋषिकुल मन्त्रीको इन्सपैक्शन रिपोर्ट भेजी।

ब्राह्मण का ही आचार्यत्व

आषाढ़ सुदी ३ (जून १९)

(१) लेखबद्ध शास्त्रार्थ मीरपुर वाले की भूमिका। कालेज में महामण्डल के सरक्युलर (धर्मशिक्षा वाले) पर ध्यान ब्रह्मविज्ञान विचार व कुछ लेख। सायम् थियेटर में सभा।

अषाढ़ सुदी ११ (जून २६)

(१) कालेज में नियम निर्माणादि कार्य। गदाधरसिंह नाथ क्षत्रिय ब्र० आ० काशीकों ब्राह्मण के ही आचार्यत्व के प्रमाण ढूंढ़कर मनुस्मृति से लिये। विश्वनाथ बालकृष्ण शास्त्री गवर्नमेन्ट हाई स्कूल नासिक के ओजिष्ठ रूप विचार सम्बन्धी व्याकरण पत्र का उत्तर (पूर्व रत्नाकर में लिख चुका हूं) बड़हलगंज़ शास्त्रार्थ के कालूराम शास्त्री और अखिलानन्द के रजिस्टर्ड पत्रों के आधार पर मनुस्मृति की पुस्तकों में "विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्" पाठ का अन्वेषण। २—गरमी अत्यधिक। लाला रघुवरदयालु जी से स्थान पर जाकर भेंट ५ बजे।

८ वर्ष का बालक अद्भुत गायक तिलक अस्थिप्रवाह

श्रावण बदी ५ (अगस्त ५)

१—काशी में प्रातः वृष्टि प्रयुक्त विलम्ब, दशाश्वमेध स्नान, श्री अन्नपूर्णा माता की पूजा। ३ बजे यूनिवर्सिटी का का मनहर मास्टर बरवे ८ वर्ष के का गान सुना। गान वाद्य शक्ति अद्भुत। पुत्र प्रो० गणपति रावजी बरवे, गायन शास्त्र शाला, प्रिंसेस स्ट्रीट कालवा देवी रोड मुम्बई।

श्रावण बदी ६ (अगस्त ८)

१—प्रातः प्रयाग स्नान कर तिलक की अस्थिप्रक्षेप यात्रा देखकर मध्यान्ह मेल से जयपुर के लिये प्रस्थान। दारागंज २ बार गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैद्य जगन्नाथ शुक्लजी मिले। चन्द्रशेखर जी से भेट नहीं। आगरा स्टेशन पर गो० व्रजनाथ जी भोजन लेकर मिले।

ओझाजी से पाठारंभ

श्रावण बदी ११, १२ (अगस्त १०-११)

१—प्रातः अज्ञातनामा विद्वान् परिचित स्वामी संन्यासी जी का आगमन, उन्हीं के आतिथ्य और वार्तालाप में सब दिन व्यय। सायं वैद्य दुर्गाप्रसाद जी से हास्पिटल में भेट। २—रात्रि राममूर्ति का सरकस देखा, माडू जी जोहरी के साथ पारीक पाठशाला को दी हुई नाइट। वहाँ धन्यवाद रूप व्याख्यान भी दिया। ३—प्रदोष व्रत। स्वामीजी की स्थिति। प्रातः अतिथ्यानन्तर पाठशाला में श्री दुर्गाप्रसाद जी से वार्तालाप। मध्यान्ह में स्वाप व पत्र लेख। अग्रवाल पाठशाला में व्याख्यान। श्री पंडित जी से श्री पंडित जी से पाठारम्भ। रात्रि में पूजानन्तर ज्ञाति में जाकर भोजन।

जैजा में शास्त्रार्थ

कार्तिक बदी १० (नवम्बर ५)

१—प्रातः कापी नरीक्षण समाप्त। कालेज में लक्ष्मण-शास्त्री जी का आमन, व्याख्यान आदि। कालेज टाइम के अनन्तर पत्रलेख। रात्रि १० बजे की ट्रेन से जैजा ज़ि० होशियारपुर के लिए प्रस्थान। स्टेशन विलम्ब से पहुँचा किन्तु लेट होने से ट्रेन मिल गई। मुलतान श्रेष्ठाचार्य का १२ ता० नवम्बर का निमंत्रण तार द्वारा मिला। प्रत्याख्यान तार द्वारा ही।

कार्तिक बदी ११ (नवम्बर ६)

१—प्रातः जालन्धर सिटी से ट्रेन पलटकर नवाशहर स्नानादि से निवृत्त होकर १२।४२ जैजा पहुँचा। मिष्ठान्न आदि जलपान कर सभा में। २—शास्त्रार्थ आर्यसमाज और सनातन धर्मसभा का वर्ण-व्यवस्था पर। वक्ता स० ध० सभा के पं० रामशरण जी, आ० स० का रामगोपाल शास्त्री। व्यास और वशिष्ठ का कैवर्ती-पुत्र व गणिका-पुत्र होना आर्यसमाज नहीं लिख सका इसलिये पराजित। प्रभाव उत्तम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोसेवार्थ व्याख्यान तथा सफल अपील

कार्तिक सुदी ७,८ (नवम्बर १८,१३)

१—प्रातः ६ बजे मुलतान। स्वागत प्रतिष्ठित लोगों ने स्टेशन पर किया दिन में कुछ विचार-दर्शन देखा, विद्वानों से वार्तालापादि। सायं गाजे-बाजे से जाकर गोशाला में गोसेवा पर व्याख्यान व अपील। अपील में चार सहस्र से अधिक प्राप्ति। २—प्रातः सूर्यकुण्ड स्नान व योगमाया दर्शनादि। बिलम्ब से भोजन। गोशाला के प्रोसेशन में भ्रमण। सायं व्याख्यान गोमहत्व। विद्वानों से वार्तालापादि में समय व्यय।

छात्रों तथा विद्वानों द्वारा स्तुति : सरगोधा में धूम घाम से स्वागत

कार्तिक सुदी ९ (नवम्बर २०)

१—प्रातः चन्द्रभागा स्नान। श्री नृसिंह दर्शन। सदाचाराश्रम का निरीक्षण वहाँ छात्रों व विद्वानों ने कविता आदि से स्तुति की। कविता साधारण, अनन्तर संस्कृत समिति में संस्कृत भाषा में भाषण। विद्वानों ने श्लोक आदि द्वारा स्तुति की। श्लोक उत्तम। २—संस्कृत साहित्य सम्मेलन का आयोजन, स्वागत कारिणी का संगठन। गोशाला में दाम्पत्य धर्म पर वक्तृता कर ८॥ बजे रात्रिको लाहौर के लिए प्रस्थान। सैकण्ड क्लास में स्थान न मिलने से फर्स्ट क्लास में यात्रा। स्टेशन पर विद्वान् व प्रतिष्ठित लोग।

कार्तिक सुदी १५ (नवम्बर २६,)

१—प्रातः मलकवाल मैरा सभा वालों से भेट। सरगोधा ९॥ बजे प्रातः पहुँचा। धूम-धाम से स्वागत। लाला रघुवरदयालु जी व हरियाने के हरिचरण जी प्रैसीडेंण्ट होने को साथ। रात्रि में सनातन धर्म महत्वपर व्याख्यान, दृष्टांत नहीं। प्रभाव साधारण। २—सरगोधा में दिन ३ बजे वर्णव्यवस्था पर व्याख्यान। मूर्खों में प्रभाव नहीं। भवानीदत्त जोशी से भेट। पाकादि में व लाला रघुवरदयालु जी से वार्तालाप में समय व्यय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमेश्वर की पीड़ा से व्याग्र ; राजाओं के पास

पौष सुदी १ (जनवरी १०)

१—पूर्व रात्रि में परमेश्वरानन्द जी की उदर पीड़ा के कारण वहुत कुछ जागरण। प्रातः भोजन वनाया, कुछ पत्रलेख। बाजार जाकर मंत्री जी से भेट। रात्रिकों परमेश्वरजी को पुनः पीड़ा, इस ही के कारण व्यग्रता।

माघ बदी ६,१० (फरवरी १,२)

१—प्रातः टीका लेख व शास्त्रदीपिका। ऋषिकुल की रिपोर्ट का काम समाप्त कर भेजदी। कालेज में पत्रलेखादि कार्य। रात्रि-कार्य मुक्तावली-पाठ मात्र व पेपर देखे। आगे अपना लेख ब्राह्मण-अब्राह्मण का 'आज' में निकला देखा। गत शनि के 'आज' में। २—रोशनी के अभाव से प्रातः टीका लेखादि कार्य न कर सका। अति प्रातः वेदतीर्थ भक्तराम जी का आगमन। संस्कृत यूनिवर्सीटी पर विचार, उसही में वहुत काल। कालेज से पंडितों में डैपूटेशन में रामपुर व शिमला के राजा के पास गया (चीफ्स कालेज) परिषत् सहायतार्थ उनसे २०० रु० प्राप्त। रात्रि में ८ बजे प्रत्यागमन। मुक्तावली पाठादि।

प्रोसेशन तथा मूर्तिपूजा व वर्णव्यवस्था पर व्याख्यान

माघ वदी १४,३० (फरवरी ६,७)

१—गत रात्रि वाम्बे मेल से चलकर १२॥ बजे लुधियाना सराय में शयन। प्रातः टाँगे में रायकोट ११॥ पहुँचा। स्नानादि कर प्रोसेशन में। पक्वान्न भोजन, रात्रि में मूर्तिपूजा पर व्याख्यान, प्रभाव उत्तम। २—प्रातः विलम्ब से उत्थान स्नानादि से निवृत्त, ११ वजे पं० लक्ष्मीनारायण जी (वर्तमान हिन्दू सभोपदेशक व नानका-परेटर) श्रीयुत ब्रह्मचारी वालकृष्णानन्द जी ,सनातन धर्म सभा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुलतानपुर) तथा ब्रह्मचारी परमानन्द जी हृषीकेश आदि के साथ स्थिति, वार्त्तालाप। ३—कुकरपाक, कुछ पत्रलेख। ३ बजे से सभा में, ४ बजे अपील, प्राप्ति साधारण। रात्रि में वर्णव्यवस्था पर व्याख्यान, प्रभाव उत्तम।

पुत्र जन्मकी सूचना पर छात्रों द्वारा उत्सव

माघ सुदी १,२ (फरवरी ६,१०)

१—प्रात: बिलम्ब से उत्थान, यात्रा की वस्तु आदि ठीक करना, क्षौर, पाक। कालेज में पढ़ाया नहीं। कुछ फटकार छात्रों को दी। (असहयोग पर)। २—घर के पत्र से पुत्र जन्म विदित हुआ। चूरूका पण्डित परीक्षा का रिजल्ट देखकर भेजा, उत्तीर्ण ३२। जगदीश शास्त्री के साथ उत्तर दिन पण्डित परिषद् का प्रोग्राम बनाया। मंत्रियों को पत्र लेख व धरमचन्द से हिसाब आदि, कुछ पत्रलेख। सायम् ऋषिभवन गया। रात्रि में पेपर पढ़े व गपशप। प्राय: बिलम्ब से चेत, बालककी कुण्डली पर विचार व डायरी लेख, हिसाब। कालेज में छात्रों ने उत्सव किया (पुत्र जन्म का) फिर पंजाब संस्कृत परिषद् का अधिवेशन। रात्रि में मुक्तावली पाठ। प्रतिनिधि सभा मंत्री से बातचीत कालेज में।

संस्कृत शिक्षा द्वारा भारत की उन्नति

माघ सुदी ७,८ (फरवरी १५,१६)

१—डेरा इस्माइल खां में प्रात: उपदेशकों में गपशप। कुकर में पाक। गोस्वामी जी का आज नगर कीर्तन। मध्यान्ह में कुछ हिसाब लेख व पत्रलख। सायम् कुछ देर नगर कीर्तन में साथ रात्रि गपशप। २—प्रात: क्षौर, पाकादि। मध्यान्ह में पत्रलेख, ४ बजे से सभा में। सभा में सायं संस्कृत शिक्षा द्वारा भारत की उन्नति पर व्याख्यान, प्रभाव अत्युत्तम। रात्रि में पं० बालमुकुन्द जी का व्याख्यान सुना। नाथूराम शास्त्री के व्याख्यान की लोगों में निन्दा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धौलपुर नरेशने व्याख्यान सुना

फाल्गुन बदी ११,१२ (मार्च ५,६)—१. प्रात: आगरा से चलते समय अखिलानन्द जी का साथ। १० बजे धौलपुर, दिन में सम्मेलन का हिसाब ठीक किया। सायं धर्मसभा मन्दिर श्री राधाबिहारी जी में 'महत्त्व' का व्याख्यान, दृष्टान्त नहीं। रात्रि में महाराजा साहब ने कैसर बाग में भक्ति पर व्याख्यान सुना। २ बजे रात्रि वापस, ३ बजे रात्रि आगरा छावनी आकर आरामकुर्सी पर लेटा रहा। २. प्रात: आगरा कैण्ट पर सभापति हरनारायण जी सहित दीनदयालु जी प्रभृति का आगमन, वहीं स्नानादि १० बजे आगरा फोर्ट पर स्वागत। जयपुर की मित्रमण्डली आदि से मेलन, सिटी की धर्मशाला में स्थिति, प्रतिनिधियों के सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन। महाराज धोलपुर का आगमन। रात्रि में भोजन आनन्दीलाल से भेंट, विषय-निर्वाचन समिति १२ बजे तक।

फाल्गुन बदी १३, १४ (मार्च ७, ८)— १. आगरा में निराहार व्रत। प्रात: संस्कृत शिक्षा क्रम, सूर्यनारायण जी के साथ लिखा। मण्डली के साथ दूर यमुना स्नान। भारतीय शिक्षा सम्मेलन के आरम्भ में पूजा व स्वल्प व्याख्यान। दीनदयालु जी आदि सम्मिलित। पुन: संस्कृतसम्मेलन का अधिवेशन २ बजे से, कई निबन्ध पाठ व प्रस्ताव। अन्त में नानकापरेशन प्रयुक्त किञ्चित कलह। रात्रिमें विद्वन्मण्डली सहित शङ्कर पूजा, मन्दिर में। २, प्रात: श्री यमुना स्नान, कुकरमें पाक। सम्मेलन की विषय निर्वाचन समिति, आगे सम्मेलन, पूर्णता। सायं भारतीय शिक्षा सम्मेलन में विद्वानों के साथ गमन। बड़ी रातकों वहाँ से आया। उनके उद्देश्य समझने का मित्रों का यत्न व खूब उपहास। श्री हरनारायण शास्त्री जी का ११ बजे आगमन, सूर्यनारायण जी को शयनार्थ साथ ले जाना।

कालेज का शिलान्यास

फाल्गुन सुदी ११ (मार्च २०)—१. पूर्व दिन रात्रि गुजरावाला शयन। आज प्रात: हिन्दी व्यापारी कालेज के लिये गौरीशंकर जी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(अमृतसरी) का व्याख्यान। मध्यान्होत्तर स्वयम् अपने हाथ से कालेज की मुहूर्तशिला रक्खी व हिन्दी पर व्याख्यान दिया। अपील में सफलता पूर्ण। मंत्री विहारीलाल जी चानना की कोठीपर स्टेशन के पास स्थिति। २. सभापति व मन्त्री आदि ने अपनी ओर से प्राइव्हेट दिये ४०) रु०। चाँदी की करनी, सैकेण्ड का मार्गव्यय पृथक् उनने दिया।

कालूराम शास्त्री का व्याख्यान

चैत्र बदी १,२,३ (मार्च २४,२५,२६)—१. प्रातः पत्र लेख, रोटी बनाकर यात्रा की तैयारी। पं० गंडाराम जी व वेदपाठीका आगमन। आचार्यातिरिक्त के सपिण्डी कराने की बातचीत। कलकत्ता मेल से सुलतानपुर प्रस्थान। जालन्धर पर श्रवणराम जी, कालूराम जी आदि से भेंट। कालूराम जी साथही चले। सुलतान-पुर सभा का सभापति भी वहीं मिला। सुलतानपुर रात्रि ८ बजे आकर भोजन व शयन। २. प्रातः नदी पर स्नान, फिर सभा में कालूराम जी का व्याख्यान सुना। लौट कर कुकर से भोजन शयन। ३ बजे पातीराम जी फगवाड़ा का वेदान्त व्याख्यान सुन स्वयम् वर्णव्यवस्था पर वक्तृता की, प्रभाव उत्तम। रात्रि गपशप व शयन। ३. प्रातः स्नानादि कर सभा में गौरीशंकर जी (अमृतसर) का व्याख्यान सुना। गपशप व शयन, डायरी लेख। ४ बजे से स्वयम् श्राद्ध पर व्याख्यान दिया। प्रभाव उत्तम। रात्रि ६ बजे यात्रा, जालन्धर मेल निकल जाने से परमकष्ट, इण्टर में शयन। रात्रि ३ बजे जालन्धर से चलकर रवि प्रातः अम्बाला छावनी वह ट्रेन छोड़ दी।

गोरक्षा तथा ब्राह्मणाब्राह्मण पर वक्तृता

चैत्र बदी ५ (मार्च २८)—१. प्रातः ६ बजे कानपुर स० ध० सभा भवन में पाक। बहुत से उपदेशकों से बातचीत में समय व्यय। रात्रिको गोरक्षा प्रस्ताव पर स्वल्प भाषण कर १२ बजे ट्रेन से शास्त्री जी के साथ काशी को रवाना, स्टेशन पर चौबे राधेलाल जी डिप्टी मिले। सेकण्ड में सुख शयन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चैत्र सुदी १ (अप्रैल ६)—१. पूर्व दिन ट्रेन लेट होकर प्रातः १० बजे हरिद्वार (रात्रि में शयन किन्तु सहारनपुर से ट्रेन में भीड़) गंगा स्नान, २ बजे भोजन जलपानाभाव। २. ४ बजे हिन्दू सभा में (भीमगोडा) पं० दीनदयालु जी के सभापतित्व का समर्थन व उनकी वक्तृता सुनी। रात्रि में सब्जेक्ट कमेटी में सम्मिलित। आज प्रातः गंगा स्नान, कुकरपाक, गपशप। १ बजे से रात्रि तक हिन्दू सभा में। नरोरा गंगा प्रस्ताव पर व ब्राह्मणाब्राह्मण पर वक्तृता दी।

आश्रम धर्म पर व्याख्यान

चैत्रसुदी २,३ (अप्रैल १०,११)—१. व्रजनाथ जी आदि का आगमन। प्रातः क्षौर व शिक्षा समिति। (परीक्षा न दिलाना पास हुआ) २ बजे से सायंकाल तक हिन्दू सभा में। रात्रि में भी कुछ शिक्षा समिति का कार्य (स्कीम विचार)। पूर्वरात्रि इन्द्रराज जी की दीनदयालु जी के समक्ष ऋषिकुल पुनः प्रत्यागमन की प्रार्थना, वहुत कुछ विचार। २. श्रवणलाल जी, पन्त जी, पं० दीनदयालु जी आदि से गपशप में समय व्यय। ऋषिकुल सभा में बैठा।

[आगे भी सभा निमन्त्रणों तथा अन्य कार्य-क्रमों का प्रवाह निरन्तर चलता रहा, जिसका विवरण सं० १९८०वि० के अन्तर्गत विशेष रूप से तथा कुछ अन्यत्र भी दिया गया है किन्तु स्थानाभाव के कारण उन सबका यहाँ उल्लेख नहीं किया जाता।

—सम्पादक]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्मरण

[लेखक के लिखे हुए कुछ प्रकाशित तथा अप्रकाशित संस्मरण इस शीर्षक के अन्तर्गत संकलित किये गये हैं ।

—सम्पादक]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रद्धेय मालवीयजी

संसार में ऐसे व्यक्तित्व से सम्पन्न महापुरुष अंगुलिगणनीय ही होते हैं जिनकी महत्ता, उदारता, प्रभाव और स्वभाव की विनम्रता से उस समय का संपूर्ण वातावरण प्रभावित होने से नहीं बच सकता। वर्तमान शताब्दी में इस प्रकार के व्यक्तित्व से सम्पन्न महामना मालवीयजी महाराज थे।

मैंने अपनी अध्ययनावस्था में ही मालवीयजी का नाम सुन रक्खा था। परन्तु अपनी उस अवस्था में बाहर आने-जाने पर प्रतिबन्ध रहने के कारण उत्सुकता रहने पर भी मालवीयजी के दर्शन न कर संका। मुझे उनके प्रथमवार दर्शन करने का सौभाग्य संवत् १९६२ में प्रयाग के कुम्भ पर प्राप्त हुआ। यह स्मरणीय है कि मालवीयजी ने जनता के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए पहले सनातनधर्म के प्लेटफार्म को ही चुना था। राजनीति में उन्होंने बाद में प्रवेश किया था। जिस समय मैंने उन्हें पहली बार देखा, वह कुम्भ का धार्मिक अवसर ही था और सनातधर्म महासभा तथा भारतधर्म महामण्डल के दो कैम्प लगे हुए थे। मालवीयजी ने सनातनधर्म महासभा का आयोजन किया था। सनातनी प्रसिद्ध वक्ता व्याख्यानवाचस्पति दीनदयालु जी उस समय मालवीय जी के साथ थे। महासभा में दाक्षिणात्य विद्वानों का अधिक्य देखने में आता. था। महामण्डल के कर्ता-धर्ता तभी से स्वामी ज्ञानानन्दजी थे। उस समय मालवीयजी का समान प्रभाव था। दोनों ही स्थानों में मालवीयजी का समान प्रभाव था। महामण्डल की रिपोर्ट में श्री दीनदयालु जी पर कुछ आक्षेपपूर्ण कटाक्ष थे, उस रिपोर्ट का उसी रूप में प्रकाशन मालवीयजी को अभीष्ट नहीं था। दरभंगा नरेश उस समय महामण्डल के सभापति थे, मालवीयजी ने उन्हें रिपोर्ट का अनौचित्य समझाया और उनकी आज्ञा लेकर यह घोषणा कर दी कि यह रिपोर्ट पास नहीं की जाती। उसके संशोधन के लिए एक समिति नियुक्ति कर दी गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी अध्ययनावस्था के अनन्तर भगवती जान्हवी के कलकल के निकट हरिद्वार के ऋषिकुल में मुझे ९ वर्ष उस संस्था का संचालन करने का कार्य करना पड़ा। उस समय भी मालवीयजी अनेक अवसरों पर हरिद्वार आये और उनसे सम्पर्क बढ़ाने का सुअवसर हाथ लगा। प्रयाग के सं० १९७४के कुम्भ में मेरा मालवीय जी से वह सम्पर्क बहुत घनिष्ट हो गया। उस समय मैं ऋषिकुल का कार्य छोड़ चुका था और सभाओं में धार्मिक भाषण देने के उद्देश्य से भ्रमण किया करता था। उक्त कुम्भ के अवसर पर भी मालवीय जी ने महासभा के विशाल आयोजन का निश्चय किया और उसका प्रबन्ध करने के लिए मुझे बुलाया। विद्वानों को निमन्त्रण देना, उनके निवास आदि का प्रबन्ध करना, उनके भाषण आदि का समय नियत करने आदि का भार उन्होंने मुझे ही दिया। उस समय दिन रात उनसे सपर्क रहने के कारण उनकी कार्यपद्धति, असाधारण शील आदि के अध्ययन करने का पूर्ण अवसर मिला। उस समय मैंने देखा कि देश के इतने बड़े नेता होते हुए भी मालवीयजी ने अपने विनयी स्वभाव तथा शील सौजन्य के निर्वाह में अंशतः भी कभी नहीं की है। उनके स्वभाव में यह खास बात थी कि वे सभी लोगों को प्रसन्न रखना चाहते थे। उस कुम्भ में एक साधु-सभा भी आयोजित थी। उसके संचालक एक साधु महाशय ने मुझसे कहा कि साधु सभा में पास करने के लिए कुछ प्रस्ताव श्री मालवीयजी से बनवाने हैं। मैंने कहा कि मालवीयजी अत्यधिक व्यस्त हैं, जो प्रस्ताव तैयार करने हैं उन्हें हम लोग मिलकर तैयार कर लेंगे। परन्तु उन्होंने मालवीयजी से ही प्रस्ताव लिखने का हठ किया तो उन्होंने अपने अत्यन्त व्यस्त समय में से भी कुछ समय निकाल कर साधु सभा के प्रस्ताव तैयार किए। मैं अनेक आवश्यक प्रश्नों के विषय में उनसे परामर्श करने जाता, बहुत देर बैठता, परन्तु वे अन्य कार्यों में इतने व्यस्त रहते कि मुझे रात को मिलने की आज्ञा उन्हें देनी पड़ती। जब रात को उनके पास जाता तो वे कामों से थक कर लेटे-लेटे मेरी बातें सुनते, नींद से आँखें जब बन्द होने लगती तब मुझे फिर सुबह मिलने की आज्ञा देकर सो जाते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहे कितने ही कार्यव्यस्त हों, एक अध्याय श्रीमद्भागवत और एक अध्याय महाभारत का पाठ वे अपने नित्य नियम के समय अवश्य करते थे। इसी का यह फल था कि उक्त दोनों ग्रन्थों के शतश: चुने हुए श्लोक उनकी जिह्वा पर सदा रहते थे। प्रयाग के कुम्भपर्व पर उन्होंने कई धर्मोत्सव जीवन-पर्यन्त अवश्य किये थे। ऐसे कई उत्सवों में उपस्थित रहने और यथाशक्ति सेवा करने का अवसर मुझे भी मिला था। जिस समय ब्रिटिश सरकार ने गंगा की नहर हरिद्वार में ब्रह्मकुण्ड के कुछ ऊपर से निकालने का आयोजन किया था, और ऐसा प्रतीत होता था कि यह आयोजन यदि पूर्ण हो गया तो हरिद्वार में गंगा की अविच्छिन्न धारा नहीं प्रवाहित होगी, उस अवसर पर भारत के अनेक राजा महाराजा वहाँ एकत्र हुए थे, उस कार्य में भी मालवीयजी ही प्रमुख भाग ले रहे थे। अन्ततः हरिद्वार में अविच्छिन्न रूप से गंगा की धारा का प्रवाहित होते रहना उस समय की सरकार को भी मानना ही पड़ा था।

जिस समय हमारे देश के अन्य नेता केवल वाचिक रूप से अछूतोद्धार और ग्राम-सुधार का आन्दोलन कर रहे थे, उस समय भी मालवीय जी अछूतों के वास्तविक ठोस सुधार में लगे हुए थे। उन्होंने उनके ही समझने की भाषा में एक गीत बनाया था, और इसका अछूतों में प्रचार करने की उनकी एक बड़ी योजना भी थी। वह गीत इस प्रकार है—

घट घट व्यापक राम जप रे।
मत कर बैर, झूठ मत भाखै,
मत परधन हर, मत मद चाखै,
जीव मत मार, जुवा मत खेलै,
मत पर तिय लख, यही तेरो तप रे।
घट घट व्यापक राम जप रे।

किस प्रकार साधारण धर्मों का निवेश उन्होंने इस छोटे से गीत में कर दिया है, इसे देख कर गागर में सागर भर देने की कहावत सामने आ जाती है। इसी प्रकार ग्राम-सुधार की योजना के लिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने संस्कृत-श्लोक बनाये थे। उनमें से एक दो यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा —

ग्रामे ग्रामे सभाकार्या ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्वमहोत्सवः।
अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः।
धर्म्यं संघटनं कृत्वा देयं दानं च तद्धितम्॥

अर्थात्, प्रत्येक ग्राम में सभा का आयोजन होना चाहिये। जहाँ से ग्राम-जनों को व्यावहारिक और धार्मिक उपदेश मिलते रहें। सब गावों में प्राचीन रीति के अनुसार कथा का भी प्रतिदिन प्रबन्ध होना चाहिये। एक-एक पाठशाला और एक-एक व्यायाम-शिक्षा की मल्ल-शाला सब जगह हों, और पर्व-दिवस अर्थात् अमा-पूर्णिमा या जन्माष्टमी-रामनवमी, शिवरात्रि के समय सभाओं द्वारा उत्सवों का आयोजन किया जाये। अनाथ और विधवाओं की रक्षा का सर्वत्र प्रबन्ध हो, इसी प्रकार मन्दिरों की सुरक्षा और गो-रक्षा पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाये। सब ग्रामों में धार्मिक संघटन हों और लोकहित के कार्यों में दान दिये जाया करें।

मालवीय जी की प्रतिदिन करने की जो ईश्वरीय प्रार्थना नियत थी उसमें भी अन्यान्य पद्यों के अतिरिक्त एक पद्य बड़े महत्त्व का था—

नान्यस्माद्विभियाज्जातु नवा कंचनभीषयेत्।
आर्यवृत्ति समालम्ब्य जीवेत्सज्जनजीवनम्॥

अर्थात्, ईश्वर से यह माँग थी कि न किसी से डरें और न किसी को डरावें। आर्यवृत्ति के अनुसार सज्जनों का सा जीवन वितावें। इन बातों का अपने व्यवहार में वे सदा पालन करते देखे जाते थे। किसी को न डराने की बात प्रायः प्रति दिन ही देखी जाती थी। यदि वह किसा समिति में बैठे अथवा विशेष विचार में मग्न रहते, उस समय भी विश्वविद्यालय के दर्शनार्थ यदि कोई विदेशी आ जाते और वे आपके दर्शन के लिए आगे बढ़ने और यदि भृत्यों द्वारा वह रोके जाते तो दृष्टि पड़ते ही वह भृत्यों को अलग कर देते और उन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विदेशियों को अपने पास बुलाकर उनसे दो मधुर शब्द कह कर ही उन्हें विदा करते थे। किसी से भय न मानने का आदर्श दृष्टान्त कौंसिल में उस समय देखा गया था जब कि उस समय के वाइसराय एक विशेष बिल स्वीकृत करने के लिये कृतसंकल्प होकर बैठे थे। रात्रि को नौ दस बज गये थे और संसद में आपकी धारावाहिक वक्तृता चल रही थी। उस समय मालवीय जी की वक्तृता से ऊबकर कौंसिल के सदस्य, जो अधिकांश यूरोपियन ही थे, उनकी ओर बार-बार सक्रोध देख रहे थे तव आपने वक्तृता के बीच ही में ये शब्द कहे थे—

"माई लार्ड, आपके अफसरों की ये लाल-लाल आँखें और शस्त्रास्त्रों की झनकार इस ब्राह्मण को अपने कर्तव्य से विच्युत नहीं कर सकती, मुझे जो कहना है वह अवश्य कहूँगा।" दूसरे दिन समाचार पत्रों में आपके चित्र निकले थे और उनके नीचे यह लिखा हुआ था कि "कुपित वाइसराय के सामने ढाई घण्टा वक्तृता देनेवाला यही ब्राह्मण वीर है।"

इस प्रकार की आप के जीवन की अनेक घटनायें हैं। यहाँ कुछ घटनायें, जिनका धर्म से सम्बन्ध है, लिखी गई हैं। जैसा कि काव्यों में ऋषि-मुनियों का वर्णन मिलता है कि उनका स्वरूप देखते ही लोगों में धर्मभाव की प्रेरणा उत्पन्न हो जाती थी, उसी प्रकार आपका स्वरूप और वेश-विन्यास ही लोगों के हृदय में धर्मभाव उत्पन्न कर देता था। इस प्रकार आपने अपना श्लाघनीय जीवन, धर्म, देशसेवा और अपनी मातृभाषा हिन्दी की सेवा में व्यतीत किया।

व्याख्यावाचस्पति श्री दीन-दयालु शर्माजी

सनातन धर्मावलम्बी कौन ऐसा व्यक्ति भारत में होगा जिसने व्याख्यान वाचस्पति श्री दीनदयालुशर्मा जी का नाम न सुना हो और उनकी कीर्ति मन्दकिनी में स्नान न किया हो। तदनुसार इन पंक्तियों का लेखक भी अपनी किशोर अवस्था में ही अध्ययन काल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उनका नाम श्रवण करता रहा। कुछ ज्ञान प्राप्त होते ही कुछ परम्परागत सनातनधर्म पर श्रद्धा तो थी ही, इधर-उधर से आर्यसमाज के तर्क कुतर्क भी कान में आते ही थे और उनका प्रतीकार सनातनधर्म की ओर से किस प्रकार हो रहा है, यह जिज्ञासा भी भी बढ़ती जा रही थी। तब श्री भारतधर्म महामण्डल की स्थापना, उसके हरिद्वार, देहली, आदि के महाधिवेशन और अन्ततः श्री ज्ञानानन्द जी की 'निगमागम मंडली' के साथ इसका एकीकरण होकर रजिस्टर्ड हो जाना, व उसी समय से व्याख्यानवाचस्पति जी का उससे पृथक् हो जाना, आदि वृत्तान्त भी कर्णपरम्परा वा समाचारपत्रों से सुनने को मिलते रहे। जयपुर में पधारे हुए कई महोपदेशकों के व्याख्यान सुनकर उधर रुचि भी बढ़ने लगी। यहाँ तक श्री व्याख्यानवाचस्पति जी की कीर्ति ही कानों को पवित्र करती रही। मुझे उनके प्रथम दर्शन का सौभाग्य अपनी २४ वर्ष की अवस्था में वि० सं० १९६२ के प्रयाग कुम्भ के अवसर पर ही प्राप्त हुआ। अध्ययनावस्था में जयपुर से बाहर जाने का सुयोग मुझे प्रायः नहीं प्राप्त होता था। जयपुर में मेरी स्मृति में उस अवस्था में श्री व्याख्यानवाचस्पति जी का पधारना हुआ न था। इसलिए इससे पूर्व दर्शन सौभाग्य से वंचित ही था। उक्त प्रयाग कुम्भ के अवसर पर एक ओर भारतधर्म महामण्डल का और दूसरी ओर कुछ दूरी पर स्वनामधन्य श्री मदनमोहन मालवीय जी की सनातनधर्ममहासभा का विशाल पंडाल लगा हुआ था। दोनों ही ओर पूरी धूम-धाम था। भारतधर्ममहामण्डल के सभी महोपदेशक, महामहोपदेशक महामण्डल के कैम्प में ही विराजमान थे। मैं अपने गुरु विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन जी ओझा के साथ जयपुर राज्य के प्रतिनिधि रूपसे अन्य तीन-चार पण्डितों के साथ महामण्डल में ही आया था। श्री मालवीय जी की महासभा में दाक्षिणात्य विद्वान् बहुत सम्मिलित थे। परस्पर सहयोग की बातचीत होकर यह निर्णय हुआ कि धर्मप्रचार का कार्य महामंडल के अधिकार में रहे और हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा का कार्य महासभा करे। काशीहिन्दूविश्वविद्यालय का विचार रूप में आरम्भिक शिलान्यास उस कुम्भ के अधिवेशन में ही कहना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए। वहीं श्री मालवीय जी का हिन्दू विश्वविद्यालय का विचार जनता के सामने प्रादुर्भूत हुआ था। उसके लिए एक कोटि द्रव्यकी योजना वहाँ जनता के समक्ष रक्खी गई थी। श्री पंडित जी ने इसकी अपील करते हुए कहा था कि 'कुछ सज्जनों को यह द्रव्य राशि भारी प्रतीत होती है और इसका संग्रह कठिन व, असम्भव जान पड़ता है, किन्तु जब हिन्दू जगत के गरीब भाइयों की पाइयाँ इसके लिए पड़ने लगेंगी तब इस राशि का संगृहीत होना कुछ भी कठिन न होगा।'

वहाँ यह भी दृश्य देखा कि महामंडल की जो रिपोर्ट पुराने समय की उस अधिवेशन में सुनाई गई उसमें कुछ ऐसा आक्षेप था कि पुराना रिकार्ड हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। इसपर माननीय श्री मालवीय जी ने सभापति महाराज दरभंगा को समझाकर यह घोषणा सभापति के मंच से करवाई कि यह रिपोर्ट अभी पास न समझी जाय। इसपर फिर एक उपसमिति विचार करके संशोधन करेगी।

अस्तु, इस घटना से महामंडल के नए अधिकारियों की अनुचित चेष्टा और श्री मालवीय जी व पंडित जी की गाढ़मैत्री का पता लगा।

इसके कुछ ही काल के अनन्तर श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय के अध्यक्ष श्री खेमराज जी जयपुर आये थे और उन्होंने जयपुर में विदेशी चीनी का बहुत प्रचार देख एवं जयपुर में गोरक्षा का कोई जनता का स्थान न देखकर तारद्वारा पंडित जी को वहाँ बुलाया। उस अवसर में मुझे पंडित जी के प्रभावशाली व्याख्यान कई दिन सुनने का सौभाग्य मिला। वहाँ उस समय व्याख्यान का ऐसा प्रभाव हुआ कि हलवाइयों ने सैकड़ों मन विदेशी चीनी की मिठाई बाजार में फेंक दी और आगे के लिए विदेशी चीनी न मगाने की शपथ ले ली। बहुत काल तक जयपुर में ऐसा नियम चला। आगे स्वार्थवश फिर ढीला हो गया। उसी समय गो आदि प्राणियों की रक्षा के लिए वहाँ पिंजरापोल खोली गई। वह आज भी सुव्यवस्था से चलरही है। जयपुर के कई प्रतिष्ठित रइसों के यहाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंडितजी के सनातनधर्म सम्बन्धी व्याख्यान सुनने का अवसर भी उस समय मिला।

इसके अनन्तर वि० सं० १९६४ में जब हरिद्वार में ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम की सुव्यवस्थित रूप से प्रतिष्ठा हुई, वहाँ भी मैंने श्री पंडितजी के दर्शन किए। वहाँ भी उनके कार्य कलाप की गम्भीरता का अनुभव किया। यद्यपि ऋषिकुल की स्थापना कुछ काल पूर्व हो चुकी थी, किन्तु एक समिति बनाकर उसे रजिस्टर्ड करना आदि सुव्यवस्थित रूप इस समय ही किया गया। इस व्यवस्था में पंडितजी ने ही प्रमुख भाग लिया था। इनके अनुरोध से ही देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के प्रतिष्ठित विद्वान् और धार्मिक उस संगठन में सम्मिलित हुए थे। उस समय मैं दर्शक रूपसे ही वहाँ उपस्थित था। किन्तु एक वर्ष के अनन्तर ही जब मैं ऋषिकुल के शिक्षा विभाग के संचालक के रूप में नियुक्त होकर वहाँ रहने लगा तबसे श्री पंडित जी के निकट सम्पर्क में आनेका सौभाग्यपूर्ण अवसर मुझे मिला। आरम्भ में पंडित जी को मेरे श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी के सम्पर्क में होने की कुछ दिन शंका रही, किन्तु जब उन्होंने मेरे व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण कर जान लिया कि यह तटस्थरूप से कार्य करता है, किसी पार्टी से इसका सम्बन्ध नहीं, तबसे मुझ पर उनकी कृपा बढ़ती ही गई। ऋषिकुल की शिक्षा-समिति का कार्य भार भी उन्होंने मुझको दिलाया। देहली के म०म० श्री हरनारायण शास्त्री जी से ऋषिकुल के कार्य कर्त्ता के रूप में ही मेरा प्रथम परिचय हुआ। किन्तु आगे क्रम से वह परिचय गाढ़ मित्रता के रूप में परिणत हो गया, जो कि उनके स्वर्गवास तक अविच्छिन्नरूप में चला।

यद्यपि कई उत्कृष्ट व्याख्याताओं के व्याख्यान सुनने, स्वर्गीय भारत भास्कर श्री अम्बिकादत्त व्यास की पुस्तकें पढ़ने, गुरुवर विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी से वेदों की वैज्ञानिक प्रक्रिया के अध्ययन और जयपुर की रामसभा से सम्पर्क हो जाने के कारण सनातनधर्मान्दोलन में मेरी रुचि अध्ययनकाल में ही हो गई थी और वक्तृता का अभ्यास भी जयपुर में ही आरम्भ हो गया था किन्तु ऋषिकुल हरिद्वार में उस वक्तृत्व का क्रमिक विकास हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi .

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस विकास में पण्डितजी के प्रोत्साहन ने बहुत बड़ी सहायता दी। वे मुझे भाषण की प्रौढ़ि बढ़ाने के लिए बहुत प्रोत्साहन देते रहे। मेरा इस ओर अभ्यास बढ़ता देख वे बहुत प्रसन्न होते और कई बार कहते कि—"संस्कृत पण्डितों को सभा में बोलना प्रायः नहीं आता है, किन्तु इसे बोलना भी आ गया है। इससे मुझे सनातन धर्म के कार्यों में बहुत बड़ी आशा हो गई," इत्यादि। उनके निकट सम्पर्क में रहकर मैंने देखा कि वे अन्य कई एक धर्मोपदेशकों की भाँति केवल व्याख्यान दे देना इतना ही मात्र सनातनधर्म से सम्बन्ध रखने वाले नहीं थे, किन्तु सनातनधर्म दृढ़ रहे ऐसी उनकी हार्दिक कामना सदैव जागृत रहती थी। सामाजिक प्रक्रिया के आन्दोलन में भी सनातनधर्म पश्चात् पद न रहे, इसी उद्देश्य से उन्होंने बड़े परिश्रम से लाहौर में सनातनधर्मकालेज की स्थापना कराई और उसकी दृढ़ता और उसकी उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। प्रधानमंत्रित्व का भार भी बहुत काल तक अपने कन्धों पर रक्खा। काशीहिन्दूविश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा में स्वनामधन्य श्री मालवीय जी के साथ श्री पंडित जी का पूर्ण सहयोग था और वहाँ धर्म की प्रधानता रहे इसपर उनकी सदा दृष्टि रहती थी। लाहौर में सनातनधर्म कालेज की स्थापना होने पर उन्होंने मुझे वहाँ जाकर कार्य करने का आदेश दिया था, किन्तु ऋषिकुल के सभापति महोदय के विशेष अनुरोध से मैं उस समय वहाँ न जा सका। तथापि लाहौर से मेरा सम्पर्क बढ़ता गया।

ऋषिकुल में ही जब जगत्प्रसिद्ध महाविद्वान् श्री शिवकुमार मिश्र जी के पधारने पर उनकी अध्यक्षता में अखिल भारतवर्षीय संस्कृत-साहित्यसम्मेलन की स्थापना वि० संवत् १९७० में की गई, तब उसमें भी पण्डित जी ने बहुत प्रोत्साहन और पूर्ण सहयोग दिया। उनके सुयोग्य ज्येष्ठपुत्र श्री हरिहरस्वरूप शास्त्री जी ने तो उसके कार्य-कलाप में पूरा हाथ बँटाया। आज वह सम्मेलन भगवत् कृपा से राजधानी देहली में अपना झंडा गाड़े हुए हैं। राज्य शासन की उसपर पूर्ण कृपा दृष्टि है। अस्तु, यहाँ कहना इतना ही था कि इस संस्कृतान्दोलन के अग्रसर होने में भी पण्डित जी की पूर्ण कृपा और सहयोग कारण थे। आपने ही महाराणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धौलापुर के द्वारा इसके स्थायी फण्ड की स्थापना करवाई थी, जिसके कारण एक बार प्रसुप्त होकर भी वह पुनर्जागरित हो सका। सनातन-धर्म प्रचार में महामंडल की शिथिलता देख वि० सं० १९७२ के कुंभपर्व पर आपने हरिद्वार में सनातनधर्म महासम्मेलन की स्थापना की। इसके तीन-चार अधिवेशन बहुत महत्वपूर्ण हुए। उनमें भी आप कृपाकर मेरा सहयोग लेते रहे। उन वर्षों में सनातनधर्म सम्मेलन और संस्कृतसाहित्यसम्मेलन के अधिवेशन साथ ही होते रहे। मुम्बई में बड़े समारोह के साथ उक्त सनातनधर्मसम्मेलन की एक शाखा स्थापित की गई। उसमें भी मैं आपके साथ उपस्थित था। अन्त में प्रयाग कुम्भ के अवसर पर यह सम्मेलन श्री मालवीय जी की महासभा में सम्मिलित कर दिया गया। उसमें आपने मुझ-पर उस सम्मिलित महासभा के सहकारी मंत्री पद का भार दिया था और उक्त प्रयाग कुम्भ पर सनातनधर्म का एक महाधिवेशन करने के प्रबन्ध में श्री मालवीयजी के सहकारी रूपसे कार्य करने को पंडितजी ने मुझे ही भेजा था। तात्पर्य यह कि सनातनधर्म के कार्य में प्रवृत्तहोने वाले व्यक्ति और वैसी संस्था को आप पूर्ण रूपसे उत्साहित करते और उसका सम्मान बढ़ाते थे। उक्त सम्मेलन के कार्य में एक शिष्ट मंडल के रूप में मुझे भी आप महाराज कश्मीर के पास जंबू ले गए थे। वहाँ मैंने देखा कि महाराज कश्मीर स्वर्गीय प्रतापसिंह जी आपका इतना संमान करते थे कि अपनी प्रजा के साथ विना किसी विशेष आसन के सामान्य फर्श पर बैठकर आपके व्याख्यान सुनते थे और आपके कथन का शीघ्र पालन करने के लिए सन्नद्ध रहते थे।

वि० सं० १९७४ में जब कई परिस्थितियों के कारण मुझे ऋषि-कुल हरिद्वार का निवास छोड़ देना पड़ा और कुछ काल मैंने सनातन-धर्म सभाओं में प्रचारार्थ भ्रमण में ही बिताया, तब पंडित जी के साथ सम्पर्क और भी बढ़ गया। प्रत्येक कार्य में आप मुझे साथ रखने की कृपा करते और खूब प्रोत्साहित करते रहते थे। उन दिनों से पत्र व्यवहार भी विशेष रूपसे चलने लगा था। मैं सदा आप पर पूर्ण श्रद्धा और सम्मान का भाव रखता था, किन्तु आपकी कृपा इतनी बढ़ी कि आप पत्रों में और कई जगह अपने व्याख्यान में भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे मित्र शब्द से सम्बोधित कर देते थे। मैं इस से बड़ा संकुचित होता और निवेदन भी करता था कि ऐसा नहीं होना चाहिए, किन्तु आप कृपा वश वैसा करते ही थे। मुझे स्मरण है कि जब एक बार लाहौर की सनातन-धर्म-सभा के उत्सव पर मैं और स्वर्गीय कविरत्न पं० अखिलानन्द जी गए थे, और 'श्राद्ध-विज्ञान' पर मेरा प्रवचन हुआ था, तब आपने मंच पर सहस्र मुख अत्युक्ति पूर्ण उस प्रवचन की प्रशंसा की थी। यह भी आपने कहा था कि बहुत पूर्व स्वर्गीय रघुवरदयालु जी वेदान्त भूषण के समय में सनातन-धर्म के मंच पर ऐसे व्याख्यान हुआ करते थे। इसी प्रकार जिन दिनों आङ्गल राज्य में पटेल महाशय का विवाहसाङ्कर्य का बिल कौंसिल में उपस्थित हुआ था और भारत के कोने-कोने से सनातनधर्मियों की ओर से उसका विरोध हो रहा था, उन दिनों हिन्दूविश्वविद्यालय के कार्य-वश एक ऐसा प्रसङ्ग आया कि श्रीपंडित जी, मैं और कविरत्न—अखिलानन्द जी काशी में ही एकत्र हो गए थे। आप काशी में प्रायः चौक के पास श्रीसत्यनारायण मन्दिर में ठहरते और आपका आतिथ्य वहाँ के रईस श्रीशिवप्रसाद जी गुप्त किया करते थे। हम लोग भी उस समय आपके साथ ही ठहरे थे। उस समय आपने काशी में बहुत बड़ी सभा कर पटेल बिल विरोध का आयोजन कराया। शारदापीठ के शंकराचार्य श्रीत्रिविक्रम तीर्थ महाराज के सभापतित्व में टाउनहाल के प्राङ्गण में बहुत बड़ी सभा हुई थी, जिसमें काशी के सब प्रतिष्ठित विद्वान् और बहुत से धनिक उपस्थित थे। पटेल-बिल के विरुद्ध प्रस्ताव उसमें रक्खा गया था। प्रस्ताव का विरोध और बिल का समर्थन करने को भी आधुनिक शैली के नेताओं की एक प्रतिष्ठित मंडली वहाँ आई थी। उसके नेता स्वयं स्व० शिवप्रसाद जी गुप्त थे। इधर की ओर से प्रधान वक्ता मुझे ही नियत किया गया था। कुछ समय वाद-विवाद के अनन्तर विरोध करने वाली प्रतिष्ठित मंडली चली गई और प्रस्ताव धड़ल्ले से पास हुआ। उस समय पंडित जी ने सब विद्वानों के समक्ष ये अक्षर कहे थे कि—'सुधारक लोग अपने पक्ष में चाहे जितने विद्वानों को बुलावें, मैं सनातन-धर्म की ओर से केवल एक गिरिधर शर्मा को देता हूँ। यदि सुधारक विद्वान् इसे परास्त कर दें तो सम्पूर्ण सनातन-धर्म की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हार मान ली जायगी।' अवश्य ही ये अक्षर अत्युक्ति पूर्ण थे और मेरी लेखनी से इनका प्रकाशन अनुचित ही नहीं लज्जास्पद भी है। किन्तु पंडितजी की कितनी कृपा थी और वे सनातन-धर्म के कार्य-क्षेत्र में उतरने वालों को कितना प्रोत्साहित करते थे, इसके दृष्टान्त रूप में मेरी लेखनी से ये शब्द निकले हैं। पाठक सज्जन क्षमा करें। अस्तु,

कुछ ही काल के अनन्तर लाहौर में सनातन-धर्म संस्कृत कालेज की भी स्थापना हुई और उसके संचालक रूप में मुझे वहाँ बुलाया गया। तब भी मेरे वहाँ जाने की अनुमति माँगने पर पण्डित जी ने मुझे प्रोत्साहित करते हुए सहर्ष और सानुरोध आज्ञा दी, एवं भिन्न रूप में उसके चलने की सुव्यवस्था न देख कर आपने ही उसे सनातन-धर्म कालेज का ही एक विभाग बनवा दियां। चार वर्ष के अनन्तर ही जब मुझे अपने पिताजी की वृद्धता के कारण जयपुर महाराज संस्कृत-कालेज के आह्वान पर वहाँ अध्यक्ष रूप से आ जाना पड़ा तब भी मैंने आज्ञा माँगी। मेरी परिस्थिति पर विचार कर पंडित जी ने आज्ञा दी। वहाँ कार्य करते हुए भी सनातन-धर्म सभाओं से मेरा सम्बन्ध बना रहा। पंडित जी की कृपा भी यथावत् रही। जब आंग्ल राज्यान्तर्गत भारत की कौंसिल में शारदा महाशय का विवाह कानून पास हुआ, उस समय मैंने समाचार पत्रों में एक पत्र मुद्रित कराया था। इसमें पंडित जी की उस विषय में उग्र विरोध न करने की नीति के विषय में कुछ कटु कटाक्ष भी आवेश वश हो गए थे। किन्तु पंडितजी ने उन्हें क्षमा कर दिया। दिल्ली में जब मेरे पत्र पर ही सनातन-धर्म के विद्वान् और नेताओं ने एकत्रित होकर राजनीति में भाग लेने के लिए 'वर्णाश्रम राज्य संघ' की स्थापना की तब आप भी उस परिषद् में सम्मिलित हुए थे और उसकी स्थापना का अनुमोदन किया था। इसी प्रकार और भी एक दो बार कुछ मतभेद होने के कारण कटुता का प्रसंग आया था, किन्तु आप उसे क्षमा ही करते रहे। मुझ पर आप की कृपा दृष्टि में कोई अन्तर नहीं आया, यावज्जन्म आपकी कृपा बनी रही। जब कुछ काल पूर्व आपने हिन्दू महासभा का नेतृत्व किया था, उसमें भी हम लोगों को साथ ही रक्खा। श्रीमालवीय जी ने जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सनातन-धर्म की व्यावहारिक नीति में शास्त्र से अविरुद्ध कुछ समयानुकूल संशोधन करने का आन्दोलन उठाया था, उसमें भी समय की गति देख पण्डित जी सम्मिलित थे और मैं भी आपके साथ था। उस समय विद्वानों ने उन संशोधनों को स्वीकार नहीं किया। किन्तु आज जब बलात् सनातन मर्यादाओं का दलन किया जा रहा है, तब उसे भी अधिक संशोधन स्वीकार करने को ये उपस्थित हैं। यदि उसी समय दूरदर्शिता से चेत जाते तो संभवत: आज वैसी दुर्दशा उपस्थित न होती। अस्तु, जो होना था सो हुआ, भगवदिच्छा अनिवार्य है।

पंडित जी के बहुत संपर्क में रहने के कारण समय-समय पर जो वे अपनी प्राचीन कई घटनाएँ सुनाया करते थे। उन में से दो-एक का स्मरण करना भी यहाँ आवश्यक होगा। अपनी विलक्षण मेधा प्रतिभा के कारण शास्त्रों के गंभीर रहस्य भी उन्हें करलामलकवत् थे। जो सिद्धान्त बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं जानते, वा नहीं कह सकते उनका सरलता से प्रतिपादन आपके मुख से सुनकर चकित रह जाना पड़ता था। आप कहते थे कि कलकत्ते में एक बार बंगाल के विशिष्ट विद्वानों की सभा में व्याख्यान का अवसर आया था। वे प्राय: विद्वत् सभा में कहा ही करते थे कि मैं संस्कृत का विद्वान् नहीं हूँ। वहाँ भी ऐसा ही कहा और फिर 'शतपथ ब्राह्मण' (बृहदारण्यक उपनिषद्) के 'ज्योतिर्ब्राह्मण' पर भाषण दिया। वहाँ जनक का भगवान् याज्ञवल्क्य से प्रश्न है कि पुरुष के लिए ज्योति: अर्थात् प्रकाश क्या है, उत्तर मिला कि सूर्य, 'जब सूर्य अस्त हो जाय, तब 'चन्द्रमा', 'चन्द्रमा तो सब काल वा सब दिनों में नहीं रहता, जब चन्द्रमा भी न हो तब'? 'तब अग्नि ही ज्योति रहता है'। 'यदि कहीं अग्नि भी न हो तब ?' 'तब वाक् ही ज्योति है। परस्पर बात कर एक दूसरे को पहचान लिया करते हैं। वाणी से ही एक दूसरे से पूछ कर आवश्यक वस्तुभी प्राप्त करलेते हैं'। 'भगवान् ! स्वप्न में तो वाक् भी नहीं रहती ! वहाँ ज्ञान किस ज्योति से होता है ?' तब भगवान् याज्ञवल्क्यने प्रसन्न होकर सत्य उत्तर दिया कि राजन् ! आत्मा स्वयं ज्योति है, उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित है, इत्यादि।' इस संवाद को 'स्वराज्यसिद्धि' में एक श्लोक में उद्धृत किया गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'संशन्ते रविशशिवन्हि वाक्प्रकाशे निर्वाणे करणगणे निरस्तन्त्रः।
स्वज्योतिःप्रकटितवासनामयार्थश्चिद्धातुः श्रुतिभिरुदीरितोऽन्तरात्मा॥

(जब सूर्य चन्द्र अग्नि और वाक् का भी प्रकाश शान्त हो जाता है, जब इन्द्रियाँ भी अपने-अपने कार्य से विरत रहती हैं, उस स्वप्न दशा में बिना किसी कारण के अपने ही प्रकाश से जो वासनामय अर्थों को प्रकट करता है वही चिद्घन रूप आत्मा श्रुतियों ने बताया है।) अस्तु पंडितजी कहते थे—इस विषय का जब मैंने व्याख्यान दिया; तो एक बड़े विद्वान् ने उठकर कहा कि दीनदयालु शर्मा जी सनातनधर्म के इतने बड़े वक्ता और नेता होकर भी झूठ क्यों बोलते हैं? ये ऐसा क्यों कहते हैं कि मैंने शास्त्र नहीं पढ़ा। ये शास्त्र के मर्मज्ञ और गम्भीर विद्वान् हैं। पोथी पढ़ने का ही नाम पढ़ना नहीं है, ज्ञानोपार्जन ही मुख्य पढ़ना है, वह उन्होंने पूर्णरूप से किया है, इत्यादि। इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् की पञ्चाग्निविद्या को भी आप बड़ी सरलता से लोगों को समझाया करते थे—जो मैंने भी कई जगह सुना था। आप कहते—देखो! किसी भी बुद्धिमान् पुरुष से पूछा जाय कि तुम इस संसार में कहाँ से आए! तो वह यही उत्तर देगा कि—'माता के गर्भ से'—अब यदि आगे पूछा जाय कि माता के गर्भ में कहाँ से आये! तो भी बुद्धिमान पुरुष बता देगा कि पिताजी के शुक्र विन्दु से। वहाँ कहाँ से आये। तब आयुर्वेद जानने वाला उत्तर देगा कि अन्न जो खाया जाता है वही रस-रुधिर आदि के क्रम से सातवें परिपाक में शुक्र बनता है। इसलिए शुक्र में हम अन्न से ही आये होंगे। अच्छा अन्न में कहाँ से आये! तब अन्न की उत्पत्ति का विचार करनेवाला कहेगा कि वर्षा के जल से अन्न की उत्पत्ति होती है, इसलिए अन्न में मेघ-मंडल से ही आये होंगे। मेघ-मंडल में कहाँ से आये? इस पर वेद विज्ञानवाला उत्तर देगा कि मेघ-मंडल सोमप्रधान है, सोम का मुख्यमंडल चन्द्रमा है, इसलिए मेघ-मंडल में चन्द्रमा से ही आना संभव है। चन्द्रमा में कहाँ से से आये! इसका उत्तर श्रुति में ही प्राप्त होगा कि यहाँ जो मरते हैं वे ही चन्द्रमंडल में जाते हैं। इसप्रकार जो मनुष्य यहाँ मरता है वह चन्द्रमा, मेघमंडल जलवर्षण द्वारा पृथ्वी मंडल में अन्न रूप से पिता के शरीर में रसरूधिरादि शुक्रान्त और फिर माता का गर्भ इन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाँच मंजिलों को पार कर फिर पृथ्वी का प्राणी बन जाता है। यही पञ्चाग्निविद्या है। इस प्रकार शास्त्र के सिद्धान्तों को वे अपनी प्रतिभा से सजाकर सर्वबोधगम्य बना देते थे।

पंडितजी की 'स्फुरद्बुद्धिता', तत्काल सामयिक उत्तर की पूर्ति, बड़ी विलक्षण थी। इसके भी एक-दो दृष्टान्त उनके ही मुख से सुने थे। एकबार कपूरथला में सभा के उत्सव में वहाँ के महाराज की ओर से निमंत्रित होकर पण्डितजी गये थे। वहाँ नगर की कीर्तन की सोभा यात्रा निकालने के सम्बन्ध में एक विवाद खड़ा हो गया। ब्राह्मण लोग कहते थे कि सोभा यात्रा में वेद भगवान् की पालकी आगे होगी और सिक्खों के नेता कहते थे कि—ग्रन्थसाहब की पालकी आगे रहेगी। बहुत विवाद बढ़ता देख महाराज ने पण्डितजी को बुलाया और अपने समक्ष ही दोनों पक्षों को बैठाकर इनसे प्रश्न किया कि पण्डितजी आप निर्णय कर दीजिए कि कौन-सी पालकी आगे हो। पंडितजी ने चट उत्तर दिया कि—'महाराज! ग्रन्थ साहब की पालकी आगे रहनी चाहिए'। ब्राह्मण वर्ग सुनकर बहुत उदास हो गया। महाराज किंचित् हंसकर बोले कि- क्या पंडित जी सिक्ख नेताओं के प्रभाव में आ गये ? पण्डितजी ने उत्तर दिया कि महा-राज! इसमें प्रभाव का क्या काम है। हमलोग तो नित्य ऐसे काम करते हैं। रामलीला की शोभा यात्रा जब निकाली जाती है तो हनुमानजी आगे चलते हैं और राम भगवान् का रथ पीछे रहता है। मिलिट्री आफिसर का काम आगे रहने का है। हमारे शास्त्रों के मिलिट्री आफिसर के स्थान में ग्रन्थ साहब हैं, वेद सबके राजा हैं, वे पीछे से चलेंगे। यह युक्ति सुनते ही सिक्ख नेता कह उठे कि नहीं, ग्रन्थसाहब आगे नहीं रक्खे जाँयगे। ब्राह्मण वर्ग आश्चर्य से उल्लसित हो उठा। पण्डितजी यह कहकर चले आये कि नियमा-नुसार ग्रन्थसाहब ही आगे होने चाहिए—आगे आपलोगों की इच्छा।

एकबार महाराज कश्मीर के सभापतित्व में जम्बू में व्याख्यान हो रहे थे, पण्डितजी के साथ एक अन्य प्रसिद्ध उपदेशक भी थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने व्याख्यान के आवेश में विश्वामित्र—वशिष्ठ का प्रसंग उठा कर यह श्लोक कह दिया कि—

'धिग्वलं क्षत्रियवलं ब्रह्मतेजो बलंबलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥

(क्षत्रिय के बलको धिक्कार है। ब्रह्म तेज ही मुख्य बल है, वशिष्ठ के एक ब्रह्मदण्ड ने मेरे सब शस्त्र निष्फल कर दिये) यह विश्वामित्र की उक्ति है, जब कि वे राजा थे, उसके अनन्तर ही उन्होंने घोर तपकर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। अस्तु, इस विवरण से महाराज कश्मीर के मुख में कुछ लालिमा-सी दौड़ गई, यह स्वाभाविक ही था। उन्होंने पंडितजी को लक्ष्यकर कहा कि पण्डितजी! आपके इस शिष्य में क्या ब्रह्मबल है? जब पंडितजी वक्तृता देने उठे तो उन्होंने कहा कि यह तो उन वशिष्ठ के ब्रह्मतेज का वर्णन है जो रघुवंशी क्षत्रियों के कुलक्रमागत गुरु पुरोहित थे और रघुवंशी राजाओं का पवित्र अन्न खाते थे। आज ब्राह्मण की अन्नशुद्धि ही नहीं है, तब ब्रह्मबल कहाँ! महाराज संतुष्ट हो गये, बात सत्य थी, किसी को बुरा न लगा, सभी प्रसन्न रहे।

एक बार सभा में किसी ने पंडितजी से पूछा कि—आप के यहाँ सनातनधर्म में दीपावली को द्यूत खेलने की विधि क्यों है? द्यूत तो बड़ा निषिद्धि कार्य है, इसे ऐसे पवित्र दिन क्यों करना!

पण्डितजी ने तत्काल उत्तर दिया कि—वह लक्ष्मी की उपासना का दिन है। उपासना का अर्थ है—देवता के स्वरूप में अपना मन लगाना। लक्ष्मी का स्वरूप चंचल है, यह शास्त्र में प्रसिद्ध है। वह चञ्चलता द्यूत में विशेषरूप से प्रकट होती है और व्यापारादि कार्यों में किसी के पास से लक्ष्मी जाने और किसी के पास आने में अन्ततः कुछ समय लगता ही है। किन्तु द्यूत में क्षणमात्र में ही एक मनुष्य दरिद्र से लक्षाधीश और दूसरा लक्षाधीश से भिक्षुक बन जाता है। इसप्रकार लक्ष्मी का अतिचंचल रूप प्रत्यक्ष देखकर उसमें मन लगाकर उपासना के लिए द्यूत का भी विधान उस दिन कर दिया है। अब कोई विद्वान् परिसंख्याविधि आदि की मीमांसा की बात छेड़कर उत्तर देता—वह किसी-किसी की ही समझ में आता। यह उत्तर सबके चित्त में बैठ गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार उनके गम्भीर पाण्डित्य अथवा स्फुरद्बुद्धिता की अनेक घटनाएँ हैं। स्फुरद्बुद्धिता और कार्य क्षमता से उन्होंने अतुल्य यश प्राप्त किया। वर्तमान युग में उन्हें सनातन धर्म का उद्धारक कहा जा सकता है। उनके श्री भारतधर्ममहामंडल की स्थापना, उसके वर्णनातीत अधिवेशनों की योजना, आर्यसमाज के प्रधान दुर्ग पंजाब में बड़ी कठिनता से सनातनधर्म का फिर से झंडा उठाना, हैदराबाद में यवन राज्य द्वारा अद्भुत् सम्मान प्राप्ति आदि के प्रशस्त वृत्तान्त उनके जीवनचरित में विद्वानों द्वारा वर्णित होंगे ही। मैंने अपने अनुभव के कुछ-संस्मरण की पंक्तियाँ लिख दी हैं। सबसे बड़ी बात मेरी दृष्टि में यह थी कि उन्होंने अपनी आयु में ही स्वयं भी सनातनधर्म की सच्ची सेवा का परिचय दिया, केवल दूसरों को रास्ता दिखाने वाले ही वे न रहे। अपनी आयु के अन्तिम भाग में प्रायः १०, १५ वर्ष में सब समय नाम मंत्र के जप में ही बिताते रहे, सदा माला हाथ में ही रहती थी। "हरे राम हरे राम" इत्यादि कलिसंतारण मंत्र के और शिवपंचाक्षर मंत्र के कई कोटि जप उन्होंने किए थे। अहोरात्र वे जप करते-करते तन्मय हो गये थे। कहा करते थे कि स्वप्न में भी जप होते रहते हैं। एक अद्भुत प्रकार का तेज भी इस उपासना के कारण उनके मुखपर प्रतिभासित होने लगा था। यह धर्म सेवा का सच्चा फल उन्होंने प्राप्त किया। उनका जीवन चरित तो बहुत पहिले प्रकाशित होना उचित था। देश नेताओं की श्रेणी में भी इतिहासों में उनका मुख्य स्थान होना आवश्यक था। परन्तु वर्तमान के इतिहास लेखक सनातनधर्म को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते, यही कारण है कि सनातनधर्म संशोधन के नाम से उसपर प्रहार करनेवालों के नाम और चरित आधुनिक इतिहासों में लिखे जाते हैं। उसके सेवक उपेक्षा की कोटि में रक्खे जाते हैं। अस्तु, 'सत्यमेव जयते' न्याय के अनुसार आशा है कि समय फिर पलटा खायगा। सनातनधर्म का डंका फिर विश्व में बजेगा, और उस समय पंडितजी जैसे नेता उच्चश्रेणी में पूजित होंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वामी ज्ञानानन्दजी सरस्वती

"हिन्दूधर्म, हिन्दूदेश और हिन्दूसमाज की जो सेवा पूज्यस्वामीजी के द्वारा हुई थी, वह भुलाई नहीं जा सकती। गत २८ जनवरी को प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में पूज्यपाद श्री स्वामीजी का ब्रह्मनिर्वाण हो गया। गत ४-२-५१ को श्री आर्यमहिली महाविद्यालय में उनको श्रद्धांजलि समर्पित करने के लिए महामहोपाध्याय व्याख्यानवाचस्पति श्री पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी की अध्यक्षता में हुई महती सभा में अध्यक्षीय भाषण :—

उपस्थित सज्जनवृन्द और महिलाओ—

जिनके दर्शन के लिए काशी में आने की लालसा मनमें लगी रहती थी, उन स्वामी जी महाराज के कैलाशवासी होने कारण हृदय में बहुत दुख हो रहा है। ब्रह्मीभूत श्री स्वामी जी महाराज की ऐसे तो सभी पर एक समान कृपा रहती थी, किन्तु मुझपर उनकी बहुत ही कृपा रहती थी। उनकी कृपा का मुझे गर्व था और इसीलिए मैंने अपने को श्रद्धांजलि का अधिकारी समझ इस स्थान को ग्रहण करने में संकोच नहीं किया। श्री स्वामीजी महाराज जैसे महात्मा थे इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके सम्बन्ध में कितना भी कहा जाय किन्तु सब थोड़ा ही है। ऐसे महात्माओं के पवित्र चरित्र के कथन से पवित्रता प्राप्त होती है। मुझे बहुत समय तक उनके सम्पर्क से लाभ उठाने का अवसर मिला। एक श्लोक है—जिसका तात्पर्य है कि कोई अपने परिश्रम से महिमा को प्राप्त हो जाय। श्री स्वामीजी सचमुच अपने परिश्रम के कारण ही अत्यन्त महान् महिमा को प्राप्त हुए। उनके चरित्रों का यदि कोई पूर्णतः वर्णन करना चाहे तो वर्णन करते-करते थक भले ही जाय पर उसका अन्त नहीं हो सकता। अतः उनकी चरित्रावली का स्मरण कर हम उन्हें श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

श्री स्वामीजी महाराज के दर्शन का प्रथम सौभाग्य जब मुझे मिला था, प्रायः उसके अनन्तर ही भारतधर्ममहामण्डल सन् १९०१ में स्थापित हुआ। पूज्य महात्माजी ने महामण्डल की स्थापना करके सनातन धर्म के प्रति बहुत बड़ा कार्य किया। मुझे यह बात अच्छी तरह विदित है कि उस समय भारतवर्ष में भारत-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्ममहामण्डल के द्वारा सनातनधर्म सम्बन्धी जैसे ग्रन्थ प्रकाशित हुए और सनातनधर्म की जैसी सेवा हुई वैसी किसी के द्वारा नहीं हुई। महामण्डल के द्वारा सनातनधर्म सम्बन्धी साहित्य का जो प्रकाशन हुआ वह श्री स्वामीजी महाराज के अनवरत परिश्रम का ही फल है। सन् १९०८ में जब महाराणा उदयपुर हरिद्वार पधारे थे उस समय मैं वहाँ था। मुझे ऋषिकुलके लिए सहायता प्राप्त करनी थी। महाराज श्रीकृष्णानन्दजी के आश्रम में पधारे। वहाँ एक साधुपाठशाला स्थापित की गई। उस समय भी वहाँ मुझे श्री स्वामीजा का दर्शन प्राप्त हुआ था। महाराणा उदयपुर से अच्छी सहायता प्राप्त हुई। उसके बाद मुझे महामण्डल में कई बार ठहरने का भी अवसर मिला। जब-जब मैं मिला पूज्य स्वामीजी महाराज के द्वारा जो वात्सल्य और कल्याणकारी उपदेश मुझे प्राप्त हुए वह कथन में नहीं आ सकते और इस प्रकार मुझे वहाँ की बहुत-सी बातें मालूम हुई। अतः जहाँ अनेक हितैषी थे वहाँ यह भी कहना पड़ेगा और वह छिपाया नहीं जा सकता कि भारतधर्म-महामण्ल के विरोधी भी थे और उनका विरोध अधिकाधिक मात्रा में हुआ। पर साथ ही हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि महान् पुरुषों की महत्ता विरोध से ही प्रकट होती है। विरोध में डटकर और कठिनाइयाँ उठाकर ही कार्य करने से महात्माओं का महत्व प्रकट होता है। भगवान् वेदव्यास ने युधिष्ठिर से कहा था, कि तुमसे विरोध करके तुम्हारे शत्रुओं ने तुम्हारा बहुत उपकार किया। यदि विरोधी खुलकर तुम्हारे ऊपर आक्रमण न करते तो तुमको महत्वप्राप्ति का मार्ग कभी भी न मिलता। अतः द्वेष करनेवालों ने तो उपकार किया और तुम्हारे महत्वको देखने का संसार को अवसर दिया। महामण्डल का विरोध भी ऐसा ही हुआ, पर श्री स्वामीजी महाराज ने जिस धर्म दृढ़ता और शान्ति के साथ उनके बीच जन-कल्याण करते हुए कदम आगे बढ़ाया उससे उनकी सहनशीलता, गाम्भीर्य एवं कार्यपटुता का अपूर्व परिचय मिलता है। कार्य करने की विशेष दक्षता से ही उन्होंने अपना सुयश कायम रखा। इस प्रकार विरोध रहते हुए भी सुयशको कायम रखना सरलबात नहीं। वह बड़ी बात होती है। महाराज ने यह सब कुछ किया। विरोध रहते हुए भी महामण्डल का प्रभाव यथास्थान रहा। विरोध रहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुए भी इसके संरक्षक अनेक राजा, महाराजा हुए। मैंने स्वयं देखा था, एकबार इसी हथुआ कोठी में बहुत से राजे और महाराजे इसके अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए एकत्रित हुए थे, काश्मीर, उदयपुर इत्यादि और महाराज दरभंगा का तो कहना ही क्या, वे तो निरन्तर इसके संरक्षक रहे और अब भी हैं। उनसे भारतधर्ममहामण्डल एक बार ही नहीं, निरन्तर मासिक सहायता पाता हुआ चला आता है। श्री स्वामीजी का प्रभाव, उनका व्यक्तित्व उनका ऋजु स्वभाव इतना उत्तम था कि उनकी आज्ञापालन के लिए सबलोग नतमस्तक रहते थे, उनकी आज्ञा से इधर उधर जाने का किसी को साहस नहीं होता था। ऐसे धर्म विरोधी काल में भी धर्म की मर्यादा की रक्षा जो महामण्डल द्वारा हुई उसका सम्पूर्ण श्रेय श्री स्वामीजी महाराज को ही है। समय परिवर्तनशील है। परिवर्तन सदा होते रहते हैं किन्तु श्री भारतधर्म महामण्डल श्री स्वामीजी महाराज के तपोबल और कार्यप्रणाली से अब तक एक समान पूर्णरूपेण प्रतिष्ठाप्राप्त है। १६०२ के बाद इस समय तक अर्थात् इस ५० वर्ष के अवसर में इस संस्था द्वारा सनातनधर्म की रक्षा में जो कुछ हुआ उसका पूर्ण श्रेय श्री स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज को ही है। उनकी बुद्धिमत्ता, कार्य प्रतिभा इतनी अद्भुत थी कि सभी लोग सहर्ष उनकी आज्ञा पालन करने को तैयार रहते। मैं पहले कह चुका हूँ कि धर्मग्रन्थों का प्रकाशन और धर्मसाहित्य का प्रकाशन जैसा महामण्डल द्वारा हुआ वैसा कहीं नहीं हुआ और किसी ने भी नहीं किया। मुझसे लोग पूछते हैं कि किसी ऐसे ग्रन्थ का नाम बतलाइये जिससे सनातनधर्म का तत्व अच्छी तरह मालूम हो जाय, उसका आभास पूर्णरूप से प्रकट हो जाय तो मैं उन्हें 'धर्मकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ का हवाला, जो महामण्डल द्वारा प्रकाशित हुआ है, देता हूँ। इस ग्रन्थ में हिन्दूधर्म के तत्व का पूर्ण रूप से निरूपण है। संसार का कोई भी ग्रन्थ इसकी प्रतिस्पर्द्धा में टिक नहीं सकता। श्री स्वामीजी के द्वारा ही इस ग्रन्थ की उत्पत्ति हुई है। श्री स्वामीजी के द्वारा अनेकों धर्म ग्रन्थों की उत्पत्ति हुई, किन्तु श्री स्वामीजी किसी ग्रन्थपर अपना नाम नहीं देते थे। लोगों का कथन था कि महामण्डल केवल साहित्य प्रकाशन का कार्य करता है, प्रचार कार्य नहीं। वह प्रचार कार्य सम्पूर्ण भारत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में श्रीस्वामी दयानन्दजी द्वारा हुआ। श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज श्री स्वामीजी के प्रिय शिष्य थे। उन्होंने सर्वत्र भारत में जा जाकर धर्म का उत्तम प्रचार किया। मैं तो श्री स्वामीकी का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उनकी कृपा हमारे ऊपर इतनी थी कि जिस विषय में और जब कभी मैंने उनसे निवेदन किया कभी पराङ्मुख नहीं हुआ। लोग कहते थे कि श्री भारतधर्म महामण्डल द्वारा जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं वे सब पण्डितों द्वारा लिखे गये हैं। स्वामीजी महाराज उनसे लिखवाया करते थे। किन्तु मेरे अपने अनुभव से और इस समय पेपरों और अखबारों में जो बात प्रकाशित हुई है उनसे यह पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है कि वे सब धर्मग्रन्थ उन्हीं की कलमसे निकले हैं। संक्षेप में मैं कहूँगा कि साहित्यसेवा और धर्मप्रचार का जो कार्य श्री स्वामीजी द्वारा हुआ वह अप्रतिम हुआ। हिन्दूधर्म के विपरीत कोई बात गवर्नमेन्ट द्वारा यदि होती थी तो सर्वदा बड़ी निर्भीकता के साथ श्री स्वामीजी उसके विरोध में तत्पर हो जाते थे। सभाओं तथा महाधिवेशनों के द्वारा वे उसके उग्र विरोध में लग जाते थे और इस प्रकार कई बार उन्होंने धर्म के विपरीत कार्य करने से गवर्नमेन्ट को रोका था। श्री स्वामीजी महाराज के गुण-गान के लिए बहुत समय चाहिए। यह सब होते हुए भी श्री स्वामी-जी महाराज जिस सादगी के साथ जीवन व्यतीत करते थे वह अवर्णनीय है। जिस समय मैंने हरिद्वार में श्रीस्वामी केशवानन्दजी के आश्रम में उनका दर्शन किया था, श्री स्वामीजी केवल एक कमण्डलु के साथ कम्बल पर बैठे रहते थे। मेरे एक मित्र श्री यज्ञेश्वरजी मेरे साथ थे उन्होंने एक श्लोक मुद्राराक्षस का कहा जिसमें चाणक्य की साधारण कुटी और उनके रहन सहन का वर्णन था। चाणक्य के द्वारा यद्यपि सम्पूर्ण राज्य का ही संचालन होता था किन्तु ऐसा होते हुए भी उनका रहन सहन पूर्णतः साधारण था। आसन कमण्डलु और अग्निदेव के सिवाय वहाँ और कुछ नहीं था। कुटिया की जीर्ण छान भी झुकी हुई मानों उन्हें नमस्कार कर रही थी। यही दशा श्री स्वामीजी महाराज की भी थी। कम्बल और कमण्डलु एकमात्र उनकी पूँजी थी। भोजन केवल एक बार करते थे। ऐसे महात्मा का दर्शन करके हरएक के चित्त में श्रद्धा का उदय स्वयमेव हो जाता है, क्योंकि सब कुछ प्राप्त है पर उसका तृणवत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परित्याग कोई ही कर सकते हैं। सबको चाहिए कि ऐसे महात्माओं के चरित्रों को देखें भालें और उनसे उपदेश ग्रहण करें। हमारी श्रुतिस्मृतियों की प्रार्थनाओं और आकांक्षाओं में यह प्रकट किया गया है कि हम शतायु हो जाँय। मनुष्यजीवन के लिए यही पर्याप्त समझा गया है, परन्तु हमारे स्वामीजी महाराजने इस शतका उल्लंघन कर श्रुति स्मृतियों का भी रिकार्ड तोड़ दिया। वे १०५ वर्ष तक जीवित रहे और अन्तिम क्षण तक धर्म की रक्षा के लिए कार्य में निमग्न हो जनहित साधन करते रहे।

आज के इस घोर दुर्दशाग्रस्त समय में हमें उनसे और भी बहुत बड़ी सहायता मिलती। अब तो ऐसा समय आ गया है, कि धर्म की बात ही बुरी लगती है। हमने स्वराज्य प्राप्त किया और समझे थे कि उससे हमारे धर्म की रक्षा होगी किन्तु उस स्वराज्य में अब तो धर्म को उखाड़ने की चेष्टा हो रही है। ऐसे समय में उनकी जितनी आवश्यकता थी उसे सभी धर्मप्रिय लोग समझ सकते हैं, पर नियति का नियम अटल है। उसपर किसी का वश नहीं। अब तो हमारा कर्तव्य है कि परमात्मा से प्रार्थना करें कि श्री स्वामी जी महाराज की आत्मा को परलोक में चिरशान्ति प्राप्त हो। हमारी यह प्रार्थना उनके प्रति एक प्रकार की श्रद्धांजलि प्रदर्शनमात्र ही है, ऐसे महात्मा लोग तो अपने तपोबल से ही चिरशान्ति प्राप्त करते हैं और ब्रह्मपदलीन होते हैं, अस्तु, श्री स्वामीजी महाराज के प्रति हम सादर अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करके अपना कर्तव्यपालन करते हैं।

["आर्यमहिला" मासिक पत्रिका—फरवरी, मार्च १९५१ से संगृहीत]

श्री स्वामी जयेन्द्रपुरी जी

ब्रह्मीभूत श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वरजी के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे कई बार प्राप्त हुआ। आप संस्कृत विद्या और विद्वद्वर्ग के परम अनुरागी थे यह मैंने खूब अनुभव किया। वैसे तो आपने आजन्म अपने भ्रमण द्वारा सनातनधर्म और संस्कृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्या की उन्नति के बहुत बड़े-बड़े कार्य किये किन्तु अहमदाबाद में एक उच्च श्रेणी के संस्कृत महाविद्यालय का प्रतिष्ठापन मेरी दृष्टि से बहुत उच्चकोटि का कार्य आपके द्वारा हुआ। अन्यान्य प्रान्तों की अपेक्षा बम्बई प्रान्त में संस्कृत विद्यालय की न्यूनता सब ही संस्कृतानुरागियों को खटकती थी। इतना धनिक प्रान्त होते हुए भी संस्कृत विद्या की वहाँ उपेक्षा भला किसे सह्य हो सकती है, किन्तु ब्रह्मनिष्ठ श्रीस्वामी जी ने इसका केवल अनुशोचन करके ही अपने कर्तव्य को समाप्त नहीं कर दिया, प्रत्युत अपने पुरुषार्थ से इस अभाव और कलंक को धो डाला और भी जहाँ कहीं सनातन-धर्म और संस्कृत विद्या पर कोई विपत्ति आपने सुनी कि नाना कष्ट उठाकर स्वयं वहाँ पधारते और यावच्छक्य उसका प्रतीकार करते थे। अत्युच्च पद पर विराजते हुए भी संस्कृत विद्वानों का असाधारण सम्मान करते हुए मैंने आपको कई बार देखा। आप के उपदेश से आप के शिष्य अनेक महात्मा भी संस्कृत विद्या के परमानुरागी हैं। श्री महाण्डलेश्वर जी अपना कर्तव्य पालन कर अपनी कीर्ति पताका फहरा गये। अब अन्यान्य महात्मगण भी उनका अनुसरण कर विद्या की रक्षा करें यही प्रार्थनीय है।

[जयेन्द्रपुरीजी महाराज के जीवनचरित से संगृहीत]

द्विवेदी जी का विनय

पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी की जन्मशती मनाने का जो आयोजन देशमें चल रहा है वह सर्वथा उपयुक्त और समीचीन है। अपनी भाषा के उन्नायकों और उसे समृद्ध बनाने वाले महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य है। द्विवेदी जी ने अन्य सभी बातों से अपने मन को हटा कर हिन्दी भाषा की समृद्धि को ही अपना परम उद्देश्य बनाया। उन्होंने सरस्वती का सम्पादन जिस कौशल और श्रम से किया उसी का यह फल है कि उन्होंने अपने सामने ही दर्जनों हिन्दी के स्वस्थ लेखकों को निर्मित किया, जिनमें मैथलीशरण गुप्त जैसे ख्यातनामा कवि भी हैं। मेरा भी उनसे समय-समय पर सम्पर्क होता रहता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था। उनके सरस्वती के सम्पादन काल में ही मैं भी ऋषिकुल हरिद्वार की हिन्दी मासिक पत्रिका 'ब्रह्मचारी' का सम्पादन कर रहा था। द्विवेदी जी की सहानुभूति बराबर उस समय प्राप्त होती रहती थी। अनेक बार ऐसा हुआ कि सरस्वती में द्वीवेदी जी की कुछ आलोचनाओं पर मैंने प्रत्यालोचनाएँ भी लिखीं, परन्तु उनसे द्विवेदी जी के और मेरे पारस्परिक सम्बन्ध में कई भेद नहीं आया। उनसे जब भी भेंट होती थी, वे बड़े प्रेम से मिलते थे। इतना ही नहीं, लोग उन्हें प्रकृति से कठोर और रूक्ष समझते थे परन्तु मैंने देखा कि कभी-कभी तो उनका विनय—प्रदर्शन अपनी सीमा भी पार कर जाता था। एक बार मिलने पर उन्होंने मेरा चरण-स्पर्श कर लिया। मैं उनसे अवस्था में काफी छोटा था। उनकी जन्मशती मनाई जा रही है, मैं अभी ८३ वर्ष का हूँ। मुझे उनके उस व्यवहार से अत्यधिक संकोच हुआ। अपने पत्रों में भी वे बड़े विनीत भावों को व्यक्त करते थे। एक महान कार्य करने वाले मनस्वी पुरुष में जिन गुणों की अपेक्षा होती है, द्विवेदी जी उन गुणों से लदे थे। ऐसे स्मरणीय पुरुष को आदर्श के रूपमें अपनी स्मृति में सर्वदा स्थित रखना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

(द्विवेदी स्मृति ग्रन्थ से संगृहीत)

श्री बालमुकुन्द गुप्त

उन दिनों मैं छात्रावस्था में था, समाचारपत्र पढ़ने की कुछ रुचि होने लगी थी, उन दिनों प्रथमतः स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त जी की लेखनी ने ही चित्तपर विशेष प्रभाव डाला था। यह भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि श्री गुप्त जी की लेखनी ने ही समाचार-पत्र और हिन्दी के सामयिक निवन्ध पढ़ने की प्रवृत्ति को उत्साह दिया। इसी से मैं अनुमान करता हूँ कि मेरी भाँति शतशः सहस्रशः विद्या प्रेमी उनके कारण हिन्दी के अनुरागी बने होंगे—इसमें कोई सन्देह नहीं। उस समय जबकि उर्दू उत्तर भारत भर में अपना सिंहासन जमाए बैठी थी और अंग्रेजी अपने साम्राज्य से अन्य भाषाओं का निष्कासन कर देने पर तुली हुई थी—श्रीमान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुप्त जी जैसे सज्जनों ने अपनी लेखनी का महास्त्र उठाकर हिन्दी रक्षा में जो अपूर्व पुरुषार्थ किया, उसे हिन्दी-साहित्य का इतिहास कभी भुला नहीं सकता। चाहे आज के महारथी इसे धृष्टता समझें—किन्तु मुझे तो यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि वैसी रोचक गम्भीर और सरल हिन्दी लिखने वाले आज इस हिन्दी की उन्नति के मध्यान्हकाल में भी नहीं है। आपके सम्पादित 'भारतमित्र' के 'टेसू' और 'होली' पढ़ने की महीनों पहिले से उत्कण्ठा लगी रहती थी। फिर विशेषता यह कि इसी उपहास और रोचकता के भीतर ऐसी राजनैतिक चुटकियाँ रहती थीं, जिनसे मार्मिकों को लोट-पोट हो जाना पड़ता था। उनके वंग-भङ्ग आन्दोलन के समय के 'टेसू' का बहुत-सा अंश मुझे आज भी याद है, जिसे मैं कईबार प्रसंग-प्रसंग पर मित्रों को सुनाया करता हूँ। इन सब बातों के साथ महत्व की बात जो मेरी बुद्धि के अनुसार सबसे बड़ी है, यह थी कि वे सनातन धर्म के दृढ़ पक्ष-पोषक थे। उनके लेखों में सुधार के नाम पर धर्मविप्लव करने वालों के लिए भी खूब मीठी फटकार रहती थी।

मुझे उनके साक्षात्कार का सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। हाँ, श्री द्विवेदी जी के साथ चले हुए 'अनस्थिरता' के आन्दोलन के समय कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था। मैंने भी उन दिनों 'भारतमित्र' के पक्ष में कुछ लिखने की धृष्टता की थी, 'कालिदास की निरंकुशता, के आन्दोलन के समय भी कुछ छेड़-छाड़ हुई थी। अस्तु, देश के दुर्भाग्य से श्री गुप्त जी ने आयु बहुत अल्प पाई। वे अपने परिश्रम के फलस्वरूप हिन्दी की क्रमिक उन्नति भी नहीं देख सके। साथ ही साहित्य-सम्बन्धी रोचक आन्दोलन का उनके साथ ही एक प्रकार से अन्त ही हो गया। इसी का परिणाम आज स्पष्ट ही है कि वर्तमान हिन्दी साहित्य प्राचीन हिन्दू संस्कृति के विरोधी भावों से ही अधिकांश में पूर्ण हो रहा है। हिन्दी की शैली पर भी आज बहुत कुछ विवाद और वितण्डावाद हो रहा है, किन्तु बाबू बालमुकुन्द जी की शैली का प्रचार होता तो इन सब का अवसर ही न आता। उनके स्मारक स्वरूप इस प्रकाशन को मैं बहुत महत्व का मानता हूँ।

(बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ से संगृहीत)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

म० म० रामावतार जी

म०म० रामावतार जी का प्रथम दर्शन मुझे काशी में हुआ था। तब वे अध्ययन ही करते थे। मेरा भी आचार्य कक्षा में अध्ययन चल रहा था। उनकी विनोद प्रियता और पटुता सभी को आकृष्ट करती थी। उसके बाद संस्कृतसाहित्यसम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में वे हरिद्वार आये थे। उन्होंने एक ललित निबन्ध भी पढ़ा था। प्रस्ताव पर भी उन्होंने सुललित संस्कृत में भाषण किया था। अपने भाषण में नए नए शब्दों का प्रयोग करके तथा प्रसिद्ध शब्दों का भी अप्रसिद्ध नए अर्थों में प्रयोग करके वे उपस्थित विद्वानों को चौंका देते थे। अपने भाषण में उन्होंने एक बात कही थी, वह बात मुझे उसी रूप में अब तक याद है कि—

"यद्यपि जनैरुच्यते यत्प्रारंभे संस्कृताध्ययनेन आस्तिक्यबुद्धिर्द्रढ़ीयसी जायते। परमस्माभिस्तु पूर्वं संस्कृतमेवाधीतमथापि नास्तिक्यमेवास्मच्छिरसि लिखितम्"—

वे सब से अच्छे इसलिए लगते थे कि जैसे विचारों में थे वैसा ही आचरण से भी प्रकट करते थे। हिन्दू विश्वविद्यायल की प्राच्यविद्यासमिति की मीटिंग् में जब मैं आता तो उनसे भेंट होती थी। उन दिनों वे एक संस्कृत शब्द कोश का निर्माण कर रहे थे। एक बार उन्होंने मुझ से कहा था कि मैं अमरकोश से दशगुणित शब्दों का संकलन कर चुका हूँ। वार्तालाप के बीच में ही पद्य बना कर बोल देते थे। उनके सम्बन्ध की फक्कड़ स्वभाव की गई बातें उन दिनों सुनने में आती रहती थीं। एक बार काशी में मार्ग में भेंट होगई तो एक पात्र में रबडी भरे वे ले जा रहे थे। मुझ से वहीं रबडी खाने का उन्होंने बहुत आग्रह किया। अन्ततः गंगा के घाट पर हाथ प्रक्षालन कर रबडी खा लेने पर ही छुटकारा मिला। मेरा उनके साथ पत्र व्यवहार भी होता रहता था।

श्री विद्याधर जी

देशमान्य वैदिकाग्रगण्य स्व० महामहोपाध्याय श्री विद्याधरजी शास्त्री का मेरे साथ बहुत प्रेमपूर्ण व्यवहार था। मैं जयपुर से जब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कभी काशी आता, तो उनसे प्रायः अवश्य मिलता था और वे भी बड़े प्रेम से मुझसे मिलने को उत्सुक रहते थे। इनके पिता स्वनामधन्य महामहोपाध्याय पं० श्री प्रभुदत्त शास्त्री की भी मुझपर बड़ी कृपा रहती थी। इस कारण श्री विद्याधर जी भी अपने पिता का स्नेही समझकर मुझपर एक प्रकार की सम्मान-दृष्टि रखते थे।

पं० श्री प्रभुदत्त जी शास्त्री ने काशी के वैदिक विद्वानों में गौड़ों को प्रतिष्ठित स्थान दिलाया, विद्वत्ता के कारण ही गौड़ भी वैदिक विद्वान् माने जाने लगे।

श्री विद्याधर जी की यहाँ विशेषता थी कि वे इतने अधिक देश-मान्य प्रखर विद्वान् होते हुए भी अत्यन्त विनीत थे। उनकी नम्रता देखकर आश्चर्य हुआ करता था। वे कट्टर धार्मिक थे। धर्म के आगे वे आर्थिक लाभ को तुच्छ समझते थे।

कलकत्ता, अमृतसर आदि कई स्थानों में होने वाले यज्ञों में भी मेरा और श्री विद्याधर जी का साथ रहा है। वे यज्ञ के 'आचार्य' बनकर जाते थे और मैं प्रवचनार्थ उपदेशक रूप में जाता था। वहाँ भी निकट से इनके विनम्रतापूर्ण व्यवहारों को देखने का अवसर मिलता था। वे प्रायः किसी के साथ विवाद नहीं करते थे।

श्री विद्याधर जी अपने समय में भारत के वेदज्ञों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् माने जाते थे। जहाँ कहीं भी धर्मशास्त्र और वेद कर्मकाण्ड के सम्बन्ध में कोई शंका उपस्थित होती थी, तो आपका निर्णय सर्वमान्य माना जाता था।

देशभर में कर्मकाण्ड के लिए परिभ्रमण करते हुए श्री विद्याधर जी ने संस्कृत-साहित्य की अच्छी सेवा की है। आपके बनाये हुए कई ग्रन्थ वेद कर्मकाण्ड की ग्रन्थियों को सुलझाते हैं और अल्पज्ञ विद्वानों को भी उच्च कर्मकाण्ड कराने का अवसर प्रदान करते हैं।

अत्युच्च सुयोग्य विद्वान् के वैसे ही सुपुत्र होना यह श्री विद्याधर जी का ही परम सौभाग्य था। पिता और पुत्र दोनों ने गवर्नमेन्ट से 'महामहोपाध्याय' की पदवी प्राप्त की हो, ऐसा दृष्टान्त भी मैंने अन्यत्र नहीं देखा। "काशी में त्रैपुरुषी विद्या नहीं होती" ऐसा अपवाद पुरातन काल से चला आ रहा है और कहा जाता है कि व्यास जी ने काशी को शाप दिया था, किन्तु विद्याधर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जी का परिवार इसका अपवाद है। क्योंकि श्री विद्याधर जी के पुत्र वेदाचार्य श्री वेणीराम शर्मा गौड भी वेद और कर्मकाण्ड के प्रख्यात विद्वान् हैं, यह श्री विद्याधर जी का ही पुण्य फल है।

श्री माधवाचार्य जी

शास्त्रार्थ महारथी महामहोपदेशक श्री माधवाचार्य शास्त्री मेरे चिरपरिचित मित्र हैं। इनने अपनी नवयुवक अवस्था में ही सनातन-धर्मोपदेशक का कार्य आरम्भ कर.दिया था और धीरे-धीरे उस कार्य में उन्नति करते रहे। शास्त्रों का परिशीलन आपने उत्तम ढंग से किया है। सनातनधर्म के प्रचार के साथ ही धर्म संबंधी ग्रन्थों का लेखन भी आपने नवयुवक अवस्था में ही प्रारम्भ कर दिया था। इसी का फल है कि इस समय सनातनधर्म के सिद्धान्तों पर आपके अनेक ग्रन्थ सनातनधर्मावलम्वी जनता में पूर्ण आदर पा रहे हैं।

भारत से बाहर भी आपने बहुत कुछ सनातनधर्म का प्रचार किया है। भारत से बाहर प्रचार करने का श्रेय केवल आपको ही प्राप्त है, और कोई भी सनातन-धर्म का उपदेशक भारत से बाहर नहीं गया। आप के लेख और व्याख्यान दोनों ही शास्त्रानुकुल प्रौढ़युक्तियों से परिपूर्ण होते हैं। इस समय तो सनातन-धर्म प्रचार की बागडोर केवल आपके ही हाथ में है, जिसे आप बहुत अच्छी तरह संभाले हुए हैं। स्वनामधन्य श्री १०८ करपात्री जी महाराज द्वारा प्रचालित धर्म-संघ और रामराज्य परिषद् के कार्यों में भी आप पूर्ण सहयोग देते हैं।

ईश्वर से प्रार्थना है कि आपको चिरायु करे और आप इसी तरह सभी दिशाओं में सनातन-धर्म का डंका बजाते रहें और मार्ग विच्युत होती हुई समयानुकूलता की दुहाई देने वाली जनता को सावधान करने का श्रेय प्राप्त करते रहें।

(अभिनन्दन अंक से संगृहीत)

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन जी

स्वर्गीय भारतरत्न श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन से मेरा सम्पर्क रहा है। वे मुझपर कृपा रखते थे और कई बार अपने कार्यों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय-संस्कृति-सम्मेलन के भिवानी अधिवेशन में:—

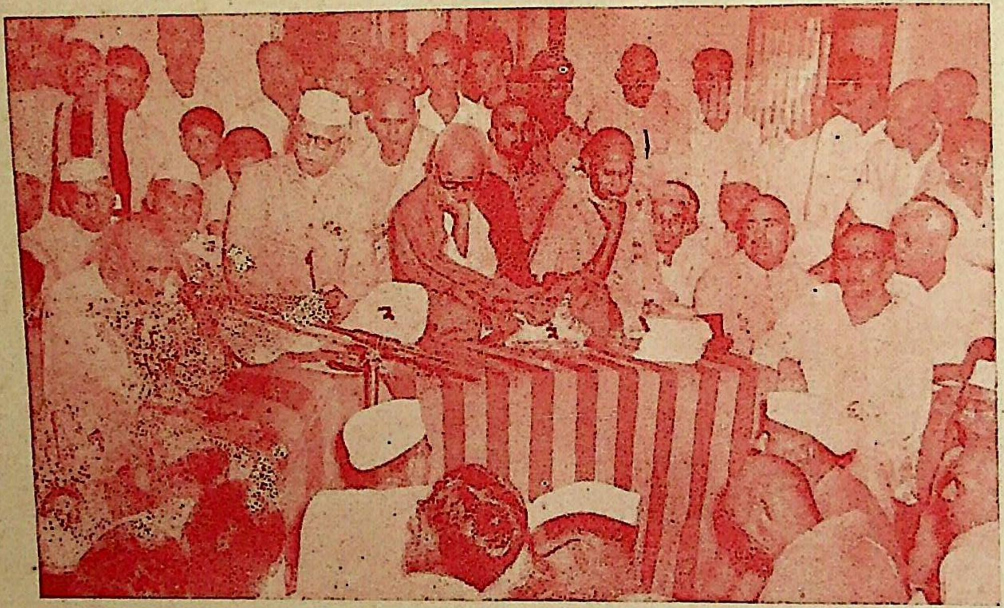

मंच पर भारतरत्न श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, श्री नरहरि विष्णु गाडगिल,
म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री केदारनाथ सारस्वत आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिवानी में शिलान्यास के अनन्तर—

पं० केदारनाथ सारस्वत, श्री देवीदत्त चतुर्वेदी, म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० प्रभुदत्त शास्त्री विद्यावाचस्पति, रायबहादुर श्रीदत्तजी प्रभृति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहयोग देने के लिए मुझे बुलाया करते थे। अवस्था के अन्तिम भाग में जो उन्होंने "भारतीयसंस्कृति-सम्मेलन" बनाया था, उसके अधिवेशनों में भी कई बार मेरा स्मरण किया और प्रयाग व भिवानी में मैं सम्मिलित भी हुआ। किन्तु संस्कृति वा धर्म के सम्बन्ध में उनके विचारों से कई जगह मेरा मतभेद हो जाता था, इसलिए सब अधिवेशनों में सम्मिलित न होने की मैंने क्षमा प्रार्थना कर ली।

हिन्दी भाषा के संबंध में जिस संलग्नता से उन्होंने सफल प्रयास किया, उसके लिए भारतवासी उनके हृदय से कृतज्ञ हैं और रहेंगे। ब्रिटिश राज्य के उस पूर्ण प्रभावकाल में जब कि हिन्दी भाषा की कोई भी पूछ नहीं थी, प्रत्युत बहुत से राज्यभक्ति की डींग मारने-वाले हिन्दी का ~~नाम~~ लेने से भी भय मानते थे, वे ही वीर पुरुष थे, जिन्होंने कई मित्रों के सहयोग से "हिन्दीसाहित्यसम्मेलन" की स्थापना की और भारत के प्रधान स्थानों में उसके सफल अधिवेशन किये। उन अधिवेशनों में यथा-शक्ति कई जगह मैं भी सम्मिलित होता रहा। उसके अन्तर्गत परिषदों का सभापतित्व भी उनकी प्रेरणा से मुझे प्राप्त हुआ। इन सम्मेलनों में ही मेरा उनका सम्पर्क विशेष रूप से होता रहा, और वहीं उनकी कृपा प्राप्त करने का भी अवसर मुझे मिलता रहा।

स्वनामधन्य श्री मदनमोहन मालवीयजी ने जब प्रयाग में अपने हिन्दू सभा के सभापतित्व काल में काशी के पंडितों की एक विशिष्ट परिषद् आयोजित की थी, उसमें दर्शक रूप से कई भारतीय नेता भी उपस्थित थे। उनमें श्री टंडनजी भी थे। काशी के विद्वानों की धार्मिक हठवादिता देखकर उन्होंने परिहास पूर्वक जो वाक्य कहे थे, वे मुझे आज भी पूर्णरूप से याद हैं। उन्होंने धीरे से मुझसे कहा था कि पण्डितों के देश-काल के विरुद्ध विचार सुनकर मुझे तुर्किस्तान के पुराने उन विद्वानों के विचार याद आते हैं, जो इसबात पर बहस किया करते थे कि एक सुई की नोक में होकर कई लाख फरिश्ते निकल सकते हैं या नहीं ?

कुछ सुधारक विचार रखते हुए भी वे भारतीय संस्कृति के हृदय से अनुयायी थे और उसकी रक्षा के लिए भी प्रयत्नशील रहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे, यह वात उनके संस्कृतिसम्मेलन बनाने से ही सिद्ध हो जाती है। हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में तो उनका ऐसा पुरुषार्थ था कि आज हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा का जो सिंहासन प्राप्त कर सकी है, उसे उनके ही पुरुषार्थ का फल कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी।

विधि के अमिट विधान के अनुसार आज वे हम लोगों के मध्य में नहीं है, किन्तु उनके पुरुषार्थ-स्मरण से सदा ही भविष्य संतति को प्रेरणा मिलती रहेगी, इसमें संदेह नहीं।

(श्री टण्डन जी के स्मारक अंक से संगृहीत)

"योगिराज वनखण्डी महाराज"

योगिराज श्री वनखण्डी पीताम्बरापीठेश्वर महाराज के द्वारा विरचित ईश, केन, कठ, मुण्डक और माण्डूक्य नामक पाँच उपनिषदों के भाष्य का मैंने यथा-शक्ति मनन किया। प्राक्कथन और भूमिका में जो श्री महाराज ने उपनिषदों का नया भाष्य बनाने की आवश्यकता प्रदर्शित की है, उसे भी देखा। आप का अभिप्राय यही है कि अब-तक जो उपनिषदों पर श्री शंकराचार्य व श्री रामानुजाचार्य आदि के भाष्य प्राप्त हैं, उनमें केवल ब्रह्म-प्रतिपादक निगम-परक अर्थों का ही विवरण किया गया है। आगम-प्रतिपादित शक्ति तत्व, जिसका श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में संकेत है और पुराणों में विस्तृत-विवरण है, उसके प्रतिपादन करने वाले अर्थों का सब उपनिषदों में आज तक किसी ने विवरण नहीं किया। श्री शंकराचार्य ने यद्यपि अपने आगम-परक ग्रन्थ में शक्तितत्व का विस्तृत विवरण लिखा है, परन्तु उपनिषदों के भाष्य में इसपर विस्तृत प्रकाश नहीं डाला।

इस न्यूनता को पूर्ण करने के लिए ही श्री योगिराज बनखण्डी महाराज का यह सफल उद्योग हुआ है। विशेषकर सब उपनिषदों की मूलभूत ईशावास्योपनिषद् का आपने बहुत विस्तृत भाष्य लिखा है। इसमें माध्यन्दिनशाखा और काण्वशाखा दोनों के भिन्न पाठों का भी आपने समन्वय किया है और योगाचार्यों के मत तथा वेदान्त मत का भी समन्वय प्रदर्शन है। इसी विचार में सन्यास मार्ग और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

भारतीय संस्कृति सम्मेलन के भिवानी अधिवेशन में भाग लेते हुए श्री चतुर्वेदीजी—

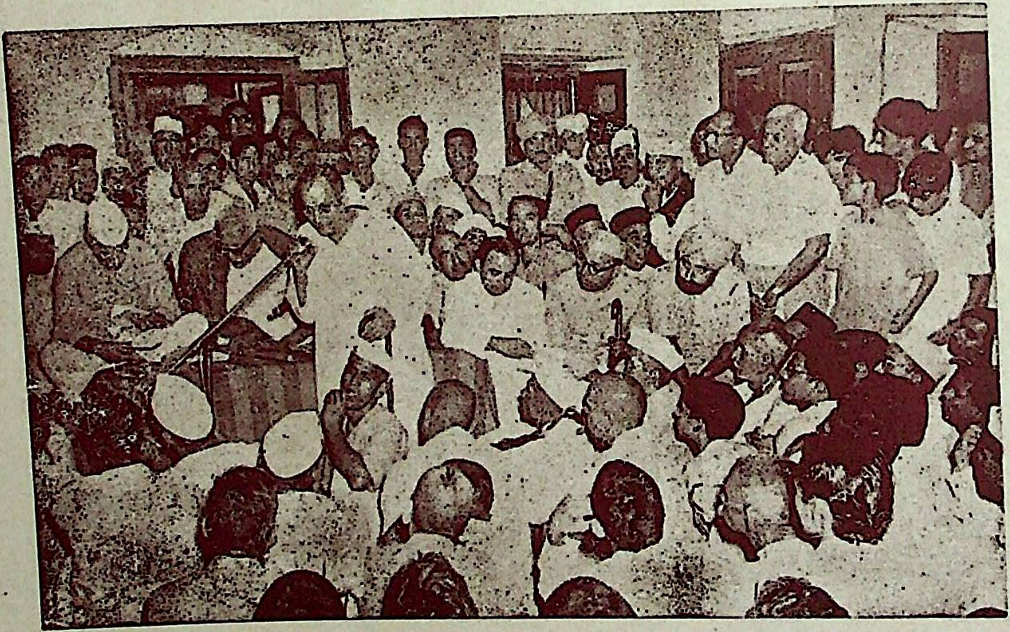

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्म योग मार्ग का भी आपने विस्तृत विवेचन कर अधिकारि भेद से दोनों का ही उपयोग बताया है। भगवद्गीता का भी यही सिद्धान्त है उसके प्रमाण स्थान-स्थान पर अंकित किए गए हैं। और श्री ललितासहस्रनाम आदि आगम ग्रन्थों के अनुसार भी उपनिषदों का विवरण अच्छी प्रकार से समझाया है, जिससे सामान्य बुद्धि के पाठक भी उनका कुछ तत्व समझ सकें। अन्य उपनिषदों के भाष्यों में भी निगम और आगम के एकीकरण का आपका प्रयत्न सर्वथा स्तुत्य है।

यह सब विचार कर आपके इस पाँच उपनिषदों के भाष्य को नया आविष्कार ही कहा जासकता है। यदि इसीप्रकार अन्य उपनिषदों पर भी आप भाष्य लिखने की कृपा करें, तो जिज्ञासु जनता का बहुत बड़ा उपकार हो और आगम-प्रतिपादित शक्तितत्व को, जो आजकल के विज्ञ समाज ने बहुत कुछ विस्मृत सा कर दिया है, उसका भी सप्रमाण रहस्य प्रकाश में आ सके।

मैं काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में कुछ महीनों से प्रति सप्ताह रविवार को प्रवचन करता हूँ। उस प्रवचन में आपके उपनिषद् भाष्य से भी बहुत बड़ी सहायता मिलती है।

साथ ही इन प्रकाशित उपनिषदों का राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी अनुवाद प्रकाशित किया जाय—यह भी मेरा मत है। संस्कृत भाष्यों के समझने वाले तो अब बहुत दुर्लभ से हो गए हैं। संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान अपने व्याकरण, न्याय आदि के चक्कर में ही फँसे रहते हैं। वे अपने आर्य जाति के सर्वस्व वेद वा तदन्तर्गत उपनिषदों के मर्म समझने का प्रयास ही प्रायः नहीं करते। इससे यदि राष्ट्रभाषा हिन्दी में ये तत्व प्रकाशित होंगे तो उनसे जनता बहुत बड़ा लाभ उठा सकेगी।

आशा हैं मेरी इन प्रार्थनाओं पर श्री योगीराज महाराज अवश्य विचार करने की कृपा करेंगे।

('चण्डी' पत्रिका से संगृहीत)

पं० बलदेव उपाध्याय

विद्वद्वर श्री पं० बलदेव उपाध्याय से मैं अनेक वर्षों से परिचित हूँ। पहले मैं अपने विद्यार्थियों को इनके ग्रन्थ पढ़ने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिए प्रेरणा दिया करता था। जब मैं हिन्दूविश्वविद्यालय में आया तबसे आपका प्रत्यक्ष सम्पर्क भी प्राप्त हुआ। आपने संस्कृत के विषयों से राष्ट्रभाषा का भण्डार खूब भरा है। आजकल प्रायः यह देखने में आता है कि जो संस्कृत के विषयों से निकट से परि-चित नहीं रहते उनकी गम्भीरता को नहीं समझते, वे भी उन विषयों को हिन्दी में लिखकर लेखकों की श्रेणी में अपना नाम जोड़ने से पीछे नहीं रहना चाहते। इससे बहुधा गलत सिद्धान्त सामने आते हैं। जो संस्कृत के गम्भीर विद्वान् हैं, वे हिन्दी की आज भी उसी प्रकार उपेक्षा करते हैं। परन्तु पं० बलदेव जी संस्कृत शास्त्रों के गम्भीर विद्वान् भी हैं और हिन्दी के यशस्वी लेखक भी, यह एक स्वर्ण-सौरभ संयोग है।

मुझे एक बार आपके साथ प्रयाग मोटरकार से जाने का भी अवसर मिला था। उस समय ४-५ विद्वानों की परम सहृदय मंडली होने के कारण चित्त में प्रतिक्षण एक विचित्र सा ही उल्लास रहा था। उसके केन्द्र बलदेव जी थे। सारे रास्ते आपने इतने सुन्दर ललित पद्य सुनाये कि चित्त प्रसन्न हो गया। मुझे जब उस अवसर का स्मरण आता है तभी मन आनन्द से आप्लावित हो जाता है।

(अभिनन्दन अंक से संगृहीत)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विपुलकीर्तिशाली साधक

(म० म० श्री गोपीनाथ कविराज)

आज संस्कृत भाषा का परिशीलन करने वाले साहित्य रसिक, सनातन हिन्दू धर्म के उद्धार में प्रयत्नशील सज्जनों में ऐसा कौन होगा जो विद्वत्कुल-वरेण्य, सुविख्यात, महामहोपाध्याय पदवी से विभूषित श्रीमान्-गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी महोदय के पुण्य चरित्र से परिचित न हों। उन्होंने बाल्यकाल्य से ही देव वाणी और मातृभाषा की सेवा करते हुए दोनों ही भाषाओं में समान रूप से निबन्ध आदि के द्वारा पण्डित समाज और सामान्य जनता में विपुल कीर्ति अर्जित की थी। यौवनारम्भ में ही जयपुर नगर से संस्कृत भाषा में प्रकाशित होने वाले 'संस्कृत-रत्नाकर' नामक मासिक पत्र के सम्पादन आदि का समस्त कार्य-भार इन्हीं के ऊपर रक्खा गया था। आपने न केवल उसके लेखों का सम्पादन किया अपितु विचित्र विषयों पर गद्य तथा पद्य में उनके हृदयग्राही लेखों के प्रकाशन से उसी समय उनकी बुद्धि का प्रकाश फैलने लगा। 'संस्कृत रत्नाकर' में पुराणेतिहास, चातुर्वर्ण्य, विधवाधर्म मीमांसा, प्रमेय पारिजात, पितृ-विवेक आदि उनके बहुत महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए।

अखिल भारतीय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना का गौरव पूर्ण कार्य भी चतुर्वेदी जी ने ही सम्पादित किया। चिरकाल तक वे ही उसके मंत्री थे। सम्मेलन की प्रकाशित निबन्धावली में 'दर्शनों का एकवाक्यता प्रकार' तथा 'परिणाम सहित धर्म-भेद का स्वरूप' इन विषयों पर उनके सुलिखित लेख प्रकाशित हुए। अमृतसर अधिवेशन के सभापति पद से दिया हुआ उनका भाषण भी गम्भीरता, विषयगौरव और प्रतिपादन शक्ति के कारण जिज्ञासु जनों और विद्वानों के चित्त को चमत्कृत करता है।

संस्कृतशिक्षापद्धति पर समीचीन विचार प्रकट करते हुए उन्होंने वर्तमान संस्कृतशिक्षाप्रणाली को सदोष बतलाते हुए उन दोषों का दूरीकरण करते हुए एक नवीन संस्कृत शिक्षा पाठ्यक्रम की रचना की थी।

श्री गिरिधर शर्मा जी ने अनेक लेखों और ग्रन्थों से हिन्दी भाषा को भी विभूषित किया है। उन लेखों में 'स्मृति-विरोध-परिहार' 'ब्रह्मचर्य', 'गोभक्ति', 'गोस्वामी तुलसीदास जी के दार्शनिक विचार' आदि बहुत से लेख विद्वानों में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार संस्कृत और हिन्दी में नवीन ग्रन्थ निर्माण, प्राचीन ग्रन्थों पर व्याख्या रचना तथा भाषणों से चतुर्वेदी जी ने महान् कार्य किया था। नौ वर्षों तक हरिद्वार के ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम के वे अध्यक्ष रहे, पाँच-छै वर्ष लाहौर सनातन-धर्म-कालेज के संस्कृतविभाग के प्रधान रहे, तदनन्तर उन्नीस वर्ष जयपुर के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के अध्यक्ष रहे, अन्ततः चार वर्ष काशीहिन्दूविश्वविद्यालय में संस्कृत रिसर्च के संचालक रहे, इस प्रकार संस्कृत अध्यापन पद्धति में उन्होंने विपुल ज्ञान अर्जित किया था। उनके अनेक शिष्यों ने परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर, विभिन्न विद्यालयों में सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त कर अपने गुरु की महिमा को बढ़ाया। वास्तव में स्वर्गीय चतुर्वेदी जी के प्रभाव का विस्तार संस्कृत वाङ्मय की समृद्धि के लिए, तथा सनातन-धर्म की पुष्टि के लिए हुआ, अतः भारत के प्राचीन गौरव के प्रकटीकरण में महान् कीर्तिशाली श्री गिरिधर शर्मा जी की स्मृति विद्वानों की गोष्ठियों में निरन्तर उद्घोषित होती है। ऋषिकुल हरिद्वार, लाहौर, तथा जयपुर के उनके अनेक छात्र भारतीय विद्वन्मण्डल में रत्न हैं।

हिन्दी और संस्कृत में व्याख्यान देने की पटुता और प्रतिपाद्य विषय के विश्लेषण की उनकी विलक्षण प्रणाली ने विद्वानों और साधारण जनता को एक साथ आकृष्ट किया था। अतः उनके आदर्शवाग्मित्व का सर्वत्र स्मरण किया जाता है।

अपने देश और विदेश में अपनी योग्यता के अनुरूप महती ख्याति प्राप्त करके भी उनमें अहंकार का स्पर्श भी नहीं था। वे सुशीलता, विनय, सौजन्य आदि विविध गुणरत्नों के आकर थे।

भारत सरकार ने इनको सन् १९५९ में संस्कृत विद्वत्ता के प्रमाण पत्र के द्वारा एवं नियमित आर्थिक सहायता प्रदान की व्यवस्था द्वारा उनके गुण गौरव को समुचित समादर प्रदान किया था।

इसके अतिरिक्त साहित्य अकादमी ने सन् १९६१ में उनके द्वारा विरचित 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' नामक पुण्यवान् ग्रन्थ के पुरस्कार स्वरूप उनको पाँच हजार रुपया प्रदान कर उनके गुणगौरव एवं असामान्य योग्यता को प्रकट किया।

मैं उनके बारे में और अधिक क्या लिखूँ। मुझे स्मरण आता है कि अपने कार्य क्षेत्र से अवसर ग्रहण करने के उपरान्त स्थायी रूप से काशी में निवास करने के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहिले ही संभवतः सन् १९५१ के निकटवर्ती किसी समय उन्होंने जीवन के अवशिष्ट भाग में अध्यात्म मार्ग के ऐकान्तिक अनुशीलन के अभिप्राय से मेरे साथ एक दिन एकान्त में साक्षात् किया था। मैंने श्री जगदम्बा की प्रेरणा के अनुसार उनसे गुह्य तत्त्व के विषय में कुछ आलोचन किया था। बाद में जब उन्होंने काशीवास करना आरंभ किया तब से नियमित रूप से अवसर मिलते ही मेरे साथ साक्षात् करते थे। उस विषय में अनुभव मूलक नाना प्रकार की आलोचना करते थे और क्रमिक अभिनव तत्त्वोन्मेष की प्रणाली के विषय में अपनी व्याकुलता प्रदर्शित करते थे। आज वे काल के जगत् से अवसर ग्रहण कर परमशान्तिमय के अङ्क में शान्ति लाभ करें यही श्री भगवान् के निकट मेरी प्रार्थना है।

—:●:—

शास्त्रनिष्णात श्री चतुर्वेदी जी

(पण्डितराज राजेश्वर शास्त्री द्रविड़)

महामान्य, विद्या और उसके अनुष्ठान के रसिक, म० म० श्री गिरिधर शर्मा महाभाग से कौन अपरिचित है। जब वे जयपुर नगर में विद्वद्वर श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री जी के पास व्याकरण शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे, तभी से मेरे पूज्य पिता धर्मप्राण लक्ष्मणशास्त्री जी से इनका परिचय हो गया। उसी समय से लेकर विद्वानों में इनकी बुद्धि की प्रसिद्धि हो गई। उसी बुद्धि की तीक्ष्णता के कारण अन्य शास्त्रों में भी उन्होंने पूर्ण परिश्रम किया। अध्ययन करने पर धर्माचरण में मति दुर्बल हो जाती है, ऐसी प्रसिद्धि है। परन्तु पूर्ण अध्ययन के उपरान्त अपने पूर्ण धर्माचरण के द्वारा उन्होंने सनातनी समाज में अपने गुण-गौरव से अग्र स्थान प्राप्त किया।

प्रायः व्याकरण आदि शास्त्रों के अध्येताओं में सर्वसाधारण को समझाने के योग्य प्रचार की चतुरता बहुत कठिन बात होती है। परन्तु उन्होंने सम्पूर्ण समाज को वाक्पाटव से विमोहित कर लिया था।

अभी कुछ दिनों पूर्व श्रीमान् गोपीनाथ कविराज जी का ८१ वें वर्ष में प्रवेश के उपलक्ष में अभिनन्दन हुआ था। उस अवसर पर डा० सम्पूर्णानन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महोदय के द्वारा किया गया स्वर्गीय श्री चतुर्वेदी जी के गुण-गौरव का स्मरण परलोक गमन के अनन्तर भी उनके यश की निरन्तर स्थिति का प्रमाण है।

वेद के द्वारा विहित अर्थ परलोक के लिए ही होते हैं, ऐसी धारणा से ऐहिक जीवन में उनको अनुपयोगी मानकर जो व्यक्ति वैदिक कर्मों से पराङ्मुख हो रहे थे उनको वैदिक अर्थों का ऐहिक उपयोग समझाने के लिए स्वर्गीय श्री चतुर्वेदी जी ने जयपुर के राजगुरु विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन जी ओझा महोदय का शिष्यत्व स्वीकार किया और उनके चरणों में बैठकर वेद-विज्ञान का अध्ययन किया। उसी का परिणाम "वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति" नामक ग्रन्थ तथा अन्यान्य ग्रन्थ हैं। अपने स्व० पितृ-चरण के द्वारा उनके गुण-गौरव का गान सुनकर उनके दर्शन की आकांक्षा से छात्रावस्था में मैंने असवर्ण विवाह कानून की अवैधता के प्रचार के लिए सनातनधर्मियों के द्वारा जब श्री चतुर्वेदी जी को काशी बुलाया गया तब सभा में उन्हें देखा। उस सभा को विध्वस्त करने की इच्छा से कुछ विद्वानों ने अनेक प्रश्न उपस्थित किये। तब बड़े कौशल से श्री चतुर्वेदी जी ने यह सिद्ध किया कि इस सभा का निमन्त्रण-पत्र सिद्ध करता है कि यह सभा केवल सनातनधर्मियों के लिए ही है, सनातन-धर्म के विरुद्ध मत रखने वालों का यहाँ कोई अधिकार नहीं है। इस प्रकार उन्होंने विरोधियों को परावर्तित कर दिया। तभी से मेरी श्रद्धा उनमें दृढ़ हो गयी।

उन्हीं ने अनेक स्थानों पर इस बात का प्रतिपादन किया था कि जब तक किसी बात को प्रत्यक्ष न दिखाया जाय तब तक उसकी सुदृढ़ प्रामाणिकता नहीं होती। "अस्ति कश्चित् शाल्मलीतरुविशेषः" इस प्रकार के 'तरुविशेषः' आदि शब्दों से हितोपदेश आदि पुस्तकों की पाठन-प्रणाली अनुचित है। उनके इस उपदेश से ही प्रेरणा लेकर हितोपदेश पढ़ाते समय मैंने अपने शिष्य हरिराम शास्त्री को शाल्मली का वृक्ष प्रत्यक्ष दिखा कर समझाया। साङ्गवेद विद्यालय के गणेशोत्सव के अवसर पर अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए उन्होंने पुनः उसी दोष का उद्घाटन किया। तब मैंने उनसे निवेदन किया कि आपके उपदेश से मैंने प्रत्यक्ष शिक्षा का प्रारम्भ कर दिया है। इस पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया।

मैंने नीतिशास्त्र का अध्ययन करके यह जाना कि प्रत्यक्ष आदि तीनों प्रमाणों के समन्वय से निर्णीत विषय नीति के रूप को प्राप्त करता है। परन्तु उन्होंने उस शास्त्र के अध्ययन के बिना अपने प्रातिभ ज्ञान से जो प्रचार कार्य किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह नीति के लक्षण से लक्षित ही था। उससे सनातन-धर्म-सभा तथा सनातन-धर्म-कालेज आदि संस्थाएँ उदय को प्राप्त हुईं।

उन्हीं के सहयोग से वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ, देवालय-रक्षण-समिति तथा अन्य संस्थानों के आन्दोलन प्रारम्भ हुए। एम० के० आचार्य प्रभृति तीन विद्वान् लन्दन नगर की 'राउन्ड टेबिल परिषद्' में भेजे गये। वहाँ की अपर चेंबर में ग्राम पंचायत सभा की आवश्यकता का उन्होंने प्रतिपादन किया। उसी से अंग्रेजों ने अपने शासन काल में पंचायत आदि की व्यवस्था शुरू की।

वेदों के अपौरुषेयत्व पर व्याख्यान करते हुए, "वेद नित्य है, वह पूर्व कल्प में जिस आनुपूर्वी का था उसी आनुपूर्वी से ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में शिष्यों को पढ़ाया, 'कवयः क्रान्तदर्शिनः' इत्यादि वाक्यों में कवि को क्रान्तदर्शी कहा है, ईश्वर महान् कवि है, उसके लिए क्या असाध्य है।" इस प्रकार मंजूषाकार के द्वारा उद्‌धृत तथा वेदान्त सम्मत वेद के प्रवाह रूपेण अनादित्व का मैंने प्रतिपादन किया था। उस अवसर पर महामहोपाध्याय जी ने 'व्याकृत शब्द ही होता है, अर्थ तो नित्य है', मंजूषा में उद्‌धृत इस दूसरे मत का आश्रय लिया था।

उनके वैदुष्य से मुग्ध होकर हिन्दूविश्वविद्यालय ने उन्हें ससम्मान प्राध्यापक पद पर अलंकृत करके अपने को कृतकृत्य समझा।

अपने देहली के प्रवास काल में मैंने उनके धर्मानुरागित्व का अनुभव किया। उनकी उपासना पद्धति भी देखी। उपासना में जब वे तत्पर होते थे तो निद्रा को जीत कर आरोग्य से अपने शरीर को रक्षित रखते थे। ऐसी सात्विकता अन्यत्र दुर्लभ है। उनके देवयात्रा आदि कार्यों को किसने नहीं देखा है।

उनके अदर्शन से सनातनी समाज का जो स्थान रिक्त हुआ है, उसको कौन कब पूरा करेगा, यह कहना कठिन है।

उनके अनेक शिष्य और पुत्र हैं। वे सभी उनकी स्मारक पुस्तक में वर्णित आदर्श का स्मरण करके उनकी कीर्ति का विस्तार करेंगे, ऐसी आशा है।

—:●:—

सनातनधर्म के स्तम्भ श्री चतुर्वेदी जी

(शास्त्रार्थमहारथी श्री माधवाचार्य जी)

स्वर्गीय श्री पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी महाराज के मुझे प्रथम दर्शन उस समय हुये जबकि वे ऋषिकुल हरिद्वार में प्रधानाचार्य रूप से कार्य करते थे और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं बहावलपुर के एक संस्कृत महाविद्यालय का प्रधानाध्यापक था। आपका कुछ दिन पूर्व ही गुरुकुल कांगड़ी के मंच पर श्री मुन्शीराम जिज्ञासु (पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द) के आह्वान पर उनके सुपुत्र स्वर्गीय श्रीइन्द्र विद्यावाचस्पति से वर्ण-व्यवस्था विषय पर ऐतिहासिक शास्त्रार्थ हो चुका था। यह वह शास्त्रार्थ था कि जिसकी विजय से सनातन-धर्म की महत्ता को तो चार चाँद लग ही गए थे श्रीचतुर्वेदी जी की भी एक संस्कृताध्यापक के स्तर से ऊँचे उठ कर, सिद्धान्त वेत्ता और प्रबल शास्त्रार्थी के रूप में दिगन्त व्यापिनी ख्याति हो गई थी।

आर्यसमाज ने अपनी घोर पराजय का अनुभव करते हुये श्रीजिज्ञासु जी को भी बहुत जली-कटी सुनाई थी, वस्तुतः श्रीइन्द्र जी जैसा अनुभवहीन विद्यार्थी—जो कि इसी वर्ष स्नातक हुआ था—श्रीचतुर्वेदी से भिड़ाने का नहीं था, परन्तु जिज्ञासु जी तो यह दिवा स्वप्न देख रहे थे कि गुरुकुल का एक विद्यार्थी भी ऋषिकुल के प्रधानाचार्य से शास्त्रार्थ कर सकता है। उनको यह पूर्ण आशा थी कि वर्णव्यवस्था जैसे कथित लोकविद्विष्ट विषय पर शास्त्रार्थ में आर्य-समाज को निश्चित ही विजय प्राप्त होगी, परन्तु फल सर्वथा विपरीत निकला। स्वर्गीय महात्मा गांधी जी भी इस शास्त्रार्थ से इतने प्रभावित हुये थे कि वे अन्त तक अपने को सनातनी और जन्म-सिद्ध वर्णव्यवस्था के पक्ष-पाती घोषित करते रहे।

(१) सो उक्त शास्त्रार्थ ने चतुर्वेदी जी को चमका दिया था, आप करांची के उत्सव से वापिस लौटते हुये बहावलपुर के रास्ते से हरिद्वार जा रहे थे, लम्बी यात्रा के कारण बीच में स्नान सन्ध्या भोजनादि के लिये विश्राम अपेक्षित था, इसी उद्देश्य से आपका तार बहावलपुर सनातन-धर्म सभा के नाम से जब मुझे मिला तो बड़ा हर्ष हुआ। मानो चींटी के घर नारायण ने स्वयं पहुँचने का कदाचित अनुग्रह ही किया हो। मैंने नगर में डोंडी द्वारा सूचना पहुँचा दी, स्टेशन पर सहस्रों नर-नारी स्वागतार्थ पहुँच गए। शानदार नगर शोभा यात्रा पूर्वक पधारावनी हुई। चन्द घन्टे में आवश्यक दैनिक कृत्य से निवृत्त होकर दूसरी ही ट्रेन से हरिद्वार को प्रस्थान हो गया। व्याख्यान का अवकाश नहीं था, केवल स्वागत समाप्ति पर धन्यवाद मात्र का शिष्टाचारात्मक संक्षिप्त भाषण हुआ।

उन्हें यह ध्यान भी नहीं था कि इस प्रकार का स्वागत आयोजन होगा। वे तो केवल विश्राम मात्र के इच्छुक थे, मेरे उत्साह की उन्होंने भूरि प्रशंसा की, बस यही चतुर्वेदी जी से मेरा प्रथम मिलन था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रथम मिलन की मुझ पर यह प्रतिक्रिया हुई कि अभी तक मैं केवल बैठ कर पुस्तक सामने रख कर ही कथावाचन का अभ्यासी था परन्तु अब बिना पुस्तक सामने रक्खे खड़े होकर व्याख्यान देने को उद्यत हो गया, आखिर गाते-गाते रासधारी बन ही तो गया।

(२) मैं डेराबसी (अम्बाला) के विद्यालय में जब अध्यापक था तो वहाँ आर्य-समाज की उछलकूद को देख कर श्रीचतुर्वेदी जी को बुलाने का आयोजन किया, संस्कृत श्लोकबद्ध निमन्त्रण-पत्र लिखा, चतुर्वेदी जी ने संस्कृत में ही उत्तर दिया—यह पत्र-व्यवहार है तो बड़ा ही मननीय, परन्तु विस्तर-भयात् उस सब को यहाँ न लिख कर केवल दो-चार पंक्तियाँ नमूने के तौर पर अङ्कित करता हूँ, जो अभी-तक भी मुझे स्मरण है। मैंने लिखा था—

(क) 'युक्तं यस्य वचो हरिच्छनिनिभं यावन्न कर्णंगतं,
तावन्नूनसमाजचारिकरिणो गर्जन्ति गर्वोद्धताः।

(ख) प्रान्तेऽम्बालयसंज्ञकेऽस्ति नगरी डेराबसी विश्रुता,
तस्यां धर्मसनातनस्य नितरां ह्रासः समुज्जृम्भते।

श्री चतुर्वेदी जी ने उत्तर में लिखा—

(क) अतादृशोऽपि भवद्भिर्महद् गौरवं प्रापित इति धन्यवादार्हास्तत्र भवन्त एव। अथवा मद्गुणलववर्णनव्याजेन दर्शिता स्वीया कविता प्रौढ़िः। नितान्तं तुष्यामि श्रीमतामीदृश्या प्रौढ्या।

हमारे शास्त्रार्थ के आयोजन मात्र से ही स्थानीय आर्य-समाजी त्रस्त होकर गिड़गिड़ाने लग गए, पुनः श्रीचतुर्वेदी को लिखा गया।

(क) दिघक्षुदावानलघूमधूसर—
च्छटातमस्काण्डविलुप्तचेतनाः।
मृगा इवासन्निह विद्रुत्ता वय—
मधर्मघर्म्मातिशयप्रपीड़िताः॥

(ख) परम्भवत्यत्र पयोधरापतत्—
प्रभूत-सम्पातनितान्तनिर्भयैः।
विपक्ष-पक्षक्षपणक्षमाक्षरा।
सुघोषणाऽस्माभिरदायि विद्रुहे॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ग) ततो भवन्नाम निशम्य तत्क्षणं,
भिया व्यवेपन्त मनांसि विद्विषाम्,
अतो न शास्त्रार्थकृते कृता मतिः,
स्वभाव एवैष सदार्य्यसंज्ञिनाम् ।।

इसके उत्तर में श्री चतुर्वेदी जी ने लिखा—

(घ) चित्रतुराणि व्याख्यानानि विना न भवति सम्यक् प्रतिपक्षदलनम् । इत्यादि ।

श्री चतुर्वेदी जी महाराज को जब 'महामहोपाध्याय' पदवी प्राप्त हुई तो मैंने वर्द्धापनात्मक पत्र लिखते हुए कुछ विनोदात्मक व्यङ्ग भी लिख डाला । क्योंकि निरन्तर सम्पर्क बढ़ते-बढ़ते अब मेरी उनसे वैसी घनिष्ठता हो चली थी कि जिसे बेतकल्लुफी कहा जा सकता है । मैंने भाषा तुकबन्दी में लिखा—

(क) गिरधर जी ने एक विदेशी लेडी पाई ।
या यूं कहो उपाधी अपने साथ लगाई ।
क्या यह धर्म सनातन के अनुकूल काम है ।
जात-पांत तोड़क मंडल की धूमधाम है ।

(४) अमरोहा (मुरादाबाद) स० ध० सभा के उत्सव पर श्रीचतुर्वेदी जी ने जब प्रथम बार मेरे द्वारा सम्पादित शङ्का-समाधान सुना तो बड़े प्रसन्न हुये और गद्‌गद् होकर बोल उठे—'आप भारत के भावी महोपदेशक और शास्त्रार्थी हैं ।'

(५) मैंने एक दिन श्री चतुर्वेदी जी के उपर्युक्त शब्द गोस्वामी गणेशदत्त से कहे तो वे बोले—'भावी' महोपदेशक ! अर्थात् वर्तमान नहीं !! शायद चतुर्वेदी जी वर्तमान में अपने अतिरिक्त अन्य किसी को महोपदेशक मानते ही नहीं— इत्यादि, मैंने कहा गोस्वामी जी ! उनका अभिप्राय यह नहीं था जो आप कल्पना कर रहे हैं, बल्कि उनका तो उदात्त भाव यह था कि उपदेशकों की श्रेणी में एक नये व्यक्ति का उदय हो रहा है । वस्तुतः उन दिनों श्री चतुर्वेदी जी सिद्धान्तवादी स० ध० वर्ग का नेतृत्व करते थे और गोस्वामी जी अस्पृश्यों के विषय में कांग्रेसी प्रचार से प्रभावित थे । अतः विचार वैषम्य उपस्थित था । मैं दोनों दलों को शास्त्र सम्मत और लोक सम्मत किसी एक मध्यम मार्ग पर आरूढ़ होकर सम्मिलित रखने की दिशा में प्रयत्नशील था, जिससे सनातन-धर्म संगठन भङ्ग न हो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देहली में श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी का हीरक जयन्ती समारोह —

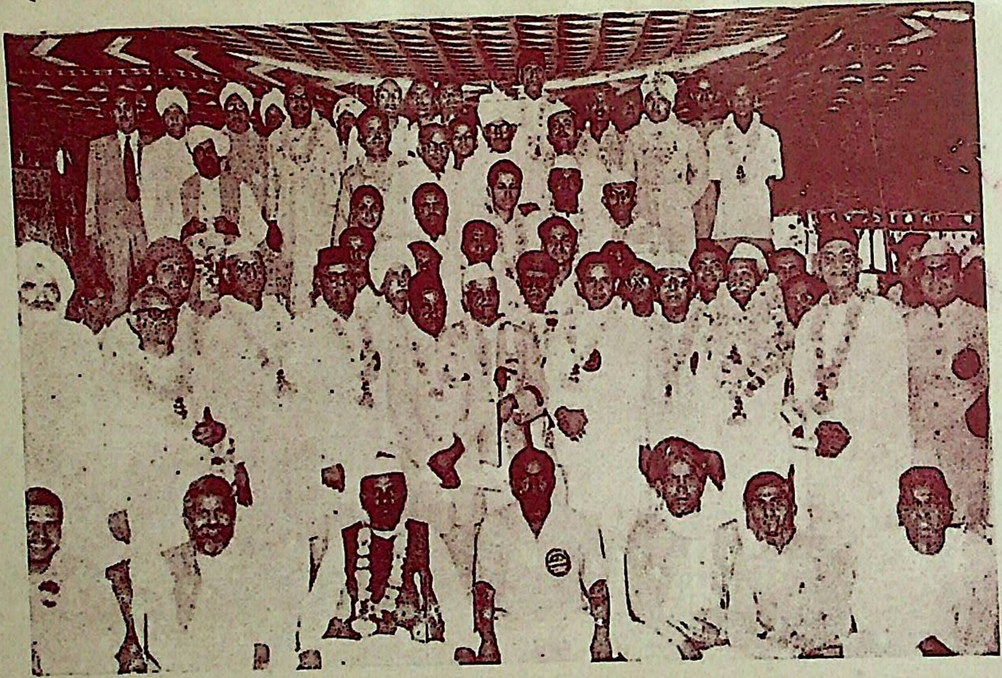

मध्य में — डा० मंगलदेव शास्त्री, म० म० श्री गिरिधर शर्मा, श्री नरहरि विष्णु गाड़गिल, श्री सी० डी० देशमुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हीरक जयन्ती समारोह में जाते हुए—

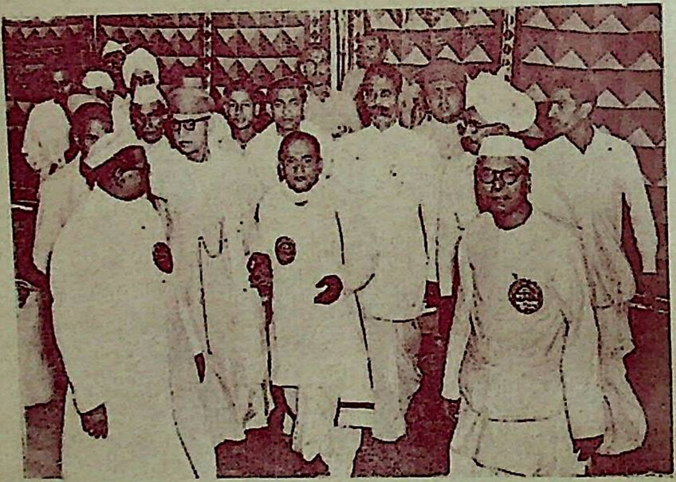

सर हरगोविन्द मिश्र, श्री केदारनाथ सारस्वत, श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी प्रभृति के साथ श्री गिरिधर शर्मा जी

हीरक जयन्ती में सम्मान ग्रहण करने के उपरान्त स्वागत का उत्तर देते हुए—

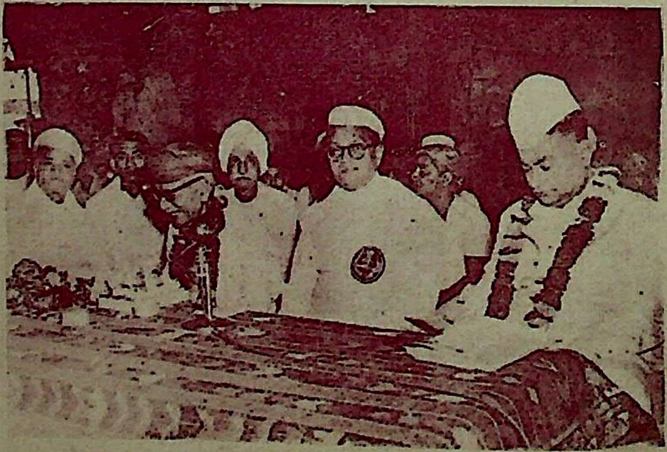

कवि शिरोमणि भट्ट श्री मथुरानाथ जी, म० म० श्री गिरिधर शर्मा जी (भाषण देते हुए) दीवान साहब श्री हरिकृष्ण दास जी, सर हरगोविन्द मिश्र, श्रीमती यमुनादेवी पाठक, दरभंगा नरेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(६) दिल्ली महायज्ञ के समय जो आर्य-समाज से मेरा लेखबद्ध शास्त्रार्थ हुआ था उसका माध्यस्थ्य श्री चतुर्वेदी जी ने ही किया था जिसमें आर्य-समाज की घोर पराजय हुई थी।

(७) इसी प्रकार सर्ववेदशाखासम्मिलन कानपुर के अवसर पर आर्य-समाज से शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ था। आर्य-समाज ने ही स्वयं शरारत आरम्भ की थी, परन्तु जव लम्बी लिखा-पढ़ी के बाद शास्त्रार्थ स्वीकृत हो गया तो निर्णीत समय पर हमारा पक्ष वनखण्डेश्वर महादेव के प्राङ्गण में तैय्यार होकर दयानन्दियों के आने की प्रतीक्षा करता रहा। समय बीत गया परन्तु स्वीकृति देकर भी आर्य-समाजी नहीं आए। यह शास्त्रार्थ भी श्री चतुर्वेदी जी की मध्यस्थता में मेरे द्वारा ही सम्पन्न होना था—इस प्रकार मेरे अनेक शास्त्रार्थों में श्री चतुर्वेदी जी का बराबर सहयोग रहा।

(८) मेरे द्वारा लिखे पुराण दिग्दर्शन ग्रन्थ की पाण्डु लिपि स० ध० प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा श्री चतुर्वेदी जी को ही सम्मत्यर्थ भेजी गई थी, आप उसे पढ़ कर बहुत सन्तुष्ट हुये और अपनी सम्मति में लिखा कि 'इसके छपने से सनातन-धर्म का बहुत उपकार होगा।'

सनातन धर्म्मी प्रसिद्ध उपदेशक एक-एक करके वैकुण्ठ वासी होते जा रहे हैं। भविष्य में उनके पदों की पूर्ति कर सकने वाले उपदेशक कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण नहीं हो पाते। श्री चतुर्वेदी का स्मारक कोई ग्रन्थ नहीं हो सकता अपितु उनका सच्चा स्मारक तो तादृश उपदेशक ही हो सकता है। यदि चतुर्वेदी जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री देवीदत्त शास्त्री घर गृहस्थ संभालें और उनके लघु पुत्र चिरञ्जीवी श्री शिवदत्तशास्त्री साथ में पठन-पाठन करते-कराते हुये भी धर्म-प्रचारक कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होकर अपने स्वर्गीय पिताजी द्वारा सेवित धर्म सेवा मे संलग्न हों तो इससे स्वर्गीय श्री चतुर्वेदी जी की आत्मा को अतीव सन्तोष होगा। 'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्यवरान् निबोधत।

प्रगाढ़ विद्वत्ता और प्रगतिशील विचार

(डा० श्री मंगलदेव शास्त्री)

मुझे इस बात का गर्व है कि स्वर्गवासी श्रद्धेय म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के साथ चिरकाल से मेरा गहरा स्नेह सम्बन्ध था। सनातन-धर्म के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मर्मज्ञ व्याख्याता और प्रवक्ता होने के साथ-साथ वे विभिन्न शास्त्रों के प्रगाढ़ विद्वान् भी थे। वास्तव में वर्तमान भारत के अग्रगण्य संस्कृत विद्वानों में उनका स्थान था। अनेकानेक योग्य विद्वानों को विद्या-दान देने के साथ-साथ उन्होंने अपनी हृदयंगम पद्धति में लेख द्वारा जो विद्वत्ता पूर्ण वेदादि शास्त्र-विषयक अनेक ग्रन्थों का निर्माण और प्रकाशन किया है वह सदा के लिए उनका स्मारक रहेगा।

उपर्युक्त गुण गरिमा के साथ-साथ उनकी बड़ी भारी एक विशेषता यह थी कि सनातन मर्यादा के पोषक होते हुए भी वे अपने विचारों में स्वभावतः प्रगतिशील थे। हमारे साथ उनका स्नेह सम्बन्ध, और बातों के साथ-साथ विशेषतः इसी आधार पर था। प्रारम्भ से ही हमारा प्राणपण से यह प्रयत्न रहा कि किसी प्रकार संस्कृत के छात्रों और विद्वानों में प्रगतिशीलता का उदय हो जिससे उनको राष्ट्र के पुनर्निमाण में सदा की तरह पुनरपि नेतृत्व का पद प्राप्त हो सके। इस उद्योग में श्री चतुर्वेदी जी का हार्दिक सहयोग सदा ही हमें प्राप्त होता रहा। १९३७–१९३९ तथा १९४८–५० में उत्तर-प्रदेश शासन की सहायता से राजकीय संस्कृत कालेज (वाराणसी) तथा उसकी परीक्षाओं के पाठ्यक्रम के तथा उन परीक्षाओं से सम्बद्ध सैकड़ों पाठशालाओं के सुधार और पुनर्गठन का जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया गया था, जिसका घोर विरोध भी चारों ओर से कुछ रूढ़िवादी संस्कृत विद्वानों ने किया था, उस सुधार के कार्य में श्री चतुर्वेदी जी ने जो हर तरह से सहयोग दिया था, वह सदा स्मरणीय रहेगा। कहने की आवश्यकता नहीं है कि उक्त सुधार के आधार पर ही आगे चल कर वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालय की स्थापना सम्भव हो सकी थी। उक्त सहयोग के कारण ही संस्कृत-कालेज के १९४८ के ऐतिहासिक पदवी प्रदानोत्सव (दीक्षान्त समारोह) पर दीक्षान्त भाषण कर्ता के पद को श्री चतुर्वेदी जी ने अलंकृत किया था।

उसके अनन्तर १९५०–५२ में भारत सरकार द्वारा संस्थापित भारतीय संविधान का संस्कृत भाषान्तर करने वाली समिति में श्री चतुर्वेदी जी के साथ कार्य करने का अवसर हमें प्राप्त हुआ था। उसी समय के लगभग श्रीचतुर्वेदी जी जी की प्रेरणा से हमारे स्वर्गीय मित्र श्री केदारनाथ सारस्वत ने अखिल भारतीय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन को देहली में पुनर्जीवित करने का जो महान् कार्य किया था, उस कार्य में भी सहयोग करने का अवसर हम लोगों को प्राप्त हुआ था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसमें सन्देह नहीं कि श्रीचतुर्वेदी जी वर्तमान संस्कृत जगत् की विभूति थे। उनकी पवित्र और प्रेरक स्मृति चिरस्थायी रहे, यह हम सबका पुनीत कर्तव्य है।

—:●:—

श्रद्धांजलि

(श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार)

कुछ दिनों पूर्व सनातन-धर्म के प्रकाण्ड वयोवृद्ध विद्वान्, प्रबल समर्थक, सफल वक्ता और महान् लेखक पूज्यपाद महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर जी शर्मा महाराज का काशी वास हो गया। सनातन-धर्म का एक देदीप्यमान प्रबल प्रतापी सूर्य अस्त हो गया। आप महान् विद्वान् होने पर भी बड़े विनीत और मधुर भाषी थे। विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मणत्व के मूर्तिमान् स्वरूप थे। भारतीय संस्कृति के महान् मर्मज्ञ और प्रचारक थे। आपके शरीरपात से सनातन-धर्म जगत् की, संस्कृत के विशाल क्षेत्र की पूर्ण न होने वाली कितनी भयानक क्षति हुई है, यह कहना संभव नहीं। 'कल्याण' तथा 'गीता प्रेस' के प्रति आपका विलक्षण ममत्व था, और इन्हें आपका नित्य आशीर्वाद प्राप्त था। 'कल्याण' में समय-समय पर आपके अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं। कई बार आपने गीता प्रेस में गोरखपुर पधारने की भी कृपा की थी। मुझ नगण्य पर तो आपका आदर्श वात्सल्य था। कितना स्नेह करते थे। पिछले दिनों आपकी रुग्णावस्था में मैं दर्शन करने गया था तो लेटे-लेटे बड़ी धीमी ध्वनि से मुझे कितने आशीर्वाद दिये, कितना स्नेह प्रदान किया, मैं कह नहीं सकता। समस्त विश्व में आपकी जोड़ी के संस्कृत के विद्वान् तथा भारतीय सनातन-धर्म संस्कृति के मर्मज्ञ वक्ता और लेखक विरले ही हैं। आपके देह त्याग से समस्त विश्व की ही हानि हुई है, परन्तु सनातन-धर्म का तो एक आधार ही नष्ट हो गया। हम लोगों की व्यक्तिगत जो हानि हुई है, वह भी अकथनीय है। अवश्य ही वे मुक्तात्मा थे, उनके लिए दुःख का कारण नहीं है। मैं आज श्रद्धापूत हृदय से उनके श्रीचरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पण करता हूँ।

—:●:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेद-विज्ञान के समुद्धारक

(पं० श्री रामचन्द्र मालवीय)

इस क्षुद्र जीवन को धन्यतम बनाने वाले क्षणों में उनका अत्यधिक महत्त्व है जो समय समय पर श्री चतुर्वेदी जी के किसी भी प्रकार के सम्पर्क में व्यतीत हुए। उनके प्रथम दर्शन मुझे काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय के बिड़ला छात्रावास में सन् १९२५ में हुए जब मैंने भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में उनका ओजस्वी प्रवचन सुना। उन्हें देखते ही मुझे अकस्मात् "बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः" इत्यादि राम के विषय की आदिकवि वाल्मीकि की शब्दावली स्मरण हो जाती थी। "आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः" के वे निःशेष निदर्शन थे। उनके तपःपूत अगाध मानस में अशेष वाङ्मय का गंभीर पाण्डित्य लहरें लेता रहता था। वैदिक-विज्ञान का वह वैदुष्य तो अवश्य ही उनके संग चला गया और हम उसकी रक्षा न कर सके। इस विषय में उनकी प्रतिभा-वल्ली के सुपक्व मधुर फल का आस्वाद संस्कृत जगत् न कर सका यह अत्यन्त शोचनीय है। इस सन्दर्भ के उनके समस्त लेखों का पृथक सङ्ग्रह प्रकाशित होने से भी वह ज्ञानराशि बहुत कुछ सींखी जा सकती है। शिक्षा-पद्धति, धर्म और दर्शन तथा राजनीति के सम्बन्ध के उनके विचार बड़े मौलिक और अपूर्व प्रेरणाजनक थे। मुझे उनके सुयोग्य तनय शिवदत्त चतुर्वेदी से उनकी ज्ञान राशि को पूर्णतया प्रकाश में ला देने की पूर्ण सम्भावना है।

—:●:—

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी

(पं० श्री बदरीनाथ शुक्ल)

महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का जन्म आज से ८६ वर्ष पूर्व जयपुर नगरमें एक ऐसे ब्राह्मण परिवारमें हुआ था, जो महाराजा जयपुर के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी से सम्मानित था। जन्मके ८ वें वर्ष ही में बालक गिरिधर का उपनयन संस्कार उनके पितामह ने कर दिया। अनन्तर श्री चतुर्वेदी ने सामान्य हिन्दी आदि भाषाओंके ज्ञानके उपरान्त संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। इनके मुख्य गुरु थे—श्री लक्ष्मीनाथ शास्त्री। ये बालशास्त्री के शिष्य थे तथा दामोदर शास्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाराणसी में ८५ वाँ जन्म दिवस

(बाएँ से)—श्री देवीदत्त चतुर्वेदी, श्री रामकुबेर मालवीय, श्री बदरीनाथ शुक्ल, म० म० श्री परमेश्वरानन्द, म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, श्री ईश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, श्री शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, स्वामी श्री केशवपुरी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और शिवकुमार शास्त्री के सहाध्यायी थे। दूसरे गुरु थे—समीक्षाचक्रवर्ती श्री मधुसूदन जी ओझा, जो सम्पूर्ण संस्कृतसाहित्यके पारंगत तत्वदर्शी समीक्षक थे। अपने शास्त्रीके अध्ययनकाल से लेकर ओझा जी के जीवनपर्यन्त लगभ ३७ वर्ष उनसे वैदिक साहित्य के गम्भीर तत्वोंको सुनते रहे। तीसरे गुरु थे—श्रीजीवनाथ, जो श्रीचतुर्वेदीजी के दीक्षा गुरु भी थे। इस प्रकार आपने २२ वर्षकी अवस्था में समग्र शास्त्रध्ययन करते हुए व्याकरण शास्त्रमें श्री शिवकुमारशास्त्री से १ सौ में सौ अंक प्राप्त किये और अब वे पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी विख्यात हो गये।

आचार्य होनेके अनन्तर पंजाब विश्वविद्यालयकी शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर आप सचमुच आचार्य बनकर ऋषिकुल, हरिद्वार में अध्यापन करने लगे और आदर्श ब्रह्मचारीके निर्माणार्थ आपने यहांसे 'ब्रह्मचारी' पत्रिका प्रकाशित करना आरम्भ किया। वह पत्रिका श्री शर्माजीके वहाके ६ वर्ष अध्यापनके बाद भी प्रकाशित होती रही। ऋषिकुल का संस्थापन पूर्ण हो जानेके अनन्तर आप महाराजा संस्कृत महाविद्यालय, जयपुरमें दर्शनके अध्यापक पद पर बुला लिये गये, वहां दो वर्षों बाद ही उस महाविद्यालयके अध्यक्ष बनाये गये और आपने अपना पूरा समय उस महाविद्यालयकी अध्यक्षतामें लगाया। इस प्रकार लगभग १९ वर्ष तक आप उक्त महाविद्यालयमें अध्यक्ष रहे।

ऋषिकुलमें ही आपने अखिलभारतीयसंस्कृतसाहित्यसम्मेलन का स्थापन किया और उसके मुखपत्रके रूपमें 'संस्कृतरत्नाकर' मासिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ किया। इसके माध्यमसे आपने दो महत्वपूर्ण ग्रन्थोंका निर्माण एवं प्रकाशन किया। वे हैं—चातुर्वर्ण्यम् तथा प्रमेयपारिजातः। संस्कृतसाहित्यसम्मेलन एवं 'संस्कृतरत्नाकर' आज भी अच्छी स्थितिमें हैं, अब भी वे सक्रियता और सजीवताके साथ संस्कृत समाजके उत्थानमें समुचित भाग ले रहे हैं।

सनातनधर्म प्रचारकार्यमें आपने पूरे भारतका अनेक बार भ्रमण किया और संस्कृत विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किया। उसीके फलस्वरूप आपने सम्मेलनकी स्थापना की। सनातन धर्म सभाओंमें आपके विद्वत्तापूर्ण प्रखर वक्तृत्वके विषयमें एक ही निदर्शन पर्याप्त होगा। काशी नगरीमें टाउनहालके मैदानमें पटेल बिलपर विचार करनेके लिए महती सभका आयोजन किया गया और उसमें तत्कालीन सनातनधर्मी वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ पण्डित श्री दीनदयालु शर्माजीने अपने मंच से यह उद्घोष कर दिया कि हमारे पक्षमें पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदीको यदि परास्त कर दिया जाय तो हम अपने पक्षको पराजित मान लेंगे। इस प्रकार श्री चतुर्वेदीजीमें लेखनकला वक्तृत्व तथा सफल अध्यापनकी त्रिवेणी का संगम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखनेको मिला था। इन सब राष्ट्रीय विशेषताओंसे प्रभावित होकर तत्कालीन शासनने आपको उनके ४३ वर्षकी वयमें ही महामहोपाध्याय पदवीसे विभूषित किया। महाराजा संस्कृत महाविद्यालय से निवृत्त होकर आप संस्कृतानुसन्धान-पीठ, लाहौरमें अध्यापन तथा अनुसन्धान कार्यमें निर्देशन करते रहे। इसी बीच आप अलवर राज्यमे राजापण्डित पदको भी सुशोभित करते रहे। सन् १९५० में आप हिन्दूविश्वविद्यालयमें अन्वेषण सञ्चालक रूपमें आये और अन्त तक हम काशीवासियोंको उनका सन्निध्य तथा स्नेह सुलभ रहा। उन दिनों आपके गीता-प्रवचन तथा उपनिषदप्रवचनसे हम सभी परिचित थे। हमें तब तक सन्तोष नहीं मिलता था जब तक महामहोपाध्यायजी सभा में प्रवचल न करते। उस अशक्तावस्थामें भी हम सभी आपके निकट पहुँचते थे और आप अपनी अशक्तताका ध्यान किये बिना ही सभामें उपस्थित हो जाते।

उन्हीं दिनों १९५८ में हमारे राष्ट्रीय शासनने आपकी सम्मानित किया। तथा वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालय ने आपको अपना सम्मानित अध्यापक बनाकर आपकी अध्यक्षता में वहां एक नवीन विषय वैदिक-विज्ञानका शुभारम्भ किया। उस वैदिक विज्ञानकी तत्त्व जिज्ञासासे उन दिनों मैं, डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री नीलमेघाचार्य प्रभृति आपके आवास स्थल पर ही प्रतिपक्ष एकत्र होते थे।

आपका शास्त्रज्ञान असीमित तथा अनुपम था और सबसे बड़ी विशेषता थी—आपकी शास्त्रवचनोंपर निष्ठा। आप उस वृद्धावस्थामें भी मंगलवारको संकटमोचन, बुधवारको गणेशजी तथा दुर्गाजीका दर्शन अवश्य करते थे! पर्व तिथियोंपर गंगा स्नान आपका नित्य कर्तव्य था। अन्त तक मध्यनिशा में महाविद्या की उपासना अनवरत करते थे और इन्द्रियोंके वृद्ध हो जाने पर दूसरे विद्वानोंकी सहायतासे सर्वदा शास्त्रचिन्तन ही करते मिलते थे।

समस्त संस्कृतज्ञ वर्गके माध्यम से हम काशीवासी लोग एवं भारतीय जनता महामहोपाध्यायजी के प्रति श्रद्धानत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत विद्वत्ता के आदर्श

(श्री प्रकाशचन्द्र गौड़)

सुर भारती के वाङ्मय के द्वारा संस्कृत विद्वान् के जिस प्रकार के स्वरूप की कल्पना की जाती है वैसा स्वरूप यदि आज तक मैंने कहीं देखा है तो दिवंगत महामान्य महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी महोदय के कल्पनातीत जीवन में ही वह देखने को मिला। जैसा स्पृहणीय प्रकाण्ड वैदुष्य उनका था तदनुरूप ही उनका दैनिक जीवन भी था। शब्द, अर्थ और क्रियाओं का जैसा समन्वय उनमें देखने को मिला वैसा कहीं कल्पना में भी नहीं आता। मैं अपने भाषणों में अनुकरणीय आदर्श के रूप में संस्कृत समाज में उन्हीं के व्यक्तित्व का उदाहरण दिया करता हूं। मेरे लिये श्री चतुर्वेदी जी का हृदय सर्वदा सहज स्नेह से स्निग्ध था। जब मैं मध्यमा प्रथम खण्ड में पढ़ रहा था तब सन् १९३२ में वृन्दावन में अपने शैशव काल में मैंने उन महानुभाव का प्रथम दर्शन किया था और भक्ति विषय पर प्रवचन सुना था। उस समय का उनका दिव्य रूप और उनकी आकर्षक तथा गम्भीर वाणी आज भी मुझे उसी रूप में अनुभूत है। तभी से इन महानुभाव के प्रति मेरे हृदय में अपूर्व आकर्षण उत्पन्न हो गया। उस समय तो यह कल्पना भी नहीं थी कि आगे चलकर वाराणसी में मुझे उनके साथ वैयक्तिक सम्पर्क प्राप्त करने का सौभाग्य भी उपलब्ध होगा।

सुर भारती की सेवा में अनन्य भाव से निरत श्री चतुर्वेदी जी की संस्कृत वाङ्मय के समुद्धार करने की महान् अभिलाषा थी। संस्कृत के प्रचार और प्रसार के विषय में उनके अनेक महत्वपूर्ण वैयक्तिक विचार थे। जिनको आधार बनाकर मैंने भी संस्कृत क्षेत्र को पर्याप्त लाभान्वित किया। इसी प्रसंग में श्रद्धेय ने अनेक बार मेरे निवास स्थान को भी अपने चरणों से पवित्र बनाया था। संस्कृत वाङ्मय के किसी भी विषय पर जब मैंने उनका प्रतिपादन सुना तब उनकी विद्वत्ता का, महासागर की गम्भीरता के समान अनुभव किया। श्रीमान् चतुर्वेदीजी महोदय का सर्वांगीण वैदुष्य, शास्त्रार्थमहारथत्व, मन वाणी और कर्म का एक रूपत्व, अपूर्व कल्पनाशालित्व, अन्तिम स्वास तक सुरभारती की सेवा में निरत रहना, व्याख्यानवाचस्पतित्व आदि गुण किस संस्कृत भाषा के उपासक को शाश्वत प्रेरणा प्रदान नहीं करते। ऐसा कौन है जो महामहिमा शाली श्री चतुर्वेदी जी के गुणगणों का पूर्ण वर्णन करने की शक्ति रखता हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

The Late M. M. Giridhar Sharma Chaturvedi

Rai Bahadur Sri Radhe Lal Chaturvedi

1. Years back round about 1902 when I was a student of the Agra College, the Late Sharmaji visited Holipura in connection with some marriage, and addressed a largely attended meeting of the *Chaturvedis* on some aspects of the Sanskar among Brahmans. Handsome in appearance as the speaker was, and handsome in expressions as the speech was, the observations produced a profound impression. The learned speaker inter alia pointed out that there was no mention of the *Chaturthi Karma* anywhere in the Aswalayan Grihyasutra. This excited my curiosity to study this Grihyasutra in particular and the rest in general, and I did the needful sometime later. In fact Sharmaji's Holipura speech came to me as a call to look into the institution of marriage from the point of social reform.

2. Although Sharmaji belonged to the old school, he was progressive enough to curtail or eliminate such social practices as had no shastric sanction behind them. The late lamented Pyrlalji along with the revered Suba Munnalalji was responsible for my election as President of the Gwalior session of the Mahasabha held in 1927. The grand old man of the community, the late Rai Bahadur Radhelalji of Meerut, could not attend the session on account of his urgent preoccupations; Pyarelalaji, the ornament of the community, had already been lost to us by premature death; and *Dan-Vira* Baijnathji was lying on death-bed. Thus among the stalwarts, the revered Sharmaji was almost my sole sheet-anchor. The warm advocacy with which he had supported the fusion of the two divided groups of *Kulins* and *Badaluas* at the Calcutta session of 1924 was powerfully alive in my

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

mind instinctively turned to him for support wherever a forward step had to be teken. But for his support, generousity extended at every stage when suitable modification of current social practices were involved, I could have cut no ice at Gwalior.

3. It was a sudden invitation I received from the Chairman of the Reception Committee (Subba Saheb) to preside over the coming session, and with the very limited knowledge I possessed, I had to prepare my address during the course of my tour in Bundelkhand which I could not cancel, because it had been planned previously.

4. In order to see that the resolutions adopted were properly understood and implemented, I planned a second tour of the various centres of the community including Mainpuri. The success of the first with Radhelalji of Meerut at the head was responsible for this. Sharmaji enthusiastically responded to my call. He clarified the position methodically and consolidated the ground the Mahasabha had trodden. But for him the atmosphere for a reasonable consideration of reforms could not have been created. His clarifications subsided the virulence of the storm prevailing at some centres, and turned it into a soothing breeze in more than one quarter.

5. Sharmaji was dead opposed to the system at Mathura where no age was too low for marriage. We proceed in deputation to prevent the preposterous union of an infant, hardly 18 months old, with an adult. It was a powerful speech which Sharmaji delivered in rank condemnation of that marriage. He plainly told the assembled Chowbeys that it would be impossible for him to oppose widow re-marriage, if the hideous custom was not stopped. The speech however had no effect on a people hidebound by custom, and if my memory does not fail, me the infant became a widow before long.

6. The speech again which he delivered at the Kanpur Session of 1929 was a masterpiece. He supported the resolu-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

tions at Gwalior and extended the bounds of our knowledge when he cited instances of the Almora and other Brahmns where the period of stay of the marriage party did not go beyond one day.

7. When later in 1936 or thereabout, we met at Etawah under the presidency of Suba Munnalalji, Sharmaji evolved the adjustment of ceremonies in a manner which reduced the period of stay from 4 to 3 days. Radhelalji (the saint of Meerut) and Munnalalji fully supported him.

8. It was again at the Lucknow session of 1936 held under the presidency of another stalwart, namely, the late Pandit Saligram Pathak, retired Magistrate and Collector, that Sharmaji moved a resolution which declared all marriage of infants null and void.

9. With a kind and compassionate disposition and with a profound knowledge of men and things, it is great pity that Sharmaji could not be pursuaded to espouse the remarriage of young stranded widows who deplore their luckless hour from day to day. His weighty support would have solved a thorny problem at Mathura, where resourceless widows of tender age figure too prominently in the foreground of the dismal picture.

10. It is a pity that the Varanasi Hindu University did not know how to take full advantage of the erudition of this scholar. If it had offered proper, allround facilities, considerable light would have been thrown on a number of virgin manuscripts. I spoke of the matter to the Vice-Chancellor of the day, Sri Gobinda Kant Malviyaji. His premature death which took place soon after destroyed all chances of the materialisation of the scheme put before him. If the needful had been done as suggested, the author would have produced more than one book of the standard of *Vaidic Vigyan*, which throws fascinating new light.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

11. The celebrated Swami Birjanand of Mathura found in Swami Dayanand Saraswati a pupil who carried out not only his great master's mission, but preached Vedic knowledge with such efficiency and zeal which even his revered Guru had not thought of. In the language of no less a person than Aravinda Ghosh, the militant Swami proved to be one of India's bravest warriors who built men and institutions. We may similarly observe that the devoted pupil of the scholarly Pandit Madhusudan Jha shone beyond his mater's expectation Sharmaji's exposition of Vedic and cognet literature prevailed with double sway because of his striking eloquence and dialectical method.

12. As a grand all-rounder in Sanskrit, Sharmaji had few equals and fewer, if any who could surpass him.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अविस्मरणीय संस्मरण

(कविराज श्री पं० रामनारायण वैद्य)

तेजस्वी व्यक्तित्व—ब्रह्मभूत चतुर्वेदी जी के प्रथम-दर्शन का सौभाग्य मुझे अब से करीब ५०-५२ वर्ष पूर्व रामगढ़ (चुरू-राजस्थान) में प्राप्त हुआ था। वे वहाँ सनातनधर्म पर व्याख्यान दे रहे थे। मैं उन दिनों वहाँ के आयुर्वेद-विद्यालय का छात्र था। उस समय चतुर्वेदी जी की अवस्था लगभग ३५ वर्ष की थी। वे ६ फीट के लम्बे-तड़ंगे और हृष्ट-पुष्ट जवान थे। उनका रंग खरा-गोरा था। उनका गम्भीर और बुलन्द स्वर उनके वक्तृत्व को निखार देता था। उनके भाषण लाउडस्पीकर के बिना ही २५-३० हजार श्रोता आसानी से सुनते थे। उनके भाषणों की भाषा गुरु गोलवलकर जी की तरह अत्यधिक सुगठित, मँजी-हुई, प्रभावशाली, सुबोध और विद्वत्तापूर्ण थी। गम्भीर से गम्भीर विषय को भी वे ऐसे सरल तथा प्रभावशाली ढंगसे प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे, कि श्रोता उसे सहज ही ग्रहण कर लेता था। ब्रह्मभूत चतुर्वेदी जी के उस समय के भाषण का प्रभाव मुझपर इतना गम्भीर पड़ा, कि मैं उसी दिनसे नियमितरूप से संध्यो-पासना करने लगा और आजतक बराबर करता आरहा हूं। उनके भाषण से उस समय मेरे हृदय में ऐसी अनेक धार्मिक-भावनाओं का जन्म होगया था, जिन्होंने मेरी रुचि एवं मस्तिष्क को अपनी ओर केन्द्रित करके मुझमें अपूर्व सनातन-धार्मिकता सँजोयी। उसी समय से मुझमें चतुर्वेदी जी के प्रति मनही मन अगाधश्रद्धा प्रादुर्भूत होगई थी।

लोभरहित ब्राह्मण—तदनन्तर लगभग १५ वर्ष बाद ब्रह्मभूत चतुर्वेदी जी का दर्शन-लाभ मुझे कलकत्ता में प्राप्त हुआ। उस समय श्री वैद्यनाथआयुर्वेद-भवन शैशवावस्था में था। मैंने उन्हें अपने आवास पर भोजन के लिए आमंत्रित किया था। भोजन के समय होने वाले वार्तालाप से मुझे उनकी मधु (शहद) की आव-श्यकता का ज्ञान हो गया था। अस्तु, भोजन के पश्चात् उनके जाने से पूर्व मैंने उन्हें मधु की एक बोतल भेंट करनी चाही। मैं समझता था, चतुर्वेदी जी संस्कृत पढ़े-लिखे ब्राह्मण हैं, इसलिए मधु की बोतल बिना मूल्य दिये सहज ही स्वीकार कर लेंगे। पर सर्वथा उल्टा निकला। चतुर्वेदी जी ने बिना मूल्य दिये उस मधु को लेना एकदम अस्वीकार कर दिया। मैं निस्तब्ध रह गया। भावना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी-अपनी ओर से भेंट करूं। इधर बिक्री की स्थिति आगई थी। खरीददार भी वे थे-जिन्हें मैं अपना अधिकाधिक भेंट करने का संकल्प बना चुका था। मैं किं कर्तव्य-विमूढ़ था, उधर चतुर्वेदी जी मधु का मूल्य लेने को उत्तरोत्तर दबाव डाल रहे थे। यह भी विश्वास होने लगा था-कि चतुर्वेदी जी विना मूल्य मधु नहीं लेंगे। वे मधु छोड़ जाएँ, मैं यह भी नहीं चाहता था। आखिर मुझे ही खामोश रहना पड़ा। चतुर्वेदी जी ने मधु का मूल्य दे ही दिया। एक ओर मुझे उनसे पैसे लेने पर अपने पर बड़ी ग्लानि हुई, दूसरी ओर उनकी लोभरहित प्रवृत्ति से बड़ा प्रभावित हुआ। मेरी धारणा थी कि मान्य चतुर्वेदी जी भी भारत के उन असंख्य संस्कृत-शिक्षित ब्राह्मणों की भांति ही होंगे, जो लोभ के पग-पग पर शिकार होते हैं। क्योंकि मैं उस समय तक ऐसे अनेक ब्राह्मणों के सम्पर्क में आचुका था, जो संस्कृत का अथाह ज्ञान सँजोकर और तपस्या में कालान्तर तक लीन रहकर भी लोभी-प्रवृत्ति का शमन नहीं कर पाये थे। सर्वोच्च होते हुये भी ब्राह्मण-वर्ग अपनी इस दैन्यभावना के कारण ही हेय माना जाता है। धुरन्धर संस्कृत विद्वान, महामहोपाध्याय तक इस प्रवृत्ति से मुक्त नहीं मिलते। ब्रह्मभूत चतुर्वेदी जी ने, संस्कृत के विद्वान ब्राह्मण होते हुये भी इस कुप्रवृत्ति को अपने पास तक कभी नहीं फटकने दिया। वे अन्त तक लोभरहित ब्राह्मण रहे, यह मैंने अनेक अवसरों पर देखा-परखा।

त्यागी-कर्तव्यनिष्ठ विद्वान्—अखिल भारतीय आयुर्वेद संभाषा परिषद का प्रथम अधिवेशन पटना में हो रहा था। इस हेतु विद्वान् वैद्य एक उद्‌भट, अधिकारी विद्वान् दर्शनिक की उपस्थिति की आवश्यकता महसूस कररहे थे, क्योंकि आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्त सांख्य-वैशेषिक आदि दर्शनों पर ही आधारित हैं। इस निमित्त महापण्डित चतुर्वेदी जी को पटना आमंत्रित किया गया। वे अधिवेशन में उपस्थित हुये, और १० दिन तक ठहरकर अधिवेशन में चार चांद लगा दिये। विशेषता तो यह रही कि उन्होंने यातायात-खर्च के अतिरिक्त अन्य कोई खर्च लेना कदापि स्वीकार नहीं किया।

दूसरी घटना उस समय की है, जब मैं उक्त घटना के कुछ समयोपरान्त काशी गया। मान्य शर्मा जी टीकमाणी संस्कृत कालेज में निवास कर रहे थे, यह तो सर्वविदित ही है कि चतुर्वेदी जी जयपुर महाराज के सम्माननीय विद्वानों में से थे। महाराज ने उन्हें दो गाँव भेंट किये थे, जो जमींदारी-उन्मूलन के कारण अबतक जाते रहे थे। जयपुर में उनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशाल निवास स्थान उस समय भी था, और आज भी है। उस समय, आय का कोई अन्य स्रोत न होने के कारण श्री चतुर्वेदी जी पर्याप्त आर्थिक संकट में थे। मैंने उनसे अपनी ओर से कुछ आर्थिक-भेंट प्रतिमास स्वीकारने के लिए बहुतेरा आग्रह किया, किन्तु उन्होंने कुछ भी कदापि न स्वीकार किया। उनकी स्थिति से मैं काफी चिन्तातुर था, इसलिए मैंने झांसी आकर उनके प्रिय-शिष्य श्री चन्द्रभानु शास्त्री को अपनी आर्थिकभेंट स्वीकारने की वकालत करने के लिए उनके पास भेजा। शास्त्री जी के कई दिन तक अनुनय-विनय करने पर उन्होंने सौ रुपया मासिक इस शर्त पर लेना स्वीकार किया कि वे इस धन के पारिश्रमिकस्वरूप मेरीइच्छानुसार किसी धार्मिक ग्रन्थका लेखन कार्य किया करेंगे। यह समझौता तभी तक चला, जब तक उन्हें सरकारी-वृत्ति १५०० मिलनी प्रारम्भ नहीं हुयी। सरकारी वृत्ति प्रारम्भ होते ही उन्होंने मेरी भेंट स्वीकार करना अस्वीकार कर दिया।

इसीप्रकार उस समय हुआ, जब उनके छोटे पुत्र श्री शिवदत्त जी ने एक ग्रन्थ प्रकाशित करवाया। इस हेतु अन्यान्य व्यवस्था के साथ सम्पादन के निमित्त एक लेखक-बन्धुकी भी आवश्यकता थी। यह सब मैंने और श्री शिवदत्त जी ने ही पारस्परिक विचार-विमर्श के द्वारा किया। ब्रह्मभूत चतुर्वेदी जी ने मुझसे किसी प्रकार का संकेतमात्र भी नहीं किया। वे त्याग की अनन्यमूर्ति थे, और बिना काम किये कुछ भी लेने की प्रवृत्ति से कोसों दूर थे।

महान् संस्कृति-उन्नायक—महामना चतुर्वेदी जी ने संस्कृति के उत्थान का कार्य निष्काम कर्मयोगी की भांति किया। वे भारतीय संस्कृति के अनन्य पोषक थे, और उसकी सुरक्षा-सम्मान के लिए सच्चे हृदय से कर्तव्यारूढ़ रहे। उन्होंने ऐसे कार्यों में स्वप्न में भी प्रमाद नहीं किया। एक बार पीताम्बरापीठ, दतिया (म०प्र०) के पूज्यपाद स्वामी जी महाराज के यहां 'वैदिक-कर्मकाण्ड' पर अनेक विद्वानों की गोष्ठी हुई। इसमें इसके पुनरुद्धार की आवश्यकता पर विशेष जोर डाला गया। अन्ततः निश्चय किया गया कि कर्मकाण्ड के लिए उन वेदमंत्रों को संगृहीत करके एक कर्मकाण्ड-पुस्तिका तैयार कराई जाय, जिन्हें जानना हर ब्राह्मण के लिए अनिवार्यतः जरूरी है। इस हेतु प्रकाण्ड वेद-पण्डित चतुर्वेदी जी की सेवाएं लेने का निर्णय किया गया। मैं उनके पास काशी गया। उन्हें दतिया लाया। फिर उनके साथ काशी गया। उन्होंने उत्साह और सुरुचि के साथ वैदिक कर्मकाण्ड के निमित्त मंत्रों का संग्रह कराया। संग्रह पुस्तकाकार हुआ जो आज देश में वैदिक कर्मकाण्ड पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अनेक जगह चल रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधुसेवक-धर्मनिष्ठ—चित्रकूट (बांदा) में सर्वधर्म-सम्मेलन होरहा था। चतुर्वेदी जी भी पधारे थे। एक दिन मुझसे बोले यहाँ के वैष्णव-साधुओं के दर्शनों की मेरी प्रबल इच्छा है। संयोगवश तीसरे दिन ही सीताकुण्ड में चित्रकूट के समस्त वैष्णव साधुओं का भण्डारा मेरी ओर से होने को था। मैंने धर्मनिष्ठ चतुर्वेदी जी को यह बताया। वे बड़े प्रसन्न हुये। भण्डारा के दिन उन्होंने आगन्तुक प्रत्येक साधु के पैरों पर अपना मस्तक टेका, तथा उनकी चरणरज अपने मस्तक पर रखी। इन साधुओं में अनेक तो निरक्षर और थोड़े पढ़े-लिखे काफी संख्या में थे, किन्तु साधुओं के विद्या-अभाव से धर्मनिष्ठ, अद्वितीय साधुसेवक और प्रकाण्ड-विद्वान् चतुर्वेद जी का न तो मन ही तनिक भी संकुचित हुआ, न उनके मुख पर विद्वान् व बड़े पंडितों की तरह घृणा या ग्लानि की कोई शिकन आई। उस समय उनके हृदय में जिस आत्मसंतोष का अनुभव हो रहा था, उससे उनका तेजस्वी मुखमण्डल दमक रहा था।

यथार्थ देशप्रेमी और कर्तव्यनिष्ठ—चतुर्वेदी जी की आँख के मोतिया-बिन्द का आपरेशन जयपुर में होना था। उन्होंने इस अवसर पर मुझे विशेष रूप से बुलाया था। मेरे मित्र, और उनके अपरिचित भक्त डा० कासलीवाल के द्वारा उनकी आँखों का आपरेशन किया जाना था। आपरेशन की व्यवस्था श्री चतुर्वेदी जी के घर पर ही मैंने करवाई थी। आपरेशन के पहले सुरक्षा की दृष्टि से रोगी के एक इन्जेक्शन लगाया जाता है। जब चतुर्वेदी जी के इस इंजेक्शन के लगने का अवसर आया, तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक इनकार कर दिया। उन्होंने कहा-मैंने आजतक कभी भी विदेशी कोई दवा अपने शरीर में प्रविष्ट नहीं होने दी है। और उनकी दृढ़ता के आगे डाक्टर को बिना इन्जेक्शन लगाये ही आपरेशन करना पड़ा। इसी आपरेशन के पहले, वे आपरेशन करवाने की आज्ञा लेने के लिए अपने कुलगुरू के पास गये, और कुलगुरू के दिवंगत होने के कारण उनके पुत्र से आज्ञा लेकर ही आपरेशन कराया। ऐसी विकट कर्तव्यनिष्ठा और महान् देशप्रेम उनमें विद्यमान था।

परम श्रद्धेय चतुर्वेदी जी को मैंने जिस रूप में देखा, उन्हें अद्वितीय, महान्, कर्त्तव्य परायण, और पूर्णजागरूक पाया। उनके साथ की एक-एक घटना को स्मरण करके मेरा शरीर रोमांचित हो जाता है, और सिर श्रद्धावनत् हो जाता है।

वे महान् वक्ता-धर्मोपदेशक और सिद्धहस्त लेखक थे। उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म-ग्रन्थ चिरकालतक संसार के प्रबुद्धवर्ग के लिए अमर थाती रहेंगे। वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आर्यसमाज के द्वारा लाये विकट झंझावात के समक्ष दृढ़तापूर्वक खड़े रहनेवाले महापुरुष थे। अधिकांश बुद्धिवादी यह मानते हैं कि आर्यसमाज ने देश में अनेक शिक्षण-संस्थायें प्रारम्भ कीं। सनातनधर्म के लिए, इस दिशा में भी चतुर्वेदी जी ने महान भूमिका अदा की। लाहौर के सनातनधर्म कालेज के प्रिन्सिपल रहकर उन्होंने काफी समय तक कालेज की यश-कीर्ति को बढ़ाया, और उसे वहां के डी० ए० वी० कालेज के समान ही सम्मानजनक स्थान दिलाया। गुरुकुल कांगड़ी के समकक्ष जब हरिद्वार में ऋषिकुल की स्थापना की गई, तो संस्कृत-पोषक चतुर्वेदी जी ने उसके प्रधानाचार्य का उत्तरदायित्व सँभाला। इनके अतिरिक्त भी उन्होंने देश के अनेक विद्यालयों को अपनी सेवाओं से गौरवान्वित किया। जयपुर के राजकीय संस्कृत विद्यालय के भारत-प्रसिद्ध होने में उनकी सेवाओं का महत्वपूर्ण हाथ रहा, यह मैं जयपुर राज्य का निवासी होने के कारण भलीप्रकार जानता हूं। वे इस विद्यालय के काफी समय तक प्रधानाध्यापक रहे थे। संस्कृत के उत्थानके लिए उन्होंने जीवनभर काम किया। उनके शिष्य आज देश के प्रायः समस्त संस्कृत कालेजों में संस्कृत के प्रबल पोषक के रूप में कर्तव्य रत हैं।

वे जीवन के अन्यान्य कर्तव्यों के साथ ब्राह्मण-धर्म को भी कर्म निष्ठा और उत्साह के साथ निवाहते थे। भगवद्भजन और पूजन नियमित करते थे। बहुत कम लोग ही जानते हैं कि वे महाशक्ति के उपासक थे। रात्रि में ९ से १२ बजे तक वह नित्यप्रति ही जगदम्बा की उपासना किया करते थे।

उनके गोलोकवासी होने के कुछ समय पहले उन्हें पक्षाघात का अर्दित रोग होगया था। जिसके कारण वे बोल नहीं पाते थे। काशी के प्रसिद्ध वैद्यराज ने उन्हें स्नान न करने और पूजन-भजन के लिए इतनी रात तक न जागने और इतने समय तक न बैठने का परामर्श दिया। जिसे चतुर्वेदी जी ने बिल्कुल पसन्द नहीं किया। तदनन्तर लखनऊ के श्री शालिग्राम शास्त्री के सुपुत्र श्रीकान्त शास्त्री के द्वारा उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध कराया गया। स्पष्ट है कि चतुर्वेदी जी को अपने कर्तव्य, धर्म और सिद्धान्त के समक्ष अपने शरीर का ध्यान बहुत तुच्छ था। वस्तुतः उन्हें शरीर से मोह न होकर अपने कर्तृत्व से था।

"ब्राह्मणस्य शरीरोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते" अर्थात् ब्राह्मण का शरीर क्षुद्र काम के लिए नहीं है, यह महावाक्य ब्रह्मभूत चतुर्वेदी जी ने अपने महान् कर्तृत्व से अपने जीवन में प्रमाणित कर दिया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे परम तेजस्वी, महान् धार्मिक, यथार्थ देशभक्त, संस्कृति पोषक, संस्कृत उद्धारक तथा सत्य-सरलता की अनन्य मूर्ति के प्रति नत मस्तक होकर मैं अपनी विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

—:●:—

संस्कृत संस्कृति एवं सनातनधर्म के संरक्षक

(डा० मंडन मिश्र)

स्वर्गीय म० म० श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी के जीवन को एक प्रकार से संस्कृत, भारतीय संस्कृति एवं सनातन-धर्म का गत आधी शताब्दी का इतिहास कहा जा सकता है। यदि चतुर्वेदी जी की क्रिया प्रतिक्रियाओं को निकाल दिया जावे तो संस्कृत, संस्कृति एवं सनातन-धर्म का गत अर्ध-शताब्दी का इतिहास शून्य सा प्रतीत होगा।

उनके प्रौढ़ पाण्डित्य, अगाधवैदुष्य की छाप सहस्राब्दियों तक संस्कृत-साहित्य पर रहेगी, किन्तु इससे भी बढ़ कर संस्कृत जगत् को उनके जीवन की देन सबल संस्कृत संगठन की स्थापना एवं यावज्जीवन उसका संवर्धन आदि है। विदेशी साम्राज्य में आज से ५५ वर्ष पूर्व सर्वप्रथम राष्ट्रव्यापी संस्कृत-संगठन के जन्मदाता एवं लोकप्रिय संस्कृत मासिक पत्र 'संस्कृतरत्नाकर' के संस्थापक—सम्पादक के रूप में ही केवल श्री चतुर्वेदी जी का स्मरण किया जाये तो भी उनकी विलक्षण संगठन शक्ति, वैचारिक क्रांतिकारिता का स्पष्ट चित्र उभर कर दिखने लगता है। प्रारम्भ में ३५ वर्ष तक उन्होंने अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य-सम्मेलन के महामंत्री एवं सभापति पदों का दायित्व सम्हालते हुए उसे जीवित रखा। तथा उसके पश्चात् स्थायी रूप से उप-सभापति के रूप में मार्ग-निर्देशन कर उसे प्रगतिशील एवं विकसित करते रहे। संस्कृत-रत्नाकर के माध्यम से संस्कृत-साहित्य की श्रीवृद्धि, संस्कृत विद्वानों में वैचारिक क्रान्ति एवं संस्कृत शिक्षा के परिमार्जन करने के साथ-साथ शताधिक संस्कृत लेखक एवं बीसों सम्पादक तैयार कर चतुर्वेदी जी ने संस्कृत की महत्वपूर्ण सेवा की है। आज भी उनके द्वारा प्रवर्तित इन प्रवृत्तियों के द्वारा संस्कृत जगत् की सेवा की जा रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संस्कृति के तो वे मूर्तिमान् प्रतीक थे। संस्कृति प्रसार की दिशा में उन्होंने स्व० राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टण्डन का पर्याप्त सहयोग किया। टण्डन जी द्वारा संस्थापित भारतीयसंस्कृतिसम्मेलन के संचालकों में वे अग्रणी रहे। भारतीय संस्कृति के गौरव को प्रदर्शित करने के विचार से उनने 'वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति' नामक महनीय ग्रन्थ की रचना की, जो युग-युग तक विद्वानों का मार्ग दर्शक रहेगा।

धर्म में चतुर्वेदी जी की आस्था अद्भुत थी। वे अपनी सभी सफलताओं का श्रेय अपने इष्टदेव को देते थे। ऐसा कोई भी वर्ष नहीं गया जिसमें उन्होंने स्वकीय हजारों रुपये व्यय कर धार्मिक यज्ञ न कराये हों। भीषण रूप से अस्वस्थ रहते हुए वृद्धावस्था में भी प्रतिदिन मध्यरात्रि तक पूजा करने का उनका क्रम नहीं टूटा। वे स्वभावतः महान् उदार थे, यही कारण था कि वे जीवन में कभी भी ऋण से मुक्त नहीं रहे। जब कभी जितना भी धन उन्हें मिलता, उसका तुरन्त यज्ञानुष्ठानादि में उपयोग करते थे। साहित्य अकादमी से उन्हें ५०००) रु० पाँच हजार रुपये का पुरस्कार मिला जो संस्कृत विद्वानों के लिए सबसे पहला सम्मान था, किन्तु वे उसके मिलते ही उसी दिन रात की गाड़ी से प्रस्थान कर जयपुर पधारे और वहाँ आमेर की शिलादेवी के मन्दिर में उससे भी अधिक व्यय कर सहस्रचण्डी-अनुष्ठान कराया। वह भी उस स्थिति में जब कि ऋण का भार उनके परिवार पर कम नहीं था। सनातन-धर्म के कट्टर समर्थक चतुर्वेदी जी को एक मात्र व्यसन यज्ञानुष्ठान आदि करते-कराते रहने का था।

उत्साह तथा कर्मठता की वे प्रतिमूर्ति थे। ८५ वर्ष की वृद्धावस्था में भी जहाँ कहीं भी संस्कृत, संस्कृति एवं सनातन-धर्म के काम के लिए उनसे निवेदन किया गया वे न केवल वहाँ उपस्थित हुए अपितु १५–१५ घण्टे काम कर उनने शाश्वत युवा का उदाहरण प्रस्तुत किया। गम्भीर वैदुष्य समयानुकूल दृष्टिकोण, सतत अध्यवसाय, त्याग एवं तपस्या का एकत्र समागम महामना गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी जैसे महापुरुषों में ही देखा जा सकता है।

उनने संस्कृत और संस्कृति के संरक्षण के लिए जीवन अर्पित कर दिया था। इस क्षेत्र में उनने जो सफलता, उतार-चढ़ाव देखे तथा जो मधुर अथवा कटु अनुभव प्राप्त किए उन सब को चतुर्वेदी जी ने अपनी डायरी में अंकित कर स्थायित्व प्रदान किया था। उनके वे अनुभव तथा जीवन के प्रमुख अवसरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की घटनाओं के वर्णन सहयोगी प्रतियोगी महानुभावों के साथ सम्पन्न शास्त्र-चर्चा आदि के इस संकलन 'चतुर्वेदी जी की आत्मकथा' को गत आधी शताब्दी के संस्कृत का इतिवृत्त कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी।

संस्कृत के क्षेत्र में तो मेरे सार्वजनिक जीवन के वे निर्माता थे। इस दिशा में मुझे जो भी सफलतायें मिली हैं—उनका वास्तविक श्रेय उन्हीं की प्रेरणाओं को है। इसलिए मेरा रोम-रोम उनके प्रति कृतज्ञ हो, यह स्वाभाविक है। इसी कृतज्ञता-प्रकाशन को मैं महामहोपाध्याय जी के चरणों में श्रद्धांजलि के रूप में समर्पित करता हूँ।

—:●:—

मधुर दार्शनिक

(कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर')

माननीय महामहोपाध्याय पण्डित श्री गिरिधरशर्माजी चतुर्वेदी एक प्रकाण्ड दर्शन शास्त्री होते हुए भी स्वयं सरल थे। यही बात नहीं, उन्होंने दर्शन शास्त्र की रूक्षता को भी अपनी सरलता में लपेट दिया था। आप उनसे किसी दार्शनिक समस्या पर बातचीत करते, आपको ऐसा मालूम होता आप किसी साहित्य समालोचक के साथ श्री प्रेमचन्दजी के उपन्यासों की चर्चा कर रहे हैं।

आप दर्शनों की रूक्षता के विरोधी थे—आपका कहना था कि दर्शन-शास्त्र पर रूक्षता का आरोप गलत है, दर्शन-शास्त्र एक बहुत सरस विषय है।

पण्डित जी सनातन-धर्म के शास्त्रार्थ महारथी थे, उन्होंने अपने जीवन में सैकड़ों शास्त्रार्थ किए, पर उनकी यह स्वाभाविक सरसता शास्त्रार्थ के समय में भी ज्यों की त्यों रहती थी। वही प्रसन्न मुखमुद्रा, वही आवेशहीन सरस भाषा और वही मन्द मधुर मुस्कान के साथ खेलने वाली वही आक्षेप-हीन शैली देख कर विरोधियों का भी मस्तक श्रद्धा से झुक जाता था।

आप विद्वान् थे और प्राचीन प्रणाली के विद्वान् थे, पर नवीनता से भी आपने बहुत कुछ ले लिया था। दूसरे शब्दों में ये—आप में प्राचीनों की प्रकाण्डता और नवीनों की व्यावहारिकता थी। आपका ज्ञान बहुमुखी था। व्याकरण के आप 'आचार्य' थे, दर्शनों के तीर्थ थे, पुराणों के प्रवक्ता थे, वेदों के मर्मज्ञ थे और हिन्दी के सुलेखक थे। इस प्रकार भारतीय साहित्य के संबंध में आप अधिकारपूर्वक बोलते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंगलाप्रसादपारितोषिकविजेता विद्वान् श्री जयचन्द जी विद्यालंकार ने एक बार आपको 'प्राचीन पाण्डित्य का प्रतिनिधि' कहा था। यह ठीक भी था, पर इस प्राचीन पाण्डित्य के साथ 'आलोचना की नवीन शैली' का जो समन्वय आप में हुआ था, वह अपूर्व था। प्राचीन शैली के पण्डितों की आज भी भारत में कमी नहीं है, पर उनका पाण्डित्य रुचि विभिन्नता के कारण इस नवयुग के युवक के गले से नहीं उतरता, पर पूज्य शर्माजी में यह बात नहीं थी। वे प्राचीन का विवेचन नई शैली में करते थे, श्री प्रेमचन्द के शब्दों में भारतीय आत्मा को परिश्रम के शरीर में सुरक्षित रखना जानते थे। श्रीशर्मा जी सुदूर पश्चिम में होनेवाली प्राचीन भारतीय साहित्य की आलोचना से भी बेखबर नहीं थे, फलतः जहाँ उनकी विवेचना एक भावुक प्राचीनतावादी को प्रभावित करती थी वहाँ आज का 'रिसर्च-स्कालर' भी उनके प्रभाव से नहीं बचता। सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन में पं० जयचन्द्र जी ने कहा था—'जब पुराणों की कोई गुत्थी मुझ से नहीं सुलझती तो मैं पं० जी की शरण लिया करता हूँ।' एक ऐसे ही दूसरे विद्वान् का कहना था कि 'मैं अनेक बार अपनी शास्त्रीय गुत्थियों को लेकर उत्कंठा के साथ श्री शर्माजी के यहाँ गया हूँ, पर सदा ही वहाँ से पूर्ण प्रसन्नता और संतोष के साथ लौटा हूँ।'

पाण्डित्य के साथ पूज्य पण्डित जी में शासन-व्यवस्था भी पूर्ण मात्रा में थी। आप हरिद्वार के ऋषिकुल के सबसे पहले उल्लेखनीय प्रिंसिपल थे और जानकारों से छिपा नहीं है कि इस विशाल संस्था के निर्माताओं में आपका नाम बहुत ऊंचे स्थान पर लिखा हुआ है। योग्य साथियों का निर्वाचन और संकलन आपकी विशेषता थी और आपकी सफलता का रहस्य भी इसी में छिपा हुआ था। आपके समय में ऋषिकुल का वैभव-विस्तार आज जैसा नहीं था, पर उस समय के 'कुल' में जो बात थी वह आज कहाँ? इसके बाद आप सनातन-धर्म कालेज लाहौर के प्रिंसिपल हुए और वहाँ भी आप पूर्ण सफल रहे।

भारत में 'घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध' की कहावत प्रसिद्ध है, पर पण्डित जी अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य और निर्मल चरित्र के कारण अपने ही घर में 'सिद्ध' सिद्ध हुए।

अनेक वर्ष हुए गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर संस्कृत साहित्य-सम्मेलन का सम्भवतः द्वादशवाँ वार्षिक अधिवेशन हुआ था। गुरुकुल के अधिकारियों ने इसके सभापतित्व के लिए सर्वसम्मति से जिन महानुभाव का नाम चुना, वह आप ही थे। आर्य-समाजी संयोजकों द्वारा (जिनसे आप शास्त्रार्थ कर चुके थे)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सनातनी शास्त्रार्थ—महारथी विद्वान् का सभापति चुना जाना, आपके मधुर व्यक्तित्व का अखंड प्रमाण है। संस्कृत के मासिक पत्र 'संस्कृत-रत्नाकर' का आपने वर्षों योग्यतापूर्वक सम्पादन किया था। हिन्दी में आपके कई लेखों की बहुत प्रशंसा हुई। इस प्रकार अपनी विद्वत्ता और मधुरता के कारण पंडित जी ने भारत के प्रसिद्ध विद्वानों में जो श्लाघनीय स्थान प्राप्त कर लिया है। वह सर्वथा आपके योग्य है।

—:●:—

आधुनिक वेदव्यास

(श्री लक्ष्मी शंकर व्यास)

महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी आधुनिक वेदव्यास थे। प्राचीन भारतीय विद्या, वैदिक संस्कृति और विज्ञान के आप महान ज्ञाता ही नहीं, प्रचारक तथा प्रसारक भी थे। आपका जीवन वेद के रहस्यों के मर्म एवं महत्त्व के प्रकाशन के लिए समर्पित था। आपके जीवन और कर्तृत्व पर विहंगम दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि आधुनिक काल में संस्कृत विद्या के अध्ययन अध्यापन की जो व्यवस्था प्रतिष्ठित है उसका अधिकांश श्रेय आपको ही प्राप्त था।

महामहोपाध्याय चतुर्वेदी जी के दर्शनों का सौभाग्य मुझे अनेक बार मिला। प्रत्येक अवसर पर आपके पाण्डित्य और विलक्षण व्यक्तित्व ने मुझे प्रभावित किया। एक दिन मैं अपमे मित्रवर स्वामी केशवपुरी जी के साथ दुर्गाकुण्ड स्थित धर्मसंघ कार्यालय गया, जहाँ चतुर्वेदी जी निवास कर रहे थे। उन दिनों वृद्धावस्था के अतिरिक्त रोग ने भी आक्रमण किया था किन्तु चतुर्वेदी जी नियमित रूप से गीता सम्बन्धी समालोचना लिखवा रहे थे। शास्त्र का अहर्निश ऐसा चिन्तन-मनन करने वाले महर्षि आधुनिक काल में इने गिने ही रहे हैं। गया था आपके दर्शन करने, श्रद्धावनत होने और साथ ही आपके श्रीमुख से अपनी जीवन कथा के पिछले पृष्ठों को सुनने की जिज्ञासा लेकर। महामहोपाध्याय जी के कनिष्ठ पुत्र श्री शिवदत्त जी भी उस समय सौभाग्य से वहाँ विद्यमान थे और उन्होंने हमारी बड़ी सहायता की।

महामहोपाध्याय जी से मेरी प्रथम जिज्ञासा यह थी कि आपको संस्कृत की ओर आकृष्ट होने की प्रेरणा कैसे मिली? इस सम्बन्ध में आचार्य चतुर्वेदी जी ने बताया कि पण्डित अम्बिकादत्त व्यास तथा स्वामी हंसस्वरूप जी की प्रेरणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से मैं संस्कृत के अध्ययन मनन की ओर प्रवृत्त हुआ। आचार्य परीक्षा में महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री ने मेरे उत्तरों पर सन्तोष व्यक्त किया था और मुझे महा मेधावान् का आशीर्वाद दिया था। व्याकरण शास्त्र के गूढ़ ग्रन्थ शब्देन्दुशेखर में आपने मुझे १०० अङ्कों में शत-प्रतिशत अङ्क प्रदान किये थे। पण्डित शिवकुमार शास्त्री का एक संस्मरण भी आपने इसी प्रसङ्ग में बताया। चर्चा महामहोपाध्याय लोगों के शरीर और उनकी व्याधियों पर चल रही थी। उन लोगों के दुर्बल शरीर और मन्दाग्नि और रोगों का उल्लेख करते हुए शास्त्री जी ने कहा कि गायत्री जपने से ये सभी कष्ट दूर हो जाते हैं, गायत्री मन्त्र से सर्व रोगों का निराकरण हो जाता है।

संस्कृत साहित्य के अध्ययन और प्रचार प्रसार का व्यवस्थित रूप से कब आरम्भ हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में महामहोपाध्याय जी ने बताया कि जब मैं ऋषिकुल में आचार्य था, उसी समय हरिद्वार में संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई। इसके संस्थापन में पण्डित शिवकुमार शास्त्री, पण्डित बुलाकी—राम जी शास्त्री विद्यासागर आदि ने भी योग दिया था। उसी समय श्री सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने कलकत्ता संस्कृत कालेज की स्थापना की। स्मरणीय है कि उक्त संस्कृत साहित्य सम्मेलन की स्थापना के पूर्व संस्कृत प्रचार प्रसार तथा अध्ययन अध्यापन की समस्या की ओर ध्यान देने वाला कोई अन्य संगठन नहीं था। महामहोपाध्याय चतुर्वेदी जी ने इन्हीं महत् उद्देश्यों को लेकर "संस्कृत रत्नाकर" नामक संस्कृत मासिक पत्र का बीस पचीस वर्षों तक सम्पादन एवं प्रकाशन किया। इसमें आपने संस्कृत भाषा तथा भारतीय प्राचीन ज्ञान विज्ञान के महत्त्वपूर्ण पक्षों का रहस्योदघाटन किया। संस्कृत रत्नाकर में चतुर्वेदी जी के विविध विषयक संस्कृत लेखों का संग्रह किया जाय तो वह सब मिलाकर महाग्रन्थ का रूप सहज ही ले सकता है। इस पत्रिका के माध्यम से आपने देश के विद्वानों का ध्यान राष्ट्रहित तथा देववाणी संस्कृत की उन्नति की ओर आकृष्ट किया।

आपका मुख्य लक्ष्य यह था कि संस्कृत शिक्षा का परिष्कार कैसे किया जाय तथा संस्कृत भाषा को कैसे सरल रूप दिया जाय। कहना न होगा कि आप सरल संस्कृत के प्रबल समर्थक थे। इस निमित्त पत्रिका में लेखों के अतिरिक्त आपने विशेष अवसरों पर भाषण भी किये। आपने चालिस पैंतालिस वर्ष पूर्व संस्कृत सम्मेलन में जिस संस्कृत पाठ्यक्रम की रूपरेखा स्थिर की थी वही प्रायः इस समय भी चल रही है। आपका कथन था कि संस्कृतज्ञ अंग्रेजी तथा अन्य भाषा भी सीखें और उनका अध्ययन करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन की सबसे प्रसन्नतादायक घटना के विषय में पूछने पर आपने बताया कि स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रपति ने संस्कृत के विद्वानों की प्रथम पंक्ति में मेरा सम्मान कर १५००)रु० की जो निधि अर्पित की वही मेरे लिए सबसे हर्ष एवं गर्व की वस्तु रही है। विदेशी सरकार ने महामहोपाध्याय की पदवी देकर मेरा सम्मान अवश्य किया था किन्तु स्वतन्त्र राष्ट्र की सरकार का यह सम्मान और समादर मेरे लिए विशेष हर्ष और गौरव की वस्तु रहा है।

—:●:—

महान् व्यक्तित्व के धनी

(श्री किशोरीदास वाजपेयी)

सन् १९१५ में मैं वृन्दावनमें संस्कृत का छोटा सा छात्र था। आदरणीय चतुर्वेदी जी उस समय देशके सर्वोच्च पण्डितोंमें एक थे उस समय हरिद्वार का ऋषिकुल विद्यापीठ उत्तर-पश्चिम भारतका सर्वश्रेष्ठ संस्कृत शिक्षाका केन्द्र था। आदरणीय चतुर्वेदीजी प्रधानाध्यापक (आचार्य) थे। आपके सहयोगियोंमें भी बड़े-बड़े विद्वान् थे, जिनमें से एक का नाम तो हिन्दी के सभी एम० ए० विद्वान् जानते हैं—साहित्याचार्य पंडित शालिग्राम शास्त्री। शास्त्रीजीने 'साहित्यदर्पण' की' 'विमला' हिन्दी टीका लिखकर हिन्दी वालोंमें साहित्यशास्त्रीय विषयोंकी जड़ जमाई। स्वयं चतुर्वेदीजी हिन्दीके समर्थक थे। वे हिन्दी-जगत्के बहुत पुराने संस्मरण सुनाया करते थे, जब कलकत्तेमें पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र, पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी और बालमुकुन्द गुप्त जैसे महारथी हिन्दी की जड़ें जमा रहे थे। चतुर्वेदी जी व्रजभाषा-काव्यके बड़े प्रेमी थे, खूब रस लेते थे और सैकड़ों व्रजभाषा-पद्य उन्हें याद थे। मेरी 'तरंगिणी' में भी उन्हें रस मिला था और उसे उन्होंने प्रकट भी किया था। वे अर्वाचीन रहस्यवादी कविताओंके प्रेमी न थे, पर बुराई न करते थे। जब वे हरिद्वारमें थे, उस समय पण्डित पद्मसिंह शर्मा भी वहीं थे—ज्वालापुर महाविद्यालय में और वेदतीर्थ पण्डित नरदेव शास्त्री भी वहीं थे। काशी की ही तरह हरिद्वार भी संस्कृतके साथ हिन्दीका गढ़ था। आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी भी कभी-कभी जाकर ज्वालापुर-महाविद्यालयमें महीनों ठहरते थे। बड़ी सरस विद्वद् गोष्ठी जमती थी।

ऋषिकुलसे 'ब्रह्मचारी' नामका एक अच्छा हिन्दीका मासिक पत्र भी निकलता था। उसके सम्पादक आदरणीय चतुर्वेदी जी ही थे। बड़े-बड़े साहित्यिकोंके लेख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस पत्रमें छपते थे। चतुर्वेदीजी टकसाली हिन्दी ऐसी लिखते थे, जो अन्यत्र संस्कृत-मंडली में दुर्लभ थी। हाँ आपके साथी पण्डित शालिग्राम शास्त्री तथा पण्डित पद्मसिंह शर्मा की हिन्दी जरूर ऐसी थी कि उन संस्कृत पण्डितोंको भी इधर खींच लाई, जो अंग्रेजीवालोंकी ही तरह हिन्दी को हीन समझकर इससे दूर रहते थे—शिष्योंको भी दूर रहने का उपदेश देते थे। हिन्दीके उन दुर्दिनों में चतुर्वेदीजीने और उनके संगी-साथियोंने इसका जमकर पक्ष लिया था।

चतुर्वेदीजीका संस्कृतमें भाषण मैंने सन् १९१७ में सुना। प्रत्यक्ष दर्शन भी तभी हुए। दिमागकी ही तरह भगवान्‌ने उन्हें शरीर-सम्पदा भी सर्वश्रेष्ठ दी थी। पूरा ऊंचा कद, सुडौल और भरा हुआ गौर वर्ण, मुख मण्डलपर स्पृहणीय दमक। सब कुछ अपूर्व था। भाषण सुननेपर मालूम हुआ कि 'मन्द्र गंभीर' वाणी इसे कहते हैं। उनके बोलनेमें रस था। भाषण ऐसा 'प्रसाद' गुणसे पूर्ण कि मैं भी पूरी तरह समझता चला गया, यद्यपि 'प्रथमा' परीक्षा ही पास की थी। वे अन्य संस्कृत पण्डितों की तरह वार्तालापमें तथा भाषणमें शब्दोंको रगड़ न देते थे। उनकी वाणी अपूर्व थी। पण्डित तो और भी है, पर उनके जैसा भाषण मैंने किसीका भी नहीं पाया।

आदरणीय चतुर्वेदी जी की इस जनपर भी वात्सल्य दृष्टि थी। मेरे अछूतोद्धार जैसे कामोंकी गतिविधि उन्हें रुचिकर न थी, परन्तु ऐसी बातों ने स्नेह-सुधा देनेमें कभी बाधा नहीं डाली।

मेरे प्रियबन्धु वैद्य रामनारायण शर्मा (वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेडके संस्थापक और मैनेजिंग डाइरेक्टर) पर भी आदरणीय चतुर्वेदी जी की कृपा थी। वैद्यजीने जब आपकी आंखोंका (मोतिया बिन्दका) इलाज कराया, आँखें ठीक हो गयीं, तब एक दिन मैं दर्शन करने गया। पाँव छुए, तो ग्रन्थपर गड़ी दृष्टि ऊपर उठी। प्रेमकी तो वे मूर्ति ही थे। स्मित उनका वात्सल्यपूर्ण था। 'कब आए' ? पूछनेपर मैंने कहा कि दस-पन्द्रह दिन हो गये हैं, नागरी प्रचारिणी सभामें कुछ काम है। तरह तरहकी बातें करते रहे। मैंने प्रार्थना की, अब आप आंखोंसे वैसा काम न लें, पढ़ना-लिखना एकदम बन्द कर दें। बोले—'खाली बैठनेकी आदत नहीं। कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्' मैंने फिर भी पूरा जोर लगाकर कहा कि अब आप आराम करें, बहुत कर चुके हैं। इसपर वे मुस्कराये और उस मुस्कराहटमें यही था कि तुम वही कह रहे हो, जो कहना चाहिए और मैं वही करूंगा, जो ब्राह्मण को करना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे अन्त समय तक सरस्वती की आराधना करते रहे। उत्तर भारतकी संस्कृत-श्री चली गयी। सच कह दूं, संस्कृतके बड़े-बड़े पण्डितोंसे मैंने भी अध्ययन किया है, बड़े-बड़े विद्वानोंके सान्निध्य में भी रहा हूं, मेरे ऊपर किसी-किसीका प्रभाव भी पड़ा है, परन्तु श्रद्धा-भाजन मेरा ऐसा कोई दूसरा नहीं हुआ।

जिन्हें मैं नहीं समझ सका

(श्री देवीदत्त शर्मा चतुर्वेदी)

काव्यों में पढ़ा है —

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।

लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥ इसका प्रत्यक्ष निदर्शन अपने पूज्य पितृ चरणों के जीवन में देखने को मिला। अपने नित्य नियम किंवा धार्मिक सदाचार के विषय में सचमुच वे वज्र के समान कठोर थे। इस विषय में त्वरा करने अथवा कुछ शिथिलता वर्तने के लिए कहने वाला कोई कितना भी संभ्रान्त पुरुष क्यों न हो—उसकी बातों पर ध्यान नहीं देते थे, इतना ही नहीं बल्कि प्रकृति जनित सर्दी, गर्मी किंवा वर्षा की विशेषता भी उनको अपने संकल्प से डिगाने में असमर्थ रहती थी। इसी प्रकार सभाओं में जहाँ शास्त्र चर्चा का प्रसङ्ग आता वहाँ आप स्थिरतापूर्वक अडिग जमे रहते थे। धारणा शक्ति तो इतनी अद्भुत थी कि कहीं सभा में किसी विषय देखने को कोई पुस्तक मँगवाई पर बोलने के लिए हो ऐसा प्रसङ्ग शायद ही कोई उपस्थित हुआ हो। स्वच्छ सरस्वती सदा वाणी पर विराजमान रहती थी। शास्त्र विचार में किसी का मुलाहिजा मानने को वे कभी तत्पर नहीं हुए। आचार दृढ़ता का अभी ३ वर्ष पूर्व का निदर्शन बहुत अद्भुत है। आप बीमार थे, शरीर ज्वराक्रान्त था, प्रकृति भी शीत प्रधान हो रही थी, कविराज श्री व्रजमोहन जी दीक्षित उपचार कर रहे थे, आपकी सदा आयुर्वेद पर ही आस्था रही—अपनी डाक्टरी चिकित्सा सिवाय नेत्र के आपरेशन के आपने कभी नहीं कराई, बल्कि मुझे आदेश दे रखा था कि अन्तिम अवस्था यदि अचेतनावस्था हो तो भी हमारी डाक्टरी चिकित्सा न कराई जावे। अस्तु, उस समय ज्वर की अवस्था में वैद्य जी ने स्नान का निषेध कठोरता से कर दिया, न केवल वैद्य जी ने ही हिन्दू वि० वि० के प्रो० वाइस चान्सलर महोदय जो आपका कुशल पूछने को पधारे, उनने भी बहुत अनुनय किया कि इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवस्था में स्नान तो नहीं ही होना चाहिये, किन्तु आप नहीं माने, स्नान हुआ ही—तज्जन्य दोष निवृत्ति के लिये औषधोपचार और विशेष होता रहा यह दूसरी बात है। इस तरह अपने शारीरिक आचार के विषय में जहाँ आप अत्यन्त कठोर थे—वहाँ घरेलू व्यवहार में तथा छात्रों के साथ बर्ताव में किंवा लौकिक अन्य व्यवहारों में आप इतने मृदु एवं उदार थे कि जिसको देखकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता था। खर्च के विषय की उदारता तो सीमा लांघ चुकी थी। साधारणतया अन्य जन जिस काम में जितना व्यय करते हैं—वही काम जब ये करते तो त्रिगुण व्यय तो निश्चित ही हो जाता था। यद्यपि आप पूर्ण वृद्ध हो चुके थे—किन्तु उत्साह का यह हाल था कि घर में यदि देखते कि वातावरण कुछ सुस्त सा हो रहा है तो बालकों को आप उत्साहित करते कि आज तो अमुक दिन है, आज तो कुछ विशिष्ट भोजन आदि बनने चाहियें, अमुक-अमुक स्वजनों को निमन्त्रण कर आओ, अब यदि उस प्रोग्राम में शिष्यों के द्वारा फोटो आदि का कोई नया वर्धन और हो जाता तो खर्च विशेष हो जायगा यह समझ कर उस प्रोग्राम को कभी रोकते नहीं थे, बल्कि उत्साहित किया करते थे। उनका कहना था कि जो कुछ तुम को प्राप्त है उसे ले रहे हो तो इसमें तो तुम्हारा पुरुषार्थ ही क्या है, उसके अतिरिक्त और नवीन कुछ उपस्थित करो—वह पुरुषार्थ माना जायगा। इतनी वृद्ध तथा जर्जर अवस्था में भी कभी पुरुषार्थ वा उत्साह की कमी उनमें नहीं पाई गई। उनका कहना था कि पूरे उत्साह के साथ काम का आरंभ कर दो और तत्परता से काम के पीछे लगे रहो तो कार्य की पूर्णता भगवान् कर ही देते हैं।

कार्य तत्परताका उदाहरण देखिये, वर्षा ऋतु थी रात में बिजली की रोशनी में सहस्रों कीड़े गिर रहे थे, हम तीन शिष्यों को पूज्य चरण पृथक्-पृथक् लिखवा रहे थे। कीड़ों के कारण बहुत परेशानी हो रही थी—जब कि आप नंगे बदनबैठे हुए थे और किसी प्रकार का विकार उन कीड़ों से आपको उत्पन्न नहीं हो रहा था। तब मैंने झुँझला कर कहा—'क्या आपको ये कीड़े काटते नहीं हैं ? या परेशानी का अनुभव आपको नहीं होता ? "इस पर हँस कर बोले" क्यों मैं मनुष्य नहीं हूँ क्या ? कीड़ों से परेशानी मुझे क्यों नहीं होगी ? किन्तु भाई ? यह मौसम कीड़ों का होता ही है, तो क्या कीड़ों के कारण काम नहीं किया जाय। उस समय समझ में आया कि यह कार्य तत्परता ही वास्तव में मनुष्य को महान् बना देती है। तभी तो एक साधारण ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न होकर भी इतना विद्या अध्ययन तथा भारत व्यापी यश का अर्जन आप कर सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूज्य चरणों में एक खास बात यह देखने को मिली कि किसी प्रकार के विशिष्ट वातावरण का आप पर असर नहीं पड़ता था। चाहे राजा का दरबार हो चाहे किसी बड़े रईस की बैठक अथवा कोई बहुत गम्भीर विद्वानों का समाज हो आप सर्वत्र एक रस रहते थे। स्वार्जित तपस्या एवं अपनी अधीन विद्या पर इतनी तगड़ी आस्था थी कि वह आस्था ही उन्हें अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रखती थी। शास्त्रों में आस्तिकतामय आस्था का एक निदर्शन उपस्थित करता हूँ। सन् १९३५ में मेरे पूज्य पितामह के देहावसान पर, एकादशाह तथा सपिंडन के अवसर पर, बहुत विशाल आयोजन किया गया था, जयपुर के सम्माननीय संभ्रान्त पुरुष तथा सम्पूर्ण विद्वन्मण्डल उस समय वहाँ उपस्थित थे। कर्म का आचार्यत्व मथुरा के सुप्रसिद्ध वैदिक श्री अमृतराम राम जी पंड्या कर रहे थे। वहाँ विधिप्रयुक्त वृषोत्सर्ग कर्म के लिये वृष गाँव से मँगाया गया था, इसने नगर पहिली बार देखा था—अतः यह प्रतिक्षण उद्दण्डतापूर्ण चमक से उछल रहा था, इसे ३-४ आदमियों ने रस्सों से बाँध रखा था। इसका उद्दण्ड भाव देख कर विद्वानों ने यह निर्णय दिया कि बैल की पूँछ से कलावा बाँध कर शास्त्र विधि को सम्पन्न कर लिया जाय, क्योंकि प्रत्येक दिक्पाल के अभिमुख करके तब वृष का उत्सर्ग होता है और इस प्रक्रिया में कुछ समय लगता ही है—इतनी देर तक बैल शान्त नहीं रह सकता, अतः उक्त निर्णय किया गया, किन्तु जब वह समय आया तो आपने वृषकी पूंछ से कलावा बांध कर उत्सर्ग करना स्वीकार नहीं किया और श्री अमृतराम जी पंडया से कहा कि मन्त्र शक्ति पर इतनी अनास्था नहीं होनी चाहिये, कार्य सब यथाविधि ही होना चाहिये। पंडया जी महाराज में भी आस्था जाग पड़ी और उस उद्दण्ड बैल के सारे बंधन खोल दिये गये, मन्त्र पाठ आरंभ हुआ, आपने सोत्साह बैल की पूंछ पकड़ली और तब वह चमत्कार सब विद्वानों को देखने को मिला कि श्री पंडया जी महाराज के मुख से शब्द निकलते थे 'वृषं पूर्वाभिमुखं कृत्वा' और वृष स्वयं तत्तद्दिशा की ओर मुख करता चला जाता था। कार्य समाप्ति अर्थात् उत्सर्ग संकल्प होने तक पूर्ण शान्त खड़ा रहा, और संकल्प होजाने के अनन्तर जब आपने कहा कि लो भाई अब तुम लोग इसे संभालो तब वृष अपनी पूर्व उद्दण्ड अवस्था में आचुका था। इस आस्था को देख कर सब पंडित तो आश्चर्य चकित हुए ही किन्तु श्री पंडया जी महाराज ने तो स्पष्ट ही कहा कि मैं दरभंगा नरेश तक को कर्म करा चुका हूं किन्तु ऐसी अद्भुत आस्था मुझे कहीं देखने को नहीं मिली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बालक से भी उचित बात ग्रहण कर लेनी चाहिये-यह गुण आप में अद्भुत था। हम इतने बड़े विद्वान् हैं, अतः एक अज्ञानी बालक की बात पर क्या ध्यान दें, ऐसा विचार उनका कभी नहीं होता था। उदाहरणार्थ-एक घटना उपस्थित करता हूं, उस समय आप काशी में टीकमणि कालेज में रहते थे, कालेज की ऊपर की मंजिल में आप का निवास था। वहां आप रोगाक्रान्त होगये, वात व्याधि के कारण आप के दोनों घुटने जकड़ गए थे। सीधे नहीं हो पाते थे, ऐसी स्थिति २०-२५ दिन रही। मल मूत्र त्याग की व्यवस्था वहां कमरे में ही की गई थी, मैं सेवा में था, माघ का महीना था, शीतकालीन वर्षा कई दिन से चल रही थी, शीत उग्र था। करीब १८ दिन बाद एक रात की घटना है, उस समय करीब २ बजे रहे थे कि आपने लघुशंका निवृत्यर्थ प्रेरणा की, निवृत्त हो कर आपने पुनः विश्राम किया, अभी आराम किये आधा घंटा भी नहीं हुआ था कि आप सहसा बोल पड़े, "अरे ? यह क्या ? इस अट्टहासका क्या कारण ?" एक क्षण के लिये मैं घबरा गया, विचार आया कि शायद सन्निपातका आक्रमण होगया और ये वायु के प्रवाह में बोल रहे हैं। छोटा भाई दूसरी जगह नीची ब्रह्मपुरी वाले मकान में पढ़ने को रह रहा था, उसे सूचना देना अत्यावश्यक था, इधर इनको अकेला कैसे छोड़ा जाय, कुछ कर्तव्यमूढता सी आई, अस्तु मैंने आपको छेड़ा कि आपकी तवियत कैसी है ? तो बोले, 'ऐसा क्यों पूछते हो ?' मैं आश्वस्त हुआ और कहा कि आप कुछ असम्बद्ध बोले, अतः मुझे सन्देह हुआ। 'क्या बोला', पूछने पर जब मैंने बताया तो कहा कि 'नहीं असम्बद्ध कुछ नहीं, अभी अभी विचार आया था कि 'हे विश्वनाथ ? यों अशुचि अवस्था में पड़े रहने को ही काशी बुलाया था क्या ?' सो त्रिशूल हाथ में लिये अट्टहास करते दिखाई पड़े हैं, वास्तव में हम उस अट्टहास का तात्पर्य नहीं समझ सके-अतः कहा कि ये अट्टहास कैसा ? 'जब मैंने कहा कि अट्टहास का तात्पर्य मैं समझ गया तो आपने सोत्कंठ पूछा, क्या समझे ? मैंने कहा, आप भारतवर्ष के मूर्धन्य दार्शनिक माने जाते हैं, फिर भी इस शरीर यातना से इतने घबरा रहे हैं यही तो कारण है अट्टहास का, तो आप पूर्ण आश्वस्त हुए और बोले तुम ठीक कहते हो, अब मैं बिलकुल नहीं घबराऊंगा और सचमुच उस समय से आप में जो उत्साह जागा तो आप क्रमशः ५-७ दिन बाद ही रोग मुक्त होगये, और शिवरात्रि पर अर्चन आपने स्वयं कर लिया। यह था आप का "बालादपि गुणा ग्राह्याः" वाला स्वभाव।

एक दो घटना ऐसी विचित्र देखने में आईं कि जिन से अनुमान होगया कि पूज्य चरणों में शाप या अनुग्रह की शक्ति आचुकी है। प्रथम घटना ये कि आप जब महाराज संस्कृत कालेज जयपुर में प्रिंसिपल के पद पर काम कर रहे थे-उस समय ३-४ छात्र हमारे घर पर रहकर ही आप के पास पढ़ते थे, उन में थे एक राघवानन्द शास्त्री, ये लाहौर से शास्त्री परीक्षा पास कर के विशेष अध्ययनार्थ आये थे, पिताजी के पास ये दर्शन के ग्रन्थ पढ़ते तथा विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदन ओझा के पास शतपथब्राह्मण का पाठ सुनने रात में जाते थे, उस समय इन को जयपुर में लगातार रहते ३ वर्ष होगए थे। इस बीच में ये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तिम–दर्शन

कनिष्ठ पुत्र शिवदत्त शर्मा की अंजलि में
श्री चतुर्वेदी जी का भौतिक शरीर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने घर गए ही नहीं, सहारनपुर के समीप जिला मुजफ्फरनगर के पास गांव में इनका घर है, घर से पत्नी के अनेक पत्र आये कि एक बार घर पर आना चाहिये, किन्तु ये उपेक्षा ही करते रहे। जब हमारी बहनों को यह ज्ञान हुआ तो उनने पिताजी से शिकायत की कि राघवानन्द अपनी पत्नी को कष्ट दे रहा है, वहाँ जाकर उसे सँभालता नहीं, उसके अनेक पत्र आचुके हैं। तो आप ने रात में श्री राघवानन्द से कहा कि तुम घर क्यों नहीं जाते हो? क्या चोरी होने का तार आवेगा तब जाओगे? राघवानन्द चुपचाप सुनकर चले गए। दो दिन बाद वास्तव में इन के घर से तार आया कि घर का सब माल चोरी चला गया, हम सब को बड़ा आश्चर्य तथा दुःख हुआ किन्तु राघव शास्त्री फिर भी दृढ थे और कह रहे थे कि गुरूजी के शाप के कारण चोरी हुई है, अब मैं जाकर के क्या करूँगा? जब गुरुदेव ने कहा कि अरे भाई! जा, जाकर यत्न कर, तो संभवतः चोरी हुआ माल मिल जायगा, तब वह आश्वस्त हो कर घर गया और ६-७ दिन बाद ही लौट आया और कहने लगा, गुरूजी महाराज ने माल मिल जाने का वरदान दे दिया था, सो सब मिल गया, अब वहां कोई कष्ट नहीं है।

एक दूसरी घटना जो मुझ से ही सम्बन्ध रखती है, अपने आप में विचित्र ही थी। सन् १९५३ के ग्रीष्मकी घटना है, मेरी बड़ी २ कन्याओं का विवाह प्रसङ्ग था। आप उस समय जयपुर आए हुए थे, कुछ द्रव्य की कठिनाई उपस्थित थी, यद्यपि अपने पास से और ऋण लेकर अब तक सात सहस्र व्यय हो चुके थे। हमारी घरेलू तय्यारी का यह अन्तिम दिन था क्योंकि दूसरे दिन प्रातः काल ही दोनों बरातें, एक लश्कर से तथा दूसरी आगरा जिलान्तर्गत होलीपुरा से आ रहीं थीं। रात्रि भोजन के अनन्तर आपने मुझ से पूछा कि द्रव्य का क्या हाल है? मेरे बताने पर कि सात सौ रुपये मेरे पास हैं, आप ने कहा, इतने से काम नहीं चलेगा, और विचार मग्न हो गए। थोड़ी देर बाद कहा कि हमारे शयनार्थ केवल एक ऊन का गलीचा जमीन में ही बिछा दो और सिरहाने पर एक पटा रख दो, खाट पर बिस्तर मत बिछाओ। मेरे यह निवेदन करने पर कि इस तरह आप को निद्रा ही नहीं आ सकेगी, आपने कहा कि जैसा कहा है वैसा कर दो, प्रश्न मत करो। वैसी ही व्यवस्था कर दी गई, आप सो गए। प्रातः ३ बजे गाड़ी आगरे से आती थी-अतः स्टेशन पर स्वागतार्थ आदमियों के भेजने के लिये मैं जाग गया, स्टेशन पर जाने वालों को भेज दिया गया। क्रमशः प्रातः हुआ। आपने पूछा क्या हाल है? मैंने सूचित किया कि बरात आगई और जनवासे में ठहरा दी गई, अब अग्रिम व्यवस्था में लगा हूँ। उस दिन अष्टमी थी और अष्टमी को दो प्रहर आप मौन व्रत रखते थे। आपने कहा, देखो यदि कल मध्याह्न में तुम्हारे पास कहीं से धन राशि आवे तो हम को तत्काल सूचना मत देना, हम को सायंकाल मौन खोलने पर ही बताना। मैंने 'जो आज्ञा' तो कह दिया, किन्तु हृदय चल-विचल था कि अब कहीं से भी धन राशि तो आने वाली है नहीं, व्यवहार के निमंत्रणों के यदि १००-५० के मनिआर्डर आये तो उनसे क्या बन सकेगा? अस्तु, बरातों के स्वागत प्रबन्ध में लग गए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रमशः मध्याह्न हुआ तो पोस्टमैन ने एक बीमा एक सहस्र का, जो कानपुर के एक मिल के अधिपति ने विवाहोपलक्ष में भेजा था, लाकर दिया। चित्त में कुछ शान्ति आई, किन्तु आज्ञानुसार आपको सूचना नहीं दी गई, आप अपने मौन व्रत में उपासना में बैठे थे। घर में पाहुन छक-बरात का प्रथम सायंकालीन भोजन जो जनवासे में ही कराया जाता है—जिसमें हमारी जाति में शाकों की संख्या अधिक होती है, उसकी यथाशक्ति तय्यारी हो रही थी। दिन के तीन प्रहर व्यतीत हो चुके थे, करीब ४ बजे के समय एक कार में मुम्बई से सेठ लोयलका जी सपरिवार आये, और उनने पंडित जी से मिलने की इच्छा प्रकट की, मैंने कहा आज उनका मौन व्रत है, वे बातचीत तो नहीं कर सकेंगे। तो सेठ जी ने कहा, मैं केवल दर्शन मात्र करूँगा। पूज्य चरणों को सूचना दी गई तो उनके संकेत पर उनके पास ही आसन बिछा दिया गया, सेठ जी ने सपरिवार आकर प्रणाम किया, विवाह का घर स्त्री-पुरुषों से भरा था, सेठ जी ने पूछा, घर में कोई उत्सव है? मेरे यह कहने पर कि आज रात में पंडित जी की पौत्रियों का विवाह संस्कार होगा। सेठ जी ने सेठानी जी की ओर देखा, नेत्रों में ही शायद कुछ विचार हुआ और सेठ जी ने एक सहस्र के नोट पूज्य चरणों के पास रख कर प्रणाम किया और कहा कन्या के विवाह में मेरा पत्र पुष्प स्वीकार कीजिये। आशीर्वाद लेकर जब सेठ जी विदा हो गए तो मुझे संकेत किया कि यह द्रव्य उठा लो। रात में मौन छोड़ा और पूछा कि क्या हाल है? मैंने जब बीमे की सूचना दी तो बोले—अब रहस्य समझे कि नहीं? यदि तुम मध्याह्न में ही बीमे की सूचना दे देते तो यह सहस्र जो सायंकाल तुम पासके नहीं पा सकते थे। 'लोकोत्तराणां चेतांसि' वाली बात थी, मैं कह ही क्या सकता था, सिवाय गद्गद् होने के। ऐसे अद्भुत थे वे, अर्थात् अपनी तपस्या में से भी उत्सर्ग करते हुए जिनको हिचक नहीं हुई। मेरे लिये तो जैसे उनके पास अदेय कुछ था ही नहीं, यहाँ तक कि जो चीज संसार में कोई पिता नहीं दे सकता, वह भी उनने मुझे दिया। काशी के निवास काल में रोगावस्था की घटना है, उन दिनों मुझे कुछ परिश्रम अधिक करना पड़ा, माता भी बीमार हो गई थीं, मेरा बालक तो छोटा था ही, भाई भी शास्त्री परीक्षा दे रहा था। विशेष वयस्क नहीं हो पाया था। सारी जिम्मेवारी मुझ पर थी, उन १६ रातों में मैं सो नहीं पाया, मेरे इस परिश्रम से प्रसन्न हो वे एक दिन बोले "तुम्हें देने को हमारे पास धन धान्य तो है नहीं, किन्तु हम तुम को अपने पितृ ऋण से मुक्त करते हैं।" देखी आपने दान महिमा। सारे पिताओं को लोभ लोकान्तर में पिण्डोदक का होता है, उस लोभ का भी आपने परित्याग कर दिया। यह मेरे पूर्व जन्म के किसी महापुण्य का फल मैं मानता हूं कि उनके समान पिता मुझको प्राप्त हुए। उनकी तो जीवन की इतनी गहन तपस्या थी कि निश्चित ही उनको परम पद प्राप्त हुआ, आवागमन के बन्धन को उनने तोड़ दिया, किन्तु भारत को ऐसी विभूतियों की इस समय अत्यन्त आवश्यकता है—यह क्षतिपूर्ति भगवान् विश्वनाथ करें, यही प्रार्थना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"स्वर्गीय श्री चतुर्वेदी जी देश के इने गिने विद्वानों में तो थे ही धार्मिक वक्ता के रूप में विद्वानों में उनकी गणना सर्व प्रथम हो सकती है।"

—स्वामी श्री माहेश्वरानन्द सरस्वती

"वे सच्चे अर्थों में महापुरुष थे।"

— डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

"शास्त्री जी सभी शास्त्रीय सन्देहों के निराकरण की अद्‌भुत क्षमता रखते थे। ज्ञान, धर्म और संस्कृति की जिस परम्परा का उन्होंने पोषण किया वह अगर क्षीण हो गई तो हमारे लिए यह बहुत शोचनीय होगा। ज्ञान, वैराग्य और त्याग, ब्राह्मणत्व के ये तीनों तत्त्व उनमें पूरी तरह थे।

—डा० राजबली पाण्डेय

"उनके देहावसान से संस्कृत साहित्य की बहुत बड़ी क्षति हुई।"

—पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय

"स्वर्गीय श्री चतुर्वेदी जी ने सारे भारत में सनातन धर्म की विजय पताका फहराई थी"

—पं० कालीप्रसाद मिश्र

"श्री चतुर्वेदी जी पुरातन पीढ़ी के प्रकांड विद्वानों की लड़ी की अन्तिम कड़ी के समान थे"

—श्री विश्वबन्धु शास्त्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi